Walden-Sarovar. Hindi translation by Banarasidas Chaturvedi of Henry David Thoreau's American classic *Walden*. Sahitya Akademi (1971), Price Rs. 7.50.

प्रथम संस्करण, १९६४
द्वितीय संस्करण, १९७१

साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन,
नई दिल्ली से प्राप्य

मुद्रक :
भारती प्रिंटर्स,
के-१६, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-३२.

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

भूमिका

हैनरी डेविड थोरो सन् १८४५ में वालडेन के तटवर्ती वन में एकांत-वास के लिए चले गए थे। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं दिनों की अनुभूतियों का सुपरिणाम है। अपने वन-निवास का कारण बताते हुए थोरो ने लिखा है—

"मैंने वन की राह ली, क्योंकि मैं अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करना चाहता था, जीवन के केवल सारभूत तथ्यों का ही सामना करना चाहता था। मैं देखना चाहता था कि जीवन जो कुछ सिखाता है उसे मैं सीख सकता हूँ या नहीं और साथ ही मैं नहीं चाहता था कि अंतकाल आने पर मुझे पता लगे कि अरे मैं तो जीवित ही नहीं रहा।"

वालडेन-सरोवर मैसाच्युसेट्स में कौंकर्ड के निकट था। उन दिनों यह नगर दो सौ वर्ष पुराना था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि थोरो किसी घनघोर वियावान वन में जंगली लोगों-जैसा जीवन व्यतीत करने के लिए गए थे। वे तो नगर से इसलिए बाहर चले गए थे कि वे एक दार्शनिक की तरह ज़िन्दगी व्यतीत कर सकें।

उन्होंने एक कुल्हाड़ी उधार ली और पन्द्रह फुट लम्बी और दस फुट चौड़ी एक कुटी अपने लिए बना ली। इसी कुटी में वह सोते थे और इससे गर्मियों के मेह और न्यू इंग्लैण्ड के जाड़ों की बर्फ से उनका बचाव हो जाता था। उनकी अन्य आश्यकताएँ इनी-गिनी थीं—थोड़ा-सा भोजन, चंद किताबें और पर्याप्त अवकाश।

प्रकृति से प्रश्न करने के लिए और इन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर पाने के लिए उन्हें समय और एकांत, इन दो चीज़ों की आवश्यकता थी। संक्षेप में यों कहिये, वे चिन्तन करना चाहते थे। कुछ लोग कभी-कभी केवल सोच-विचार में 'समय नष्ट करने' पर थोरो पर ताने कसते थे। इससे थोरो चिढ़ जाते थे। थोरो इस बात को भली-भाँति जानते थे, जिसे दूसरे लोग नहीं जान पाते कि मनुष्य के लिए सबसे कठिन काम विचार करना है।

उन्होंने अपने चारों ओर के पशु-पक्षियों को देखा। परिवर्तनशील ऋतुओं को देखा तथा जल और वायु के व्यवहार का निरीक्षण किया। उन्होंने सरोवर

की गहराई और वृक्षों की ऊँचाई आँकने का प्रयास किया और अपनी देखी हुई सभी चीज़ों की नाप-जोख का लेखा रखने का प्रयत्न किया। जिस तरीके से थोरो काम करते थे उससे आधुनिक वैज्ञानिक को तो निराशा ही होगी। वे विना किसी यंत्र की सहायता के अपनी आँखों से देखना ही पसन्द करते थे। नापने के गज़ को छोड़कर वे किसी अन्य साधन का प्रयोग नहीं करते थे। इसके वाद वे अपनी वुद्धि लगाते थे और अपने ही निष्कर्ष निकालते थे। यह दूसरों के लिखित अध्ययन और अर्जित ज्ञान पर आधारित नहीं होते थे। वे कहते थे, 'हमारा विज्ञान सदा ही हमारी अनुभूतियों की अपेक्षा अधिक निष्फल और त्रुटिपूर्ण होता है।'

इस ग्रंथ की रचना थोरो ने वालडेन-तट के प्रवास-काल में नहीं की थी। वहाँ तो उन्होंने अपनी विशाल डायरी में वहुत-सी वातें दर्ज कर ली थीं। इस डायरी में अड़तीस नोटवुकें हैं। यह डायरी एक खान है, जिसमें से काट-काटकर इस ग्रंथ का निर्माण किया गया है। इसका अधिकांश थोरो के उस गम्भीर चिन्तन और अध्ययन का परिणाम है, जो आजीवन चलता रहा। उदाहरणार्थ, उन्हें प्राच्य दर्शन का ज्ञान था। इस ग्रंथ के अनेक अवतरणों में उन्होंने भारतीय साहित्य के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है। इनमें सवसे सुन्दर स्थल वह है जहाँ वे 'शीतकाल में सरोवर' नामक अध्याय में लिखते हैं :

"प्रत्येक प्रातःकाल मैं भगवद्गीता के विराट् और विश्वोत्पत्ति-सम्वन्धी देव दर्शन में अपनी वुद्धि का अवगाहन करता हूँ, जिसकी रचना हुए कितने ही वर्ष वीत चुके हैं, और जिसकी तुलना में हमारा यह आधुनिक संसार और साहित्य ही तुच्छ और महत्त्वहीन प्रतीत होता है। इसका विराटत्व हमारी धारणाओं से इतनी दूर है कि मुझे सन्देह होता है कि कहीं यह दर्शन अस्तित्व के किसी पूर्व काल से सम्वन्धित तो नहीं है। इस ग्रंथ को रख देता हूँ और फिर मैं जल लेने के लिए अपने कुए पर जाता हूँ। यहाँ मेरी भेंट ब्राह्मण के सेवक से होती है। यह ब्राह्मण ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र का एक उपासक है, जो अव भी गंगा-तट पर अपने मंदिर में वैठकर वेदों का पाठ करता है अथवा किसी वृक्ष के कोटर में रोटी और जल-पात्र लेकर रहता है। उसका सेवक जव अपने स्वामी के लिए जल लेने को आता है तो उससे मेरी भेंट होती है और मानो हम दोनों के पात्र उस कुए में टकराते हैं। वालडेन का विशुद्ध जल गंगा के पवित्र जल में मिल जाता है।"

'वालडेन' ग्रंथ-लेखक के वन में जाने के दस वर्ष वाद सन् १८५४ में प्रकाशित हुआ था। उसका स्वागत तो हुआ, पर काफी आलोचना के साथ। दो हज़ार प्रतियों का प्रथम संस्करण तो आखिर विक गया, लेकिन दूसरा संस्करण लेखक की मृत्यु के वाद ही निकल पाया। ग्रंथ का प्रभाव उत्तरोत्तर वढ़ता गया। व्रिटिश मज़दूर-दल ने इसे पाठ्य-ग्रंथ के रूप में रखा। संसार-भर के बुद्धिजीवियों का ध्यान इस ग्रंथ ने आकर्षित किया है। आज 'वाल्डेन' ग्रंथ के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। कागज़ की जिल्द का एक संस्करण तो अमरीका के कोने-कोने में विकता है। अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और अव 'साहित्य अकादमी' की सुप्रसिद्ध ग्रंथमाला के अंतर्गत इसका अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इससे थोरो की आत्मा को सुख मिलेगा।

यह ग्रंथ वास्तव में उच्च कोटि का है। लेखक के जीवन-काल की अपेक्षा उसकी मृत्यु के वाद उसका महत्त्व और भी वढ़ा है। 'वालडेन' आज पहले से कहीं अधिक जीवित-जाग्रत है। यह सजीव इसलिए है कि इसमें महान् विचार हैं, और महान् विचार अक्षय होते हैं। थोरो की अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध पुस्तिका Civil Disobedience (सविनय अवज्ञा) से यह सत्य और भी स्पष्ट हो जाता है। इस पुस्तिका की रचना के लगभग पचास वर्ष वाद, यह महात्मा गांधी के हाथ में पड़ी, जव वे प्रिटोरिया जेल में थे। वाद में जैसा गांधी जी ने वताया था, थोरो का सत्याग्रह का विचार उनके अपने विचार के ही समान था, और वास्तव में उन्होंने Civil Disobedience (सविनय आज्ञा) शव्दों का प्रयोग भी भारत के महान् स्वन्त्रता-आन्दोलन में किया था।

'वालडेन' अनेक महान् विचारों से परिपूर्ण है। ये अनश्वर हैं। उनमें से एक विश्वास यह है कि मनुष्य की वास्तविक शक्ति का अधिकांश उसकी संस्थाओं में नहीं, वल्कि स्वयं उसी में निहित रहता है। मोहनदास गांधी को थोरो की पुस्तिका Civil Disobedience से जो आस्था प्राप्त हुई थी, अव वह कदाचित अन्य अनेक लोगों को हैनरी डेविड थोरो के 'वालडेन' ग्रंथ से प्राप्त हो सकेगी।

न्यूयार्क

रावर्ट एल० कौवेल

क्रम

१. अर्थ-व्यवस्था

इन पृष्ठों के (इनमें से अधिकांश पृष्ठों के) लेखन-काल में मैं 'वालडेन' नामक सरोवर के किनारे वन में रहता था। मैंने अपना मकान अपने हाथों से बना लिया था और आस-पास एक मील की दूरी तक मेरा कोई पड़ोसी नहीं था। यह स्थान मैंसाचुसेट्स राज्य के कौंकर्ड नामक प्रदेश में है। मैं इन दिनों केवल अपने हाथों के परिश्रम से अपनी जीविका चलाता था। यहाँ मैं दो वर्ष और दो महीने रहा, अब मैं फिर सभ्य समाज में रहने लगा हूँ।

यदि मेरे नगरवासियों ने मेरे जीवन के ढंग के बारे में कुछ विशेष पूछ-ताछ न की होती तो अपने व्यक्तिगत मामलों की ओर मैंने बलात् अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित न किया होता। कुछ लोग इस पूछ-ताछ को अविनीत कहेंगे, किन्तु मुझे तो यह जरा भी असंगत नहीं लगती; बल्कि परिस्थितियों को देखते हुए यह मुझे सर्वथा स्वाभाविक और सुसंगत ही जंचती है। कुछ लोगों ने पूछा है कि मैं क्या खाता था, कोई पूछता है कि मुझे अकेलापन खलता था या नहीं, मुझे डर लगता था या नहीं, आदि। अन्य लोगों के मन में यह जिज्ञासा है कि मैं अपनी आमदनी का कौन-सा अंश दान-धर्म के काम में दे देता था और कुछ बड़े परिवारों वाले गृहस्थ यह जानना चाहते हैं कि मैं कितने दरिद्र बच्चों का पालन-पोषण करता था। इसलिए जिन पाठकों को मेरे निजी मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं है उनसे मैं निवेदन करूँगा कि यदि मैं इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में दूं तो वे मुझे क्षमा कर दें। अधिकतर पुस्तकों में प्रथम पुरुष 'मैं' को छोड़ दिया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में इस 'मैं' को स्थान मिलेगा; यह 'अहं' ही इस पुस्तक की विचित्रता होगी। साधारणतया हम लोग यह बात भूल जाते हैं कि अन्ततोगत्वा यह प्रथम पुरुष ही हमेशा बोलता है। यदि मैं किसी अन्य व्यक्ति से इतनी अच्छी तरह परिचित होता तो कदापि अपने बारे से इतनी बात नहीं करता। दुर्भाग्यवश अपने संकुचित अनुभवों के कारण मुझे इस विषय तक ही सीमित रहना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी बता दूं कि कुल मिलाकर मैं यह अपेक्षा करता हूँ कि प्रत्येक लेखक अपने जीवन का सरल वृत्तान्त ईमानदारी से लिखे, केवल वही न कहे, जो उसने दूसरों के जीवन के बारे में सुन रखा है;

एक ऐसा वृत्तांत लिखे, जिसे वह किसी सुदूर देश से अपने आत्मीयजनों के लिए भेजना चाहेगा; क्योंकि यदि ईमानदारी से जीवन-यापन किया है तो वह मेरे लिए सुदूर देशों में ही अवस्थित होगा। ये पृष्ठ विशेषत: गरीब विद्यार्थियों के ही प्रति निवेदित हैं। अन्य पाठकगण केवल उन्हीं भागों को स्वीकार करें जो उनपर लागू होते हों। मेरा विश्वास हैं कि कोई सज्जन ज़बरदस्ती अपने शरीर पर इस कोट को फँसाने की चेष्टा में इसे उधेड़ न देंगे, क्योंकि शायद जिसके नाप का हो, उसके काम वह आ सकेगा।

मैं चीन देश के या सैंडविच द्वीप के वासियों के वारे में कुछ न कहकर आप पाठकों के वारे में ही कहूँगा, जिन्हें 'न्यू इंग्लैंड का वासी' कहा जाता है। मुझे आपकी दशा के वारे में, खास तौर पर आपकी वाह्य परिस्थितियों यानी इस संसार में, इस नगर में, आपकी स्थिति के वारे में वताना है कि वह क्या है। और क्या इस स्थिति का उतनी ही खराव होना आवश्यक है जितनी कि यह अभी है? तथा इसमें कुछ भी सुधार किया जा सकता है या नहीं? मैं कौंकर्ड में खूव घूमा फिरा हूँ। दूकानों में, दफ्तरों में, खेतों पर, सभी जगह यहां के लोग तरह-तरह की तापसी साधना करते दिखाई देते हैं। मैंने ब्राह्मणों के वारे में सुना है कि वे चारों ओर अग्नि से घिरे, नंगे वदन सूर्य की ओर ताकते वैठे रहते हैं, या अग्नि-ज्वाला के ऊपर उलटे लटके रहते हैं, या आकाश की ओर सिर ऊँचा करके तव तक ताकते रहते हैं "जव तक कि सामान्य स्थिति में आना उनके लिए असम्भव न हो जाय और गर्दन इतनी टेढ़ी न हो जाय कि उनके उदर में पेय पदार्थों के सिवाय और कोई वस्तु न जा सके।" या वे जीवन-पर्यन्त अपने शरीर को पेड़ के तने से वाँधे रखते हैं या सुविस्तीर्ण साम्राज्यों को झिनगे की भाँति अपने शरीर से नाप डालते हैं, या किसी खम्भे पर एक पैर से खड़े रहते हैं। सचेतन तपस्या के ये रूप भी उन दृश्यों से अधिक आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय नहीं हैं जो मुझे प्रतिदिन अपने चारों ओर दिखाई देते हैं। विख्यात हरक्यूलीज के वारह प्रकार के श्रम[1] तो उस श्रम की तुलना में कुछ भी नहीं हैं जिसे मेरे

---

१. हरक्यूलीज़—प्राचीन यूनान का एक अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति, जिसमें संसार का वड़े से वड़ा काम कर डालने की शक्ति थी। हरक्यूलीज़ से कहा गया था कि यदि वह वारह वर्ष तक यूरिस्थियस की सेवा करे तो अमर हो जायगा। इस प्रकार उसे वारह काम सौंपे गए, जो अत्यन्त कठिन और भयानक थे। इनमें अनेक सिर वाले एक राक्षस को मारना और सम्राट आजियस के अस्तवल की सफाई भी शामिल थी।

ये पड़ोसी नित्य-प्रति किया करते हैं; क्योंकि उनकी संख्या केवल बारह थी और उनकी सीमा भी थी। लेकिन मैंने आज तक नहीं देखा कि इन लोगों ने किसी राक्षस को खत्म कर दिया हो या इनके श्रम का कभी अन्त आया हो। आयोलास की भाँति इनका कोई भी ऐसा मित्र नहीं है जो इस अनेक सिर वाले राक्षस के मर्म-स्थल को गरम लोहे से दाग दे; इनके लिए तो जैसे ही एक सिर कुचला कि दो निकल पड़ते हैं।

मैं नवयुवकों को, अपने नगरवासियों को, रोज देखता हूँ। उनका दुर्भाग्य है कि उन्हें उत्तराधिकार में खेत, खलिहान, मकान, चौपाए, खेती के औज़ार आदि मिले हैं। दुर्भाग्य इसलिए कि इन चीज़ों को प्राप्त करना इनसे छुटकारा पाने की अपेक्षा कहीं अधिक आसान है। कहीं अच्छा होता यदि उनका जन्म किसी खुले मैदान में हुआ होता और उनका पालन-पोषण किसी भेड़िए ने किया होता ताकि वे अधिक स्पष्ट रूप से देख सकते कि उन्हें किस क्षेत्र में मेहनत करनी पड़ रही है। उन्हें मिट्टी का गुलाम किसने बनाया? वे साठ-साठ एकड़ भूमि की धूल क्यों फाँकते हैं जब कि आदमी के लिए अपने भाग की मिट्टी पाना ही नियत है? जन्म लेते ही वे अपनी कब्र खोदना क्यों आरम्भ कर देते हैं? उन्हें इन चीजों को आगे ठेलते हुए आदमी की जिन्दगी बितानी पड़ती है और यथा सम्भव अच्छी तरह रहना होता है। न जाने कितनी दीन-हीन अमर आत्माओं को मैंने इस बोझ के नीचे दबकर कुचले जाते देखा है, जीवन पथ पर रेंगते, पचास हाथ लम्बे, पच्चीस हाथ चौड़े खलिहान, और अस्तबल (जिसकी गंदगी का कोई अन्त नहीं) और सौ एकड़ भूमि की जुताई, निराई, चरागाह, जंगल आदि को ठेलकर आगे बढ़ाने के प्रयास में। जो सम्पत्तिहीन हैं, जिन्हें उत्तराधिकार के उस अनावश्यक भू-भार को नहीं ढोना पड़ता, उनके लिए तो हाड़-मांस के इस कुछ घन फुट के आकार पर काबू पाना और उसे जोतना-बोना ही काफी कठिन परिश्रम हो जाता है।

लेकिन लोग गलत ढंग के श्रम में लगे हुए हैं आदमी का श्रेष्ठतर भाग थोड़े ही समय में मिट्टी में मिल जाता है और उसकी खाद बन जाती है। एक अवास्तविक नियति के कारण, जिसे हम 'आवश्यकता' कहकर पुकारते हैं, प्राचीन ग्रंथों के शब्दों में, एक ऐसी निधि इकट्ठी करने में लगे रहते हैं जिसे कीड़े नष्ट कर देंगे, जिसमें जंग लग जाएगा, जिसे चोर ले जाएँगे। इस प्रकार का जीवन

मूर्खतापूर्ण होता है। इस बात का ज्ञान उन्हें पहले नहीं तो अन्त में अवश्य ही होगा। कहा जाता है कि ड्यूकेलियन और पाइर्हा ने अपने सिर के पीछे पत्थर फेंककर नर-नारी की सृष्टि की।[१] जैसा कि रैले ने वड़े मधुर ढंग से कहा है:

'तव ही से पाषाण हुआ मानव-हृदय हमारा,
चिंता और वेदना से आक्रांत, क्लांत, वेचारा,
यही सिद्ध करती आई है जाति हमारे नर की,
इस शरीर को प्राप्त हुई है, तभी प्रकृति पत्थर की।'

एक भ्रामक आकाश-वाणी के अंधानुकरण में अपने सिर के पीछे ढेले फेंकना और इस पर काफी ध्यान न देना कि वे कहाँ गिरते हैं, इस बारे में इतना ही कहना काफी है।

इस अपेक्षाकृत स्वतन्त्र देश में भी अज्ञान और भ्रम के कारण अधिकतर लोग अस्वाभाविक चिंताओं और अनावश्यक रूप से नीरस परिश्रम में इतने निमग्न रहते हैं कि वे जीवन के अधिक सरस फलों का स्वाद नहीं ले पाते। अत्यधिक श्रम के कारण उनकी उँगलियां इतनी विकृत हो जाती हैं, इतनी काँपने लगती हैं कि वे इन फलों को तोड़ लाने में सर्वथा असमर्थ होती हैं। वास्तव में इस मेहनती आदमी को दिन-प्रति-दिन के 'सत्' आचार की भी फुर्सत नहीं होती, वह दूसरे लोगों से मानवोचित सम्वन्ध भी नहीं रख पाता; क्योंकि इससे उसके श्रम का मूल्य वाजार में गिर जाएगा उसे तो मशीन वनने के कांम से ही फुर्सत नहीं। जिस व्यक्ति को निरन्तर अपने ज्ञान को प्रयोग में लाना पड़ता है वह अपने अज्ञान को कैसे याद रखेगा, जो उसके विकास के लिए आवश्यक है? उसके वारे में विचार करने से पहले हमें आयाचित ही उसको वस्त्र और भोजन प्रदान करने होंगे, अपने पौष्टिक पदार्थों से स्फूर्ति भरनी होगी। फलों के वौर की भाँति हमारी प्रकृति के गुणों की भी अत्यन्त कोमलता और सावधानी से देख-भाल करने की ज़रूरत है, तभी वे सुर-क्षित रखे जा सकते हैं। फिर भी हम अपने स्वयं के अथवा एक-दूसरे के

१. ग्रीक पुराणों के अनुसार राजा ड्यूकेलियन के राज-काल में मानव के पापों के कारण जल-प्रलय हुई। इस प्रलय के वाद ड्यूकेलियन को आदेश मिला कि वह अपने सिर के पीछे पत्थर फेंके। जो पत्थर इस प्रकार ड्यूकेलियन ने फेंके उनसे पुनः पुरुष की सृष्टि हुई और जो उसकी पत्नी ने फेंके उनसे नारी की।

प्रति इस प्रकार की सावधानी और कोमलता से व्यवहार नहीं करते।

सभी जानते हैं कि आप लोगों में से कुछ बहुत ग़रीब है, उन्हें जीवनयापन में कठिनाई होती है और मानो कभी-कभी वे साँस लेने के लिए भड़भड़ा उठते हैं। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि आप लोगों में से कुछ पाठक अपने खाए हुए भोजन और अपने फटे कोटों और जूतों का बिल चुकाने में असमर्थ हैं और अपने कर्ज़ देने वालों से कुछ समय चुराकर या उधार लेकर ये पृष्ठ पढ़ रहे हैं। मेरी दृष्टि अनुभव पर पैनी हुई है और मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि आप में से अनेक कितना निकृष्ट और कपटपूर्ण जीवन बिताते हैं, हमेशा सीमाओं पर रहते हैं, व्यापार में प्रवेश करने की चेष्टा करते हैं, और ऋण से मुक्त होने का प्रयास करते हैं, जो एक प्राचीन दलदल है, जिसे रोमन काल में 'पराई पीतल' के नाम से पुकारते थे; क्योंकि उस काल में पीतल के सिक्कों का प्रचलन था। फिर भी बहुतेरे इसी 'पराई पीतल' पर जीवित रहते हैं, मरते हैं, और इसी पर दफ़नाए जाते हैं। हमेशा कर्ज़ चुका देने का वादा करते हैं, वादा करते रहते हैं, कल का वादा करते हैं, और आज ही दिवालिया होकर मर जाते हैं। न जाने कितनी तिकड़मों से किसी का कृपा-पात्र होने की, कुछ सहारा पाने की, चेष्टा चलती रहती है, केवल ऐसे अपराध करते हुए जिनके लिए राजकीय जेल का विधान नहीं है, झूठ बोलते रहते हैं, चापलूसी करते हैं, मतदान करते हैं, अपने आपको शिष्टता के खोल में सिकोड़ते हैं या उदारता की हल्की-फुल्की भाप के वातावरण में फैला लेते हैं। ताकि आप अपने पड़ोसी को इसके लिए तैयार कर सकें कि वह आपको अपना जूता या हैट या कोट या गाड़ी बनाने दे या अपने मिर्च-मसाले का आयात करने दे। आप दुर्दिन के लिए कुछ जमा कर लेने के प्रयास में अपने-आपको बीमार कर लेते हैं ताकि आप किसी पुरानी तिजौरी में या दीवार की गोलक में या अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षिय तरीके से ईंटों के बैंक में, चाहे जितना हो, जहाँ हो, जैसे भी हो, कुछ रख सकें।

कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि हम कितने तुच्छ हो जाते हैं कि नीग्रो दास प्रथा के ही स्थूल, किंचित् भिन्न रूप की सेवा करते रहते हैं और स्वामी इतने चालाक, इतने घाघ होते हैं, उनकी संख्या इतनी अधिक है कि वे अमरीका के उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही भागों को गुलाम बनाए रहते हैं। दक्षिणी प्रदेश (संयुक्त राज्य अमरीका) के गुलामों के ओवरसियर के नीचे काम करना कठिन

होता है, उत्तरी प्रदेश का ओवरसियर और भी बुरा होता है, लेकिन सबसे बुरी दशा तब होती है जब हम स्वयं अपने हाँकने वाले हो जाते हैं। आप आदमी में देवत्व की बात करते हैं! राजमार्ग पर जो हँकैया अपने जानवरों के झुण्ड को हाँका करता है और रात-दिन हाँककर बाजार को माल ले जाता है, उसके अन्दर कौन-सा देवत्व बाकी रहता है? उसके लिए तो घोड़ों के दाना-पानी का प्रबन्ध ही सबसे ऊँचा 'कर्तव्य' होता है। माल के लदान की तुलना में उसके निकट स्वयं अपनी नियति का क्या मूल्य रह जाता है? वह क्या किसी श्रीमान् हड़बड़ीलाल का माल नहीं ढोता? उसमें कितना देवत्व है, कितना अमरत्व है? देखिए तो वह भय से कितना सिकुड़ जाता है, कितना कपट करता है। दिन-रात कितना भयातुर रहता है! और यह सब इसलिए नहीं कि वह अमर है या उसमें देवत्व है, बल्कि इसलिए कि वह अपने बारे में अपने ही मत का गुलाम है; उस यश का, जिसे उसने स्वयं अपने कामों से अर्जित किया है। जनमत इतना ज़ुल्म नहीं करता जितना कि अपने बारे में अपना मत। आदमी अपने बारे में क्या सोचता है यही चीज़ उसके भाग्य का निपटारा करती है, बल्कि यों कहिए कि उसे सूचित करती है। क्या कल्पना में भी अपनी ही दासता से छुटकारा दिलाने वाला कोई व्यक्ति नज़र आता है? कौन-सा विल्बरफोर्स[1] यह करिश्मा कर दिखाएगा? और उन महिलाओं की भी बात सोचिए जो अंतिम दिन तक के लिए शृंगार पर बैठने की गद्दी बुना करती हैं ताकि कहीं भाग्य में ज़रा भी अपरिपक्व अनुराग दिखाने की चूक उनसे न हो जाय। मानो अनंत को बिना हानि पहुँचाए ही आप समय की हत्या कर सकते हैं!

अधिकतर लोग हताश होकर चुपचाप जीवन बिताते रहते हैं। जिसे लोग 'बुराई को उदासीन भाव से सहन करना' कहते हैं, वह भी पक्की हताशावस्था ही है। निराशा के नगर से आप निराशा के देश में प्रवेश कर जाते हैं और गिलहरी-छछूंदर की-सी बहादुरी से अपना मन समझा लेते हैं। जिन कामों को हम खेल-कूद और मनोविनोद कहते हैं उनमें भी एक प्रकार की घिसी-पिटी अज्ञात-निराशा छिपी रहती है। उनमें खेल-कूद नहीं होती, क्योंकि खेल-कूद का नम्बर तो काम के बाद आता है। किन्तु बुद्धिमानों का स्वाभाविक गुण है

१. विल्बरफोर्स (१७५६-१८३३)—एक अंग्रेज जन-सेवी, जिसने गुलामी की प्रथा को तोड़ने और गुलामों के व्यापार का अन्त करने का प्रयत्न किया था।

हताशावस्था के काम न करना।

प्रश्नोत्तरी के शब्दों में, जब हम यह विचार करते हैं कि मानव का मुख्य ध्येय क्या है, जीवन की आवश्यक वस्तुएँ और साधन क्या हैं, तो लगता है मानो जान-बूझकर लोगों ने जीवन के प्रचलित ढंग को अपनाया है; क्योंकि उन्होंने दूसरे ढंग की अपेक्षा इस ढंग को अधिक पसंद किया। फिर भी ईमानदारी से वे यह सोचते हैं कि इसके अलावा और कोई चारा ही नहीं है। किन्तु स्वस्थ और जागरूक लोग यह जानते हैं कि सूर्योदय सदैव उज्ज्वल होता है। जब भी चाहें पूर्वाग्रहों का परित्याग किया जा सकता है, और वह अच्छा ही होगा। किसी भी विचार-धारा या तौर-तरीके का बिना प्रमाण के भरोसा नहीं किया जा सकता, वे चाहे कितने ही प्राचीन क्यों न हों। जिस बात को आज सभी लोग प्रतिध्वनित करते हैं अथवा चुपचाप सत्य के रूप में जो बात मान ली जाती है, हो सकता है कि कल वही बात असत्य हो जाय, जन-मत का एक धुआं-मात्र साबित हो, जिसे जलधर समझकर लोगों ने भरोसा किया था कि वह उनके खेतों पर फलदायी जल-वृष्टि करेगा। जिस बात को बुजुर्ग लोग अशक्य बताते हैं, चेष्टा करने पर आप कर दिखाते हैं। पुराने लोगों के लिए पुराने काम और नये लोगों के लिए नये काम। एक ज़माने में बुजुर्गों को आग जलाए रखने के लिए ईंधन के प्रयोग का ज्ञान नहीं था, नये लोगों ने बर्तन के नीचे थोड़ी-सी सूखी लकड़ी रखना सीखा। और अब सारे संसार का चक्कर पक्षियों की गति से लगा आते हैं, जिससे सम्भवतः वूढ़ों के तो प्राण-पखेरू ही उड़ जाते। सिखाने के लिए पकी उम्र जवानी से बेहतर नहीं होती, उसके बराबर भी नहीं होती; क्योंकि उसने जितना खो दिया है उतना पाया नहीं है। अधिक जीवित रहकर बुद्धिमान-से-बुद्धिमान व्यक्ति ने भी वास्तविक मूल्य की कोई बात सीखी हो, इसमें संदेह है। असल में, वृद्धजनों के पास कोई बहुत महत्त्वपूर्ण सलाह नवयुवकों को देने के लिए नहीं होती, जैसा कि वे सोचते हैं; क्योंकि उनका अपना अनुभव इतना आंशिक होता है, उनका जीवन व्यक्तिगत कारणों से इतना असफल होता है। हाँ, यह हो सकता है कि इन अनुभवों को झूठा सिद्ध करने वाला कुछ विश्वास उनमें बाकी हो, और वे पहले से कुछ कम युवा हों। इस पृथ्वी पर मैं लगभग तीस वर्ष बिता चुका हूँ और अब भी अपने बुजुर्गों के मुँह से कोई मूल्यवान, यहाँ तक कि ईमानदारी की सलाह का प्रथम शब्द सुनना मेरे लिए बाकी है। उन लोगों ने मुझे कुछ भी नहीं बताया है

और शायद मतलब की बात बताने की उनमें क्षमता नहीं है। यह रहा जीवन, एक प्रयोग, जिसके अधिकांश भाग को मैंने अभी तक नहीं छुआ है, लेकिन इस बात से कि वे इस प्रयोग को कर चुके हैं, मुझे कोई लाभ नहीं। यदि मेरा कुछ अनुभव है जिसे मैं मूल्यवान मानता हूँ, तो निश्चय ही मैं समझता हूँ कि मुझे इसके बारे में मेरे उपदेशकों ने कुछ नहीं बताया है।

एक किसान मुझसे कहता है—"आप केवल शाकाहारी भोजन पर जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि इसमें हड्डियों को पोषण देने वाले तत्त्व नहीं होते।" इस प्रकार वह बड़ी आस्था से अपने दिन का एक भाग अपने शरीर की हड्डियों को बनाने वाले कच्चे माल को जुटाने में लगा देता है। और यह बात कहते समय वह अपने बैलों के पीछे-पीछे चलता रहता है जो घास-पात से बनी हड्डियों के सहारे, अनेक बाधाओं के होते हुए भी उसको और उसके हल को झटका देकर खींच ले जाते हैं। कुछ अत्यन्त निकृष्ट और रुग्ण क्षेत्रों में कुछ चीज़ें जीवन के लिए सचमुच आवश्यक मानी जाती हैं, जो दूसरे क्षेत्रों के लिए केवल विलासिता की चीज़ें होती हैं और बाकी के क्षेत्रों में कोई उनके बारे में जानता भी नहीं।

कुछ लोगों को लगता है कि उनके पूर्वजों ने जीवन का सारा क्षेत्र, उसकी सारी ऊँचाई-नीचाई नाप डाली है, और उन्होंने सभी चीज़ों की ओर ध्यान दिया है। ईवलिन के अनुसार, "मनीषी सोलोमन ने इस बात के भी नियम निर्धारित कर दिए थे कि पेड़ कितनी दूर-दूर लगाए जायँ, और रोमन साम्राज्य के अधिकारियों ने यह भी नियत कर दिया है कि आप कितनी बार अपने पड़ोसी के खेत में घुसकर जैतून के फल बीन सकते हैं और उसमें कितना भाग आपके पड़ोसी का होगा।" हिपौक्रेटीज़ ने यहाँ तक निर्देशित कर दिया है कि हम नाखून कैसे काटें, यथा नाखून उँगलियों के अग्रभाग के बिलकुल बराबर काटे जायँ, न कम, न ज़्यादा। निस्संदेह जीवन के वैचित्र्य और आनन्द का अन्त कर देने वाली नीरसता बाबा आदम के ज़माने से चली आ रही है। लेकिन आदमी की क्षमता कभी नापी नहीं जा सकी, और अभी तक इतना कम प्रयास किया गया है कि हम पिछले कामों से यह अनुमान नहीं कर सकते कि आगे कितना कुछ किया जा सकता है। अभी तक तेरी असफलताएँ चाहे जो कुछ रही हों "मेरे बच्चे, दुखी न हो, क्योंकि तुझे कौन बता सकता है कि अभी तुझे क्या करना बाकी है?"

हम अपने जीवन को हजारों छोटी-मोटी कसौटियों पर कस सकते हैं—यथा जिस सूर्य की किरणों के कारण सेम की फली पकती है, उसीसे हमारी पृथ्वी-जैसे संस्थान भी आलोकित होते हैं। यदि मैं इस बात को याद रखता तो अनेक गलतियों से बच जाता। मैंने इस आलोक में उनकी गुड़ाई नहीं की। ये आकाश के तारे कितने आश्चर्यजनक त्रिकोणों के शिखर हैं! कितने सुदूरवर्ती और भिन्न प्राणी इस सृष्टि के विभिन्न भवनों में बैठे एक ही समय पर एक ही तारे का विचार किया करते हैं! प्रकृति और मानव-जीवन उतने ही वैचित्र्य पूर्ण हैं जितने कि हमारे अपने-अपने शरीर। कौन बता सकता है कि किसी दूसरे के भविष्य के लिए जीवन ने क्या नियत कर रखा है? क्षण-भर के लिए हम एक-दूसरे की आँखों से देख सके, इससे बड़ा चमत्कार क्या कहीं हो सकता है? हम एक पल में ही संसार के सभी युगों में रहें, हाँ सभी युगों के विभिन्न संसारों में। इतिहास, काव्य, पुराण—मुझे नहीं मालूम कि दूसरे के अनुभवों का कौन-सा पठन-पाठन उतना आश्चर्यजनक और ज्ञानवर्धक हो सकता है, जितना कि यह होगा।

मेरे पड़ोसी जिसे अच्छा समझते हैं, उसके अधिकाँश को मैं अपने अंतर में बुरा समझता हूँ और यदि मैं किसी बात पर पश्चाताप करता हूँ तो बहुत मुमकिन है कि वह मेरा शिष्ट व्यवहार ही रहा हो। कौन-सा भूत मेरे ऊपर सवार हुआ कि मैंने इतना शिष्ट व्यवहार किया? वृद्धजन, आप चाहे जितना बुद्धिमानी की बात करें (आप सत्तर वर्ष तक एक प्रकार का सम्मान लेकर जी चुके हैं) मुझे तो एक जबरदस्त आवाज सुनाई पड़ रही है जो इस सबसे दूर बुलाती है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी की योजनाओं का अटके हुए जहाज़ की भाँति परित्याग कर देती है।

मेरा ख्याल है कि हम जितना भरोसा करते हैं, बिना किसी हानि के उससे कहीं अधिक कर सकते हैं। हम अपनी चिन्ता उतने ही परिमाण में छोड़ सकते हैं जितनी कि ईमानदारी से दूसरी चीजों के प्रति करते हैं प्रकृति अपने को हमारी कमजोरियों के उतनी अनुकूल बना लेती है जितनी कि हमारी। शक्ति के। कुछ लोगों में अनवरत चिन्ता और परिश्रम की बीमारी लगभग असाध्य रूप धारण कर लेती है। जो भी काम हम करते हैं उसके महत्त्व का अतिरंजन कर देने का हमारा स्वभाव हो गया है। फिर भी कितना काम हमारे द्वारा नहीं होता। अथवा हम बीमार ही पड़ जाते तो क्या होता? कितने चौकन्ने रहते

हैं हम ! मानो हमने निश्चय कर लिया है कि यथासम्भव निष्ठा पर निर्भर नहीं रहेंगे। दिन-भर सतर्क रहते हैं, रात को बड़ी अनिच्छा से प्रार्थना करते हैं और अपने को अनिश्चय के सहारे छोड़ देते हैं। अपने जीवन की पूजा करते हुए, परिवर्तन की सम्भावना से असहमत होते हुए, हम इतने पूर्ण रूप से सचमुच में जीवित रहने को वाध्य होते हैं। हम कहते हैं, यही एक-मात्र रास्ता है, किन्तु वास्तव में उतने ही रास्ते हो सकते हैं, जितने कि एक केन्द्र-विन्दु से वृत्त खींचे जा सकते हैं। विचार करने पर प्रत्येक परिवर्तन एक चमत्कार होता है, लेकिन यह ऐसा चमत्कार है जो प्रत्येक क्षण घटित होता रहता है। कन्फ्यूशियस का कथन है, "यह जान लेना कि जो कुछ हम जानते हैं उसका हमें ज्ञान है, और जो कुछ हम नहीं जानते हैं उसका हमें ज्ञान नहीं है, यही वास्तविक ज्ञान है।" जव एक व्यक्ति ने कल्पना के एक तथ्य को अपने ज्ञान का तथ्य बना लिया है, तो मुझे पहले ही दिखाई देता है कि अंततोगत्वा सभी लोग इसी आधार पर अपने जीवन की स्थापना करेंगे।

आइए, क्षण-भर को हम यह विचार करें कि जिस चिन्ता और परेशानी के बारे में मैं कह रहा हूँ वह किस लिए है, और किस हद तक परेशान या कम-से-कम सतर्क रहना हमारे लिए आवश्यक है। वाह्य सभ्यता में रहते हुए आदिम जीवन या सीमा-प्रांत का जीवन विताना हमारे लिए लाभदायक होगा, इससे हमें पता लग जायगा कि जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ क्या हैं और उनकी पूर्ति करने के लिए कौन-से साधन अपनाए गए हैं। अथवा पुराने जमाने के व्यापारियों के वहीखातों को देखना भी लाभदायक होगा—उन्हें देखने से यह पता चल जाएगा कि लोग दूकानों से सबसे अधिक क्या चीज खरीदते थे, किन चीजों को वे जमा करके रखते थे, अर्थात् सबसे आवश्यक वस्तुएँ क्या हैं ? क्योंकि युगों तक की उन्नति का आदमी के अस्तित्व के मूल नियमों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है, ठीक जिस प्रकार हमारे शरीर के ढाँचे पूर्व पुरुषों के ढांचों से भिन्न नहीं हुए हैं।

'जीवन की आवश्यकताओं' से मेरा तात्पर्य है जो सामग्री मानव अपने परिश्रम से प्राप्त करता है, उसका वह अंश जो प्रारम्भ से अथवा दीर्घ काल तक प्रयोग में आते रहने के कारण उसके जीवन के लिये इतना महत्त्वपूर्ण हो गया हो कि शायद ही कोई उसके विना काम चलाने की चेष्टा करे; चाहे गरीवी के कारण हो, या जंगलीपन या दार्शनिकता के कारण हो। इस हिसाव से वहुत

से प्राणियों की केवल एक मूल आवश्यकता है—भोजन। घास के मैदानों में रहने वाले जंगली भैंसे की मूल आवश्यकता है थोड़ी-सी खाने योग्य घास और पानी; और यदि वह चाहता है तो वन या पहाड़ी की छाया में जगह। पशु-जगत के किसी भी प्राणी को भोजन और वास-स्थान, इन दो से आगे किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। इस जलवायु में, आदमी की 'जीवन की आवश्यकताओं' को सही तौर पर भोजन, वस्त्र, वास-स्थान और ईंधन, इन विभागों में बांटा जा सकता है; क्योंकि जब तक हम इन्हें प्राप्त नहीं कर लेते तब तक जीवन की वास्तविक समस्याओं का स्वतंत्रता और सफलता की आशा से सामना नहीं कर सकते। आदमी ने न केवल घर का ही आविष्कार किया है, बल्कि वस्त्रों और पक्व भोजन का भी, और उस अग्नि और उसके प्रयोग का भी जिसकी गर्मी का उसने शायद संयोगवश आविष्कार किया होगा; जो प्रारम्भ में विलासिता रही होगी लेकिन बाद में जिसके सहारे बैठना आवश्यक हो गया। कुत्ते-बिल्लियों को भी हम इसी प्रकार 'दूसरी प्रकृति' अपनाते देखते हैं। उपयुक्त वास-स्थान और वस्त्रों की सहायता से हम अपनी आँतरिक उष्णता को बनाए रखते हैं। यह समुचित है। लेकिन इनके या ईंधन के अतिरेक से, अर्थात् आंतरिक उष्णता के अतिरिक्त बाह्य उष्णता के कारण ही क्या खाना पकाने की रीति का आरम्भ नहीं होता? प्रकृतिज्ञ डारविन ने टेरा डेल फ़्यूगों के निवासियों के विषय में कहा है कि जिस समय उसके दल के लोग खूब कपड़े पहनने और आग के पास बैठने पर भी काफी सरदी महसूस करते थे, उस समय इन नंगे जंगली लोगों को और भी आगे के प्रदेशों में "इतनी भयानक गरमी में पसीने से तर" देखकर उसे भी आश्चर्य होता था। इसी भाँति न्यू हालैंड के निवासी ठंड में भी नंगे ही रहते हैं और उन्हें कोई कष्ट नहीं होता जब कि यूरोपियन लोग वस्त्रों में भी ठिठुरा करते हैं। क्या इन वनवासियों की सहन-शक्ति और सभ्यजन की बौद्धिकता का संयोग कर देना नितान्त असम्भव है? लाइबिग के अनुसार आदमी का शरीर एक चूल्हा है और भोजन उसका ईंधन है जो उसके फेफड़ों में आँतरिक अग्नि सुलगाए रखता है। ठंड के दिनों में हम अधिक भोजन करते हैं और गर्मियों में कम। शारीरिक उष्णता इस मन्द प्रज्ज्वलन का ही फल है। जब यह अग्नि बहुत तेज हो जाती है तब बीमारी या मौत हो जाती है। अथवा ईंधन की कमी से या जल-शोषण के दोष से यह अग्नि बुझ जाती है। हमें आंतरिक उष्णता को सचमुच अग्नि न

समझना चाहिए, यह तो एक समता-मात्र है। इस प्रकार उपरोक्त सूची से यह पता चलता है कि जिसे 'प्राण' कहते हैं वह लगभग 'उष्णता' का ही पर्याय है; क्योंकि भोजन वह ईंधन है, जो हमारे अन्दर अग्नि जलाए रखता है (और ईंधन का काम केवल भोजन पकाने या बाहर से हमारे शरीर की गर्मी बढ़ाने का है), वास स्थान और वस्त्र इस प्रकार पैदा की गई उष्णता को केवल बनाए रखने का काम करते हैं।

इस तरह हमारे शरीर में सबसे बड़ी आवश्यकता है उष्णता, जिससे हमारे अन्दर जीवन की उष्णता बनी रहे। इसके लिए हम कितना कष्ट उठाते हैं, न केवल अपने भोजन, वस्त्र और वास-स्थान के लिए ही बल्कि अपने बिस्तर के लिए भी, जो हमारे रात के वस्त्र होते हैं। पक्षियों के शरीर और उनके घोंसलों को तबाह करके हम घर के भीतर भी यह 'घर' बनाते हैं जैसे छछूंदर अपने बिल के भीतर घास-फूंस का बिस्तर बनाती है। गरीब आदमी शिकायत करता है कि यह दुनिया बड़ा ठंडा स्थान है और इसी भौतिक और सामाजिक ठंडेपन को हम अपनी बहुत-सी पीड़ाओं का मूल मान बैठते हैं। किसी-किसी जलवायु में गर्मी की ऋतु में आदमी को स्वर्ग का आनन्द आता है। उस दशा में, भोजन पकाने के अलावा ईंधन आवश्यक हो जाता है। तब सूर्य ही उसकी अग्नि हो जाता है और उसकी किरणों से बहुत-से फल पकते हैं। जहाँ भोजन में तरह-तरह की चीज़ें आ जाती हैं और वह अपेक्षाकृत अधिक आसानी से उपलब्ध हो जाता है, वहाँ वस्त्र और आवास पूरी तौर से, या कम-से-कम आधे तो अनावश्यक हो ही जाते हैं। निजी अनुभव से मैंने देखा है कि आज और इसी देश अमरीका में कुछ औजार, चाकू, कुल्हाड़ी, फावड़ा, छोटी-सी ठेलागाड़ी और अध्ययनशील लोगों के लिए लैम्प की रोशनी, कुछ कागज-पैंसिल और पुस्तकें, इनका नम्बर आवश्यक वस्तुओं के बाद आ जाता है और ये सब मामूली-सी कीमत पर प्राप्त हो सकती हैं। फिर भी कुछ लोग, जो बुद्धिमान नहीं हैं, दुनिया के दूसरे छोर पर, जंगली और अस्वास्थ्यकर प्रदेशों में चले जाते हैं और दस-बीस साल व्यापार में लगा देते हैं, केवल इसलिए कि वे जीवित रह सकें, (यानी 'उष्ण' रह सकें) और अन्त में न्यू इंगलैण्ड में मर सकें। अत्यन्त धनी लोग न केवल अपने को 'उष्ण' रखते हैं, बल्कि अस्वाभाविक तौर पर उत्तप्त रखते है, जैसा मैं पहले इशारा कर चुका हूँ वे अपने को भोजन की भाँति पका लेते हैं—हाँ, यह सब होता अत्याधुनिक फैशन से ही है।

विलासिता की अधिकतर और तथाकथित आरामदेह चीजों में से भी अनेक उपादान न केवल अपरिहार्य ही नहीं है, बल्कि वे मानव जाति के उत्थान में निश्चय ही बाधक होते हैं। इस मामले में, सुधीजन गरीबों से भी अधिक सादा और आडम्बरहीन जीवन सदा से बिताते रहे हैं। प्राचीन हिन्दू, चीनी, फारसी और यूनानी दार्शनिक इसी श्रेणी के लोग थे; बाह्याडम्बरों में इनसे अधिक दरिद्र और आंतरिक रूप से इनसे अधिक सम्पन्न कोई नहीं हुआ। उनके बारे में हम अधिक नहीं जानते—यह भी विशेष बात ही है कि हम उनके बारे में इतना भी जानते हैं। यही बात उनकी परम्परा के अपेक्षाकृत आधुनिक सुधारकों और उद्धारकों के बारे में भी सच है। जिसको हम 'स्वनिर्मित' निर्धनता कहेंगे उसकी उच्चतर भूमि पर खड़े हुए बिना कोई भी व्यक्ति मानव-जीवन का निष्पक्षता या समझदारी से निरीक्षण नहीं कर सकता। विलासिता के जीवन का फल भी विलासिता ही होता है, चाहे वह कृषि के क्षेत्र में हो, व्यापार में हो, अथवा कला और साहित्य में। आजकल दर्शन-शास्त्र के पंडे तो मिलते हैं, दार्शनिक नहीं। फिर भी यह प्रतिपादन ही आज भी प्रशंसनीय माना जाता है, क्योंकि एक ज़माने में दार्शनिक का जीवन बिताना श्रेयस्कर था। केवल सूक्ष्म विचार होने से या किसी मत का प्रवर्त्तन करने से ही कोई दार्शनिक नहीं हो जाता, बल्कि बुद्धिमानी से इतना प्रेम हो कि उसी के आदेश के अनुसार जीवन बिताया जाय। सादगी, स्वतंत्रता, औदार्य और विश्वास का जीवन इसके लिए आवश्यक है। दार्शनिक होने का अर्थ है जीवन की कुछ गुत्थियों को सुलझाना, न केवल सैद्धांतिक रूप से बल्कि व्यावहारिक रूप से भी। महान् पंडितों और विचारकों की सफलता सामान्यतः दरबारियों की-सी सफलता होती है; राजाओं की-सी, या मानवोचित सफलता नहीं। वे केवल अनुसरण करते हैं, ठीक जैसे उनके पूर्वज भी करते थे। किसी प्रकार भी उनको श्रेष्ठतर मानव जाति का जनक नहीं कहा जा सकता। लेकिन लोगों का पतन होता ही क्यों है? परिवार-के-परिवार बरबाद क्यों हो जाते हैं? जो विलासिता समूचे राष्ट्रों को निर्जीव बना देती है, उन्हें नष्ट कर डालती है, वह कैसी है? क्या हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे जीवन में उसका लेश-मात्र भी नहीं है? जीवन के बाह्य रूप में भी दार्शनिक सदा अपने समय के आगे चलता है। वह अपने समसामयिकों-जैसा ही भोजन नहीं करता, उनके-जैसे ही वस्त्र धारण नहीं करता, उन्हीं के समान घरों में नहीं रहता, उनके ही ढंग से उष्णता प्राप्त नहीं करता। यह कैसे सम्भव है कि कोई

व्यक्ति दार्शनिक हो और उसका जीवन की उष्णता प्राप्त करने का ढंग दूसरे लोगों के ढंग से अधिक श्रेष्ठ न हो ?

जिन साधनों का जिक्र मैंने पहले किया है उनसे उष्णता प्राप्त करने के बाद आदमी को किस चीज की आवश्यकता होती है ? अवश्य ही उसको उसी प्रकार की और अधिक उष्णता की आवश्यकता नहीं होती—यथा, और अधिक, और अच्छे भोजन की, और भी बड़े और शानदार मकान की, और अधिक तथा कीमती वस्त्रों की, और भी अधिक गर्म अग्नि आदि की। जीवन के लिए जो चीजें जरूरी हैं उन्हें पा लेने के बाद, और भी अतिरिक्त सामग्री जुटाने के बजाय उसके सामने एक और भी विकल्प है। और वह यह है कि इस निम्न कोटि के श्रम से फुर्सत पा लेने पर जीवन को आगे बढ़ाया जाए। मानो मिट्टी बीज के लिए तैयार हो गई है, बीज ने अपनी छोटी-छोटी जड़ें नीचे जमा ली हैं और अब पूर्ण विश्वास के साथ अंकुर फूट सकता है। आदमी ने जो इतनी दृढ़ता के साथ अपनी जड़ें जमीन में जमा दी हैं उसका कारण क्या हो सकता है सिवा इसके कि वह उसी अनुपात से ऊपर की ओर बढ़ सके ? क्योंकि ऊँची किस्म के पौधों का मूल्य उन फलों के कारण होता है जो अंत में जमीन से कहीं ऊपर हवा और रोशनी में लगते हैं। उनके साथ वही व्यवहार नहीं किया जाता जो निम्नकोटि के, कंद-मूल देने वाले पौधों के साथ किया जाता है, जो दो-साला होते हुए भी केवल तब तक उगाए जाते हैं जब तक जड़ें पूरी न कर लें, और अक्सर इसके लिए उन्हें ऊपर से कतर दिया जाता है, जिससे बहुत-से लोग पुष्पित होने के समय भी उन्हें पहचान नहीं पाते।

यहाँ मेरा प्रयोजन उन मजबूत और बहादुर लोगों के लिए नियम निर्धारित करना नहीं है, जो चाहे स्वर्ग में हों अथवा नरक में, स्वयं अपनी चिन्ता करना चाहते हैं, और कदाचित् अपने को गरीब बनाए बिना ही सम्पन्नतम व्यक्तियों से भी अधिक शानदार भवन बनवाते हैं, उनसे भी अधिक धन खर्च करते हैं। यदि वास्तव में, जैसी कल्पना की गई है वैसे कुछ व्यक्ति हों तो उसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना, क्योंकि मुझे पता नहीं कि वे कैसे रहते हैं। न उन लोगों के बारे में मुझे कुछ कहना है, जो ठीक वर्तमान परिस्थिति से ही प्रेरणा और प्रोत्साहन ग्रहण करते हैं और उसे प्रेमियों की भाँति उल्लास और अनुराग से सँजोते हैं। एक हद तक मैं अपने आपको इसी वर्ग में गिनता हूँ। मुझे उन लोगों से भी कुछ नहीं कहना है, जो अपने काम में लगे हुए हैं और यह जानते

हैं वे ठीक काम पर लगे हैं या नहीं। मुख्यतया, मुझे तो उस जन-समूह से कुछ कहना है, जो हमेशा अपने दुर्भाग्य या समय का खाली रोना रोया करता है, उसमें कुछ सुधार नहीं करता। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो बड़े सशक्त ढंग से, एक दुर्निवार अधीरता से कुछ-न-कुछ शिकायत करते रहते हैं, क्योंकि, उन्हींके शब्दों में वे अपना कर्त्तव्य-पालन करते हैं। मेरे दिमाग में वाहरी तौर पर अत्यन्त सम्पन्न किन्तु वास्तव में दरिद्रतम वह वर्ग भी है, जिसने धातुओं का वहुत-सा कूड़ा-करकट इकट्ठा कर रखा है किन्तु जो न तो यही जानता है कि इसका क्या प्रयोग हो और न यह कि इससे कैसे छुटकारा पाया जाय। इस प्रकार इस वर्ग के लोगों ने स्वयं अपने लिए सोने-चाँदी की जंजीरों का निर्माण कर लिया है।

यदि मैं यह वताने की चेष्टा करूँ कि गत वर्षों में मैंने कैसा जीवन विताना चाहा है, तो इससे शायद मेरे उन पाठकों को कुछ आश्चर्य हो जो उसके इतिहास से कुछ परिचित हैं। और निश्चय ही वे लोग तो चकित रह जायँगे, जो इसके वारे में कुछ भी नहीं जानते। जो योजनाएँ मेरे मन में रही हैं, उनकी ओर मैं केवल कुछ इशारा करूँगा।

प्रत्येक समय में, दिन-रात के प्रत्येक क्षण में, हरेक मौके का पूरा लाभ उठाने को मैं सदा आतुर रहा हूँ। मैं सदा ही, दो अनंतों, विगत और अनागत, भूत और भविष्य के संधि-विन्दु पर खड़ा होने को आतुर रहा हूँ। यह संधि-विन्दु ठीक वर्तमान काल होता है। इस सीमा-रेखा पर खड़े होकर दौड़ पड़ने को मैं हमेशा तैयार रहा हूँ। यदि इसमें कुछ भी दुर्वोध हो तो पाठकगण मुझे क्षमा कर दें, क्योंकि दूसरों की अपेक्षा मेरे व्यापार में कुछ अधिक गोपन वातें हैं। इन्हें मैं स्वेच्छा से नहीं छिपाता, यह केवल मेरे व्यापार का स्वाभाविक गुण है। मैं तो वड़ी खुशी से, जो कुछ भी इसके वारे में जानता हूँ सव वताना चाहूँगा; मैं कभी भी अपने द्वार पर 'प्रवेश-निषेध' की तख्ती लगाना नहीं चाहता।

वहुत दिन पहले मेरे तीन जानवर खो गए। एक कुत्ता, एक कुम्मैत घोड़ा, और एक कवूतर। उन्हें अभी तक मैं तलाश करता फिरता हूँ। उनके वारे में मैंने कितने ही राहगीरों को वताया है, उनके नाम और उनकी दिशा भी मैंने लोगों को वता दी है। दो-एक लोग मिले हैं जिन्होंने कुत्ते की आवाज़ सुनी थी, घोड़े की टाप सुनी थी और उस पक्षी को भी आकाश में विलीन होते देखा था। ये

लोग भी इन जानवरों को ढूँढ निकालने को इतने व्यग्र दिखाई देते थे मानों उन्हें उन्होंने खो दिया हो।

प्रत्याशा, न केवल उषा और सूर्योदय की, वल्कि हो सके तो स्वयं प्रकृति की ! गरमी और जाड़े के न जाने कितने दिन प्रातःकाल में, किसी भी पड़ोसी के उठने से पूर्व ही मैं अपने काम में लगा हूँ ! निस्संदेह, इस काम से वापिस लौटते हुए बहुत-से लोगों से भेंट हुई है—प्रातःकाल के झुटपुटे में वोस्टन की ओर जाते किसान मिले हैं, काम पर जाते लकड़हारों से भी मुलाकात हुई है। यह सच है कि मैं सूर्य को उदित होने में भौतिक रूप से कोई सहायता नहीं देता था, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर्योदय के समय उपस्थित रहना ही सर्वाधिक महत्त्व की वात थी।

वायु में जो कुछ है उसे सुनने के लिए, उसका सन्देश लोगों तक तुरन्त पहुँचाने के लिए न जाने कितने पतझड़, न जाने कितने जाड़े के दिन मैंने शहर के वाहर विताए हैं ! इस काम में मैंने सारी-की-सारी पूँजी ही लगभग डुवो दी, इस धंधे में अपने प्राण ही खो दिए होते। यदि यह किसी राजनीतिक दल का मामला होता, तो सच मानिए, अखबार में सवसे पहले छपा होता। दूसरे मौकों पर किसी पहाड़ी के ढाल या पेड़ की वेधशाला में वैठकर प्रतीक्षा की है ताकि किसी नवागन्तुक की सूचना तार से दे सकूँ। अथवा किसी पहाड़ी की चोटी पर बैठकर शाम को आकाश के गिरने की प्रतीक्षा की है ताकि कुछ हाथ लग जाय, हालाँकि कोई वड़ी चीज़ ग्रहण नहीं कर पाता था और वह भी पुनः धूप में घुल जाती थी।

दीर्घ काल तक मैंने एक पत्र के संवाददाता का काम किया। इसका प्रचलन अधिक नहीं था। इसके संपादक ने अभी तक मेरी सामग्री को प्रकाशनीय नहीं समझा है। जैसा कि अक्सर लेखकों के साथ होता है, इस कष्ट के वदले में मेरे हाथ परिश्रम ही लगा। जो भी हो इस मामले में मेरी मेहनत स्वयं ही अपना पारिश्रमिक थी।

कई वर्षों तक मैंने वर्फ और मेह के तूफानों के स्व-नियुक्त निरीक्षक का काम किया और अपने कर्त्तव्य का पूरी तौर से पालन किया। राज-मार्गों का नहीं, तो वन की पगडंडियों के निरीक्षक का भी काम मैंने किया। मैं उनको खुला रखता था और जहाँ भी लोगों के निशान इस वात के साक्षी थे कि उनका कुछ उपयोग है, वहाँ मैंने खंदकों के पुल वाँधे ताकि वे सभी मौसमों में आने-जाने योग्य रह सकें।

मैंने नगर के उन आवारा घूमने वाले पशुओं की भी देख-भाल की है, जो बाड़ें लाँघकर कर्त्तव्यपरायण चरवाहों को बहुत तंग करते थे। खेत के उन स्थलों पर भी मेरी निगाह रही है जहाँ कोई आता-जाता नहीं, हालांकि मुझे हमेशा यह पता नहीं रहता था कि आज किसी विशेष खेत में सौलोमन काम करते हैं या जोनास। मुझे इससे कोई मतलब नहीं। मकोय, सैंड चैरी, पीतपर्णी, लाल देवदार और काले 'ऐश' (Ash) ओर 'वायलेट' के पौधों और झाड़ियों में मैंने पानी दिया है कि वे सूखे मौसम में मुरझा न जायँ।

संक्षेप में, मैं बहुत दिन तक अपना काम बड़ी वफादारी से, कर्त्तव्य-निष्ठा से (मैं डींग नहीं हाँक रहा हूँ) करता रहा। पर यह बात दिनों-दिन साफ होती गई कि मेरे नगरवासी नगर के मुलाज़िमों की सूची में मेरा नाम दर्ज़ नहीं करेंगे, और न थोड़ा-सा परिश्रमिक देकर मेरे स्थान को 'सवेतन' बनायेंगे। मैं कसम खा सकता हूँ कि मैंने अपना हिसाब सही रखा है, लेकिन न उसकी जाँच हुई है, न मैं उसे स्वीकार करा पाया हूँ, न वसूल कर पाया हूँ। इसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं।

बहुत दिनों की बात नहीं है, एक खानाबदोश आदिवासी (रेड इंडियन) मेरे पड़ोस के एक प्रसिद्ध वकील के घर टोकरी बेचने के लिए आया था। उसने पूछा "क्या आप टोकरियाँ खरीदेंगे?" उत्तर मिला, "नहीं, अभी हमें ज़रूरत नहीं है?" दरवाज़े से निकलते समय आदिवासी ने कहा, "क्या आप लोग हमें भूखों मार डालना चाहते हैं?" अपने गौरांग पड़ौसी की सम्पन्नता देखकर (वकील साहब को केवल तर्क का जाल बुनना पड़ता था और किसी जादू से धन और मान अपने-आप खिंचे चले आते थे।) उसने मन में सोचा था, "मैं भी व्यापार में लगूँगा—मैं टोकरियाँ बुनूँगा, यह काम मैं बखूबी कर सकता हूँ।" उसने सोचा कि टोकरियाँ बुन लेने के बाद वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुकेगा और फिर तो गोरे लोगों को खरीदना बाकी रह जायगा। यह बात उसके दिमाग़ में नहीं आई थी कि दूसरे के लिए खरीदने का औचित्य भी सिद्ध करना पड़ता है, या कम-से-कम उनके दिमाग़ में यह बैठाना ज़रूरी होता है कि यह उनके लिए उपयोगी है, या कोई ऐसी चीज़ बनाई जाती है जिसे लोग खरीदने को तैयार हों। मैंने भी बड़े कोमल तंतुओं से एक टोकरी बुनी थी, लेकिन उसे दूसरे के काम की चीज़ न बना सका। फिर भी मैंने सोचा कि यह किसी मेरे काम की चीज़ है और दूसरों में इसको खरीदने की ज़रूरत पैदा करना

सीखने की वजाय मैंने उसे न वेचने का ढंग ही सीखा। लोग जिस जीवन की प्रशंसा करते हैं, उसे सफल मानतें हैं, वह जीवन का केवल एक ही प्रकार होता है। हम किसी एक प्रकार की दूसरे प्रकारों की कीमत पर अतिरंजना क्यों करें ?

जव मैंने यह देखा कि अपने नगरवासियों से रहने का कोई भी स्थान पाने की सम्भावना नहीं है, तो मैंने एकदम वन की दिशा ग्रहण की, जहाँ से मैं अपेक्षाकृत अधिक परिचित था। पूंजी जुटाने की प्रतीक्षा किए विना जो कुछ साधन मेरे पास थे उन्हीं से तुरन्त व्यापार में लग जाने का निश्चय मैंने किया। वाल्डेन सरोवर के तट पर जाकर रहने में मेरा प्रयोजन सस्ते या महंगे में जीवन-निर्वाह करने का नहीं था, वल्कि कोई निजी व्यापार जमाने का था जिसमें कम-से-कम वाधाएँ हों; सामान्य-वुद्धि, थोड़े-से साहस और थोड़ी-सी व्यापार-वुद्धि की कमी के कारण इसमें असफल होना जितना मूर्खतापूर्ण होगा उतना शोकप्रद नहीं।

मैंने सदा ठेठ व्यापारिक आदतों को ग्रहण करने का प्रयास किया है। प्रत्येक व्यक्ति के वे अपरिहार्य हैं। यदि आप 'दिव्य साम्राज्य'[1] से व्यापार करते हैं तो सागर-तट पर किसी जेरूसलेम वन्दरगाह पर छोटा-सा दफ्तर खोल देना ही वहुत काफी होगा। आप ऐसी चीज़ों का निर्यात करेंगे जो इस देश में होती हो, विलकुल देशी चीजें; यथा वहुत-सी वरफ और चीड़ की इमारती लकड़ी, थोड़ा-सा पत्थर। इनका व्यापार अच्छा रहेगा। सारे काम खुद अपने-आप देखना, खुद ही एक साथ अपना नाविक, कप्तान, मालिक होना, खुद ही अपने माल का वीमा करना, खरीद-फरोख्त करना और खुद ही हिसाव रखना, प्रत्येक आने वाले पत्र को पढ़ना और प्रत्येक भेजे जाने वाले पत्र को लिखना, दिन-रात माल उतरने की देख-भाल करना, तट पर एक ही समय में अनेक स्थानों पर उपस्थित रहना (सवसे कीमती माल वहुधा जर्सी वन्दरगाह पर उतरेगा) स्वयं ही अपना तार वन जाना, और विना थके चारों ओर क्षितिज को छूते हुए, प्रत्येक गुजरने वाले जहाज की सूचना देना; इतनी दूर और इतने वड़े वाजार के लिए माल का चालान जारी रखना, दुनिया-भर के वाजारों की जानकारी रखना, हरेक जगह की

---

१. दिव्य साम्राज्य (*Celestial Empire*) चीन।

शांति और युद्ध की सम्भावनाओं का ध्यान रखना, सभ्यता और व्यापार की प्रवृत्तियों को पहले ही भाँप लेना (खोज की यात्राओं, नए मार्गों और जहाज़रानी के सुधारों का पूरा लाभ उठाते हुए) नक़्शों का अध्ययन करना, चट्टानों की स्थिति, नए प्रकाश-स्तम्भों तथा चट्टानों को सूचित करने वाले पीपों आदि की स्थिति का निश्चय करते रहना, और हमेशा गणना पट्ट में सुधार करते रहना (क्योंकि हिसाब लगाने वाले की एक भी गलती से जहाज़ चट्टान से टकरा जाता है, जो अन्यथा सुरक्षित पहुँच जाता), सृष्टिभर के विज्ञान से क़दम मिलाते चलना, हैनो और फिनिशियनों से लगाकर आज तक के सभी महान् अन्वेषकों, नाविकों, व्यापारियों आदि के जीवन-चरित का अध्ययन करते रहना, संक्षेप में, समय-समय पर माल का हिसाब देखते रहना जिससे यह पता लगता रहे कि आपकी स्थिति क्या है—यह सब इतनी कड़ी मेहनत है जिसमें आदमी की सारी-की-सारी क्षमता लग जाय। हानि लाभ, व्याज, बारदाना और छीजन, नाप-तौल आदि का हिसाब रखने के लिए ही सार्वभौमिक ज्ञान की ज़रूरत होगी।

मैंने विचार किया है कि व्यापार के लिए वालडेन-सरोवर बड़ा उत्तम स्थान है, केवल इसीलिए नहीं कि यहाँ से रेल गुज़रती है और बरफ का व्यापार होता है; इसके जो लाभ हैं उन्हें खोलकर बता देना व्यापारिक नीति के विरुद्ध होगा। यह अच्छा बन्दरगाह है, यहाँ जमीन ठोस है। नीवा नदी[1] की भाँति यहाँ दलदल नहीं भरनी पड़ेगी, हालाँकि सभी जगह आपको ठोस भराई करने के बाद ही ऊपर इमारत खड़ी करनी चाहिए। कहा जाता है कि बाढ़, पछुवा हवा और नीवा की बरफ सेंट पीटर्सबर्ग को भी पृथ्वी के धरातल से उड़ा सकती हैं।

इस व्यापार को सामान्य पूँजी के बिना ही आरम्भ करना था। फिर भी इस प्रकार के कामों के लिए कुछ साधन तो अपरिहार्य होते ही हैं। वे साधन कहाँ उपलब्ध होंगे यह अन्दाजा लगाना कठिन हो सकता है। इस प्रश्न के व्यावहारिक पहलू पर तुरन्त आ जाएँ तो जहाँ तक वस्त्रों का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि इस मामले में हम सम्भवतः वास्तविक उपयोगिता की अपेक्षा नवीनता के प्रेम और दूसरों की राय के अनुसार ही अधिक चलते हैं।

---

१. नीवा—रूस की एक नदी, जो कई झीलों से निकलकर फिनलैण्ड की खाड़ी में गिरती है।

जिस व्यक्ति के पास करने के लिए कुछ काम है, उसे याद रखना चाहिए कि वस्त्रों का पहला उपयोग जीवनी-उष्णता को बनाए रखना है, और दूसरा है समाज की वर्त्तमान स्थिति में, नग्नता को ढके रखना। इस प्रकार वह देख सकता है कि आवश्यक या महत्त्वपूर्ण काम का कितना अंश अपने वस्त्र-भण्डार में वृद्धि किए बिना ही वह पूरा कर सकता है। राजा और रानी जो अपने खास दर्जी के हाथों सिले सूट को भी केवल एक बार पहनते हैं, उस आराम को नहीं जान सकते जो ठीक नाप के बने सूट को पहनने से मिलता है। वे लकड़ी के उन घोड़ों से अधिक अच्छे नहीं होते जिनको साफ कपड़े टाँगने के काम में लाया जाता है। प्रत्येक दिन हमारे वस्त्र हममें घुलते-मिलते जाते हैं, उन पर पहनने वाले के चरित्र की छाप लगती जाती है, जब तक कि हम उनका परित्याग न कर दें। ठीक अपने शरीर की भाँति—केवल उनके परित्याग में इतनी देर नहीं लगती, औषधिक उपादानों का प्रयोग नहीं होता, इतना विधि-संस्कार नहीं होता। केवल कपड़ों में पैबंन्द लगा होने के कारण ही मेरी दृष्टि में किसी का सम्मान घट गया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। तो भी, मैं जानता हूँ कि लोगों को साधारणतः फैशनेबल या कम-से-कम साफ और बगैर पैवन्द लगे वस्त्र पहनने की चिन्ता अधिक होती है और स्वच्छ अंतःकरण की कम। किन्तु यदि फटे वस्त्रों की मरम्मत न भी की जाय तो अधिक-से-अधिक जो दुर्गुण झलकेगा वह है लापरवाही। कभी-कभी मैं अपने परिचित जनों को इस प्रकार की कसौटी पर कसता हूँ—इनमें से कौन घुटने पर पैवन्द लगा या दो जगह सिला हुआ वस्त्र पहन सकता है? अधिकतर लोग इस प्रकार का व्यवहार करते हैं कि यदि वे ऐसा कपड़ा पहन लें तो मानो उनके जीवन-भर की सु-सम्भावदाएँ नष्ट हो जायँगी। उनके लिए टूटी टाँग लेकर लँगड़ाते हुए नगर में चलना ज्यादा आसान होगा, बजाय फटी पतलून पहनकर चलने के। बहुधा, यदि किन्हीं सज्जन के पैरों के साथ दुर्घटना हो जाय तो उन्हें ठीक किया जा सकता है—लेकिन यदि कहीं इसी प्रकार की दुर्घटना उनकी पतलून के पैरों के साथ हो जाय, तो फिर कुछ नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए है कि जो चीज़ वास्तव में सम्माननीय है उस पर ध्यान न देकर वह उस चीज पर ध्यान देता है जिसको सम्मान से देखा जाता है। हमारा परिचय केवल गिनती के आदमियों से होता है, जबकि कोट-पतलूनों की बहुत बड़ी संख्या से होता है। अपने पहनने के कपड़े एक बिजूका (काग-भगौड़ा) को पहना दीजिए और स्वयं

पास ही नंगे खड़े हो जाइए, तो कौन होगा जो विजूका को फौरन सलाम न करे? अभी उस दिन एक खेत से गुजर रहा था। पास ही एक खूँटे पर हैट और कोट टँगा देखकर फौरन ही मैं उस खेत के मालिक को पहचान गया। पिछली बार जब मैं उससे मिला था तब से केवल वह थोड़ा-सा ही और बूढ़ा हुआ था। मैंने एक ऐसे कुत्ते का किस्सा सुना है, जो उन सभी अपरिचित लोगों पर भौंक पड़ता था जो कपड़े पहनकर उसके मालिक के घर की ओर जाते थे, लेकिन नंगे चोर को देखकर चुप रह जाता था। एक बड़ा दिलचस्प सवाल है कि यदि लोगों के कपड़े छीन लिए जायँ तो कहाँ तक उनमें आपस में सामाजिक भिन्नता बाकी रह जायगी। इस दशा में, क्या आप सभ्य समाज के सर्व-सम्मानित वर्ग को निश्चय पूर्वक बता पायँगे? जब मादाम फाइफर पूरब से पश्चिम की साहसिक विश्व-यात्रा में, स्वदेश के निकट ही एशियायी रूस में पहुँची तो, उनका कहना है कि, अधिकारियों से मिलने जाने के समय उन्हें यात्रा के कपड़े उतारकर दूसरे कपड़े पहनने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि वह—"अब एक सभ्य देश में आ पहुँची थीं जहाँ...लोगों को उनके कपड़ों से तोला जाता है।" हमारे जनतंत्रवादी न्यू इंग्लैण्ड के भी नगरों में सहसा सम्पत्तिवान् हो जाना और केवल वेश-भूषा और तड़क-भड़क आदि में उनका प्रकाशन ही किसी भी व्यक्ति को सर्वमान्य सम्मान दिलाने को काफी होता है। जो लोग यह सम्मान देते हैं उनकी संख्या बहुत अधिक है, लेकिन वे सब-के-सब म्लेच्छ हैं और उनके बीच एक मिशनरी (धर्म-प्रचारक) भेज देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अलावा, वस्त्रों के कारण सिलाई का भी आरम्भ हुआ, और यह एक ऐसा धंधा हैं जिसे आप 'अनंत' कह सकते हैं। कम-से-कम औरतों की पोशाक की सिलाई का तो कभी अन्त ही नहीं आता।

जिस व्यक्ति को करने को आखिर कुछ काम मिल गया है, उसे वह काम करने के लिए नये सूट की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उसका काम तो पुराने सूट से ही चल जायगा जो घर के कवाड़खाने में धूल-धक्कड़ में अनिश्चित काल से पड़ा रहा हो। पुराने जूतों ने किसी सूरमा के परिचारक की जितने दिन सेवा की है उससे अधिक काल तक वे स्वयं सूरमा की सेवा करेंगे (यदि सूरमा का कोई परिचारक हुआ तो), नंगे पैर जूतों से भी ज्यादा पुराने होते हैं और वह अपना काम उन्हींसे चला सकता है। जो लोग फैशनेबल गोष्ठियों और विधान-सभाओं में जाते हैं केवल उन्हींको नए कोटों की जरूरत पड़ती है, ताकि वे

उन्हें उतनी ही जल्दी-जल्दी वदल सकें जितनी जल्दी कि उनको पहनने वाला वदल जाता है। लेकिन यदि मेरी जाकट और पतलून, हैट और कोट इस योग्य हैं कि मैं उन्हें पहनकर ईशाराधना कर सकूँ, तो मेरा काम उन्हींसे चल जायगा —नहीं चलेगा क्या ? कौन अपने वस्त्रों को अन्त तक, उनके पुनः मूल तत्त्वों में विलीन हो जाने तक पहनता है ? इसके पहले ही लोग इन वस्त्रों को दान करके किसी गरीव आदमी को दे देते हैं, जो वाद में इन्हें अपने से भी गरीव आदमी को प्रदान कर देता है, या यों कहिए कि अपने से अधिक सम्पन्न को, क्योंकि उसका काम इतने से ही चल जाता है। मैं कहता हूँ, जिन कामों में नये कपड़ों की आवश्यकता होती हैं, नये पहनने वाले की नहीं; उनसे खवरदार रहिए। यदि आदमी नया नहीं है तो नए कपड़े उसके कैसे फिट विठाए जा सकते हैं ? यदि कोई नया काम आपके सामने आये तो उसे पुराने वस्त्रों में ही करने की चेष्टा कीजिए। लोगों को जरूरत ऐसी चीज़ की नहीं है जिससे वे काम कर सकें। उन्हें जरूरत है ऐसी चीज़ की जिसको वे कर सकें वल्कि जो वे वन सकें। चाहे हमारे वस्त्र कितने ही गंदे हो जायँ, कितने ही चिथड़ा हो जायँ, कदाचित् हमे तव तक नए वस्त्र नहीं लेने चाहिएँ, जव तक कि हमारा आचरण ऐसा न हो, हमने कोई ऐसा साहसिक कर्म न किया हो, अपनी नाव ऐसी जगह न खेकर ले गए हों कि हमें महसूस होने लगे कि हमारा 'नया आदमी' पुराने कपड़ों में है। उस दशा में पुराने वस्त्र धारण किये रहना वैसा ही होगा जैसा कि पुरानी वोतल में नई शराव रखना। पक्षियों की भाँति हमारा भी "रोआँ वदलने का समय" हमारा संक्रांति-काल होना चाहिए। 'लून' पक्षी (मुर्गावी) इस समय एकांत में चला जाता है; इसी प्रकार साँप अपनी कैंचुली छोड़ता है और झिनगा आंतरिक प्रयास और विस्तार के कारण अपनी झिल्ली से निकलता है, अन्यथा हम पाखंडी माने जायँगे और अन्त में, अवश्य ही, स्वयं अपने द्वारा तथा मानवता द्वारा वहिष्कृत कर दिए जायँगे।

हम कपड़ों के ऊपर कपड़े पहनते चले जाते हैं मानो छाल के ऊपर छाल धारण करने वाले पौधों की भाँति इसी तरह हमारा विकास होता हो। हमारे वाहरी वस्त्र (जो अक्सर महीन होते हैं) हमारी वाह्य या नकली त्वचा होते हैं—जिसका हमारे प्राणों से कोई सम्वन्ध नहीं होता, जिसके जहाँ-तहाँ उतर जाने से हमें कोई घातक चोट नहीं पहुँचती। हमारे अपेक्षाकृत मोटे वस्त्र जिन्हें हम हमेशा पहने रहते हैं, हमारे शरीर की जीवाणु-मुक्त खाल अथवा आवरण होते

हैं। किन्तु कमीजों को तो असली छाल समझिए, जिसे आदमी को नष्ट किये विना हटाया नहीं जा सकता। मेरा विश्वास है कि सभी जातियों के लोग किसी-न-किसी मौसम में कमीज या उसके समान कोई-न-कोई वस्त्र अवश्य पहनते हैं। उचित यही है कि आदमी इतने सादा कपड़े पहने कि अंधकार में भी अपने-आपको छू सके और सभी भाँति इतना कसा-कसाया तैयार रहे कि यदि कोई शत्रु नगर को जीत ले, तो वह, प्राचीन दार्शनिक की भाँति विना किसी चिन्ता के, खाली हाथ नगर-द्वार से वाहर निकल जाय। अधिकतर कामों के लिए एक मोटा वस्त्र तीन महीन वस्त्रों का काम करता है, और सस्ते कपड़े की कीमत वास्तव में सभी के उपयुक्त होती है। एक मोटा कोट पाँच डालर में मिल जाता है, मोटी पतलून दो डालर में, गोचर्म के जूते की जोड़ी डेढ़ डालर में, गर्मी का टोप चौथाई डालर में और जाड़े की टोपी साढ़े वासठ सैंट में (वल्कि घर पर ही नाम-मात्र के मूल्य पर वना ली जाय तो और भी अच्छा); तव फिर कौन आदमी इतना दरिद्र होगा कि अपनी कमाई से ये कपड़े पहने और उसका आदर करने वाले बुद्धिमानजन उसे न मिलें ?

जव मैं अपनी दर्जिन से एक विशेष प्रकार का वस्त्र वनाने को कहता हूँ तो वह वड़ी गंभीरता से कहती है, "अव लोग ऐसे कपड़े नहीं वनवाते।" यह कहते समय वह 'लोग' शब्द पर जोर नहीं देती, मानो 'भाग्य' की तरह के किसी अशरीर अधिकारी का प्रमाण दे रही हो। जैसा कपड़ा मैं चाहता हूँ वैसा वनवाने में मुझे कठिनाई होती है—कारण यह है कि वह विश्वास नहीं करती कि मेरा तात्पर्य वही है जो मैं कहता हूँ, कि मैं इतना नासमझ हूँ। इस धर्मादेश को सुनकर मैं क्षण-भर को विचारमग्न हो जाता हूँ, प्रत्येक शब्द पर अलग-अलग ध्यान देता हूँ ताकि उसका अर्थ समझ सकूँ, और यह पता लगा सकूँ, कि किस अंश तक मेरे और 'लोगों' के वीच रक्त-सम्बन्ध है, और मेरे इतने नजदीकी मामले में उनका कहाँ तक अधिकार है। और अन्त में, मेरी इच्छा होती है मैं कि भी उसे उतना ही रहस्यपूर्ण ('लोगों' शब्द पर जोर दिए विना), उत्तर दूँ और कहूँ "यह ठीक है कि लोग अभी तक ऐसे कपड़े नहीं वनवाते थे लेकिन अव वनवाने लगे हैं।" अगर वह मेरे चरित्र का नाप नहीं लेती, तो यह नाप-जोख किस काम की ? वह केवल मेरे कंधों की चौड़ाई नापती है, मानो वे कपड़े टाँगने की खूँटी हों। हम न सौन्दर्य की देवी की पूजा करते हैं, न भाग्य-देवता की; हम लोग तो सव फैशन-परस्त हो

गए हैं। यह फैशन की देवी ही पूर्ण अधिकार के साथ हमारे लिए कातती-बुनती है, काट-छाँट करती है। वंदरों का सरदार पैरिस में जैसी टोपी पहन लेता है, ठीक वैसी ही टोपी अमरीका के वंदर भी धारण कर लेते हैं। कभी-कभी मैं विलकुल निराश हो जाता हूँ कि कोई भी काम सादा ढंग से, ईमानदारी से आदमियों की सहायता से किया जा सकता है। इसके लिए लोगों को सवसे पहले किसी शक्तिशाली चक्की में से गुजरना पड़ेगा ताकि उनके दकियानूसी संस्कार निचोड़कर फेंके जा सकें और वे फिर सिर न उठा सकें। तो भी इस मण्डली में कोई-न-कोई ऐसा व्यक्ति निकल ही आयगा जिसके दिमाग में यह कीड़ा होगा जो न जाने कव किस अंडे से निकल पड़ेगा, क्योंकि इन चीजों को अग्नि भी नष्ट नहीं कर पाती; वस आपकी सारी-की-सारी मेहनत वेकार हो जायगी। तो भी, यह तो हम नहीं भूलेंगे कि गेहूँ हमको मिस्र की 'ममीज'[1] से प्राप्त हुआ था।

कुछ मिलाकर, मेरा विचार है कि इस वात की स्थापना नहीं की जा सकती कि इस देश (अमरीका) में या किसी देश में वेश-भूषा को कला का सम्मान प्राप्त हुआ है। वर्तमान में लोगों को जो कुछ मिलता है, पहनने लगते हैं। भग्नपोत के मल्लाहों की भाँति जो कुछ भी उन्हें तट पर मिलता है, पहन लेते हैं और थोड़ी दूर जाकर (चाहे यह दूरी स्थान की हो या काल की) वे एक-दूसरे के स्वाँग का मजाक उड़ाते हैं। प्रत्येक पीढ़ी पुराने फैशन पर हँसतीं है लेकिन नये फैशन की पूजा परम धार्मिक भाव से करती है। हेनरी अष्टम या रानी ऐलिज़ावेथ की शाही पोशाक देखने में हमें उतनी ही मजेदार लगती है जितनी कि मानव-भक्षी लोगों के राजा-रानी की पोशाक। आदमी के शरीर के विना हरेक पोशाक करुणाजनक हो जाती है, और हास्यास्पद दिखाई देती है। मानव की किसी भी जाति की वेश-भूषा हो, जो उसमें से झाँकने वाली गंभीर आँख है और जो उसमें वसने वाली ईमानदारी की जिन्दगी है केवल वही उसे हास्यास्पद होने से वचाती है, और वही उसे पवित्रता प्रदान करती है। विदूषक के पेट में शूल उठने दीजिए, उसकी पोशाक इस दशा का भी काम चलायगी। तोप का गोला लग जाने पर सिपाही के शरीर पर चिथड़े शाही पोशाक की तरह ही फवते हैं।

---

१. ममीज—मिस्र की प्राचीन सुरक्षित लाशें। कहा जाता है कि गेहूँ का प्रचार मिस्र से हुआ था।

नये-नये नमूनों के लिए स्त्री और पुरुषों की वचकाना और जंगली रुचि के कारण न जाने कितने लोग आँखें मिचकाकर, घुमा-घुमाकर, वहुरूपदर्शी (एक प्रकार का खिलौना, जिसमें नाना प्रकार की रंग-विरंगी आकृतियाँ दिखाई देती हैं) में झाँका करते हैं ताकि वे उस विशेष आकृति का पता लगा सकें जो आज की पीढ़ी के उपयुक्त हो। कपड़ा वनाने वाले भी जान गए हैं कि यह रुचि केवल सनक पर आधारित होती है। दो नमूनों में से, जिनमें सिर्फ यही फर्क होता है कि किसी खास रंग के दो-चार सूत कम-ज्यादा हैं, एक तो हाथों-हाथ बिक जाता है और दूसरा अलमारी में पड़ा रहता है, हालाँकि यह भी अक्सर होता है कि एक 'सीजन' गुजरने के वाद यह दूसरे नमूने का कपड़ा ही सवसे अधिक फैशनेविल मान लिया जाता है। गोदना गुदाने को लोग एक भयानक प्रथा वताते हैं, लेकिन तुलना करने पर वह उतनी भयानक प्रतीत नहीं होगी। उसमें इतना जंगलीपन नहीं हैं, क्योंकि गोदना कम-से-कम खाल तक गहरा होता है और मिटता नहीं है।

मैं कतई यह विश्वास नहीं करता कि वड़े कारखाने चालू करने का ढंग ही हमारा वस्त्र प्राप्त करने का सर्वोत्तम ढंग हो सकता है। दिनों-दिन हमारे दस्तकारों की हालत वही होती जाती है जो इंग्लैंड में हुई। और इसमें कोई आश्चर्य की वात भी नहीं है, क्योंकि जहाँ तक मैंने देखा है, मुख्य ध्येय यह नहीं होता कि लोग अच्छी तरह, ईमानदारी से, कपड़े पहन सकें—वल्कि, निस्संदेह, मुख्य ध्येय होता है कि मिल-मालिकों की अधिक-से-अधिक आमदनी हो। अंततोगत्वा तीर वहीं लगता है जहाँ का लक्ष्य लिया जाता है। इसलिए चाहे निकट भविष्य में असफल ही क्यों न हों, लोग यदि किसी ऊँची चीज का निशाना लें तो अधिक उत्तम होगा।

जहाँ तक निवास का प्रश्न है, मैं इस वात का विरोध नहीं करूँगा कि अब यह जीवन के लिए आवश्यक हो गया है हालाँकि इस वात के उदाहरण मौजूद हैं कि इससे भी अधिक ठंडे देश में इसके विना ही लम्वे अर्से तक लोगों का काम चल गया है। सैमुएल लैंग का कहना है कि लैपलैण्ड के निवासी चमड़े की पोशाक पहनकर और अपने सिर और कंधों पर एक चमड़े का थैला ओढ़-कर रात को वर्फ पर सोते हैं—वह भी ऐसी ठंड में कि अगर कोई ऊनी कपड़े पहने खुला रह जाय तो उसकी जीवन-ज्योति ही बुझ जाय। उसने इन लोगों को इस तरह से सोते हुए देखा भी था। फिर भी उसका कहना है कि "वे लोग

हमसे अधिक मजबूत नहीं होते।" लेकिन, घर में रहने से जो आराम और सुविधा होती है, उसका आविष्कार किये बिना आदमी इस पृथ्वी पर बहुत काल तक नहीं रहा; यह आविष्कार उसने जल्दी ही कर लिया। मूलत: 'गृह-सुख' का अर्थ घर में रहने का सुख रहा होगा, वजाय 'गृहस्थी के सुख' के। ऐसी जलवायु में जहाँ 'घर' का विचार मुख्यतया जाड़े और वर्षा से सम्वन्ध रखता है और साल के दो तिहाई हिस्से में 'घर' एकदम अनावश्यक हो जाता है और केवल एक छाते से काम चल सकता है, इस 'गृह-सुख' का आनन्द भी लोग कभी-कभी ही उठाते रहे होंगे। पूर्वकाल में हमारी जलवायु में, गर्मियों के दिनों में घर केवल उढ़ौने का काम करता था। रेड इंडियन लोगों में तम्वू या झोंपड़ी को केवल दिन-भर की चलाई का सूचक माना जाता था; पेड़ की छाल पर वनी हुई झोंपड़ियों की कतार से पता लग जाता था कि वे कितनी जगह पड़ाव डाल चुके हैं। मानव को जो वहुत बड़े-बड़े अंगों वाला वहुत मजबूत प्राणी नहीं वनाया गया, वह केवल इसलिए कि वह अपनी दुनिया स्वयं संकुचित करने का प्रयत्न करे, जहाँ उसके लिए ठीक हो, दीवार खड़ी कर ले। प्रारम्भ में वह नंगा रहता था, खुली हवा में रहता था और शांत और गरम मौसम के दिनों में यह सुखकर भी होता था। किन्तु यदि उसने घर की शरण न ली होती, वस्त्र की भाँति उसे धारण करने में शीघ्रता न की होती तो शायद प्रारम्भ में ही वर्षा और जाड़े ने उसकी समूची जाति को नष्ट कर दिया होता और सूर्य की प्रचंड गर्मी का तो कहना ही क्या! जन-कथा है कि आदम और हव्वा ने वस्त्र धारण करने के पहले पत्तों का घर धारण किया। मानव को घर की जरूरत थी, ऐसे स्थान की जहाँ उसे उष्णता मिल सके, पहले शारीरिक उष्णता और फिर स्नेह की उष्णता।

हम उस काल की कल्पना कर सकते हैं जव मानव-जाति के शैशव में कोई साहसी व्यक्ति सुरक्षा के लिए किसी चट्टान की गुफा में जा घुसा होगा। प्रत्येक बच्चा एक हद तक, संसार को फिर से प्रारम्भ करता है और ठंड और वरसात तक में घर के वाहर रहना पसन्द करता है। स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण घोड़े के खेल की तरह ही वह घर का भी खेल खेलता है। जिस उल्लास से हम वचपन में ढालू चट्टानों को देखते हैं, गुफाओं तक जाते हैं, उसे कौन भूल सकता है? आदिम पूर्वजों का जो अंश हमारे भीतर अव भी वाकी है यह उसकी स्वाभाविक पुकार है। गुफाओं से हम छतों की ओर अग्रसर हुए

हैं, खजूर के पत्तों की, पेड़ की डाल और छाल की, कपड़े की, घास-फूंस की, लकड़ी के तख्तों और शहतीरों की और पत्थर के चौकों की छतों की ओर वढ़ते चले गए हैं। और अन्त में हुआ यह कि आज हमें पता नहीं कि खुली हवा में रहना कैसा होता है; हमारा जीवन इतने अर्थों में 'घरेलू' हो गया है जितना कि हम सोच भी नहीं सकते। आज घर के चूल्हे-चौके से खेत बहुत दूर हो गया है। शायद अच्छा होता यदि हम अपने दिन-रात का और अधिक भाग अपने और आकाश-मंडल के वीच विना किसी व्यवधान के बिताते, यदि कविगण छत के नीचे वैठकर इतनी काव्य-रचना न करते या संतजन वहाँ इतना अधिक न रहते। पक्षीगण गुफाओं में गाना नहीं गाते और कपोत का भोलापन दरबों में पोपित नहीं होता।

फिर भी, यदि किसी का घर वनाने का इरादा हो तो उसे थोड़ी अमरीकन व्यवहार-बुद्धि से काम लेना चाहिए वरना वह अपने-आपको किसी अनाथालय, विना निकास की भूल-भूलैयाँ, अजायवघर, जेलखाने, या शानदार मकवरे में रहता हुआ पायगा। सर्वप्रथम इस पर विचार कीजिए कि कम-से-कम कितना वास-स्थान नितांत आवश्यक है। इसी नगर में मैंने 'पेनोब्स्कौट, आदिवासियों को एक महीन सूती कपड़े के तम्बू में रहते देखा है, जबकि उनके चारों ओर बरफ की एक फुट मोटी तह जमी हुई थी और मेरा खयाल है कि यदि यह तह और भी मोटी होती तो उनके लिए प्रसन्नता की वात ही होती, क्योंकि उससे हवा में रुकावट पड़ती। ईमानदारी से जीवन-यापन करने के साधन जुटाने का (ताकि मेरी समुचित प्रवृत्तियों के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता रहे) प्रश्न पहले मुझे अव से अधिक परेशान करता था, क्योंकि अव तो, दुर्भाग्यवश मुझमें कड़ापन भी आ गया है। उन दिनों मैं रेलवे लाइन के किनारे एक वड़ा संदूक रखा देखता था। यह संदूक छै फीट लम्वा और तीन फीट चौड़ा था और इसमें रात को मजदूर अपने औजार वन्द करके रख देते थे। इसे देखकर मैं सोचता था कि प्रत्येक अर्थ-संकट-ग्रस्त व्यक्ति को ऐसा ही एक संदूक एक-एक डालर में खरीद लेना चाहिए। हवा आने के लिए उसमें वर्मे से कुछ छेद कर ले और रात को या मेह वरसने पर उसमें घुसकर ढक्कन वन्द कर ले। इस प्रकार वह वड़े प्रेम से रह सकेगा और उसकी आत्मा भी स्वतंत्र रहेगी। मुझे यह विकल्प बुरा या किसी भी भाँति तिरस्करणीय प्रतीत नहीं होता था। चाहे जितनी रात को आकर इसमें घुसिए, चाहे जब उठकर चल दीजिए—कोई मकान-मालिक

किराए के लिए आपका पीछा नहीं पकड़ेगा। कितने ही लोग इसी प्रकार के, अपेक्षाकृत बड़े और शानदार संदूकों का किराया देने के लिए तंग होते-होते मरते रहते हैं। और ये लोग अगर इस प्रकार के संदूक में रहते तो सर्दी में जमकर मर नहीं जाते। मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। मितव्ययिता एक ऐसा विषय है जो लापरवाही स्वीकार तो कर लेगा, लेकिन उससे इस प्रकार पार नहीं पाया जा सकता। एक जमाने में खुली हवा में रहने वाले बहुत तगड़े और जंगली लोगों की जाति का लगभग समूचा घर उस सामान से तैयार हो जाता था जो उन्हें प्रकृति से मिलता था। मैसाचुसेट्स के रेड-इंडियनों के सुपरिटेंडेण्ट गूकिन ने सन् १६७४ में लिखा था, । "इन लोगों के सबसे अच्छे और गरम घर बड़ी सफाई से, खूब जमाकर पेड़ों की छाल से छाए होते हैं जो जरा कड़ी होने पर तनों पर से उतार ली जाती है और थोड़ी हरी रहने की अवस्था में ही इस छाल को वजनी लकड़ी से दाबकर उसकी परतें बना ली जाती हैं···इससे नीचे दर्जे के घरों पर सरपत की चटाइयाँ बिछा दी जाती हैं। ये भी खूब कसे हुए और गरम होते हैं, लेकिन पहले मकानों-जैसे अच्छे नहीं होते ।···मैंने कुछ मकान साठ से सौ फीट लम्बे और तीस फीट चौड़े देखे हैं। मैं उनकी झोंपड़ी में अनेक बार रहा हूँ और मैंने उन्हें उतना ही गर्म पाया हैं जितना कि सबसे अच्छे अंग्रेजी घर को ।" वह आगे कहता है कि अन्दर बहुत बढ़िया कामदार चटाइयों का फर्श और अस्तर होता था और अनेक प्रकार के बर्तन होते थे। ये रेड-इंडियन इतने आगे बढ़ चुके थे कि छत में छेदों पर चटौने लटकाकर उन्हें डोरी से खोल-मूंदकर हवा का प्रवेश कम-ज्यादा कर लेते थे। सबसे पहली बात तो यह है कि इस प्रकार का घर एक, या हद-से-हद, दो दिन में तैयार हो जाता था औरउ से उतारने या खड़ा करने में कुछ घण्टे लगते थे। प्रत्येक परिवार के पास एक घर या उसका एक भाग होता था।

इस असभ्य स्थिति में प्रत्येक परिवार के पास एक घर होता है जो सबसे शानदार घर के समान ही होता है और उसकी सरल और सादा आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होता है। लेकिन मेरा खयाल है कि मैं सीमोल्लंघन नहीं करूँगा यदि मैं कहूँ कि हवा में उड़ने वाले पक्षियों का अपना-अपना नीड़ होता है, लोमड़ियों की अपनी मांद होती है, जंगली लोगों का अपना झोंपड़ा होता है, जबकि आज के सभ्य समाज में ऐसे परिवारों की संख्या आधे से अधिक नही

होती जिनका अपना घर हो। वड़े कस्वों और नगरों में जहाँ 'सभ्यता' विशेष तौर पर पाई जाती है, ऐसे लोगों की संख्या वहुत कम होती है जिनका अपना घर हो। वाकी लोग अपने इस वाह्यतम आवरण के लिए सालाना टैक्स देते हैं, क्योंकि गर्मी और जाड़े में यह अपरिहार्य हो जाता है। इस टैक्स की धन-राशि से रेड-इंडियन झोंपड़ों का एक गाँव-का-गाँव खरीदा जा सकता था, लेकिन अव उन्हें जीवन-पर्यन्त दरिद्र वनाए रखता है। मेरा प्रयोजन यहाँ स्वामित्व की अपेक्षा भाड़े की पद्धति के दोष दिखाना नहीं है; लेकिन यह तो स्पष्ट है कि असभ्य लोगों का अपना घर होता है, क्योंकि उसकी कीमत वहुत कम होती है जवकि सभ्यजन साधारणत: किराए पर रहते हैं, क्योंकि वे अपना निजी घर नहीं वना सकते। आगे चलकर वह भाड़े पर रहने के योग्य भी नहीं रह जाते। जवाव मिलता है, कि किन्तु केवल यह किराया देकर ही एक निर्धन सभ्य एक ऐसे भवन में रह लेता है, जिसे असभ्य की कुटिया की तुलना में महल कहा जा सकता है। पच्चीस से सौ डालर तक के सालाना किराए से (गाँव की दर पर) उसे सदियों तक के सुधारों का लाभ प्राप्त हो जाता है—यथा वड़े-वड़े कमरे, वहुत साफ दीवारगीरी, कमरे की अंगीठी, पलस्तर, झिलमिलियाँ, पम्प, स्प्रिंग का ताला, वड़ा तहखाना और दूसरी वहुत-सी चीज़ें। लेकिन ऐसा क्यों होता है कि जो व्यक्ति इन सव चीजों का उपभोग करता है वह तो अधिकतर एक निर्धन 'सभ्य' रहता है, जव कि वह जंगली आदमी, जो इन चीजों का उपभोग नहीं कर पाता, असभ्य-जन के स्तर से, सम्पन्न होता है? यदि यह कहा जाय कि मानव की परिस्थितियों की वास्तविक उन्नति का नाम ही सभ्यता है (और मेरा विचार है कि यह सही है, यद्यपि केवल बुद्धिमान जन ही अपनी सुविधाओं का पूरा लाभ उठा पाते हैं) तो यह भी दिखाना होगा कि सभ्यता ने हमें विना कीमत वढ़ाए अपेक्षाकृत अच्छे वास-स्थान दिए हैं। मेरे हिसाव से किसी चीज की मत कीमत जीवन की वह राशि होती है जो हमें उस चीज के वदले में तुरन्त या आगे चलकर देनी पड़ती है। मेरे पड़ोस में एक औसत दर्जे के मकान की कीमत ८०० डालर होती है; इस धन को इकट्ठा करने में एक मजदूर के जीवन के पन्द्रह वर्ष लग जाते हैं, यदि उसके ऊपर परिवार का भार न हो (औसत आदमी के श्रम का मूल्य एक डालर प्रतिदिन के हिसाव से, क्योंकि यदि कुछ लोगों को इससे अधिक प्राप्त होता है तो दूसरों को इससे कम मिलता है)। इस प्रकार अपनी कुटिया का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए निश्चय ही

मामूली तौर पर उसे आधी जिन्दगी गुजारनी पड़ेगी। और यदि हम यह मान लें कि ऐसा करने की अपेक्षा वह किराए पर ही रहेगा, तो यह दो बुराइयों में से एक का चुनाव करना होगा और वह भी संदिग्ध। जंगली आदमी इन शर्तों पर अपनी झोंपड़ी से महल का बदला करता, तो क्या वह बुद्धिमानी होती ?

यहाँ यह अनुमान किया जा सकता है कि मेरे हिसाब से, जहाँ तक व्यक्ति का सवाल है, भविष्य के लिए भण्डार में जमा की गई इस अतिरिक्त पूंजी का कुल लाभ यह है कि इससे उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का खर्च पूरा हो जायगा। लेकिन अपने-आपको दफनाने का काम शायद आदमी को खुद नहीं करना पड़ता। फिर भी उस बात से जंगली और सभ्य लोगों के बीच एक महत्त्वपूर्ण विभिन्नता का पता चल जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे ही लाभ के लिए राष्ट्र के लोगों के जीवन को एक 'संस्था' का रूप दिया जाता है, जिसमें व्यक्ति के जीवन का एक वड़ी सीमा तक समावेश हो जाता है, ताकि जाति के जीवन की परिवृद्धि हो और वह सुरक्षित रह सके। किन्तु मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि, वर्तमान में, यह लाभ उठाने के लिए हमें कितना वड़ा वलिदान करना पड़ता है; मैं यह भी वताना चाहता हूँ कि हम सम्भवतः इस भाँति भी रह सकते हैं कि खरावियों से हानि उठाए विना ही अच्छाइयों का पूरा लाभ उठा लें। तुम्हारा यह कहने से क्या तात्पर्य है कि निर्धन लोग सदा ही तुम्हारे साथ रहते आए हैं, अथवा पूर्व पुरुषों ने खट्टे अंगूर खाए थे, इसलिए उनकी संतान के दाँत खट्टे हुए हैं ?

"परमेश्वर कहता है, मैं हूँ", इसलिए इस कहावत को इज़राइल में प्रयोग करने का मौका नहीं आयगा।

"देख सभी आत्माएँ मेरी हैं, पिता-आत्मा के समान पुत्र की आत्मा भी मेरी है। जो आत्मा पापकर्मी है वह कालग्रस्त होगी।"

जव मैं अपने पड़ोसी, कौंकर्ड के किसानों की हालत देखता हूँ, जो कम-से-कम दूसरे वर्गों के समान तो समृद्ध हैं ही, तो पता चलता है कि उनमें से अधिकतर वीस, तीस, चालीस वरस तक मेहनत करते रहे हैं, ताकि वे उस खेत के असली मालिक वन जायँ, जिसे उन्होंने ऋण-ग्रस्त दशा में उत्तराधिकार में पाया है या उधार के पैसे से खरीदा है; लेकिन अभी तक वे चुका नहीं पाए हैं। हम इस मेहनत के केवल तिहाई अंश को उनके मकान की कीमत मान सकते हैं। यह सच है कि कभी-कभी यह ऋण-भार खेत की कीमत से भी अधिक हो जाता

है, और इस प्रकार खेत स्वयं एक वड़ा बोझ बन जाता है। फिर भी इसको उत्तराधिकार में प्राप्त करने वाला कोई-न-कोई मिल ही जाता है, जो यह कहता है कि वह इससे भली भाँति परिचित है। असेसरों से पूछने पर मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वे इस नगर में एक दर्जन ऐसे व्यक्तियों के भी नाम नहीं गिना सकते जो अपने खेत के पूरी तरह मालिक हों, बिना किसी ऋण-भार के। यदि आप इन घरों और खेतों का इतिहास जानना चाहते हैं तो उस बैंक में जाकर पूछिए जहाँ वे गिरवी रखे हैं। ऐसे व्यक्ति, जो खेत में मेहनत करके वास्तव में उसके मालिक बने हैं, संख्या में इतने कम हैं कि पड़ौस में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उन्हें इशारे से वता सकता है। मुझे तो इसमें सन्देह है कि कौंकर्ड में तीन व्यक्ति भी ऐसे निकलेंगे। जो बात व्यापारियों के वारे में कही जाती है कि बड़ी संख्या में, यहाँ तक कि सौ में सत्तानवे व्यापारी अवश्य ही दिवालिया हो जाते हैं, वह किसानों के बारे में भी समान रूप से सच है। एक व्यापारी का कहना है कि व्यापारियों की अधिकतर असफलता वास्तव में 'आर्थिक दिवाला' नहीं होती; वह केवल अपना वायदा पूरा न करने की असफलता होती है—क्योंकि वह असुविधाजनक होता है। अर्थात् जो चीज़ टूटती है वह उनकी अर्थ-व्यवस्था नहीं बल्कि उनका नैतिक चरित्र है। लेकिन यह तो और भी बुरी बात है; इससे प्रतीत होता है कि बचे हुए तीन भी शायद अपनी आत्मा की रक्षा नहीं कर पाते; जो लोग ईमानदारी से दिवालिया होते हैं, उनसे कहीं बुरे अर्थों में इनका दिवाला निकल जाता है। दिवालियापन और वादा-खिलाफ़ी, यही वे 'स्प्रिंग बोर्ड' हैं, जिनसे उछलकर हमारी सभ्यता का काफी अंश कुलाटें खाता रहता है जब कि जंगली हमेशा ही अकाल के सख्त तख्ते पर खड़ा रहता है। तो भी मिडिल-सैक्स का पशु-मेला हर साल वड़ी धूम-धाम से लगाया जाता है, मानो कृषि की मशीन के सभी कल-पुर्जों में तेल लगा हो और वह ठीक-ठीक चल रहे हों।

किसान अपनी जीविका की समस्या को एक ऐसे गुर से सुलझाने की चेष्टा में लगा है जो स्वयं उस समस्या से भी अधिक उलझा हुआ है। जूतों से फीते प्राप्त करने के लिए वह पशुओं के झुण्डों का सट्टा करता है। बड़ी सावधानी से वह 'आराम' और 'स्वतंत्रता' को फँसाने के लिए पिंजरा लगाता है, लेकिन जैसे ही जाने को मुड़ता है उसका अपना पैर फँस जाता है। यही कारण है कि वह निर्धन रहता है, और इसी प्रकार के कारण से हम विलासिता के सभी उपादानों

से घिरे रहते हुए भी, जंगली लोगों के हजारों 'आरामों' के मामले में दरिद्र ही रह जाते हैं। जैसाकि चैपमैन ने कहा है :

"मानव का मिथ्या समाज—
—पार्थिव महानता के लिए
दिव्य सुविधाओं को हवा में उड़ा देता है।"

और मकान प्राप्त करने के बाद भी वह समृद्ध न होकर अपेक्षाकृत निर्धन हो जाता है। होता यह है कि मकान उसे प्राप्त करता है, वह मकान को नहीं। जहाँ तक मैं समझता हूँ, मोमस[1] ने मिनर्वा[2] द्वारा बनाए गए भवन का बहुत सही विरोध किया था कि, "उसने इस घर को चलने वाला नहीं बनाया, जिससे बुरे पड़ोसियों से बचा जा सके।" और यह अब भी कहा जा सकता है कि हमारे घर इतने दुर्धर होते हैं कि बहुधा हम उनमें रहने की बजाय उनमें कैद हो जाते हैं। जिस पड़ोसी से बचना है, वह है हमारी अपनी निकृष्ट आत्मा। इसी नगर में कम-से-कम एक-दो परिवारों को मैं जानता हूँ जो लगभग एक पीढ़ी से नगर के छोर पर का अपना मकान छोड़कर गाँव में बसना चाहते हैं, लेकिन अभी तक इसे सम्पन्न नहीं कर पाए हैं। केवल मृत्यु ही उन्हें मुक्ति दिलायगी।

अच्छा, मान लिया कि बहु संख्या अंततोगत्वा, सर्व-सुविधायुक्त आधुनिक घर खरीदने में या किराए पर पाने में सफल हो जाती है। सभ्यता जहाँ हमारे घरों में सुधार करती रही है, इसने राजमहलों का सर्जन किया है, किन्तु नवाबों और राजाओं की सृष्टि इतनी आसान न थी। **यदि सभ्यजन का व्यापार-व्यवसाय जंगली लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठतर नहीं है, यदि उसके जीवन का अधिकांश स्थूल आवश्यकताओं और आरामों के जुटाने में ही लग जाता है, तो फिर उसको जंगली लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठतर वास-स्थान ही क्यों मिलना चाहिए ?**

किन्तु अल्पसंख्यक निर्धन लोगों की क्या हालत है ? शायद यह पाया जाएगा कि जिस अनुपात में कुछ लोग जंगलियों की अपेक्षा अधिक समृद्ध बाह्य उपकरणों में स्थित हैं, ठीक उसी अनुपात में अन्य लोग उनसे नीचे के स्तर पर स्थित हैं। एक वर्ग की विलासिता का संतुलन दूसरे वर्ग की निर्धनता से होता है। एक ओर राजभवन हैं तो दूसरी ओर दरिद्रावास भी हैं, 'मूक कंगाल'

१. एक परिछिद्रान्वेशी ग्रीक देवता।
२. एक ग्रीक देवी।

भी हैं। जिन असंख्य लोगों ने मिस्र के शाहों के मकवरों के लिए पिरामिडों का निर्माण किया वे स्वयं प्याज-लहसुन खाकर जिन्दा रहते थे और हो सकता है कि खुद ठीक ढंग से दफ़नाए भी न गए हों। जो कारीगर राजमहल की कोरनिस में पच्चीकारी करता है वह शायद लौटकर ऐसी झोंपड़ी में विश्राम करता है जो किसी जंगली के झोंपड़े की बराबरी नहीं कर सकती। यह मान लेना गलत है, कि जिस देश में सभ्यता के सामान्य प्रमाण मौजूद हैं वहाँ के निवासियों की एक बड़ी संख्या की दशा जंगलियों की दशा के समान हीन नहीं होगी। मैं 'हीन' दरिद्रों की बात कह रहा हूँ, 'हीन' धनवानों की बात अभी नहीं कह रहा। यह जानने के लिए मुझे उन टपरियों से आगे जाने की आवश्यकता नहीं, जो रेलवे लाइन के दोनों किनारे तमाम जगह खड़ी हैं। यह रेलवे हमारी सभ्यता की पिछली देन है। टहलते समय मुझे इन गंदी झोंपड़ियों में मानव जीव रहते दिखाई देते हैं। ये लोग जाड़ों-भर रोशनी के लिए दरवाजा खोले रहते हैं; ईंधन का कोई अगोचर या गोचर ढेर उनके पास नहीं होता; पुरानी आदत के मुताविक ठंड और मुसीवत के कारण, क्या जवान और क्या बूढ़े सभी के शरीर स्थायी रूप से सिकुड़े रहते हैं, जिससे उनके अंगों और उनके मन का विकास रुक जाता है। निश्चय ही उस वर्ग की ओर ध्यान देना उचित है जिसकी मेहनत से वे सब काम हुए हैं, जिनसे यह पीढ़ी चमक उठी है। न्यूनाधिक मात्रा में, प्रत्येक प्रकार के कारीगरों की यही दशा इंग्लैण्ड में है,— जो दुनिया की महान् उद्योगशाला है। या, मैं आपको आयरलैण्ड का उदाहरण दे सकता हूँ, जो दुनिया के नक्शे का सबसे शुभ्र या प्रवुद्ध स्थल माना जाता है। आयरलैण्डवासियों की भौतिक दशा का मुकावला करिए नार्थ अमेरिका के रेड इंडियनों की दशा से या सभ्य मानव के सम्पर्क में आकर पतित होने से पूर्व साउथ सी द्वीप-समूहवासियों की दशा से। फिर भी मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि इन लोगों के शासक उतने ही बुद्धिमान होंगे जितने कि औसत सभ्य शासक। इनकी दशा से यही प्रमाणित होता है कि सभ्यता के साथ मलिनता भी वस सकती है। अव मुझे अपने दक्षिणी राज्यों के श्रमिकों का प्रसंग उठाने की आवश्यकता नहीं जो इस देश के प्रमुख निर्यात का उत्पादन करते हैं और जो स्वयं भी दक्षिण के प्रमुख उत्पादन हैं। लेकिन मैं अपने-आपको उन लोगों तक ही सीमित रखूँगा जिन्हें 'मामूली हालत' में रहते वताया जाता है।

प्रतीत होता है कि अधिकतर व्यक्तियों ने कभी इस पर विचार नहीं किया है कि घर क्या चीज है, और वास्तव में (तथा अनावश्यक ही) वे जीवन-भर निर्धन बने रहते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि उनके पास भी एक वैसा ही घर होना चाहिए जैसा कि उनके पड़ौसी के पास है। मानो लोगों को ठीक उसी काट का कोट पहनना हो जो दर्जी काट दे, अथवा, कोई धीरे-धीरे ताड़ के पत्ते की या खाल की टोपी छोड़कर इस बात की शिकायत करने लगे कि कैसा कठिन समय आ गया है कि वह एक ताज भी अपने लिए नहीं खरीद सकता। जो घर हमारे पास है उससे ज्यादा शानदार आरामदेह मकान का आविष्कार करना सम्भव है, जिसके बारे में सभी स्वीकार करेंगे कि कीमत को देखते हुए वह आदमी के बूते के बाहर की चीज है। क्या हम हमेशा इन चीजों को अधिकाधिक प्राप्त करना ही सीखते रहेंगे और कभी-कभी कुछ कम से ही संतुष्ट न होंगे? क्या सम्मानित नागरिक इस प्रकार गम्भीरतापूर्वक उपदेश और उदाहरण से नवयुवक को यही शिक्षा देते रहेंगे कि मरने से पहले, अतिरिक्त संख्या में चमचमाते जूते, छाते और फालतू अतिथियों के लिए फालतू कमरे जुटा लेना नितांत आवश्यक है? हमारा माल-असबाब अरब या रेड इंडियन लोगों के समान ही सादा क्यों न हो? जब मैं मानव जाति का उपकार करने वालों की बात सोचता हूँ, जिन्हें हमने पैगम्बर मान लिया है, देवदूत मान लिया है तो मुझे अपने दिमाग में उनके पीछे कोई दास-दासियों की सेना या छकड़ा-भर फैशनेबिल असबाब चलता नहीं दिखाई देता। और कैसा हो, यदि इस बात की अनुमति दी जाय (क्या यह अद्वितीय अनुमति न होगी?) कि हमारा सामान उसी अनुपात में अरब लोगों के सामान से अधिक पेचीदा हो जिस अनुपात में हम उनसे नैतिक या बौद्धिक रूप में श्रेष्ठतर हों? आजकल हमारे घरों में इस फर्नीचर का भीड़-भड़क्का होता है और कूड़ा-करकट भरा रहता है, और सद्‌गृहिणी सुबह उठते ही इसके अधिकांश भाग को झाड़कर कूड़ेखाने में फेंक देगी और प्रातःकाल का काम पड़ा नहीं रहने देगी। प्रातःकाल का काम! अरुणोदय काल में, उषा के संगीत के समय, इस संसार में आदमी का 'प्रातःकाल का काम' क्या हो? मेरी मेज़ पर पत्थर के तीन टुकड़े रखे रहते थे, लेकिन मैं यह देखकर भयभीत होता था कि अपने मस्तिष्क के असबाब की सफाई करने से भी पहले उनको रोज धूल झाड़कर साफ करना जरूरी है। और एक दिन मुझे इससे इतनी अरुचि-सी हुई कि मैंने

उन्हें खिड़की से बाहर फेंक दिया। फिर मैं भला फर्नीचर से सजा-सजाया घर कैसे रख सकता था? इससे तो खुली हवा में बैठना मुझे अधिक पसन्द था, जहाँ धूल नहीं जमती; जब तक कि वहाँ आदमी के पैर न पहुँच जायँ।

विलासी और छिछोरे लोग ही फैशन चलाते हैं, और पूरा रेवड़ बड़ी तत्परता से उनका अनुसरण करने लगता है। कोई यात्री, जो तथाकित आराम-गाहों में ठहरता है, इस बात को जल्दी ही जान लेता है, क्योंकि वहाँ के कर्मचारी उसको 'सार्डेनापेलस'[1] समझ बैठते हैं और कहीं वह अपने-आपको उनके घिघियाने पर छोड़ दे तो जल्दी ही निर्वीर्य हो जाय। मेरा खयाल है कि रेल के डिब्बों में हमारा झुकाव सुरक्षा और आराम के बजाय 'विलासिता' के उपादानों पर खर्च करने की ओर अधिक है। नतीजा यह है कि निरापद और आरामदेह बने बिना ही रेल का डिब्बा एक आधुनिक ड्राइंग-रूम हो गया है, जिसमें गद्देदार सीटें होती हैं और दूसरी सैकड़ों चीजें होती हैं जिन्हें हम पश्चिम में लाते जा रहे हैं, जिनका आविष्कार चीन के अंतःपुर की महिलाओं और वहाँ के स्त्रैण निवासियों के लिए हुआ था, जिनका नाम जानने में भी स्वयं जोनाथन (अमेरिकावासियों) को लज्जा आनी चाहिए। मैं तो मखमली गद्दे पर घिच-पिच में बैठने की बजाय पूरे एक कद्दू पर अकेला बैठना कहीं अधिक पसन्द करूँगा। यात्रा के लिए सजी हुई रेलगाड़ी के फैंसी डिब्बे में बैठकर मलेरिया-दूषित वायु में रास्ते-भर-साँस लेते हुए स्वर्ग की यात्रा करने की अपेक्षा मैं एक बैलगाड़ी पर सवार होकर, इस पृथ्वी पर खुली वायु में साँस लेते हुए यात्रा करना कहीं अधिक पसन्द करूँगा।

आदिम काल में मानव-जीवन की जो नग्नता और सादगी थी, उसमें कम-से-कम यह लाभ तो था ही कि इनके कारण उसको प्रकृति के अंचल में डेरा डालने की स्वतंत्रता थी। भोजन और नींद से तरोताजा होने के बाद वह पुनः अपनी यात्रा का विचार करता था। मानो वह इस संसार में एक तम्बू में रहता था और घाटियों में रास्ता बनाने के लिए या मैदान नाप डालने के लिए या पर्वतों की चोटियों पर चढ़ने के लिए आता था। और लीजिए, लोग अपने ही औजारों के औजार बन बैठे। जो आदमी भूख लगने पर अबाध रूप से फल तोड़कर खा लेता था, वह अब किसान बन गया है और जो शरीर-रक्षा के लिए पेड़ के नीचे खड़ा हो जाता था, वह अब मकानों की देख-भाल करने लगा है। हम अब रात-

---

१. असीरिया का एक अत्यन्त विलासी राजा।

भर के लिए बसेरा नहीं लेते, वल्कि जमीन पर बस गए हैं और स्वर्ग को भूल गए हैं। ईसाई धर्म को जो हमने अपनाया है वह 'कल्चर' (संस्कृति) के नहीं 'एग्री-कल्चर' (कृषि) के सुधरे हुए ढंग के रूप में। हमने इस दुनिया के लिए एक पारिवारिक कोठी वना ली है, उस दुनिया के लिए एक पारिवारिक मक-वरा। सर्वोत्तम कला-कृतियाँ इन परिस्थितियों से मुक्ति-प्राप्ति के लिए मानव के संघर्ष की अभिव्यक्ति होती हैं, लेकिन हमारी कला का प्रयोजन हो गया है केवल इस निम्न स्थिति को आरामदेह वना देना और श्रेष्ठतर स्थिति को भुला देना। यदि ललित कला की कोई कृति हमें पूर्वजों से मिली होती तो वास्तव में उसके लिए इस ग्राम में कोई स्थान न होता; क्योंकि हमारे जीवन में, घरों में, सड़कों पर उसे स्थापित करने के लिए एक भी समुचित पीठिका नहीं है। न तो चित्र टाँगने के लिए कोई खूँटी हैं, न किसी संत या सूरमा की मूर्ति स्थापित करने के लिए कोई आधार-स्तम्भ। जब मैं यह विचार करता हूँ कि हमारे मकान कैसे वनते हैं, उनका मूल्य हम कैसे चुकाते हैं, (या नहीं चुका पाते) उनकी भीतरी आर्थिक व्यवस्था का कैसे प्रवन्ध होता है और कैसे वह चालू रखी जाती है, तो मुझे इस वात पर आश्चर्य होता है कि जिस समय कोई अतिथि 'मेंटिलपीस' की सजावट के खिलौनों की प्रशंसा करता है उस समय फर्श की जमीन फट नहीं जाती, ताकि वह तहखाने में पहुँचकर ठोस, सचाई की, मिट्टी की नींव पर खड़ा हो सके। मुझे तो यही दिखाई देता है कि यह तथाकथित समृद्ध और परिष्कृत जीवन एक ऐसी-चीज है जिसके लिए छलाँग लगानी पड़ती है, और इसको सजाने वाली ललित कलाओं के आनन्द का उपभोग मैं नहीं कर पाता, क्योंकि मेरा सारा-का-सारा ध्यान इस छलाँग पर ही लग जाता है। इसका कारण यह है कि मुझे याद रहता है कि सचमुच की सवसे लम्वी शारीरिक छलाँग का रिकार्ड कुछ घुमक्कड़ अरववासियों का है, जिनके वारे में कहा जाता है कि वे समतल भूमि पर पच्चीस फीट तक कूद चुके हैं। यदि कोई कृत्रिम सहारा न हो तो इस दूरी के वाद आदमी अवश्य ही भूमि पर आ जायगा। इस जवरदस्त वेहूदगी के मालिक से जो पहला सवाल करने का मुझे लोभ होता है वह है, "आपको किस-किस चीज का सहारा है? आप उन सत्तानवे लोगों में से हैं जो असफल होते हैं या उन तीन में से जो सफल होते हैं?" आप मुझे इन प्रश्नों के उत्तर दे दीजिए तभी शायद मैं आपके खेल-खिलौनों की ओर देख सकूँगा और उनकी सजावट समझ सकूँगा। 'घोड़े के आगे गाड़ी' न तो सुन्दर होती है, न

उपादेय। सुन्दर वस्तुओं से घर सजाने के पहले दीवारें उघारनी होंगी, अपने जीवन को उघारना होगा और तब सुन्दर गृहस्थी और सुन्दर जीवन की नींव डालनी होगी। और सुन्दर चीज़ों के प्रति रुचि घर से बाहर सबसे अधिक विकसित होती है, जहाँ न गृह होता है, न गृह-स्वामी।

इस नगर में प्रथम बसने वाले अपने समसामयिक लोगों के सम्बन्ध में बताते हुए जौनसन अपने ग्रंथ '*Wonder-Working Providence*' में लिखता है, "वे अपना पहला घर किसी पहाड़ी के नीचे माँद में बनाते हैं और काफी ऊँचाई पर लकड़ियों पर मिट्टी थोपकर उसके नीचे सबसे ऊँची तरफ धुएँ वाली आग जलाते हैं।" वह आगे कहता है कि "जब तक कि, परमात्मा की अनुकम्पा से, पृथ्वी ने उनके भोजन के लिए रोटी प्रदान नहीं की तब तक उन लोगों ने रहने के लिए घर नहीं बनाए। और पहले साल की फसल इतनी हल्की थी कि उन्हें लम्बे अरसे तक बहुत पतली रोटी बनानी पड़ी थी।" न्यू नीदरलैण्ड प्रदेश के सेक्रेटरी ने सन् १६५० में, डच भाषा में उन लोगों की सूचनार्थ जो वहाँ भूमि लेना चाहते थे, खास तौर पर लिखा था, "न्यू नीदरलैण्ड और विशेषकर न्यू इंग्लैंड के निवासी, जिनके पास मनोनुकूल घर बनाने के साधन नहीं हैं, ज़मीन में तहखाने की भाँति, छै-सात फीट गहरा और जितना वे ठीक समझते हैं, उतना लम्बा-चौड़ा चौकोर गड्ढा खोदते हैं और चारों ओर की दीवार में लकड़ी के तख्ते जड़ देते हैं और मिट्टी गिरने से रोकने के लिए इन तख्तों पर पेड़ों की छाल या किसी और चीज़ का अस्तर लगा देते हैं, फर्श पर तख्ते बिछा देते हैं और ऊपर छत में भी लकड़ी के चौके जमा देते हैं जिन पर डंडे लगाकर ऊपर से छाल या घास-फूंस छा देते हैं ताकि दो, तीन या चार साल तक वे सर्दी और मेह से बचकर पूरे परिवारों के साथ रह सकें। परिवार के आकार के अनुसार इन तहखानों में अलग-अलग हिस्से कर दिये जाते हैं। न्यू इंग्लैण्ड के धनिक और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने बस्ती के प्रारंभ में इस प्रकार के मकान दो कारणों से बनवाए; प्रथम, भवन बनाने में समय बरबाद न हो जिससे अगली ऋतु में खाने-पीने की कमी पड़े और दूसरे जिन गरीब मजदूरों को वे पितृ-देश से अपने साथ लाए थे, वे हतोत्साहित न हों। तीन-चार साल बाद, जब देश कृषि के योग्य हो गया तो उन्होंने अपने खर्च से अपने लिए सुन्दर भवन बनवाए।"

हमारे पूर्वजों ने जो यह मार्ग अपनाया, उसमें कम-से-कम समझदारी का दिखावा तो था; मानो सबसे बड़ी आवश्यकताओं को सबसे पहले पूरा करना

उनका सिद्धान्त हो। किन्तु क्या अब इन अपेक्षाकृत वड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति हो चुकी है ? जब मैं इन शानदार भवनों में से एक का मालिक वन जाने की बात सोचता हूँ तो मैं ठिठक जाता हूँ, क्योंकि, यह कहना चाहिए, देश अभी तक 'मानवीय संस्कृति' (*Human culture*) के अनुकूल नहीं हो पाया है ('कृषि' *Agri-culture* के अनुकूल भले ही हो गया हो—अनु०) और हमारे पूर्वजों को गेहूँ की रोटी जितनी पतली बनानी पड़ती थी, उससे कहीं पतली हमें अपनी 'आध्यात्मिक रोटी' बनानी पड़ रही है। मैं यह नहीं कहता कि सबसे जंगली दशा में भी घर बनाने में सुन्दरता की उपेक्षा की जाय। लेकिन, घोंघे के घर की भाँति, पहले हमें अपने मकानों में, उन स्थानों पर जहाँ वे हमारे जीवन के सम्पर्क में आते हैं सुन्दरता विछानी चाहिए, केवल उन पर ऊपरी सुन्दरता नहीं थोपनी चाहिए। किन्तु हाय, मैं दो-एक भवनों के अन्दर गया हूँ और जानता हूँ कि उनमें क्या विछा रहता है।

यद्यपि, हम उस पतनावस्था को तो नहीं पहुँचे हैं कि सम्भवतः आज झोंपड़े में या गुफा में न रह सकें और खाल के वस्त्र न पहन सकें तो भी निश्चय ही मानव के उद्योग और आविष्कार ने हमें जो लाभ प्रदान किये हैं उन्हें स्वीकार करना अधिक अच्छा होगा, हालाँकि इनके लिए हमें बहुत कीमत देनी पड़ी है। इस इलाके में अच्छी गुफाओं, पूरे लट्ठों या पर्याप्त मात्रा में छाल, यहाँ तक कि अच्छी मिट्टी और चौरस पत्थर की अपेक्षा लकड़ी के तख्ते, चूना और ईंट अधिक सस्ते और सुलभ हैं। यह बात मैं समझ-बूझकर ही कह रहा हूँ, क्योंकि इस विषय में मैंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की जानकारी हासिल कर ली है। यदि हम थोड़ा और बुद्धि से काम लें, तो इस सामान का प्रयोग करके हम आज के सबसे धनी आदमी से भी अधिक धनी हो सकते हैं; और अपनी सभ्यता को एक वरदान सिद्ध कर सकते हैं। आखिर आज का सभ्य मानव अधिक अनुभव-पूर्ण, अधिक बुद्धिमान, जंगली ही तो है। लेकिन अब मैं अपने प्रयोग की बात करूँगा।

सन् १८४५ के मार्च के अन्त में मैंने एक कुल्हाड़ी उधार ली और 'वालडेन-सरोवर' के जंगल में उस स्थान के निकट चला गया जहाँ मैं अपना घर बनाना चाहता था, और मैंने इमारती लकड़ी के लिए चीड़ के नए लम्बे पेड़ काटना प्रारम्भ कर दिया। बिना उधार लिए काम प्रारम्भ करना कठिन है, किन्तु, साथ ही यह अपने साथियों को अपने काम में दिलचस्पी लेने की

अनुमति प्रदान करने का शायद सबसे उदार ढंग भी है। कुल्हाड़ी के मालिक ने उसका बैंटा मेरे हाथ में थमाते हुए बताया था कि वह उसकी आँखों का तारा है, लेकिन जब मैंने उसे वापिस लौटाया तो उसकी धार पहले से भी अधिक तेज़ थी। चीड़ के वन से ढकी पहाड़ी के ढाल पर, बड़े मनोरम स्थान पर मैं काम करता था। यहाँ से मुझे सरोवर की झलक दिखाई देती थी; एक छोटे-से खुले मैदान में चीड़ और 'हिकौरी' (अखरोट की जाति का एक अमरीकी वृक्ष—अनु०) के पौधे उग रहे थे। अभी सरोवर की बर्फ गली नहीं थी, हालाँकि कहीं-कहीं खाली जगह दिखाई देती थी; उसका रंग गहरा था और वह जल से परिपूर्ण था। जिन दिनों मैं वहाँ काम कर रहा था उन दिनों बर्फ के हल्के झोंके भी आये थे, किन्तु अधिकतर जब मैं घर जाते हुए रेल की पटरियों पर पहुँचता तो दूर तक इस रेल-मार्ग की पीली रेत धुन्ध में चमकती दिखाई देती थी, और मधुऋतु की धूप में पटरियाँ जगमगाती थीं, और मुझे लवा, टिटहरी और दूसरे पक्षियों का रव सुनाई देता था, जो इस समय तक हमारे साथ अगला वर्ष आरम्भ करने को आ चुके थे। वसंत ऋतु के बड़े ही सुहावने दिन थे, जब कि पृथ्वी के साथ-साथ मानव के असन्तोष का जाड़ा भी गल रहा था और जीवन, जो अब तक चेतनाशून्य पड़ा था, फिर से अँगड़ाई ले रहा था। एक दिन मेरी कुल्हाड़ी का बैंटा निकल गया तो मैंने हिकौरी की कच्ची लकड़ी की एक पच्चड़ उसमें पत्थर से ठोक दी। इस लकड़ी को फुलाने के लिए सरोवर के एक गड्ढे में डालकर जब मैं बैठा था तो मुझे एक धारीदार साँप पानी में घुसता दिखाई दिया—और जब तक मैं वहाँ रहा, (पाव घंटे से अधिक ही) वह स्पष्टत: बिना किसी कष्ट के तली में पड़ा रहा। यह शायद इसलिए कि वह अभी चेतनाशून्य अवस्था से बाहर नहीं आ पाया था। मुझे भान हुआ कि शायद ऐसे ही कारण से लोग वर्तमान निम्न और आदिम दशा में पड़े हुए हैं; किन्तु यदि वे, जगाने वाली मधु-ऋतुओं के उल्लास का अनुभव कर सकें तो अवश्य ही अधिक उच्च और अधिक दिव्य जीवन के प्रति जागृत हो जायँगे। इससे पूर्व, तुषार के दिनों में, प्रातःकाल मार्ग में पड़े ठंड से जकड़े हुए साँप मुझे दिखाई दिये थे, जो सूर्योत्ताप की प्रतीक्षा कर रहे थे। पहली अप्रैल को मेह बरसा; बर्फ पिघली; कुहासे से भरे दिन के प्रारम्भ में, सरोवर के किनारे टटोलता-सा, भटककर पुकारता हुआ एक हंस दिखाई दिया, मानो वह कुहरे की आत्मा हो।

इस प्रकार कई दिनों तक मैं लकड़ी काटता और चीरता रहा, अपनी छोटी-सी कुल्हाड़ी से कड़ियाँ और शहतीर बनाता रहा। इन दिनों अधिक कथनीय अथवा पांडित्यपूर्ण विचार मेरे मन में नहीं रहते थे, और मैं मन में गुन-गुनाता रहता था :

देखो तो, मानव है अपनी ही तानता
ज्ञान का अभिमान,
कलाएँ विज्ञान,
औ' हजारों उपादान—
लेकिन सब उड़ानें हैं—
हवा जो बहती है,
उसके अतिरिक्त कोई
कुछ भी नहीं जानता।

खास-खास जगह पर लगाने के लिए मैंने छै इंची वर्ग बना लिए और उनके खूंटों को केवल दो तरफ से छील लिया, धरनों और फर्श में लगने वाली लकड़ी को केवल एक ओर छाँटकर दूसरी ओर छाल लगी रहने दी; इससे वे सीधे रहे और आरी से चिरी लकड़ी से कहीं अधिक मजबूत रहे। तब तक मैंने और औजार भी उधार माँग लिए थे और इनसे हरेक डंडे की चूल सावधानी से बैठा दी। वन में मेरा दिन बहुत लम्बा नहीं होता था फिर भी बहुधा मैं अपना मक्खन और रोटी एक अखबार में लपेटकर अपने साथ ले जाता था और दोपहर को मैं इस अखबार को पढ़ता था। उस समय मैं अपनी ही काटी हुई चीड़ की हरी डालियों के बीच बैठता था। मेरी रोटी में इनकी खुशबू आ जाती थी, क्योंकि मेरे हाथों में इनकी राल की एक मोटी तह ज़म जाती थी। हालाँकि मैंने चीड़ के कुछ पेड़ काट डाले थे, तो भी काम पूरा होने के समय तक खूब परिचित हो जाने के कारण मैं इन पेड़ों का दुश्मन से अधिक दोस्त बन चुका था। कभी-कभी कोई वन में घूमने वाला मेरी कुल्हाड़ी की आवाज से खिंचकर उधर आ निकलता था और हम लोग बड़े आनन्द से छिपटियों के ढेर पर बैठकर बातचीत करते थे।

मैंने काम में जल्दी नही की, बल्कि उसका पूरा आनन्द लिया; इसलिए अप्रैल के मध्य तक मेरे घर का पूरा चौखटा तैयार हो सका और अब वह खड़ा होने के लिए तैयार था। मैंने फिचबर्ग रेल-मार्ग पर काम करने वाले एक

आयरिश मज़दूर जेम्स कौलिस की कुटी पहले ही तख्तों के लिए खरीद ली थी। उसकी कुटी असाधारण रूप से बढ़िया मानी जाती थी। जिस समय मैं इस कुटी को देखने के लिए गया था, जेम्स कौलिस घर पर नहीं था। मैंने पहले उसे बाहर चारों ओर से देखा—खिड़की इतनी ऊँची और गहरी थी कि भीतर से मुझे कोई देख नहीं पाया। इसकी लम्बाई-चौड़ाई बहुत थोड़ी थी, इसकी छत नुकीली थी। इसमें बाहर से देखने को और कुछ नहीं था, चारों ओर पाँच फीट की ऊँचाई तक मिट्टी लगी हुई थी मानो वह खाद बनाने का गड्ढा हो। इसका सबसे अच्छा हिस्सा छत का था हालाँकि वह भी काफी अंशों में सूखकर टेढ़ा और ख़स्ता हो गया था। देहरी उसमें थी ही नहीं, किवाड़ों के नीचे से मुर्गियों का अबाध मार्ग था। श्रीमती कौलिस ने द्वार पर आकर अन्दर से कुटिया देखने के लिए कहा। मेरे पहुँचने से मुर्गियाँ अंदर भाग गईं। अन्दर अंधेरा था, फर्श का अधिकतर भाग कच्चा, मिट्टी का था, सीलन से भरा, चिपचिपा, जड़ैया पैदा करने वाला। कहीं-कहीं तख्ते लगे थे, जो हटाने में ही टूट जाते। उन्होंने बत्ती जलाई—भीतर की छत और दीवार दिखाई, बताया कि तख्ते का फर्श बिछौने के नीचे तक जाता है, साथ ही आगाह किया कि कहीं मैं तहखाने में न गिर जाऊँ, जो दो फीट गहरा मिट्टी का गड्ढा-सा था। उन्हींके शब्दों में, "ऊपर के तख्ते बढ़िया हैं, चारों ओर के तख्ते अच्छे हैं, और एक अच्छी खिड़की भी है।" जिसे उन्होंने खिड़की बताया था, वह दो चौकोर छेद निकले, जिनमें से हाल ही एक बिल्ली बाहर निकल गई थी। घर में एक चूल्हा था, एक बिस्तर, एक बैठने का स्थान, एक शिशु जिसने वहीं जन्म लिया था, एक रेशमी छतरी, एक सुनहले चौखटे वाला दर्पण और एक कॉफी पीसने की चक्की; जो बलूत के एक पौधे में जड़ी हुई थी—कुल मिलाकर यही सामान था। सौदा जल्दी ही पट गया; क्योंकि इसी बीच में जेम्स वापिस लौट आया था। तय हुआ कि मैं आज रात को चार डालर पच्चीस सेंट दूँगा, अगले दिन सुबह पाँच बजे वह मकान खाली कर देगा और इस बीच किसी और को नहीं बेचेगा—छै बजे मैं उस पर कब्जा कर लूँगा। उसने बताया कि सुबह जल्दी ही पहुँच जाना अच्छा होगा, शायद थोड़ा बहुत जमीन का किराया और ईंधन का दाम भी लगेगा जो उसके हिसाब से एकदम गैरवाजिब था। उसने विश्वास दिलाया कि उसके ऊपर इतना ही कर्ज है। सुबह छै बजे वह अपने परिवार के साथ मुझे रास्ते में मिला। एक बड़े पुलन्दे में उसका सब सामान

आ गया था, विस्तर, कॉफी की चक्की, दर्पण, मुर्गियाँ, सब-कुछ, केवल बिल्ली को छोड़कर। वह जंगल में भाग गई और जंगली बिल्ली बन गई। बाद में मुझे पता चला कि वह 'वुडचक'[1] के लिए लगाए गए एक पिंजरे में फँसकर अन्त में मर गई।

उसी दिन प्रातःकाल मैंने कीलें निकालकर उस घर को उतार लिया और थोड़ा-थोड़ा करके गाड़ी से ढोकर सरोवर के किनारे ले गया। वहाँ तख्तों को साफ करने और सीधा करने के लिए धूप में धोकर घास पर फैला दिया। वन-मार्ग पर जब मैं गाड़ी हाँक रहा था तो एक जल्दी आने वाली सारिका ने एक-दो तानें सुनाईं। एक स्कौच नवयुवक ने विश्वास-घात करके, मुझे बताया कि पड़ोस के 'सीले' नामक आयरिश ने गाड़ी के इन चक्करों के बीच से अपने काम में आने लायक सीधी कीलें और हुक निकालकर अपनी जेब के हवाले कर ली थीं और जब मैं दिन बिताने के लिए, तरोताज़ा होने के लिए, मधु ऋतु के विचारों में मग्न वहाँ आया तो उसे उदासीन भाव से वहाँ खड़ा पाया। उसने बताया कि कोई काम न होने के कारण वह वहाँ खड़ा था। दर्शकों की कमी को वह पूरा कर रहा था। इस प्रकार इस तुच्छ-सी प्रतीत होने वाली घटना को उसने ट्राय के देवताओं के स्थानांतरण के समान महत्त्वपूर्ण बना दिया था।

मैंने अपना तहखाना एक पहाड़ी के दक्षिणी ढाल पर खोदा जहाँ किसी 'वुडचक' ने पहले अपनी मांद बनाई थी। शूमक और ब्लैकबेरी की जड़ों में होकर छै फीट लम्बा, छै फीट चौड़ा, सात फीट गहरा गड्ढा, बढ़िया रेत की सतह तक खोद डाला ताकि कड़ी-से-कड़ी सर्दी में भी आलू न ठिठुरें। बाजुओं को ढाल देकर ऐसे ही छोड़ दिया, पत्थर नहीं जमाए : सूर्य का प्रकाश वहाँ तक कभी न पहुँचने के कारण रेत अभी तक अपनी जगह पर जमी हुई है वह कुल दो घण्टे का काम था। इस खुदाई में मुझे विशेष आनन्द आया, क्योंकि लगभग सभी अक्षांशों में रहने वाले लोग सम-ताप रखने के लिए ज़मीन में तहखाने खोदते हैं। नगर के सबसे शानदार भवनों के नीचे अब भी तहखाने मिलते हैं जहाँ प्राचीन काल की ही भाँति आज भी कंद-मूल रखे जाते हैं, और ऊपर के भवन के ध्वस्त हो जाने के बहुत दिन बाद भी आगामी पीढ़ियों को तहखाने की यह जगह दिखाई

१. अमरीका में पाया जाने वाला एक जानवर।

देती है। अब भी मांद में घुसने के लिए ऊपर का भवन एक ड्योढ़ी का ही काम देता है।

अंत में, मई के आरम्भ में, कुछ साथियों की सहायता से मैंने अपने घर का चौखटा खड़ा किया। यह सहायता लेने में आवश्यकता-पूर्ति का भाव इतना नहीं था, जितना यह विचार कि पड़ोसियों से सम्बन्ध स्थापित करने का अच्छा मौक़ा मिल जायगा। उठाने वालों की हैसियत से भी व्यक्ति को इतना गौरव प्राप्त नहीं हुआ होगा जितना कि मुझे। मुझे विश्वास है कि किसी दिन वे अधिक ऊँचे भवन खड़े करने में सहायता देंगे। घर में तख़्ते जड़ने और छत छाने के बाद मैंने चार जुलाई को गृह-प्रवेश कर लिया, क्योंकि इन तख़्तों को अच्छी तरह जमाया गया था ताकि बरसात का असर न हो। लेकिन रहने के पहले, मैंने एक किनारे चिमनी की नींव भी डाल दी थी; इसके लिए दो गाड़ी पत्थर सरोवर से अपने हाथों ढो लाया था। यह चिमनी मैंने खेत में गुड़ाई करने के बाद गरमी लाने के लिए अग्नि की आवश्यकता होने के पूर्व पतझड़ में बनाई। इस बीच, मैं सुबह तड़के ही अपना भोजन बाहर ज़मीन पर बना लेता था। अब भी मेरा विचार है कि यह तरीक़ा कुछ अर्थों में सामान्य तरीके से अधिक सुविधाजनक और आनन्दप्रद है। मेरे रोटी पकने के पहले यदि तूफ़ान आ जाता था, तो मैं आग के ऊपर कुछ तख़्ते जमाकर उनके नीचे बैठकर रोटी को देखता था और इस प्रकार कुछ सुहावना समय बिताता था। इन दिनों, जब मेरे हाथ काफी व्यस्त रहते थे, मैं बहुत ही कम पढ़ता था; लेकिन मेरे मेज़पोश या ज़मीन पर पड़े छोटे-से-छोटे रद्दी कागज़ के टुकड़े से मेरा वही मनोरंजन होता था, और वास्तव में उनसे वही प्रयोजन सिद्ध होता था, जो 'ईलियड'[1] से।

जितने विचारपूर्वक मैंने अपना घर बनाया, उससे भी अधिक विचारपूर्वक घर बनाना अधिक उपयुक्त होगा, उदाहरणार्थ, इसका विवेचन करना चाहिए कि खिड़की, तहखाने, अटारी आदि का मानव की प्रकृति में क्या स्थान है। और कदाचित् किसी भी इमारत को तब तक ऊपर नहीं ले जाना चाहिए जब तक कि उसके लिए हमारी ऐहिक आवश्यकताओं से भी बड़ा कोई कारण न हो। पक्षी स्वयं अपने नीड़ का निर्माण करता है; इसमें जो औचित्य है, वही, कुछ अंशों में, मानव का अपना घर अपने-आप बनाने में भी है। यदि लोग अपना भवन

१. महाकवि होमर का एक महाकाव्य।

अपने हाथों बनाने लग, अपने और अपने परिवार के लिए सादा और पर्याप्त ईमानदारी से, अपने हाथों भोजन पैदा करने लगें, तो कदाचित् सृष्टि-भर में काव्य-प्रतिभा विकसित हो जाय, ठीक जैसे यह काम करने वाले पक्षी गाते हैं। लेकिन हाय, हम तो 'काउबर्ड'[1] की भाँति व्यवहार करते हैं जो दूसरे पक्षियों के बनाये घोंसलों में अंडा देती है, और जिसकी कर्णकटु चहचहाहट किसी भी यात्री को आनन्द नहीं देती। क्या हम सदा के लिए निर्माण के आनन्द का परित्याग करके उसे बढ़ई को प्रदान कर दें? जन-समुदाय के अनुभव में वास्तु-कला का क्या स्थान है? अपने भ्रमण में मेरा कभी भी ऐसे व्यक्ति से साक्षात्कार नहीं हुआ जो स्वयं अपना घर बनाने-जैसे सरल स्वाभाविक काम में लगा हो। हम सभी समाज के हैं। आदमी का नौवाँ भाग केवल दर्ज़ी ही नहीं है, उतना ही हिस्सा धर्मोपदेशक, व्यापारी, कृषक का भी है। इस श्रम-विभाजन का अन्त कहाँ होता है? और अंततोगत्वा इससे कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है? निस्सन्देह, दूसरा व्यक्ति भी मेरे बारे में विचार करे, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह मेरे बारे में उस हद तक विचार करे कि मैं स्वयं अपने बारे में कोई फैसला न कर सकूँ।

यह सच है कि इस देश में 'वास्तुकलाविद्' कहे जाने वाले लोग हैं और कम-से-कम एक के बारे में मैंने सुना है कि उनका विचार इमारती सजावट में सत्य, आवश्यकता, (और इसलिए सुन्दरता) का गूदा भर देने का है, मानो उन्हें इस बात का इलहाम हुआ हो। शायद उनके दृष्टिकोण से यह सब ठीक हो, लेकिन वास्तव में यह सामान्य नौसिखियेपन से कुछ ही अधिक है। वास्तु-कला के भावना-प्रधान सुधारक होने के कारण, उन्होंने सुधार कोर्निस से प्रारम्भ किया, नींव से नहीं। यह तो केवल **सजावट** में सत्य का गूदा भरने का प्रयत्न हुआ, ठीक जैसे यह प्रयत्न करना कि प्रत्येक बतासे में बादाम की गिरी भर जाय (यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि इस मिठास के बिना ही बादाम अधिक स्वास्थ्यप्रद होता है); उन्हें इससे मतलब नहीं कि उसमें रहने वाले, सजावट को एक ओर छोड़कर, वास्तव में अपने भीतर और बाहर कैसी इमारत खड़ी करें। कौन बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा होगा जो यह सोचे कि आभूषण केवल बाहरी खेल होता है, केवल त्वचा की सजावट की चीज़ है? कौन यह सोचेगा कि कछुए ने अपनी पीठ पर छापे या घोंघे ने इंद्र-धनुषी रंग ठेके पर लगवाए होंगे, जैसे

---

1. एक प्रकार की बटेर।

ब्राडवे के निवासियों ने अपना गिरजाघर बनवाया ? किन्तु कछुए का अपनी पीठ की 'शैली' से जितना सम्बन्ध है, केवल उतना ही सम्बन्ध आदमी का अपने घर की वास्तु-कला की शैली से है, उससे अधिक नहीं। और सिपाही को इतना अक्रिय होने की आवश्यकता नहीं है कि अपने गुण का सही 'रंग' अपने झंडे पर लगाता फिरे। दुश्मन पता लगा लेगा। परीक्षा का समय आने पर उसके चेहरे का रंग उड़ जाएगा। मुझे प्रतीत होता है कि यह सज्जन कोर्निस पर झुके हुए अपने इस अर्द्ध-सत्य को फुसफुसाकर घरों में रहने वालों को बता रहे हैं, जिसे वास्तव में वे उनसे भी अच्छी तरह जानते हैं। वास्तु-कला का जो कुछ सौन्दर्य मुझे आज दिखाई दे रहा है, मैं जानता हूँ कि वह सब धीरे-धीरे भीतर से बाहर आया है, रहने वाले के चरित्र, उसकी आवश्यकताओं से निकला है, (वही एक-मात्र निर्माणकर्त्ता है), किसी अचेतन सत्य और श्रेष्ठत्व से निकला है। क्षण-भर की भी इसमें बाहरी दिखावट का विचार नहीं आया होगा; और जो कुछ भी इस प्रकार की सुन्दरता आगे आनी है, उस सबके पीछे इसी प्रकार जीवन का अचेतन सौन्दर्य रहेगा। जैसा कि चित्रकार जानता है, इस देश के सबसे मनोरम वास-स्थान हैं सामान्यत: गरीब लोगों के सादा ढंग के, दीन-हीन, लकड़ी के झोंपड़े। जो चीज़ उन्हें इतनी चित्रमयता प्रदान करती है वह इनकी सतही कारीगरी नहीं है, बल्कि उनके निवासियों का जीवन है जिसके ये बाहरी खोल होते हैं। जिस दिन नगरवासी का जीवन भी समान रूप से सादा और कल्पना के अनुकूल हो जायगा, जिस दिन घर की शैली में प्रभावोत्पादन के लिए उसका उद्योग कम हो जायगा उस दिन उसका उपनगर का 'संदूक' भी उतना ही मनोरम हो जायगा। वास्तु-कला की अधिकांश सजावट वस्तुत: खोखली होती है, उधार लिए हुए पंखों की तरह वह सितम्बर की हवा के एक झोंके में साफ उड़ जायगी; हाँ, ठोस चीज़ को कोई हानि न पहुँचेगी। जिन लोगों के तहखानों में न तो शराब है और न जैतून, उनका काम तो 'वास्तु-कला' के बिना ही चल जाता है। यदि साहित्य की शैली के अलंकारों के बारे में भी इतना ही निरर्थक उपद्रव हो तो क्या हो ? यदि हमारी बाइबिल के शिल्पियों ने इसकी कोर्निसों पर उतना ही समय लगा दिया होता जितना कि हमारे गिरजाघरों के शिल्पी लगाते है, तो कैसा होता ? यही हाल तथाकथित **शुद्ध साहित्यिक कृतियों, कला प्रेमियों** और पंडितों का है। सचमुच, आदमी इसके बारे में बहुत चिंतित रहता है कि उसके सिर के ऊपर और पैरों

के नीचे की कुछ लकड़ियाँ किस ढंग से रखीं हैं और उसके, संदूक पर कैसे रंग पुते हुए हैं। यदि किन्हीं अर्थों में सचमुच वह स्वयं इन लड़कियों को जमाए और स्वयं इस संदूक पर रंग करे, तो वास्तु-कला का कुछ महत्त्व हो। लेकिन यदि इसमें रहने वाले की आत्मा नहीं है तो यह अपना तावूत वनाने के समान ही है अर्थात क़ब्र की वास्तु-कला है, और 'बढ़ई' केवल 'तावूत वनाने वाले' का दूसरा नाम है। एक आदमी, जीवन के प्रति निराशा अथवा उदासीनता के कारण, कहता है कि अपने पदतल की एक मुट्ठी धूल उठाओ और अपने घर को इस रंग से रंग लो। क्या यह कहते समय वह अपने अन्तिम और संकरे घर की वात सोच रहा है? यह तो एक सिक्का उछालकर भी समान रूप से तै किया जा सकता है। कितना फालतू वक्त होगा इस आदमी के पास! और आप एक मुट्ठी धूल क्यों लें? इससे तो अच्छा है कि घर के ऊपर आप अपना रंग चढ़ा दें, आपके चेहरे का रंग वदलने की जगह इसका रंग वदला करे, यह आरक्त हो, इसका रंग फ़क हो। झोंपड़े की वास्तु-कला की शैली में सुधार करने का उद्योग! जब आप मेरे अलंकार तैयार कर देंगे तब मैं उन्हें धारण कर लूँगा।

जाड़ा आने के पहले ही मैंने अपनी चिमनी तैयार कर ली। मैंने अपनी दीवालों को, जिनमें मेह का पानी पहले से ही नहीं घुस सकता था, तख्तों से और जड़ दिया। ये तख्ते लट्ठों के ऊपरी पर्त के बने थे इसलिए इनके किनारों को समतल करने के लिए मुझे रंदा फेरना पड़ा।

इस प्रकार मेरे पास एक कसा-कसाया, तख्ते जड़ा, पलस्तर किया हुआ, पंद्रह फीट लम्वा, पंद्रह फीट चौड़ा और आठ फीट ऊँचा घर है जिसमें एक अटारी है, एक कोठरी है, हरेक तरफ एक-एक खिड़की है, दो आड़े दरवाजे हैं, (एक तहखाने का और दूसरा अटारी का), एक द्वार है और उसकी सीध में ईंटों की एक अँगीठी है। मैं अपने घर की सही लागत, जिसमें काम में आने वाले सारे सामान की क़ीमत लगाई गई है, केवल मेहनत-मज़दूरी की कीमत शामिल नहीं है, (क्योंकि यह सारा मैंने खुद किया था) नीचे दे रहा हूँ, और मैं यह सब विवरण इसलिए दे रहा हूँ कि वहुत कम लोग अपने मकान की सही क़ीमत वता सकते हैं और इससे भी कम संख्या उन लोगों की होती है (यदि कोई हों तो) जो उस सव सामान की अलग-अलग क़ीमत वता सकें, जिसका प्रयोग मकान वनाने में हुआ हो:—

	डालर	पैंस
तख्ते—	८	३$\frac{1}{2}$ (अधिकतर झोंपड़ी के तख्ते)
छत और दीवालों के लिए छोटे तख्ते—	४	०
बाँस की टट्टियाँ—	१	२५
दो पुरानी काँचदार खिड़कियाँ—	२	४३
एक हजार पुरानी ईंटें—	४	०
दो पीपे चूना—	२	४० (यह तेज़ मिला था)
बाल—	०	३१ (ज़रूरत से ज्यादा)
चूल्हे की छड़ें—	०	१५
कीलें—	३	९०
पेंच और कब्जे—	०	१४
सिटकनी—	०	१० (अधिकतर सामान मैं
खड़िया—	७	१ अपनी पीठ पर ढोकर
ढुवाई—	१	४० लाया।)
कुल—	२८	१२$\frac{1}{2}$

इतना ही सामान लगा। लकड़ी, पत्थर और रेत इसके अतिरिक्त हैं, जिन्हें मैंने इस जनभूमि के 'अनधिवासी' के रूप में वसने के अधिकार से प्राप्त किया। बगल ही में एक छोटा-सा छप्पर भी है, जो मुख्यतया बचे हुए सामान से ही वन गया।

मेरा इरादा है कि अपने लिए एक घर वनवाऊँ, जो कौंकर्ड की बड़ी सड़क पर खड़े किसी भी भवन से अधिक भव्य हो, लेकिन शर्त यह है कि वह मेरे वर्त्तमान घर के सामान आनन्ददायक हो और उसमें इससे अधिक लागत भी न लगे।

इस प्रकार मैंने देख लिया कि जो विद्यार्थी वास-स्थान चाहता है, उसे जीवन-भर के लिए मकान उतने ही धन से प्राप्त हो सकता है, जितना कि वह अभी सालाना किराये के रूप में दे देता है। यदि यह प्रतीत हो कि मैं ज़रूरत से ज्यादा डींग हाँक रहा हूँ, तो मेरा बचाव यह है कि मैं अपने वजाय मानवता के लिए डींग हाँक रहा हूँ, और मेरी कमज़ोरियों और असंगतियों का मेरे कथन की सचाई पर कोई असर नहीं पड़ता। बहुत-सी बक-वक और पाखण्ड (वह भूसा जिसे अपने गेहूँ से अलग करने में मुझे भी कठिनाई होती है, जिसके लिए मुझे उतना ही दु:ख है जितना कि किसी और को) के वावजूद भी, मैं स्वतन्त्रता

की सांस लूंगा और पैर फैलाकर लेटूंगा, इतना सुख मेरे नैतिक और शारीरिक संस्थानों को मिला है। और यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि दीनता दिखाते हुए मैं शैतान का पैरोकार नहीं बनूंगा—केवल कमजोरियों की बात ही नहीं कहूँगा। मैं तो सत्य का प्रतिपादन करने की चेष्टा करूँगा। कैम्ब्रिज कालेज में, मेरे कमरे से थोड़े ही बड़े कमरे का किराया तीस डालर सालाना होता है, जब कि एक के बराबर एक बत्तीस कमरों को एक ही छत से पाट देने की सुविधा का लाभ कार्पोरेशन ने उठाया है; और उनमें रहने वालों को शोर-गुल मचाने वाले अनेक पड़ोसियों और शायद चौथे तल्ले पर रहने की असुविधा भी भुगतनी पड़ती है। इससे मैं यही सोचता हूँ कि यदि हम लोगों में, इस सम्बन्ध में अधिक बुद्धि होती, तो न केवल अपेक्षाकृत कम शिक्षा की आवश्यकता होती (क्योंकि निःसन्देह बहुत-सी तो पहले से ही प्राप्त हो जातीं) बल्कि शिक्षा-प्राप्ति का बहुत-सा खर्च भी कम हो जाता। कैम्ब्रिज में अथवा अन्यत्र, विद्यार्थियों को जिन सुविधाओं की आवश्यकता होती है उनके लिए उनको या किसी और को, ठीक प्रबन्ध करने पर जितने में काम चल जाए उससे कम-से-कम दस गुना अधिक जीवन खपाना पड़ता है। जिन चीज़ों के लिए धन की सबसे अधिक मांग होती है वे विद्यार्थी की सबसे आवश्यक चीज़ें कदापि नहीं होतीं। उदाहरण के लिए पढ़ाई के बिल में सबसे महत्त्वपूर्ण कलम शिक्षा-शुल्क की होती है, जबकि अपने समय के सबसे अधिक विकास-सम्पन्न लोगों के सम्पर्क में आने से उसे जो सर्वाधिक मूल्यवान शिक्षा मिलती है उसके लिए उसे कुछ भी देना नहीं पड़ता। सामान्यतः कालेज की नींव डालने का तरीका यह है कि पहले डालरों और सैंटों में चन्दा जमा किया जाता है और फिर श्रम-विभाजन के सिद्धान्तों का अत्यन्त अन्धानुगमन करके (एक ऐसा सिद्धान्त, जिसका अनुगमन केवल एक सीमा तक ही करना चाहिए) एक ठेकेदार को बुलवा लिया जाता है, जो उसे सट्टे का विषय बना देता है और वास्तव में नींव डालने के लिए आयरिश या दूसरे मज़दूर लगा देता है, जबकि भावी विद्यार्थीगण इसके लिए अपनी तैयारी करते बताए जाते हैं। आने वाली पीढ़ियों को इन गलतियों की कीमत चुकानी पड़ती है। मेरे विचार से विद्यार्थियों के लिए अथवा दूसरे लोगों के लिए जो इससे लाभ उठाना चाहते हैं, इससे कहीं अच्छा हो यदि वे स्वयं अपने हाथों विद्यालय की नींव भी भरें। जो विद्यार्थी क्रमानुसार श्रम से (जो आदमी के लिए आवश्यक है) जी चुराकर वांछित अवकाश प्राप्त करता है वह एक निकृष्ट

का, फालतू अवकाश प्राप्त करता है और अपने को इस अनुभव से वंचित रखता है, जो इस अवकाश को सफल बना सकता है। कोई कहता है, "लेकिन क्या आप यह चाहते हैं कि विद्यार्थी दिमाग़ी काम करने की बजाय हाथों से काम करें ?" मैं ठीक यही बात नहीं कहता—लेकिन मेरा तात्पर्य कुछ ऐसा है जिसे वह बहुत कुछ इसीके समान समझ सकता है। मेरा मतलब है कि वे ज़िन्दगी को खेल न बना डालें या केवल उसका अध्ययन ही न करें, जबकि सारा समाज इस कीमती खेल के दौरान उनका भरण-पोषण करता रहे। मेरा मतलब है कि वे आदि से अन्त तक इसी ईमानदारी से जियें। नवयुवकों के लिए जीने का ढंग सीखने का इससे अच्छा और कौन-सा तरीका हो सकता है कि वे साथ-ही-साथ जीने का प्रयोग भी करें ? मैं समझता हूँ कि इससे उनके दिमाग को वही अभ्यास मिलेगा जो गणित से मिलता है। उदाहरणार्थ, यदि मैं किसी बालक को कला और विज्ञान की कुछ शिक्षा दिलाना चाहता हूँ तो मैं उसे किसी निकट प्रोफेसर के पास भेजने के प्रचलित ढंग का अनुसरण नहीं करूँगा, जहाँ जीवन की कला के अलावा और सभी विषयों की शिक्षा दी जाती है और उनका अभ्यास कराया जाता है। इसी तरह की शिक्षा में दुनिया को खुर्दबीन या दूरबीन से देखने की शिक्षा मिलती है, अपनी आँखों से देखने की नहीं; रसायन-शास्त्र और अन्य-शास्त्र की शिक्षा मिलती है, लेकिन यह नहीं सिखाया जाता कि उसकी रोटी कैसे बनती है, कैसे कमाई जाती है, वरुण के नये उपग्रहों का आविष्कार करने की शिक्षा मिलती है, अपनी आँख की फुल्ली देखने की या इसका पता लगाने की शिक्षा नहीं मिलती कि वह स्वयं किस 'ग्रह' का अनुचर है, सिरके की एक बूंद में दैत्यों का पता लगाने की विधि बताई जाती है जबकि चारों ओर घिरे हुए दैत्य उसे खाए जा रहे हैं। दो लड़के हैं, एक महीने के अन्त में कौन-सा अधिक उन्नति करेगा—वह लड़का जिसने आवश्यकतानुसार पढ़कर स्वयं कच्ची धातु खोदकर अपना चाकू बनाया, अथवा वह जिसने विद्यालय में 'धातु-शोधन-विज्ञान' के लैक्चर सुने और अपने पिता से रोजर्स का बना हुआ चाकू प्राप्त किया ? इन दोनों में से अपनी उँगली काट लेने की सम्भावना किसकी अधिक है ?······कालेज छोड़ने पर मुझे यह बताया गया कि मुझे 'नौविद्या' की शिक्षा मिली है, तो सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। यदि मैं एक बार बन्दरगाह का चक्कर लगा लेता तो इस सम्बन्ध में कहीं अधिक ज्ञान मैंने प्राप्त कर लिया होता। **निर्धन** विद्यार्थी तक केवल **'राजकीय अर्थनीति'** की शिक्षा

प्राप्त करता है जबकि 'जीवन की अर्थनीति', (जो दर्शन शास्त्र का पर्यायवाची है) का ईमानदारी से हमारे कालेजों में प्रतिपादन भी नहीं किया जाता। नतीजा यह होता है कि रिकार्डो, ऐडमस्मिथ, से आदि का अध्ययन करते समय वह अपने पिता को अगाध ऋण में डुबो देता है जिससे उद्धार पाना असम्भव हो जाता है।

जो भ्रम कालेजों के बारे में है, वही सैकड़ों 'आधुनिक सुधारों' के बारे में भी है; उनमें सदा निश्चित प्रगति नहीं होती। शैतान ने आरम्भ में जीवन-व्यापार में जो हिस्सा ले लिया था और तदुपरांत अनेक बार उसने इसमें जो पूंजी लगाई है, उसका चक्रवृद्धि व्याज वह वसूल करता जाता है। हमारे आविष्कारों की प्रवृत्ति खिलौनों की-सी होती है, जो गम्भीर चीज़ों से हमारा ध्यान बँटा देते हैं। वे केवल 'अनुन्नत लक्ष्य' के 'उन्नत साधन' हैं, ऐसे लक्ष्य के, जिस पर पहुँचना पूर्वकाल में उतना ही आसान था जितना कि आज रेल-गाड़ी से वोस्टन या न्यूयार्क जाना। हमें इस बात की बड़ी उतावली है कि मेन से टैक्सास तक तार की लाइन पहुँच जाय, किन्तु यह भी तो हो सकता है कि मेन और टैक्सास के पास एक-दूसरे को भेजने योग्य कोई महत्त्वपूर्ण ख़बर न हो। एक आदमी एक सुप्रसिद्ध वधिर महिला से परिचय प्राप्त करने को वड़ा आतुर था, किन्तु जब उसे उक्त महिला के सामने लाया गया और उसके कान में लगे हुए यन्त्र का चोंगा उसके हाथ में दे दिया गया तो उसके पास कुछ भी कहने को नहीं था! यही दुर्गति इन दोनों (मेन और टैक्सास) की है। मानो तेज़ी से वात करना ही हमारा ध्येय हो, विवेक से वात करना नहीं। हम एटलांटिक महासागर के आर-पार एक सुरंग वनाना चाहते हैं, किन्तु इसमें होकर अमरीका के लम्बे-चौड़े फ़ड़फड़ाते हुए कान में जो पहली खबर आएगी, वह शायद यही होगी कि राजकुमारी ऐडीलेड को कुकुर खाँसी हो गई है। आखिर जिस आदमी का घोड़ा एक मिनट में एक मील की रफ्तार से भागता है, ज़रूरी नहीं है कि पहुँचाने के लिए उसके पास सबसे महत्त्वपूर्ण समाचार हो, वह 'इवांजेलिस्ट' नहीं है, न वह टिड्डी और जंगली शहद का भोजन करता ही आता है। उड़ाकू चाइल्डर्स कभी थोड़ा भी नाज लेकर चक्की पर पहुँचा होगा, इसमें मुझे सन्देह है।

एक सज्जन मुझसे कहते हैं, "मुझे आश्चर्य है कि तुम धन जमा नहीं करते; तुम यात्रा के शौकीन हो, गाड़ी से तुम आज फिचवर्ग पहुँच सकते हो और उस

प्रदेश को देख सकते हो।" किन्तु इससे अधिक बुद्धि मुझमें है। मैंने सीख लिया है कि सबसे तेज जाने वाला यात्री वह होता है जो पैदल यात्रा करता है। मैं अपने इन मित्रों से कहता हूँ "हम दोनों चलकर देखें कि कौन पहले पहुँचता है।" दूरी तीस मील की है, किराया ६० सैंट है। यह लगभग एक दिन की मज़दूरी होती है। मुझे याद है कि इसी सड़क पर मजदूरों को ६० सैंट प्रतिदिन मिलता था। अच्छा, यदि मैं अभी पैदल चल दूं तो रात होने से पहले ही वहां पहुँच जाऊँगा। इस रफ़्तार से मैं हफ़्तों चला हूँ। इसी बीच आप अपना किराया कमा लेंगे और कल किसी समय या आज रात को वहाँ पहुँच जायेंगे, यदि सम्भवतः आप इतने भाग्यवान हैं कि आपको ठीक समय पर काम मिल जाय। फिचबर्ग जाने के बजाय आप दिन का अधिकांश समय यहीं काम करने में बिता देंगे। और इस प्रकार यदि रेलवे लाइन सारी दुनिया का चक्कर लगवा दे, तो भी मैं आपसे आगे ही रहूँगा। और जहाँ तक इस देश को देखने या इसी प्रकार के अनुभवों का सवाल है, मुझे आपका साथ एकदम छोड़ देना होगा।

ऐसा है यह विश्व-व्यापी नियम, जिसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता; और रेलवे लाइन के सम्बन्ध में भी, हम कह सकते हैं कि यह समान रूप से लागू होता है। सब लोगों को यात्रा की सुविधा देने के लिए पृथ्वी के चारों ओर रेल की पटरी बिछाने की बात इस ग्रह की सारी भूमि नाप डालने के समान है। लोगों का एक धुंधला खयाल है कि यदि पर्याप्त समय तक उन्होंने 'संयुक्त पूंजी' और फावड़ों की कार्यवाही चालू रखी तो अंत में सभी लोग, पलक मारते ही मुफ़्त में सवार होकर कहीं चले जायेंगे। किन्तु यद्यपि एक बड़े समूह में लोग स्टेशन पर इकट्ठे होते हैं और गार्ड महोदय आवाज लगाते हैं 'सब सवार हो जायँ' तो धुआँ उड़ जाने और भाव घनीभूत हो जाने के बाद दिखाई यह देता है कि केवल कुछ लोग ही सवार हुए हैं, बाकी के ऊपर से रेल निकल गई है। वे रेल से कट गए हैं और इसे एक 'दुखद दुर्घटना' कहा जायगा—यह होगी भी वही। निस्संदेह केवल वही लोग सवार हो सकेंगे जो अपना किराया कमा लेंगे, अर्थात् यदि वे इतने काल तक जीवित रहते हैं; किन्तु उस समय तक उनके शरीर की लोच और उनकी यात्रा करने की आकांक्षा सम्भवतः समाप्त हो चुकी होगी। अपनी सबसे कम महत्त्वपूर्ण आयु में एक संदेहजनक स्वतन्त्रता का उपभोग करने के लिए धन कमाने में अपने जीवन का

सर्वोत्तम भाग नष्ट कर देने की वात मुझे उस अंग्रेज की याद दिलाती है जो धनोपार्जन के लिए भारतवर्ष चला गया था, ताकि वह इग्लैण्ड वापिस आकर एक कवि का जीवन विता सके । उसे तो तुरन्त ही अपनी अट्टालिका में आसन जमा देना चाहिए था। देश-भर की झोंपड़ियों से निकलकर लाखों आयरिश मजदूर कहते हैं, "कहते क्या हो! यह रेलवे लाइन जिसे हमने वनाया है, क्या यह अच्छी चीज़ नहीं है" मेरा उत्तर है, "हाँ यह अपेक्षाकृत अच्छी चीज़ है" अर्थात् आप इससे भी वुरा काम कर सकते थे, लेकिन आप मेरे वन्धु हैं इसलिए मैं चाहता हू कि आपने अपना समय यह मिट्टी खोदने की जगह किसी अच्छे काम में लगाया होता।

मैं अपने असाधारण खर्च को पूरा करने के लिए ईमानदारी से रोचक ढंग से १०-१२ डालर कमा लेना चाहता था। इसलिए घर पूरा होने से पहले मैंने पास ही की हल्की और रेतीली ढ़ाई एकड़ भूमि में सेम[1] वो दी और थोड़े-से हिस्से में आलू, मक्का, मटर और शलजम भी लगा दिए । पूरी जमीन ११ एकड़ है, जिसमें अधिकतर चीड़ और 'हिकौरी' (रोमशल्वक) वृक्ष उगते हैं, और पिछले वर्ष यह आठ डालर सैंट फी एकड़ के हिसाव से विकी थी। एक किसान ने कहा कि यह भूमि चिचियाने वाली गिलहरियाँ पैदा करने के सिवाय और किसी काम की नहीं है। मैं इस जमीन का मालिक नहीं था, केवल अनधिवासी था, और भविष्य में इतनी भूमि पर खेती करने का इरादा भी नहीं था, इसलिए मैंने इसमें खाद नहीं दी और पूरी तौर से इसकी गुड़ाई भी नहीं की। जुताई करते समय वहुत-से ठूंठ मैंने निकाल लिए जिससे वहुत समय तक ईंधन का काम चल गया, और 'अछूती' मिट्टी के छोटे-छोटे वृत्त भी वहाँ वन गए, जिन्हें गर्मियों-भर दूर से पहचाना जा सकता था, क्योंकि इन स्थलों पर सेम प्रचुरता से आई थी। घर के पिछवाड़े की सूखी और अधिकतर न वेचने योग्य लकड़ी से, और कुछ सरोवर में वहकर आने वाली लकड़ी से वाकी ईंधन का काम चल गया। मुझे वैल और एक आदमी किराए पर लेने ही पड़े, हालाँकि हल मैं खुद पकड़ता था। इस पहली फसल के लिए वीज, मजदूरी, औजार आदि का कुल खर्च आया १४ डालर ७२ सैंट। वीज के लिए मक्का मुझे मिल गई थी। इसका मूल्य नहीं के ही वरावर होता है, जव

१. अमेरिका में सेम मटर की भाँति एक नाज के रूप में भी खाई जाती है।

तक कि अपको बहुत सारा ही न बोना हो। फसल पर १२ बुशल[1] सेम, १८ बुशल आलू, कुछ मटर और कुछ मक्का प्राप्त हुई। मक्का और शलजम बहुत देर से बोए जाने के कारण कुछ नहीं मिल सका। इस प्रकार खेत से मेरी कुल आय हुई—

	डा० २३	पैं० ४४
कुल खर्च	१४	७२½
लाभ	८	७१½

और इसके अतिरिक्त फसल का जो भाग मैं अपने प्रयोग में ले आया और यह हिसाब लगाते समय जो कुछ बाकी बचा उसका मूल्य हुआ लगभग ४ डालर ५० पैंस। साथ ही थोड़ी-सी घास भी थी, जिसे मैंने काटा नहीं। सब बातों को देखते हुए, जो समय मैंने इसमें लगाया उसे देखते हुए और यह भी देखते हुए कि यह एक अल्पकालीन चीज़ थी, मेरा विश्वास है कि यह प्रयोग उस वर्ष कौंकर्ड के किसी भी किसान की अपेक्षा अधिक सफल रहा।

अगले वर्ष मैं इससे भी अधिक सफल हुआ, क्योंकि जितनी भी भूमि की मुझे आवश्यकता थी, उस सबको मैंने अपने हाथों फावड़े से खोदा जो लगभग ⅓ एकड़ होगी। खेती-बाड़ी के सुप्रसिद्ध ग्रंथों से (जिनमें आर्थर यंग का ग्रंथ भी शामिल है) जरा भी भयभीत न होते हुए इन दोनों वर्षों के अनुभव से मैंने यह सीखा कि यदि कोई व्यक्ति सादगी से रहे, जो कुछ उगावे वही खाय और जितना खाय उतना ही उगावे, अधिक नहीं, और इस पैदावार का, अधिक कीमती और विलासिता की चीज़ों की अपर्याप्त मात्रा से विनिमय न करे, तो उसे केवल कुछ ही कट्ठा भूमि पर खेती करने की जरूरत पड़ेगी। मैंने यह सीखा कि पशुओं की सहायता से भूमि में हल चलाने की अपेक्षा फावड़े से खोदना अधिक सस्ता पड़ता है, और पुरानी ज़मीन में खाद देने की अपेक्षा समय-समय पर नई ज़मीन तोड़ना अधिक लाभप्रद होता है। यह भी सीखा कि खेत का ज़रूरी काम आदमी गर्मी के दिनों में बेकार समय में आसानी से पूरा कर सकता है, मानो अपने बाएँ हाथ से। इस प्रकार आज की भाँति वह गाय, बैल, घोड़ा या सुअर से नहीं बँधा रहेगा। इस विषय पर मैं निष्पक्ष होकर बात करना चाहता हूँ, एक ऐसे आदमी की तरह जिसे आज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की सफलता से कुछ भी लेना-देना नहीं है। मैं

१. बुशल—नाज, फल आदि के लिए ८ गैलन का माप।

कौंकर्ड के किसी भी किसान की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र था, क्योंकि मैं किसी भी खेत-खलिहान में बँधा नहीं था—बल्कि प्रतिक्षण अपनी बुद्धि को प्रवृत्ति का अनुसरण करा सकता था, और यह मैं बता दूं कि मेरी बुद्धि अत्यन्त कुटिल है। मैं उनसे अधिक सम्पन्न तो था ही, इसके अतिरिक्त यदि मेरा घर जल जाता या फसल बरबाद हो जाती तो भी मैं लगभग पूर्ववत् सम्पन्न ही रहता।

मेरा विचार है कि आदमी अपने ढोरों का उतने अंशों में स्वामी नहीं होता, जितने अंशों में वे उनके स्वामी बन जाते हैं, आदमी की अपेक्षा वे इतने अधिक स्वतंत्र होते हैं। आदमी और बैल अपने काम की अदला-बदली कर लेते हैं, किन्तु यदि केवल आवश्यक काम को ही ध्यान में रखा जाय तो हम यह देखेंगे कि वे (बैल) बहुत ज्यादा मुनाफे में रहते हैं, क्योंकि उनका खेत बहुत अधिक बड़ा होता है। जो 'बदले का काम' आदमी के हिस्से में आता है उसका एक अंश होता है छै सप्ताह तक चारा घास जुटाना, और यह कोई बच्चों का खेल नहीं है। वास्तव में जो राष्ट्र सब प्रकार सरलता से जीवन व्यतीत करता है, (अर्थात् दार्शनिकों का कोई भी राष्ट्र) वह जानवरों से काम लेने-जैसी भयंकर भूल कभी नहीं करेगा। यह सही है कि न तो कभी कोई राष्ट्र दार्शनिकों का हुआ है, और न निकट भविष्य में होने ही वाला है और न मुझे इस बात का निश्चय है कि ऐसे राष्ट्र का होना अपेक्षणीय ही है। जो भी हो, मैं तो किसी घोड़े या बैल को काबू में करके अपने किसी भी काम के लिए घर पर न बाँधूंगा, इस भय से कि मैं केवल सईस या चरवाहा बनकर ही न रह जाऊँ। और यदि यह प्रतीत हो कि ऐसा करने में समाज लाभान्वित होता है, तो क्या हमें इस बात का निश्चय है कि जो चीज़ एक व्यक्ति के लिए लाभप्रद है वह दूसरे के लिए हानिकर नहीं होगी? क्या हमें निश्चय है कि सईस भी मालिक के समान ही सन्तुष्ट रहेगा? यदि हम यह मान लें कि कुछ सार्वजनिक भवन इस सहायता के बिना पूरे न हुए होते, और यह भी मान लें कि आदमी इस निर्माण-कार्य के यश में बैल और घोड़ों के साथ हिस्सा बँटा लें, तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस दशा में आदमी कोई अधिक उपयुक्त काम कर ही न पाता? जब लोग इनकी सहायता से अनावश्यक और कृत्रिम ही नहीं, बल्कि विलासितापूर्ण और फालतू काम करने लगते हैं, तो यह भी अवश्यम्भावी हो जाता है कि कुछ लोगों को बदले में इन बैलों का सारा-का-सारा काम करना होगा, या दूसरे शब्दों में, शक्ति-सम्पन्न लोगों की गुलामी

उन्हें करनी ही पड़ेगी। इस प्रकार आदमी केवल अपने भीतर के पशु का ही काम नहीं करता, बल्कि इसके प्रतीक स्वरूप इन बाहरी पशुओं की भी सेवा करता है। यद्यपि ईंट-पत्थर के बहुत-से ठोस मकान बन गए हैं, फिर भी किसान की समृद्धि तो अब तक इसीसे नापी जाती है कि किस हद तक उसका खलिहान उसके घर को ढके हुए है। कहा जाता है कि गाय-बैलों और घोड़ों के लिए, इस प्रदेश की सबसे बड़ी पशुशालाएँ इस नगर में हैं और सार्वजनिक भवनों के मामले में भी यह नगर किसी से पिछड़ा हुआ नहीं है, लेकिन यहाँ के स्वतंत्र व्याख्यान और स्वतंत्र आराधना के भवनों की संख्या नगण्य ही है। भवनों का निर्माण न करके, राष्ट्र अभौतिक विचारों द्वारा अपने स्मारक बनाने का उद्योग क्यों न करे? प्राची के सभी खंडहरों की तुलना में भगवद्गीता कितनी अधिक महिमामयी है! मीनारें और मन्दिर तो राजों-महाराजों की विलासिता-मात्र होते हैं। एक सरल और स्वतंत्र मत वाला व्यक्ति कभी किसी राजा या महाराजा का हुक्म नहीं बजाता। प्रतिभा किसी शाहंशाह के आश्रय में नहीं पलती, बहुत मामूली सीमा के अतिरिक्त, इसकी सामग्री न चाँदी है, न सोना और न संगमरमर। मेहरबानी करके यह तो बताइए कि इतना अधिक पत्थर फोड़ने का लक्ष्य क्या है? आर्केडिया[1] में तो मुझे कोई भी पत्थर फोड़ता हुआ दिखाई नहीं दिया। जातियाँ एक पागलपन से भरी आकांक्षा से ग्रस्त होती हैं—जितना फोड़ा हुआ पत्थर वे अपने पीछे छोड़ जायँ उससे अपनी स्मृति बनाए रखने की आकांक्षा उनमें होती है। यदि इतना ही परिश्रम वे अपने आचरण को सुधारने-सँभालने में करें तो क्या हो? बुद्धिमानी की एक बात चन्द्र-चुम्बी स्मारकों से कहीं अधिक स्मरणीय होती है। उपयुक्त स्थान पर पत्थर मुझे अधिक प्रिय लगता है। थीव्स[2] का ऐश्वर्य एक घटिया किस्म का ऐश्वर्य था। जीवन के सच्चे ध्येय से भटक जाने वाले इस शत-द्वार-युक्त नगर की अपेक्षा ईमानदार आदमी के खेत की मेंड बाँधने वाली १०-११ हाथ की पत्थर की दीवार कहीं अधिक विवेकपूर्ण होती है। असभ्य और बर्बर धर्म और सभ्यता ही शानदार मंदिर बनवाते हैं, किन्तु जिसे आप 'ईसाई धर्म, कहते हैं, वह ये सब नहीं बनवाता। किसी भी जति के द्वारा तोड़े गए पत्थर का

---

१. ग्रीस का एक भाग, जहाँ के अधिकतर निवासी कृषक और चरवाहे थे।

२. ग्रीस का सौ द्वारों वाला प्राचीन नगर। होमर के अनुसार इसके एक-एक द्वार से दो सौ रथ निकल सकते थे।

बहुत-सा भाग केवल उसके मक़बरे में ही लगता है। वह जाति अपने-आपको जिन्दा ही दफ़ना देती है। जहाँ तक पिरामिडों का सवाल है, उनमें कोई भी चीज़ इतनी आश्चर्यजनक नहीं है जितनी यह कि इतनी बड़ी संख्या में इतने पतित आदमी मिल जाते थे जो किसी आकांक्षावान् मूर्ख का मक़बरा बनाने में ही अपना सारा जीवन लगा दें, जिसको यदि नील नदी में डूबा दिया जाता और फिर उसके शरीर को कुत्तों को डाल दिया जाता तो कहीं अधिक बुद्धिमत्ता और पुरुषार्थ का काम होता। सम्भवतः मैं उनके लिए तथा उसके लिए किसी उत्तर का अविष्कार कर पाता, लेकिन इसके लिए मेरे पास समय नहीं है। जहाँ तक निर्माणकर्त्ताओं के धर्म-प्रेम और कला-प्रेम का प्रश्न है, वह सारे संसार में लगभग एक-सा ही है, चाहे वह भवन मिस्र का मंदिर हो या यूनाइटेड स्टेट्स बैंक हो। इससे जो मिलता है उससे कहीं अधिक लागत इसमें लगती है। इसका प्रेरक होता है दम्भ, और साथ में दाल-रोटी का प्रेम। होनहार तरुण वास्तु-शिल्पी मि० वालकम फुटे और पैंसिल की सहायता से अपने 'त्रिट्रूवियस'[1] ग्रन्थ की पुश्त पर एक नक्शा बना देता है और यह काम 'डोब्सन एण्ड संस' को सौंप दिया जाता है। जब तीस सदियाँ इसे तिरस्कार से देख चुकती हैं, तब मानव जाति इसको श्रद्धा से देखती है। जहाँ तक आपकी ऊँची मीनारों और स्मारकों की बात है, यहाँ इसी नगर में एक पगला आदमी था जिसने नीचे ज़मीन खोद-खोदकर चीन पहुँचने का इरादा किया था और उसीके कथनानुसार, वह इतनी दूर तक पहुँच गया था कि उसे उस देश के बरतन-भाँडों की खटर-पटर सुनाई पड़ने लगी थी। लेकिन मेरा खयाल है कि उसने जो गड्ढा खोदा था उसकी प्रशंसा मैं नहीं करूँगा। बहुत-से लोग पूरब और पच्छिम के स्मारकों के बारे में चिंतित रहते हैं, यह जानने को आतुर रहते हैं कि उनका निर्माण किसने कराया था। मैं तो केवल यही जानना चाहूँगा कि उन दिनों इनका निर्माण किसने नहीं कराया, कौन लोग इस तुच्छ चीज़ से ऊपर उठ सके थे। लेकिन अब मैं अपने आँकड़ों की बात पर फिर लौटता हूँ।

इसी बीच गाँव में बढ़ईगिरी, नाप-जोख और नाना प्रकार के धंधों से (क्योंकि मैं उतने ही धंधे जानता हूँ जितनी कि मेरे हाथ में उँगलियाँ हैं) मैंने १३.३४ डालकर कमा लिए थे। हालाँकि मैं वहाँ दो वर्ष से अधिक काल तक रहा, मेरा ४ जुलाई से १ मार्च तक आठ महीने का कुल खर्च इस प्रकार था

---

१. प्राचीन रोम का एक इंजीनियर, जिसने वास्तु-कला पर एक ग्रंथ लिखा था।

—(इसमें, मैंने जो आलू, मक्का, कुछ मटर आदि उगाए थे, उनका और पिछली तारीख पर जो कुछ मेरे पास बच रहा उसका मूल्य नहीं लगाया है) :—

	डालर	सेंट
चावल	१	७३½
राव	१	७३½ सबसे सस्ती शक्कर
राई (नीवारिका)	१	४¾
मक्का	—	९९¾ (राई से भी सस्ता)
सुअर का गोश्त	—	२२
गेहूँ का आटा	—	८८ (इसमें मक्का से अधिक पैसा और मेहनत लगती है)
चीनी	—	८०
वसा (चर्बी)	—	६५
सेव	—	२५
सूखा सेव	—	२२
शकरकंदी	—	१०
कद्दू	—	६
एक तरबूज	—	२
नमक	—	३ ये सभी प्रयोग असफल रहे।

हाँ, मैंने कुल मिलाकर ८ डालर ७४ सेंट का तो भोजन किया ही, किन्तु मैं इतनी बेशर्मी से अपने अपराध की बात प्रकाशित नहीं करता, यदि मुझे यह पता नहीं होता कि मेरे अधिकतर पाठक मेरे ही समान अपराधी हैं और यदि उनके कामों का विवरण छाप दिया जाय तो उनका प्रभाव इससे कुछ अधिक अच्छा नहीं पड़ेगा। अगले वर्ष मैं कभी-कभी अपने खाने के लिए मछली मार लेता था और एक बार तो मैंने अपने सेम के खेत को नष्ट करने वाले एक 'वुडचक'[1] को भी हलाल करके भक्षण कर लिया (तातार लोगों के शब्दों में उसका 'पुनर्जन्म' कर दिया), अंशतः प्रयोग के रूप में। उसमें कस्तूरी की गंध होने के कारण मुझे क्षणिक आनन्द मिला, फिर भी मैंने देखा कि लम्बे अर्से तक इसका प्रयोग ठीक न रहेगा, भले ही आप गाँव के कसाई से तैयार 'वुडचक' खरीदें।

१. वुडचक—अमरीका में पाया जाने वाला एक जानवर—भूसूकर

इस काल में कपड़ों का और फुटकर खर्च (हालाँकि इस मद से कोई नतीजा नहीं निकाला जा सकता) था—

	डा०	सें०
	८	४०$\frac{3}{4}$
तेल और कुछ वर्तन	२	००

इस प्रकार धुलाई और सिलाई (जो अधिकतर वाहर से कराए गए और जिनका विल अभी नहीं आया है—और यही वे तरीके हैं जिनसे, दुनिया के इस हिस्से में, धन आवश्यक रूप से घर के वाहर जाता है) के अलावा कुल खर्च का व्यौरा इस प्रकार है—

	डा०	सें०
घर —	२८	१२$\frac{1}{2}$
खेत (एक साल)—	१४	७२$\frac{1}{2}$
भोजन (८ महीने)—	८	७४
वस्त्रादि (,, ,,)—	८	४०$\frac{3}{4}$
तेलादि (,, ,,)—	२	
कुल—	६१	९९$\frac{3}{4}$

अव मैं अपने उन पाठकों को सम्बोधित करना चाहता हूँ जिन्हें अपनी जीविका कमानी है। इस सव खर्चे को पूरा करने के लिए फसल वेचने से मुझे मिला—

	डा०	सें०
	२३	३४
मजदूरी से कमाया—	१३	३४
	३६	६८

यदि इस धन को खर्च की राशि में से घटा दिया जाय तो एक ओर तो डा० २५.२१$\frac{3}{4}$ वचते हैं (लगभग इतने ही धन से मैंने प्रारम्भ किया था और यही खर्च करने का माप था) और दूसरी ओर इस प्रकार प्राप्त हुई फुरसत, स्वतंत्रता और स्वास्थ्य के अलावा एक आरामदेह घर मिला जिसमें जव तक मैं चाहूँ, रह सकता हूँ।

ये आँकड़े, चाहे जितने महत्त्वहीन मालूम पड़, उनमें एक प्रकार का पूर्णत्व होने के कारण उनका कुछ मूल्य भी है। प्रत्येक चीज़ का कुछ-न-कुछ हिसाव

मैंने दिया है। ऊपर दिए गए हिसाब से यह पता चलता है कि केवल भोजन पर मेरा खर्च था २७ सेंट प्रति सप्ताह। मेरे भोजन के पदार्थ थे (इसके दो वर्ष बाद तक भी), राई बिना खमीर का रेड इंडियन खाना, आलू, चावल, बहुत थोड़ा-सा सुअर का गोश्त, राब और नमक, और मेरा पेय था जल। यह यथोचित ही था कि मैं, जो भारतीय दर्शन से इतना प्रेम करता हूँ, चावल पर रहूँ। कुछ पक्के परछिद्रान्वेषी कहेंगे कि मैं बाहर भी तो खाता था। लेकिन उनके जवाब में मैं यह कह सकता हूँ कि यदि मैं कभी-कभी बाहर भोजन करता था (जैसा कि मैंने सदा किया है, और मुझे विश्वास है कि आगे भी इसका अवसर आता रहेगा) तो उससे मेरे घर का प्रबन्ध गड़बड़ हो जाता था और मैं बता चुका हूँ कि ये दावतें हमेशा की चीज़ हैं, इसलिए इससे मेरे तुलनात्मक ब्यौरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अपने दो वर्ष के अनुभव से मैंने यह सीखा कि इस अक्षांश में भी अपना आवश्यक भोजन जुटाने के लिए इतना कम परिश्रम करना पड़ेगा कि विश्वास न हो। साथ ही मैंने यह भी सीखा कि यदि आदमी उतना सादा भोजन करे जितना कि पशु करते है; तो भी उसके स्वास्थ्य और शक्ति में कमी नहीं आयगी। अनेक बार मैंने अपने मक्का के खेत से कुलफा (Partulaca Oleracea) का शाक लेकर, उबालकर और उसमें नमक मिलाकर एक संतोषप्रद (अनेक प्रकार से संतोषप्रद) भोजन प्राप्त किया है—और यह तो बताइए कि शांतिपूर्ण दिनों में, दोपहर के समय कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में उबली हुई नमक-मिली हरी मक्का से भी आगे और कौन-सी चीज़ की इच्छा करेगा? भोजन में जो थोड़ा-सा परिवर्तन मैं किया करता था, वह भी 'स्वाद वृत्ति' के प्रति समर्पण था, स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के प्रति नहीं। फिर भी हुआ यह है कि बहुधा लोग 'आवश्यकताओं' की कमी के कारण नहीं, बल्कि 'विस्लातुस-वओं' की कमी के कारण भूखों मरते हैं। और मैं एक महिला को जानता हूँ जिनका विश्वास है कि उनके पुत्र की मृत्यु इसलिए हो गई कि उसने पेय के रूप में केवल पानी ही पीने की आदत डाल ली थी।

पाठक देखेगा कि मैं इस विषय पर केवल आर्थिक दृष्टिकोण से बात कर रहा हूँ—आहार के दृटिकोण से नहीं, और मेरी सलाह है कि वह इस सम्बन्ध में मेरे संयम को परखने का साहस न करे जब तक कि उसका भंडार खूब भरा-पूरा न हो।

प्रारम्भ में विशुद्ध मक्का और नमक की रोटी बनाता था जिसे मैं घर के बाहर, बची हुई छिपुटियों की आग पर पका लेता था। लेकिन इसमें धुआँ लग जाता था और चीड़ की खुशबू आ जाती थी। मैंने गेहूँ के आटे का प्रयोग करके भी देखा है, लेकिन अंत में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि 'राई' और मक्का मिलाकर ही सबसे सुविधाजनक और स्वादिष्ट भोजन बनता है। जाड़े के मौसम में इस मिश्रण की छोटी-छोटी बाटियाँ बनाकर एक के बाद एक सावधानी उलटते-पलटते हुए पकाने में (जैसे मिस्त्र के निवासी सावधानी से अंडों को उलटते-पलटते हैं) कम आनन्द नहीं आता था। वे वास्तव में 'अन्न के फल' होते थे, जिन्हें मैं स्वयं पकाता था और मेरी इंद्रियों को उनमें वही स्वाद और सुगंधि मिलती थी जो दूसरे अच्छी जाति के फलों में होती है, जिन्हें मैं कपड़े में लपेटकर दीर्घकाल तक पाल में रखता था। जो भी प्रामाणिक ग्रंथ मिले उनकी सहायता से मैंने रोटी बनाने की इस प्राचीन और अपरिहार्य कला का अध्ययन किया। उस काल से प्रारम्भ करके जबकि प्रथम बार मानव ने बिना खमीर की रोटी का आविष्कार किया, और आदिकाल के फल-मूल और मांस-भक्षण के जंगलीपन का परित्याग करके उसने इस आहार की सौम्यता और परिष्कृति में पदार्पण किया, धीरे-धीरे मैंने अपने अध्ययन में उस काल को पार किया जबकि संयोगवश गुँधा हुआ आटा खट्टा हो गया होगा जिससे खमीर मिलाने का तरीका लोग सीख गए (और इसके बाद खमीर उठाने के अनेक तरीके निकले) और 'सुस्वादु, मधुर स्वास्थ्यप्रद रोटी,' 'जीवन की लाठी,' के आधुनिक युग तक आ गया। खमीर को कुछ लोग रोटी की आत्मा समझते हैं, वह आत्मा जो उसके जालीदार तंतुओं में निवास करती है, जिसे गृह-देवी की पवित्र चिर-प्रज्ज्वलित अग्नि[1] की भाँति परम धार्मिक भाव से सुरक्षित रखा जाता है। मेरा खयाल है कि इस बहुमूल्य पदार्थ (खमीर) की एक बोतल यहाँ 'मेफ्लावर'[2] जहाज में लाई गई होगी, जिससे आज तक अमरीका में काम चल रहा है और अब भी इसका प्रभाव इस देश की अनाजी हिलोरों में फूल रहा

---

१. रोम की पौराणिक कथाओं की गृह देवी 'वेस्टा' के मन्दिर की अग्नि सदा प्रज्ज्वलित रक्खी जाती थी। मार्च के महीने में यह अग्नि नये सिरे से जलाई जाती थी। इस अग्नि का बुझ जाना देश के लिए विपत्ति का सूचक माना जाता था।

२. मेफ्लावर—वह जहाज जिसमें इंग्लैण्ड के बहुत-से लोग बसने के लिए अमरीका गए थे।

है, फैल रहा है, बढ़ रहा है। इस बीज को मैं नियमित रूप से बड़ी निष्ठा-पूर्वक गाँव से लाता रहा जब तक कि एक दिन नियमों को भूलकर मैंने अपना खमीर जला नहीं डाला। इस घटना से मैंने आविष्कार किया कि यह भी अपरिहार्य नहीं है (मेरे आविष्कार संश्लेषण-पद्धति से नहीं विश्लेषण-पद्धति से होते थे) और तब से बड़ी प्रसन्नता से मैंने इसका परित्याग कर दिया है यद्यपि अनेक गृहणियों ने इमानदारी से मुझे विश्वास दिलाया है कि अच्छी और स्वास्थ्यप्रद रोटी बिना खमीर के बन ही नहीं सकती और कुछ बुजुर्गों ने तो भविष्यवाणी भी कर दी कि मेरी जीवन-शक्ति जल्दी ही नष्ट हो जायगी। फिर भी मैं देखता हूँ कि यह अत्यावश्क सामग्री नहीं है, और एक वर्ष तक इसका प्रयोग किए बिना भी मैं आज इस जीवन-लोक में हूँ। मुझे प्रसन्नता तो इस बात की है कि मैं अपनी जेब में एक बोतल खमीर डाले फिरने की तुच्छता से मुक्ति पा गया हूँ, जो कभी डाट खुल जाने की वजह से मेरे कपड़ों पर फैलकर मुझे हैरान कर देता था। इसे त्याग देना ही अधिक सरल और सम्मानजनक है। मानव एक ऐसा प्राणी है जिसमें दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अपने को सभी जलवायु और परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की क्षमता अधिक है। न मैं अपनी रोटी में सोडा या अम्ल या क्षार ही डालता था। ऐसा प्रतीत होगा कि मैं अपनी रोटी उस नुस्खे के मुताबिक बनाता था जो मार्क्स कैटो ने ईसा से दो शताब्दी पूर्व बताया था। उसके नुस्खे की लैटिन भाषा का अर्थ मैं इस प्रकार करता हूँ, "रोटी इस प्रकार बनाओ। अपने हाथ और कठौती को अच्छी तरह साफ कर लो। आटा कठौती में रखो और धीरे-धीरे पानी मिलाओ और उसे अच्छी तरह गूंध लो। अच्छी तरह गूंध लेने के बाद उसका आकार बना लो और उसे सेक लो।" इसमें एक भी शब्द खमीर के बारे में नहीं है। लेकिन मैं सदा ही इस "जीवन की लाठी" का प्रयोग नहीं करता था। एक बार तो जेब खाली होने के कारण एक महीने से भी अधिक समय तक मैंने इसकी शक्ल तक नहीं देखी।

न्यू इंग्लैण्ड का प्रत्येक निवासी इस राई और मक्का की भूमि में अपनी रोटी की सामग्री बड़ी आसानी से पैदा कर सकता है और उसे सुदूरवर्ती उतार-चढ़ाव वाले बाजारों पर आश्रित नहीं होना पड़ेगा। किन्तु हम सादगी और स्वतंत्रता से इतने दूर हो गए हैं कि यहाँ, कौंकर्ड में, ताजा और मधुर भोजन कम ही बिकता है, और मक्का की लपसी और मक्का के दूसरे मोटे पकवानों

का प्रयोग तो शायद ही कोई करता हो। किसान वहुधा अपनी पैदावार अपने पशुओं और सूअरों को खिला देता है और स्वयं गेहूँ का आटा खरीदता है जो अधिक कीमत लगने पर उतना स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। मैंने देखा कि मैं एक या दो वुशल 'राई' और मक्का बड़ी आसानी से पैदा कर लेता था, क्योंकि 'राई' तो खराव-से-खराव जमीन में उग आती है और मक्का के लिए भी सर्वोत्तम मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती। इन अनाजों को मैं हाथ की चक्की से पीस लेता था और इस प्रकार चावल और सूअर के गोश्त के बिना ही मेरा काम चल जाता था। मिठाई की इच्छा होने पर मैंने प्रयोग करके देखा कि मै चुकन्दर या कद्दू से खूब वढ़िया राब तैयार कर सकता हूँ और मैं जानता था कि इसे और भी आसानी से प्राप्त करने के लिए मुझे कुछ 'मेपिल' के वृक्ष लगाने की जरूरत है और इन वृक्षों के उगने तक मैं कद्दू या चुकन्दर के अलावा भी कई चीजों से काम चला सकता था। पूर्वजों ने कहा है, "अपने ओठों को मिठास से सींचने के लिए हम कद्दू, गाजर और अखरोट से सुरा बना सकते हैं।"

अंत में जहाँ तक नमक का सवाल है, जो सबसे आवश्यक मसाला है उसे प्राप्त करने के लिए समुद्र-तट की यात्रा का एक अच्छा मौका मिल जाता है। और यदि मैं इसे एकदम छोड़ दूं तो शायद कम पानी पीना पड़ेगा। मैं नहीं जानता कि रेड इंडियन लोग कभी भी इसके लिए परेशानी उठाते हैं।

इस प्रकार जहाँ तक मेरे जीवन का सम्वन्ध था, मैंने सारे व्यापार और विनिमय का परिहार कर दिया। घर मेरे पास था ही। अब केवल वस्त्र और ईंधन जुटाना रह गया। जो पतलून मैं अब पहन रहा हूँ, उसका कपड़ा एक किसान के परिवार में वुनवा लिया था; परमात्मा को धन्यवाद है कि अब भी आदमी में इतना सदाचार वाकी है, क्योंकि मेरे विचार से किसान से मजदूर बन जाने का पतन उतना ही बड़ा और स्मरणीय है जितना कि आदमी से किसान वन जाने का। और नये देश में ईंधन तो एक वड़ा वोझ होता है। वसने के मामले में मैं यही कह सकता हूँ कि यदि मुझे अब भी यहाँ अनधिवास न करने दिया जाता तो मैं एक एकड़ भूमि अपने एक खेत की भूमि के भाव पर और खरीद लेता यानी ८ डालर ८ सैंट की दर पर। लेकिन जैसी स्थिति थी, उसके हिसाव से मैं सोचता हूँ कि इस भूमि पर मेरे अनधिवास से उसका मूल्य वढ़ा ही होगा।

अत्यन्त आस्थाहीन लोगों का एक वर्ग है जो कभी-कभी मुझसे इस प्रकार के प्रश्न करता है, जैसे क्या मैं केवल शाकाहार पर ही जीवित रह सकता हूँ। और इस मामले की जड़ पर तुरन्त पहुँचने के लिए (क्योंकि यह जड़ निष्ठा की है) मैं उनको उत्तर दे दिया करता हूँ कि मैं कीलें खाकर भी रह सकता हूँ। यदि यह बात उनकी समझ में नहीं आ सकती, तो जो मैं कह रहा हूँ, वह सब वे समझ सकते। जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो इस प्रकार के प्रयोगों की बात सुनकर प्रसन्न होता हूँ, जैसे एक युवक बिना पिसी-कुटी मक्का पर पन्द्रह दिन तक रहा, केवल अपने दाँतों से चबाकर। गिलहरी की जाति ने भी यह प्रयोग किया और सफल रही। मानव जाति की भी इन प्रयोगों में दिलचस्पी है; हालाँकि कुछ वृद्धाएँ जिनमें इन प्रयोगों की क्षमता नहीं रही है, अथवा जो चक्कियों में हिस्सेदार हैं, ऐसी बात से चौंक पड़ती हैं।

मेरा कुल फर्नीचर था, एक चारपाई, एक मेज, एक डैस्क, तीन कुर्सियाँ तीन इंच व्यास का एक दर्पण, एक चीमटा, अंगीठी की छड़, एक केतली, एक देगची, एक कढ़ाई, एक लोटा, एक हाथ धोने का बर्तन, तीन तश्तरियाँ, दो छुरी-काँटे, एक प्याला, एक चम्मच, एक तेल की हाँडी, एक राब की हाँडी और एक लैम्प। इस सामान का कुछ अंश मैंने तैयार कर लिया और बाकी के लिए मुझे कोई कीमत नहीं देनी पड़ी, इसलिए इसका कोई हिसाब नहीं दिया है। कोई भी आदमी इतना दरिद्र नहीं होता कि उसे कद्दू पर आसन जमाने की जरूरत पड़े। यह तो अयोग्यता होगी। गाँव की भंडरियों में बहुत-सी ऐसी कुर्सियाँ पड़ी हैं जो मुझे बहुत पसन्द हैं और जो केवल उठा लाने-भर पर मिल सकती हैं। फर्नीचर परमात्मा को धन्यवाद है कि मैं फर्नीचर के किसी कारखाने की सहायता के बिना ही उठ-बैठ सकता हूँ। दार्शनिक को छोड़कर और कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसे गाड़ी में अपने लदे हुए असबाब को आसमान की रोशनी और लोगों की नज़रों के आगे खुला देखकर अपने सन्दूकों के खालीपन और दरिद्रता पर शर्म न आवे? यह 'स्पाल्डिग' का फर्नीचर है। इस बोझ को देखकर मैं कभी नहीं बता सकता कि यह किसी तथाकथित सम्पन्न व्यक्ति का असबाब है अथवा किसी निर्धन व्यक्ति का। इसका स्वामी सदा ही मुझे दरिद्रता-ग्रस्त दिखाई देता है। इस असबाव का हर बोझ ऐसा दिखाई देता है जैसे उसमें एक दर्जन झोपड़ियों का सामान लदा हुआ है, और अगर एक झोंपड़ी दरिद्र होती है तो वह उससे बारहगुना अधिक दरिद्र

होता है। मैं पूछता हूँ एक जगह से दूसरी जगह जाने का हमारा कारण क्या हो सकता है सिवाय इसके कि हम इस फर्नीचर से, इस केंचुली से मुक्ति पा लें, और अन्त में इस संसार को छोड़कर दूसरे नये संसार को चले जायँ और इस सबको यहीं भस्म होने के लिए छोड़ दें ? यह तो ऐसे ही है जैसे कि ये सब पिंजड़े आदमी ने अपनी कमर से बांध रखे हों और जहाँ भी वह जाता है इन्हें घसीटता फिरता है। जिसने अपनी पूँछ पिंजड़े में ही छोड़ दी उसे तो भाग्यवान लोमड़ी समझिए। स्वतंत्र होने के लिए छछूँदर अपना तीसरा पैर तक काट डालती है। कोई आश्चर्य नहीं कि आदमी ने अपना लचीलापन खो दिया हो। प्राय: वह ही अपने को जकड़बन्दी में पाता है। 'जनाब' क्या मैं यह पूछने की हिम्मत कर सकता हूँ कि जकड़बन्दी से आपका क्या तात्पर्य है ? यदि आप दृष्टा हैं तो जब भी आप किसी आदमी से मिलेंगे तो आपको उसका सारा सामान, सारी सम्पत्ति दिखाई देगी, हाँ वह सब भी, जिसको वह त्याग देने का बहाना करता है, रसोईघर तक का सामान, तथा और भी बहुत-सी निस्सार वस्तुएँ जिन्हें वह बचाकर रखता है, जला नहीं डालता, और आपको लगेगा मानो वह इस सामान में जुता हुआ है और यथा सम्भव आगे को घसीटकर ले जा रहा है। मेरे विचार से जकड़बन्दी में वह आदमी है जो खुद तो फाटक में घुस जाता है लेकिन उसके समान से लदी गाड़ी अटक जाती है और उसके पीछे-पीछे नहीं जा सकती । जब मैं किसी साफ़-सुथरे, स्वतंत्र दिखाई देने वाले, कसे-कसाए तैयार व्यक्ति के मुँह से उसके 'फर्नीचर' के बारे में सुनता हूँ कि उसका बीमा हो गया है या नहीं, तो मुझे उस पर केवल तरस आता है। किन्तु मैं अपने फर्नीचर का क्या करूँ ?' वहीं मेरी यह चंचल तितली मकड़ी के जाल में फँसकर रह जाती है। जिन लोगों के बारे में यह प्रतीत होता है कि उनके पास बहुत दिनों से कुछ भी नहीं है, यदि आप पता लगायेंगे, तो पायेंगे कि उनका भी कुछ सामान किसी दूसरे के भंडार में रखा हुआ है। मुझे तो इंग्लैंड आज एक ऐसा वृद्ध व्यक्ति दिखाई देता है जो बहुत-सा माल-असबाब लादे यात्रा कर रहा हो, बहुत-सी दिखावटी चीजें जो लम्बे अर्से तक गृहस्थी जमाने के कारण जुट गई हैं, जिन्हें जला डालने का साहस नहीं है—बड़ा संदूक, छोटा संदूक, हैंडबाक्स, पुलिन्दा आदि। इनमें से कम-से-कम पहले तीन तो फेंक ही दीजिए। आजकल किसी हट्टे-कट्टे आदमी के बूते के बाहर है कि वह अपना बिस्तरा उठाकर चल दे, और बीमार

आदमी को तो निश्चय ही यह सलाह दूंगा कि वह अपना बिस्तरा भी छोड़कर भाग जाय। जब भी मैंने इस देश में आने वाले किसी प्रवासी को पीठ पर लादे उस पुलिन्दे के बोझ से डगमगाकर चलते देखा है, जिसमें वह अपनी सारी सम्पत्ति रख लेता है (और जो उसकी गर्दन पर उगी हुई बड़ी भारी बतौरी-सा दिखाई देता है), तो मुझे उस पर बड़ा तरस आया है; इसलिए नहीं कि उसके पास इतनी कम सम्पत्ति है कि एक ही पुलिन्दे में सब-कुछ आ गया, बल्कि इसलिए कि उसे इतना सब ढोना पड़ता है। यदि मुझे पिंजरे में पैर फँसाकर उसे अपने साथ घसीटते फिरना है तो मैं इस बात की सावधानी रखूंगा कि वह हल्का हो और मेरे मर्मस्थल में चुभे नहीं। लेकिन शायद सबसे अधिक बुद्धिमानी की बात तो यह होगी कि कोई इसमें अपना पंजा फँसने ही न दे।

लगे हाथ यह भी बता दूं कि पर्दों का मेरा कोई भी खर्च नहीं है, क्योंकि मेरे घर में झाँकने वाला कोई नहीं जिनसे छिपाव करना पड़े, सिवाय सूर्य और चन्द्रमा के जिनका मैं स्वागत ही करता हूँ। चन्द्रमा मेरे दूध को फाड़ नहीं देगा, न सूर्य गोश्त को खराब करेगा। सूर्य से मेरे फर्नीचर को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, न उससे मेरे फर्श का रंग खराब होगा। यदि कभी मेरा यह मित्र अधिक प्रचंड हो उठता है, तो अपनी गृहस्थी में एक भी चीज बढ़ाने के बजाय प्रकृति द्वारा दिए गए किसी पर्दे की ओट में बचाव करना ही मुझे अपेक्षाकृत अच्छी आर्थिक व्यवस्था मालूम पड़ती है। एक बार एक महिला ने मुझे एक पाँवपोश भेंट में दिया, लेकिन चूंकि मेरे घर में उसे रखने के लिए अतिरिक्त स्थान नहीं था, और न मेरे पास इतना फालतू समय था कि घर में या बाहर उसकी झाड़-पोंछ कर सकूँ, इसलिए मैंने उसे अस्वीकार कर दिया। इसकी अपेक्षा मैंने अपने दरवाजे की घास पर पैर पोंछना ही अधिक पसन्द किया। बुराई के प्रारम्भ का ही परिहार करना सर्वोत्तम है।

थोड़े ही दिन की बात है कि मैं एक गिर्जाघर के 'डीकन' (एक अधिकारी) की सम्पत्ति के नीलाम के समय मौजूद था; उसका जीवन 'असम्पन्न' नहीं रहा था—

"आदमी के दुष्कर्म उसके बाद भी जीवित रहते हैं।"

जैसा सामान्यत: होता है, इस सामान में बहुत बड़ा भाग सजावटी-दिखावटी चीजों का था, जो उसके पिता के जमाने में एकत्र होती चली आ रही थीं।

अन्य वस्तुओं के साथ-साथ एक सूखा हुआ कृमि भी था। और अब, अर्द्ध-शताब्दी तक उसकी भंडरिया तथा दूसरे कूड़ाघरों में पड़े रहने के बाद भी इन चीजों को जलाया नहीं गया; उनकी 'होली' जलाने अथवा उनका शुचिताकारी होम करने की बजाय, उनका 'नीलाम' हो रहा था, यानी अभिवृद्धि। बड़ी आतुरता से पड़ोसी लोग उसे देखने को एकत्र हुए; उन सब चीजों को उन्होंने खरीद लिया और उन्हें बड़ी सावधानी से अपनी भंडरियों और कूड़ाघरों में ले जाकर रख दिया। यहाँ वे तब तक पड़ी रहेंगी जब तक कि उनकी मिलकियत का हिसाब-किताब नहीं हो जाता। इसके बाद फिर यहीं से प्रारम्भ होगा। आदमी मरता है तो धूल उड़ा जाता है।

यदि हम कुछ जंगली जातियों की रीतियों का अनुसरण करें तो कदाचित् लाभप्रद होगा, क्योंकि वे साल में एक बार कम-से-कम अपनी केंचुली उतार फेंकने की तरह का काम कर लेते हैं। वास्तविकता चाहे हो या न हो, उनमें कम-से-कम इस चीज का विचार तो है। क्या यह अच्छा न होगा कि हम भी एक त्यौहार, एक 'नव-फलोत्सव' मनावें; जैसा कि, बार्ट्रम के कथनासार, मुल्कासे जाति के रेड इंडियन लोग मानते हैं? वह कहता है, "अब कोई नगर यह त्यौहार मनाता है तो पहले से कपड़े, बर्तन-भाँड़े, साज-सामान जुटा लेने के बाद वे अपने फटे-पुराने वस्त्र और दूसरा सब त्याज्य सामान इकट्ठा करते हैं; अपने घर को, सड़कों को, और सारे नगर को साफ करते हैं, और इस कूड़े-करकट के साथ बचे हुए अन्न तथा अन्य सामग्री का एक ढेर बनाकर जला डालते हैं। औषधि लेकर तीन दिन तक उपवास करने के बाद नगर की सारी अग्नि बुझा दी जाती है। इस उपवास-काल में वे प्रत्येक प्रकार की क्षुधा और वासना की तृप्ति से संयमपूर्वक बचते हैं। सार्वजनिक क्षमा की घोषणा कर दी जाती है, और अपराधीगण फिर से नगर में प्रवेश कर सकते हैं।

"चौथे दिन, प्रातःकाल पुरोहित सार्वजनिक स्थान पर लड़की के टुकड़ों को घिसकर नवाग्नि प्रज्ज्वलित करता है और यहाँ से यह नई पवित्र अग्नि प्रत्येक घर में पहुँचा दी जाती है।"

इसके बाद वे नवान्न और नवफल का भोज करते हैं और तीन दिन तक नृत्य-गान से उत्सव मनाते हैं। "और अगले चार दिन तक उनके यहाँ मित्रगण का स्वागत-सत्कार होता है जो स्वयं इसी प्रकार का शुचि कर्म कर चुके होते हैं।"

मैक्सिको-निवासी भी प्रत्येक बावन वर्ष के उपरांत इसी प्रकार का शुचि-कर्म किया करते थे, इस विश्वास से कि संसार के अंत का समय आ गया है।

शब्द-कोष के अनुसार 'Sacrament' (संस्कार) की परिभाषा है, "आंतरिक और आध्यात्मिक शुद्धि का गोचर बाह्य चिह्न।" इस हिसाब से मैंने इससे अधिक सच्चे संस्कार की बात नहीं सुनी है और मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मूलत: इसकी प्रेरणा उन्हें देवलोक से मिली होगी, हालांकि इस दैवी-प्रेरणा का उल्लेख उनके धर्म ग्रंथों में कहीं नहीं है।

पाँच वर्ष से अधिक काल तक मैं इस प्रकार अपने हाथों की मेहनत पर रहा और मैंने देखा कि वर्ष में लगभग छै सप्ताह काम कर लेने से ही मेरा सारा खर्च निकल आता है। समूचा शीतकाल और अधिकांश ग्रीष्मकाल अबाध रूप से मुझे अध्ययन के लिए मिल जाता था। मैंने मदरसा चलाकर भी अच्छी तरह देख लिया है। इसमें मैंने देखा कि मेरा खर्च आमदनी के अनुपात में होता था, बल्कि इस अनुपात के बाहर कहिए, क्योंकि इसीके अनुसार मुझे वस्त्र धारण करने पड़ते थे, शिक्षा देनी पड़ती थी (विचार और विश्वास का तो कहना ही क्या) और इस व्यापार में घाटा था समय का। मैंने मानव-बंधुओं के परोपकार की भावना से शिक्षण-कार्य नहीं किया था, किया था केवल अपनी जीविका चलाने के लिए, इसलिए यह प्रयोग असफल रहा। मैं व्यापार भी करके देख चुका हूँ। देखा कि इसे प्रारम्भ करने के लिए ही दस साल लग जाएँगे और इसके बाद शायद मैं शैतान की राह पर होऊँगा। मुझे वास्तव में भय था कि उस समय तक वह काम करने लगूँगा जिसे 'अच्छा व्यापार' कहा जाता है। पहले जब मैं जीविका के साधन की तलाश में था, और मित्रों की सलाह पर चलने के कुछ कटु अनुभव मेरे दिमाग में ताजे थे, मैं अक्सर गम्भीरतापूर्वक 'हक्लबेरी' (एक प्रकार का बेर) तोड़कर बेचने की बात सोचा करता था। मूर्खतावश मैं सोचता था कि यह काम मैं निश्चय ही कर सकता हूँ। इसकी थोड़ी-सी आमदनी भी मेरे लिए काफी होगी (क्योंकि मेरी सबसे बड़ी निपुणता यही रही कि मेरी आवश्यकताएँ बहुत कम हैं), बहुत कम पूंजी की इसमें आवश्यकता पड़ेगी, और मेरी स्वाभाविक वृत्तियों में कोई विघ्न न पड़ेगा। मेरे परिचितजन बिना किसी हिचक के व्यापार और दूसरे धंधों में लग रहे थे, तब मैं कल्पना कर रहा था कि यह धंधा भी ठीक उन्हींकी तरह का होगा;

गर्मियों-भर पहाड़ी पर घूमता रहूँगा और रास्ते में जो 'बेरी' (बेर) मिलेंगे उन्हें तोड़ लूँगा। इसके बाद उन्हें बेच डालूँगा और इस प्रकार अपना भरण-पोषण करता रहूँगा। मैं यह भी कल्पना करता था कि जंगली वनस्पतियों, पेड़ पौधों को गाड़ियों में भरकर ऐसे गाँव वालों को बेच डालूँगा, जिन्हें अब भी जंगल की याद दिलाया जाना प्रिय होगा। लेकिन तब से मैंने सीख लिया है कि व्यापार जिस चीज़ में भी हाथ लगाता है उसे बरबाद कर देता है, आप चाहे 'दिव्य' संदेशों का ही धन्धा क्यों न करते हों, इसमें भी व्यापार का समूचा अभिशाप लग ही जाता है।

मुझे कुछ चीज़ें दूसरी चीज़ों से अधिक प्रिय थीं, खास तौर पर मैं अपनी स्वतन्त्रता को विशेष महत्त्व देता था, और अभाव में भी मैं सफलतापूर्वक अपना काम चला सकता था, इसलिए गलीचे और 'फरनीचर', स्वादिष्ट पकवान आदि जुटाने और 'ग्रीक' या 'गोथिक' शैली का मकान बनवाने में मैं अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता था। यदि कुछ लोग ऐसे हों जिनके काम में इन चीजों की उपलब्धि से बाधा नहीं पड़ती, और जो इन्हें प्राप्त करने के बाद इनका सदुपयोग करना जानते हों, तो मैं इस काम को उन्हीं के ऊपर छोड़े देता हूँ। कुछ लोग 'उद्यमी' होते हैं और केवल श्रम के ही ध्येय से अथवा दूसरी बड़ी बुराइयों से बचने के लिए श्रम से प्रेम करते दिखाई देते हैं। इन लोगों से अभी मुझे कुछ नहीं कहना है। जिन लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि जितना अवकाश उन्हें अभी मिला हुआ है उससे अधिक प्राप्त होने पर वे क्या करेंगे, उनके लिए मेरी सलाह है कि जितना परिश्रम वे अभी करते हैं उससे दुगुना करने लगें, तब तक परिश्रम करें जब तक कि वे अपने-आपको ऋण-मुक्त करके फारखती न लिखा लें। अपने सम्बन्ध में तो मैंने देखा कि मजदूरी ही सबसे अधिक स्वतन्त्र धन्धा है, खास तौर पर इसलिए कि अपना काम चलाने के लिए साल में केवल तीस-चालीस दिन काम करने की आवश्यकता होगी। मजदूर का दिन तो सूरज डूबने के साथ ही समाप्त हो जाता है और इसके बाद वह अपने प्रिय कर्म में लग जाने को स्वतन्त्र हो जाता है; लेकिन उसके स्वामी को, जो बारहों महीने सट्टा किया करता है, साल के एक छोर से दूसरे छोर तक जरा भी अवकाश नहीं मिलता।

संक्षेप में, निष्ठा और अनुभव दोनों से मुझे यकीन हो गया है कि यदि हम सादगी और बुद्धिमानी से रहें तो इस पृथ्वी पर अपना भरण-पोषण कर लेना

कठिन नहीं है, बल्कि यह एक प्रकार का मनोरंजन है—अपेक्षाकृत सादे ढंग से रहने वाली जातियों का 'उद्यम' अब भी अपेक्षाकृत कृत्रिम ढंग से रहने वाली जातियों के लिए खेल-कूद ही होता है। यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि आदमी चोटी से एड़ी तक पसीना बहाकर ही जीविकोपार्जन करे—हाँ, यदि उसका पसीना मुझसे जल्दी निकल जाता है, तो बात दूसरी है।

मेरी जान-पहचान के एक नवयुवक ने, जिसे उत्तराधिकार में कुछ एकड़ भूमि मिली है, मुझे बताया कि 'यदि उसके पास साधन हों' तो उसका भी विचार 'मेरे' ढंग से रहने का है। मैं नहीं चाहता कि कोई, किसी भी कारण से, जीवन का मेरा ढंग अपनावे, क्योंकि हो सकता है कि जब तक वह मेरे ढंग को अच्छी तरह सीखे, उससे पहले ही मैं अपने लिए कोई दूसरा ढंग चुन लूं। इसके अतिरिक्त मैं यह चाहता हूँ कि इस संसार में इतने विभिन्न प्रकार के व्यक्ति हों जितने सम्भवत: हो सकते हैं; लेकिन मैं यह भी चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त सावधानी से 'अपना' रास्ता तलाश करे और अपने रास्ते पर चले, अपने माता-पिता या पड़ोसी के रास्ते पर नहीं। यह तरुण मकान बनवाए, वृक्ष लगवाए अथवा यात्रा पर चला जाय, कुछ भी करे, केवल उसके उस काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिए जिसकी आकांक्षा वह मेरे सामने प्रकट करता है। एक निश्चयात्मक बिन्दु को लेकर ही तो हमें पथ-प्रदर्शन मिलता है, ठीक जैसे नाविक अथवा भागा हुआ गुलाम ध्रुव तारे पर नजर जमाए रखता है; किन्तु यही जीवन-भर के लिए पर्याप्त पथ-प्रदर्शन होता है। हम निश्चित समय पर भले ही अपने बन्दरगाह पर न पहुँच पायँ, लेकिन सही रास्ते पर तो चलते ही रहेंगे।

निस्संदेह, इस मामले में, जो बात एक व्यक्ति के लिए सत्य है वही अन्य सहस्रों व्यक्तियों के लिए और भी अधिक सत्य है, ठीक जैसे कि बड़ा घर बनवाने में छोटे घर की अपेक्षा, उसी अनुपात में अधिक लागत नहीं लगती, क्योंकि ऊपर एक ही छत होती है, नीचे एक ही तहखाना होता है और एक ही दीवार अनेक कमरों को विभाजित कर देती है। लेकिन जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने एकान्तवास ही अधिक पसन्द किया। इसके अतिरिक्त, साधारणतया अपना सारा मकान अपने हाथों बना लेना अधिक सस्ता होगा, बजाय किसी दूसरे को साझे की दीवार के फायदे समझा देने के। और यह सब करने के बाद भी, सस्तेपन के विचार से साझे की दीवार को बहुत पतला रखना पड़ेगा,

और हो सकता है कि यह दूसरा व्यक्ति अच्छा पड़ोसी साबित न हो, और साथ ही अपने हिस्से की मरम्मत करके ठीक न रखे। साधारणत: जो भी सहकार सम्भव होता है, वह अत्यन्त आंशिक और छिछला होता है और वास्तविक सहकार की जो अत्यल्प मात्रा है, उसका अस्तित्व तो मानो नहीं के बराबर है क्योंकि वह एक ऐसी समवेत ध्वनि है जो लोगों को सुनाई नहीं देती। यदि आदमी में निष्ठा है तो वह सभी जगह समान रूप से निष्ठापूर्वक सहकार करेगा, यदि उसमें निष्ठा का अभाव है तो उसे चाहे जिन लोगों के बीच ले जाइए, वह बाकी दुनिया की तरह ही रहेगा। उच्चतम और निम्नतम दोनों ही अर्थों में सहकार करने का अर्थ होता है, 'साथ-साथ जीविकोपार्जन करना।' हाल ही में किसी ने प्रस्तावित किया है कि दो नवयुवकों को साथ-साथ यात्रा करनी चाहिए, एक जो निर्धन हो, जहाज पर और खेत में मजदूरी करके साधन उपार्जित करता जाय, और दूसरा अपनी जेब में हुन्डी लेकर चले। बड़ी आसानी से यह देखा जा सकता है कि अधिक काल तक वे सहयात्री नहीं रहेंगे अर्थात् उनमें सहकार नहीं हो सकता; क्योंकि उनमें से एक तो कोई 'कार' नहीं करेगा। यात्रा के प्रथम मनोरंजक मोड़ पर ही उनका साथ छूट जाएगा। और सबसे बड़ी बात यह है कि, जैसा मैं इशारा कर चुका हूँ, जो व्यक्ति अकेला जाना चाहता है, वह आज ही रवाना हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति किसी दूसरे के साथ यात्रा करता है, उसे उसके तैयार होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, और उनकी यात्रा प्रारम्भ होने में ही बहुत समय लग सकता है।

मैंने अपने नगर के अनेक आदमियों को कहते सुना है कि लेकिन यह तो बड़ा स्वार्थीपन है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी तक मैं परोपकार के कामों में नहीं के बराबर ही पड़ा हूँ। मैंने अपनी कर्त्तव्य-भावना के प्रति कुछ चीजों का बलिदान कर दिया है— उन चीजों के साथ इस आनन्द को भी मैंने त्याग दिया है। कुछ लोग हैं जिन्होंने अपनी सारी चतुराई लगाकर मुझे इस बात को प्रेरित करने की चेष्टा की है कि मैं इस नगर के कुछ परिवारों के भरण-पोषण का जिम्मा अपने ऊपर ले लूँ और यदि मेरे पास कोई काम करने को नहीं है, (क्योंकि जिसके पास कोई काम नहीं होता उसके लिए शैतान काम तलाश कर देता है) तो यह मनोरंजन ही सही। जो भी हो, जब भी मैं इस ओर प्रवृत हुआ हूँ, और सब प्रकार से आराम देकर ठीक अपनी ही भाँति कुछ

निर्धन व्यक्तियों का भरण-पोषण करके उन्हें उपकार से लाद देने की बात मैंने सोची है और यहाँ तक कि उनके सामने यह प्रस्ताव रखने का भी साहस किया है, तो उनमें से प्रत्येक ने बिना किसी हिचक के दरिद्र बने रहना ही अधिक पसन्द किया है। जब कि मेरे नगर के अनेक भद्रजन अपने बन्धुओं का उपकार करने में अनेक प्रकार से लगे हुए हैं, तो मेरा विश्वास है कि कम-से-कम एक व्यक्ति को तो अन्य तथा अपेक्षाकृत कम उपकारी कामों को करने के लिए आसानी से खाली छोड़ा जा सकता है। जिस प्रकार दूसरे कामों के लिए प्रतिभा आवश्यक है उसी प्रकार दानशीलता के लिए भी प्रतिभा आवश्यक होती है। 'दूसरों की भलाई' करने के बारे में यही कहा जा सकता है कि वह उन पेशों में से हैं जो भरे हुए हैं, और जिनमें अब जगह नहीं है। इसके अलावा मैंने इसे खूब आजमाया है, और शायद यह बात विचित्र मालूम पड़े कि मुझे सन्तोष है कि यह काम मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं। सम्भवतः जान-बूझकर मुझे अपना विशेष धन्धा छोड़कर इस सामाजिक कल्याण के काम में, सृष्टि को सत्यानाश से बचाने के काम में नहीं लगना चाहिए, और मेरा विश्वास है कि यदि आज यह सृष्टि सुरक्षित है तो केवल इस कारण कि इसी प्रकार की किन्तु इसकी अपेक्षा अनन्त रूप से महान् अविचलता कहीं और काम कर रही है। लेकिन मैं किसी भी व्यक्ति और उसकी प्रतिभा के बीच बाधा नहीं बनना चाहता, और जिस काम करने से मैं इन्कार करता हूँ, उसे यदि कोई अपने सम्पूर्ण तन-मन-प्राण से करे, तो मैं उससे कहूँगा, लगे रहो, भले ही सारी दुनिया इसे बुरा कहे, जैसा कि सम्भवतः वह कहेगी भी।

मैं यह नहीं मानता कि मेरी बात निराली है। निसंदेह मेरे अनेक पाठक इस प्रकार का तर्क अपने पक्ष में उपस्थित करेंगे। बिना इस झमेले में पड़े कि मेरे कामों को लोग भला बताते हैं या नहीं, मैं यह कहने में नहीं हिचकता कि कुछ कामों को करने में यदि मुझे लगाया जाय तो मैं उनमें सबसे कुशल साबित होऊँगा, लेकिन ये काम कौन से हैं, यह मुझे नियुक्त करने वाले के पता लगाने की बात है। सामान्य अर्थों में, जो कुछ 'भलाई' मैं करूँ, वह मेरे मुख्य पथ से अलग हो और अधिकाँश में एकदम निरभिप्राय हो। लोग कहते हैं, 'जहाँ कहीं भी आप हों, जैसे भी हों, निष्काम भाव से, मन में दयालुता की पूर्वधारणा लिए भलाई करते चलिए।' यदि इसी स्वर में मुझे कुछ भी उपदेश देना हो, तो मैं बल्कि यह कहूँगा कि स्वयं भला बनने का प्रयास कीजिए। मानो

चन्द्रमा अथवा छठे स्थूलत्व वाले (सवसे सूक्ष्म दिखने वाले) किसी तारे के तेज के स्तर पर आकर सूर्यदेव अपना प्रज्वलन रोक दें और फिर 'रोविन गुडफैलो'[1] की भाँति घरों में खिड़कियों में से झाँक-झाँककर विक्षिप्त जन को उत्तेजित करते फिरें, गोश्त खराव करते फिरें और अंधेरा मिटाते फिरें वजाय इसके कि अपने सुखप्रद उत्ताप और कल्याणकारिता को वह निरन्तर तव तक वढ़ाते जाएँ जव तक कि वह इतने तेजोमय न हो जाएँ कि कोई भी मर्त्य प्राणी उनके मुँह की ओर न देख सके, और साथ ही पृथ्वी के चारों ओर, उसका कल्याण करते हुए घूमें, वल्कि (दर्शन के आविष्कार के अनुसार) यों कहिए कि पृथ्वी उनके चारों ओर घूमकर मंगल प्राप्त करे। जिस दिन 'फीवस' (सूर्यदेव) के पुत्र 'फेटन' ने अपनी दिव्य उत्पत्ति को परोपकार से प्रमाणित करने के लिए सूर्यदेव का रथ हाँका और निश्चित पथ से वाहर निकल पड़ा, उसी दिन उसने देवलोक के नीचे के मार्गों पर स्थित अनेक भवनों को जलाकर भस्म कर दिया, और पृथ्वीतल को झुलसा दिया; प्रत्येक सोता सूख गया, और सहारा की मरु-भूमि वन गई। अंत में क्रुद्ध होकर देवराज जुपिटर ने वज्राघात से उसे सिर के वल पृथ्वी पर फेंक दिया। इसके वाद पुत्र शोक से व्याकुल होकर सूर्यदेव एक वर्ष तक आलोकित नहीं हुए।[2]

दूषित हो जाने पर परोपकार से जैसी दुर्गन्ध आने लगती है, वैसी दुर्गन्ध दूसरी कोई नहीं होती। यह तो सड़ा हुआ माँस होता है, भले ही वह मानवीय हो या दिव्य हो। यदि मुझे यह निश्चय हो जाए कि कोई व्यक्ति मेरे घर मेरा उपकार करने का इरादा लेकर आ रहा है तो मैं उससे प्राण वचाकर उसी तरह भागूँगा, जिस तरह अफ्रीका के रेगिस्तान की 'सिमून' नामक आँधी से, जिसके कारण आँख, नाक, कान, मुंह में रेत भर जाता है और दम घुट जाता है। मैं भाग जाऊँगा कि कहीं अपना कोई उपकार न करा वैठूँ, कहीं मेरे खून में इस वीमारी का जहर न फैल जाए। नहीं, इस मामले में, मैं वल्कि प्राकृतिक ढंग से वुराई सहना ही अधिक पसन्द करूँगा। मेरे निकट कोई भी व्यक्ति अच्छा 'आदमी' इसलिए नहीं होता कि यदि मैं भूखों मरता होऊँ तो वह मुझे भोजन दे देगा, अथवा जाड़े में ठिठुरता होऊँ तो वह वस्त्र दे देगा, या

१. 'रोविन गुड फैलो'—पश्चिमी लोक-वार्ता की एक परी, जो अपनी विनोदी प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध है।

२. यूनानी पुराणों की एक कथा।

कभी खाई में गिर पड़ूँ तो वह मुझे निकाल लेगा। इतना काम तो न्यू फाउण्ड-लैण्ड का एक कुत्ता भी कर सकता है। विस्तृत अर्थों में परोपकार मानव-बन्धुओं से प्रेम नहीं होता। निस्संदेह अपने ढंग पर होवार्ड[1] के मन में अत्यन्त दया भाव था और वह एक योग्य व्यक्ति था, और इसका उसे पुरस्कार मिला है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से सैकड़ों होवार्डों का 'हमारे' लिए क्या मूल्य है यदि उनके परोपकारों से 'हमें' अपनी सर्वोत्तम दशा में, (जब कि हम इस सहायता के योग्यतम पात्र होते हैं) कोई सहायता नहीं मिलती? किसी भी परोपकारी सभा के बारे में मैंने कभी नहीं सुना कि उसमें ईमानदारी से मेरा या मेरी तरह के लोगों की भलाई करने का कोई प्रस्ताव आया हो।

जेसुइट मिशनरियों को उन रेड-इण्डियनों को देखकर अत्यन्त लज्जित होना पड़ा था, जो टिकटिकी से बाँधकर जलाये जाने के समय अपने त्रासकों को भी सताने के नये तरीके बताते थे। शारीरिक कष्टों से परे होने के कारण कभी-कभी ऐसा होता था कि वे इन मिशनरियों द्वारा दी जाने वाली सांत्वना के भी परे होते थे। 'जो सलूक तुम अपने साथ किया जाना पसंद करते हो, वही दूसरों के साथ करो', यह नियम उन लोगों के कानों को ज़रा कम जँचता था जो स्वयं इस बात की परवाह नहीं करते थे कि उनके साथ कैसा सलूक किया जा रहा है, जो अपने भी शत्रु से एक नये ढंग से प्रेम करते थे, और उसके सारे दुर्व्यवहार को उन्मुक्त हृदय से क्षमा करके उसके अत्यन्त निकट पहुँच जाते थे।

यह निश्चय कर लीजिए कि दरिद्रजन को जो सहायता सबसे अधिक आवश्यक है वही आप देंगे, भले ही आपके इस दान से वे पीछे ही क्यों न रह जायँ। यदि आप धन देते हैं तो उसके साथ आत्मदान भी करिए, केवल उसका परित्याग करके उन्हें मत दे डालिए। कभी-कभी हम लोग अजीब तरह की गलतियाँ कर बैठते हैं। बहुधा गरीब आदमी उतना नंगा और भूखा नहीं होता जितना वह गंदा और चिथड़ों से लदा होता है। इसमें केवल उसका दुर्भाग्य ही नहीं होता, बल्कि अंशतः उसकी रुचि भी होती है। यदि आप उसे कुछ धन दे देंगे तो शायद वह उससे कुछ और भी चिथड़े खरीद लेगा। मुझे भी गंदे

---

१. होवार्ड—अठारहवीं सदी का एक 'परोपकारी', जिसने कैदियों की दशा सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया था। इसके लिए उसने सारे यूरोप की यात्रा करके बंदीगृहों का निरीक्षण किया था।

आयरिश मजदूरों को देखकर बड़ी दया आती थी कि वे इतने फटे-चिथड़े पहने बर्फ काटा करते हैं जबकि मैं अपेक्षाकृत साफ सुथरे और फैशनेबिल वस्त्रों में भी ठिठुर जाता हूँ। लेकिन एक दिन जब खूब ठंड पड़ रही थी, एक मज़-दूर, जो सरोवर में गिर पड़ा था, मेरे घर तापने के लिए आया और मैंने देखा कि एक के बाद एक उसने तीन पतलून और दो जोड़ी मौजे उतारे, तब कहीं वह नंगा हो पाया। हालांकि यह सच है कि ये कपड़े निहायत गंदे और फटे हुए थे, फिर भी वह मेरे दिये हुए ऊपरी कपड़े बड़े मजे में अस्वीकार कर सकता था, इतने उसके पास 'भीतरी' थे। वह गोते खाने के ही योग्य था। तब मुझे अपने ऊपर दया आने लगी और मैंने देखा कि उसको कपड़ों की एक पूरी दूकान प्रदान करने की अपेक्षा यदि अपने लिए एक ऊनी कमीज खरीद लूं तो अधिक दानशीलता होगी। यदि हजारों व्यक्ति बुराई की शाखाओं पर चोट करते हैं, तो केवल एक उसकी जड़ पर। और यह भी सम्भव है कि जो व्यक्ति गरीबों को सबसे अधिक परिमाण में धन और समय प्रदान कर रहा है, वह स्वंय अपने जीवन के ढंग से उसी दुर्गति को सबसे अधिक बढ़ावा भी देता जाता है जिसके निवारण का वह असफल प्रयत्न कर रहा है। जो व्यक्ति प्रत्येक दस में से एक गुलाम की आमदनी को बाकी के लिए रविवार की छुट्टी खरीदने में लगा देता है, वह गुलाम पैदा करने वाला धर्मात्मा होता है। कुछ लोग गरीबों पर दया दिखाते हैं, उन्हें अपने रसोईघर में काम देकर। यदि वे रसोई के काम में अपने-आपको लगावें तो क्या अधिक दानशील नहीं होंगे? आप अपनी आमदनी का दशमांश दान-धर्म में खर्च कर देने की डींग हांकते हैं—अच्छा हो यदि आप इस प्रकार $\frac{9}{10}$ भाग खर्च करके इस मामले को खत्म कर दें। उस दशा में उसका केवल दशमांश ही समाज को वापिस मिलता है। जिसके पास धन है उसकी उदारता के कारण ऐसा होता है, या न्यायाधिकारियों की असावधानी के कारण?

परोपकार ही एक ऐसा गुण है, मानव जाति जिसकी यथेष्ट प्रशंसा करती है। यदि नहीं, इसका मूल्य बढ़ाकर आँका जाता है, और यह होता है हमारे स्वार्थीपन के कारण। यहीं कौंकर्ड में, एक सुहावने दिन, एक हट्टा-कट्टा गरीब आदमी एक नगरवासी की प्रशंसा कर रहा था कि वह गरीबों पर बड़ी दया करता है, अर्थात् स्वंय उस पर। परोपकारियों की जाति के चाचा-चाचियों को अधिक महत्त्व दिया जाता है, बजाय उसके सच्चे आध्यात्मिक माता-

पिता के। एक बार मैंने एक विद्वान और बुद्धिमान पादरी साहब का इंग्लैंड के बारे में भाषण सुना था। उस देश के वैज्ञानिक, साहित्यिक और राजनैतिक क्षेत्रों के महापुरुषों, शेक्सपियर, बेकन, क्रामवैल, मिल्टन, न्यूटन आदि के नाम गिनाने के बाद उन्होंने वहाँ के ईसाई उन्नायकों के बारे में बताया, जिन्हें (मानो अपने पेशे की आवश्यकता के अनुसार) उन्होंने बाकी सबसे ऊँचा उठा दिया, महापुरुषों में भी महानतम बता दिया। उनके नाम थे पैन, होवार्ड और श्रीमती फ्राई। सभी लोग इस बकवास और असत्य को महसूस करेंगे। ये पिछले व्यक्ति इंग्लैंड के सर्वश्रेष्ठ स्त्री-पुरुष नहीं थे, ये लोग उस देश के केवल सर्वश्रेष्ठ परोपकारीजन थे।

जितनी प्रशंसा परोपकार को देय है उसमें मैं संकोच नहीं करता; मैं केवल यह माँग करता हूँ कि जो लोग अपने जीवन और कृतित्व के द्वारा मानव-जाति के लिए वरदान-स्वरूप हैं, उन सबके प्रति न्याय किया जाय। मैं किसी आदमी के सदाचार और दानशीलता को विशेष महत्त्व नहीं देता--ये तो मानो उसका तना और उसकी पत्तियां हैं। जिन पौधों की हरियाली सूख जाने के बाद हम उनका काढ़ा बनाकर बीमार लोगों को पिलाते हैं, उनसे बहुत मामूली प्रयोजन सिद्ध होता है, और नीम-हकीम ही उनका सबसे अधिक प्रयोग करते हैं। मैं तो आदमी के फूल और फल की कामना करता हूँ; उसके ऊपर से प्रवाहित हो कर कुछ सुगन्ध मेरे पास तक आ सके, और पक्वता का कुछ रस हमारे व्यवहार में भर जाय। उसकी अच्छाई आँशिक और क्षणिक न हो, वरन् एक निरन्तर प्रवाहित अतिरिक्ति हो, जिसके लिए उसे कुछ देना नहीं पड़ता, जिसका स्वयं उसे भान नहीं होता। यह एक दानशीलता है जो हजारों पापों को छिपा देती है। परोपकारी आदमी बहुधा अपने ही विगत शोक की स्मृति से मानव जाति को वातावरण की भाँति घेर लेता है, और उसे संवेदना की संज्ञा देता है। हमें अपना साहस प्रदान करना चाहिए, निराशा नहीं; अपना स्वास्थ्य और सुख प्रदान करना चाहिए, अपना रोग नहीं; और इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं यह रोग छूत से फैल न जाय। कौन से दक्षिणी मैदानों से क्रंदन का स्वर आता है? जिन असभ्य लोगों को हम आलोक प्रदान करना चाहते हैं, वे किन अक्षाँशों में रहते हैं? कौन-सा वह अशिष्ट वर्बर व्यक्ति है जिसका हम उद्धार करना चाहते हैं? जब किसी आदमी को कोई रोग हो

जाता है जिसके कारण वह अपने काम नहीं कर पाता ,यहाँ तक कि यदि उसके उदर में पीड़ा होती है (क्योंकि यही सहानुभूति का स्थल होता है) तो वह सुधार करने के लिए निकल पड़ता है—सारी दुनिया का सुधार करने के लिए। स्वयं सृष्टि का सूक्ष्म रूप होने के कारण वह इस बात का आविष्कार करता है (और यह एक सच्चा आविष्कार होता है, और वही स्वयं इसका आविष्कर्ता होता है) कि सारी दुनिया कच्चे सेब खाती जा रही है; उसकी निगाह में वास्तव में यह पृथ्वी का गोला ही कच्चा सेब है जिसके बारे में यह खतरा है (इसकी कल्पना ही भयकारी है) कि मानव-संतान उसे कच्चा ही कुतरकर खा लेगी। और तुरंत उसकी प्रखर परोपकार वृत्ति एस्किमो और पोटागोनियन आदि आदिम जातियों की खोज कर लेती है, भारत और चीन के जनाकीर्ण ग्रामों को आलिंगन में भर लेती है। इस प्रकार दया-धर्म के कर्मों से पूर्ण कुछ वर्ष बीतते हैं, और इस बीच शक्तियाँ उसके द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध करती जाती हैं; निस्सन्देह उसकी अपनी मंदाग्नि भी ठीक हो जाती है, और पृथ्वी के एक या दोनों गालों पर लालिमा छा जाती है, मानो अब वह पक रही हो, और जीवन का रूखापन फिर से नष्ट हो जाता है और फिर से उसमें आनन्द का रस आने लगता है। मैंने अपनी दुष्टता से किसी बड़े अपराध की कल्पना कभी नहीं की, अपने से बुरे आदमी को न मैंने कभी जाना है, न जानूँगा।

मेरा विश्वास है कि जो बात सुधारक को इतना दुःख देती है, वह अपने बंधुओं के कष्टों के प्रति संवेदना नहीं होती,बल्कि, भले ही वह परमात्मा का सर्वाधिक पुण्यवान् बेटा ही क्यों न हो, उसका व्यक्तिगत कष्ट होती है। इसे ठीक होने दीजिए, उसके ऊपर बसंत का आगमन होने दीजिए, उसके पलंग पर प्रातःकाल का उदय होने दीजिए, बस, वह अपने परोपकारी समाज से बिना क्षमा-याचना के ही विदा ले लेगा। तम्बाकू के प्रयोग के विरुद्ध उपदेश न देने के पक्ष में मेरा तर्क यह है कि मैंने कभी तम्बाकू का प्रयोग नहीं किया है; यह दण्ड तो उन लोगों को भुगतना पड़ेगा जो तम्बाकू छोड़ चुके हैं। हाँ, और बहुत सी चीजें हैं जिन्हें मैंने खाया है और जिनके विरोध में मैं भाषण दे सकता हूँ। यदि आप धोखे से भी कभी इन परोपकारों में से किसी के चक्कर में पड़ जाते हैं, तो जो कुछ आपका दाहिना हाथ करता है उसे अपने बाएँ हाथ पर भी जाहिर न होने दीजिए; यह जानने योग्य नहीं है। डूबते हुए को बचाइए

और अपने जूतों के फीते बाँधकर चल दीजिए।

संतों के संसर्ग से हमारे ढंग दूषित हो गए हैं। हमारी प्रार्थना की पुस्तकों में परमात्मा को सुरीले शाप देने और उसको सदा-सर्वदा सहन करते जाने की बात गूँजती रहती है। यह कहने की तबियत होती है कि संतों और उद्धारकों ने मानव की आशाओं को पुष्ट करने के बजाय उसके भय को ही कम करने की चेष्टा की थी। यह जो जीवन मिला है उसके प्रति सरल और अदम्य संतोष की भावना का उल्लेख उनमें कहीं भी नहीं लिखा है, उनमें परमात्ता की कोई स्मरणीय प्रशंसा नहीं मिलती। सफलता और स्वास्थ्य, चाहे वह मुझसे कितनी ही दूर, मुझसे कितना ही खिचा हुआ क्यों न दिखाई दे, उससे मेरा मंगल होता है; रोग और असफलता से मेरा अमंगल होता है, मुझे दुःख पहुँचता है, चाहे जितनी सहानुभूति मुझे उससे हो अथवा उसको मुझसे हो। तब फिर यदि हम वास्तव में किसी सच्चे रेड इंडियन औद्भिदिक, आकर्षक, अथवा प्राकृतिक ढंग से मानवता का पुनरुद्धार करना चाहते हैं, तो पहले हम स्वयं प्रकृति की ही भाँति स्वस्थ और सरल बनें, पहले से अपने ललाट पर असंतोष की छाया को हटा दें, अपने रोम-कूपों में थोड़ा जीवन भरें। दरिद्र लोगों का निरीक्षक बनने के लिए मत रुकिए, बल्कि संसार की विभूतियों में स्थान पाने का प्रयास कीजिए।

शिराज के शेखसादी ने 'गुलिस्ताँ' में लिखा है कि लोगों ने एक बुद्धिमान व्यक्ति से पूछा कि परमात्मा के बनाये हुए बहुत-से बड़े और छायादार वृक्षों में से किसी को भी 'आजाद' नहीं बताया जाता, सिवा 'सरो' वृक्ष के जिसमें कोई फल नहीं लगता, इसका क्या रहस्य है ? उसने उत्तर दिया, "हरेक वृक्ष की अपनी-अपनी फसल होती है, और अपनी-अपनी ऋतु होती है, जिसमें वह हरा-भरा रहता है और फूलता है; और इसके बाद वह सूख जाता है, कुम्हला जाता है; सरो का पेड़ सदा सम्पन्न रहता है, वह इन दशाओं से बँधा नहीं रहता। आजाद लोगों की भी यही प्रकृति होती है। जो क्षणिक है उसमें अपना मन मत रमा—क्योंकि खलीफाओं की जाति का अंत हो जाने पर भी दजला नदी बगदाद में हो कर बहती ही रहेगी; यदि तेरे हाथों बहुलता है तो खजूर के पेड़ की तरह दानशील बन, लेकिन अगर तेरे पास देने को कुछ भी नहीं है, तो सरो के पेड़ की तरह आजाद बन।"

२. मेरा वास-स्थान और मेरे जीवन का ध्येय

हम लोग जीवन के एक विशेष काल में, प्रत्येक स्थान के बारे में घर बनाने के सम्भावित स्थल के रूप में विचार करने के अभ्यस्त होते हैं। इस प्रकार, जहाँ मैं रहता हूँ उसके इर्द-गिर्द बारह मील की भूमि मैंने छान डाली है। कल्पना में मैंने, एक के बाद एक सारे खेतों का सौदा कर लिया है क्योंकि वे सब-के-सब बिकाऊ थे, और मुझे उनका मूल्य मालूम था। प्रत्येक किसान की भूमि पर मैंने विचरण किया है, उसके जंगली सेवों का स्वाद लिया है उसके साथ खेती-बाड़ी पर बातचीत की है, उसीके बताए हुए मूल्य पर, किसी भी मूल्य पर, उसका खेत खरीद लिया है और मन में ही उसको उसी किसान के पास गिरवी भी रख दिया है। कभी-कभी उसके बताए हुए मूल्य से भी अधिक दे डाला है--(सिवा दस्तावेज के सभी चीजें ले ली हैं—उसके शब्दों को ही दस्तावेज मान लिया है, क्योंकि बातचीत से मुझे बहुत प्रेम है) उस भूमि में खेती की है, और मुझे विश्वास है कि एक हद तक उस किसान के मन में भी बीज बो दिया है,और पर्याप्त समय तक आनन्द उठाने के बाद उसे उसीके पास छोड़ दिया है। इस अनुभव के कारण मेरे मित्र मुझे एक तरह से 'भूमि' का दलाल मानने लगे थे। जहाँ भी मैं बैठ जाता था, वहीं मेरे बस जाने की सम्भावना हो जाती थी और वह सारा भू-दृश्य तदनुसार मुझ से जगमगा उठता था। घर एक 'आसन' के सिवा और क्या है ?और यह ग्राम्य स्थल हो तो और भी अच्छा। कितने ही स्थलों को मैंने ढूंढ निकाला है, एक घर बनाने के लिए, जिसके बनने की फिलहाल कोई आशा नहीं है। इन स्थलों को कुछ लोग गांव से बहुत दूर मान लेते थे, लेकिन मेरी नजरों में गांव उन स्थलों से बहुत दूर है। मैं सोचता, हाँ, 'यहाँ मैं रह सकता हूँ' और मैं वहाँ एक घंटे तक रहता। इस एक घंटे में मैं वहाँ जाड़ा बिता देता था, गर्मियाँ बिता देता था। कल्पना में मैं देखता था कि जाड़ों में खाते पीते, और बसन्त ऋतु का आगमन देखते हुए मैं कैसे इस स्थान पर वर्ष-पर-वर्ष बिता दूंगा। इस प्रदेश के वासी चाहे जहाँ अपना घर बनावें, इस बात को वे निश्चय समझ लें कि उनसे पहले मैं वहाँ रह चुका हूँ।

केवल एक अपराह्णकाल पर्याप्त होता था, इस भूमि को फलों के बाग, उपवन, चरागाह आदि से सजा देने के लिए, और यह तय करने के लिए कि दरवाजे पर कौन-कौन-से सुन्दर 'ओक' (बंजु) और चीड़ के पेड़ खड़े रहने दिए जायँ, और किस स्थल से प्रत्येक कुम्हलाए हुए पेड़ की देख-भाल सबसे अच्छी तरह की जा सकती है। इसके बाद मैं इस भूमि को यों ही पड़ा रहने देता था, सम्भवतः परती छोड़ देता था, क्योंकि आदमी जिस संख्या में चीज़ों का अपरिग्रह करता है उसी अनुपात में वह सम्पन्न होता है।

मैं कल्पना में इतनी दूर तक बह जाता था कि अनेक खेतों के बारे में मुझे अस्वीकृति भी मिलती थी (और यह अस्वीकृति ही मैं चाहता था) किन्तु कभी भी वास्तव में भूमि पर कब्जा करके मैंने अपने हाथ नहीं जला डाले। वास्तविक भूमि-धारण के सबसे निकट जो मैं आया, वह तब, जब मैंने हौलवैल फार्म खरीद लिया, और बोने के लिए बीज छाँटने लगा, और सामान ढोने के लिए एक ठेला बनाने की सामग्री जुटा ली। लेकिन खेत के मालिक के दस्तावेज देने से पहले ही उसकी पत्नी ने (हरेक आदमी की पत्नी ऐसी ही होती है) अपना विचार बदल दिया और फिर उसने खेत को अपने ही पास रखना चाहा, और बदले में वह मुझे दस डालर देने को तैयार हो गया, ताकि मैं सौदा छोड़ दूँ। सच बात तो यह है कि मेरे पास कुल जमा १० सेंट ($\frac{१}{१०}$ डालर) थे और यह बताना मेरे गणित् की क्षमता के बाहर था कि मैं वह व्यक्ति हूँ कि जिसके पास केवल १० सेंट हैं या जिसके पास एक फार्म है अथवा १० डालर हैं, अथवा यह सभी कुछ है। जो भी हो, मैंने उसके १० डालर उसी के पास छोड़ दिए, और फार्म भी उसके पास रहने दिया, क्योंकि बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी—बल्कि उदारतापूर्ण जितने मूल्य में उसने मुझे फार्म बेचा था उतने ही मूल्य पर मैंने उसे वापिस दे दिया। साथ ही, वह निर्धन था इस लिए उसे १० डालर भेंट कर दिए और फिर भी मेरे पास १० सेंट, बीज और ठेला बनाने का सामान बाकी बच रहा। इस प्रकार मैंने अपनी गरीबी को ठेस पहुँचाए बिना ही रईसी कर डाली। किन्तु इस भूदृश्य को मैंने सँजोकर रख लिया है और तब से प्रति वर्ष इसकी उपज को बिना किसी गाड़ी की सहायता के ही ले आया करता हूँ। भूदृश्यों के बारे में तो मैं कह सकता हूँ कि—

जहाँ जहाँ कर दृष्टिपात

मैं नजरों को ठहराता,

उसका ही मैं भूप,
न कोई स्पर्धा को आता।

जो भी मैं 'देखता' हूँ उस सबका राजा हूँ,
मेरे अधिकार को चुनौती देने वाला कोई भी नहीं है।"

मैंने, अनेक बार, कवि को खेत के सबसे मूल्यवान अंश का उपभोग करके चले जाते देखा है जबकि भोला-भाला किसान यह सोचकर संतोष कर लेता है कि चलो वह केवल थोड़े-से जंगली सेब ही लेकर चला गया। बरसों तक खेत के स्वामी को पता भी नहीं चल पाता कि कवि ने उसके खेत को छन्दोबद्ध कर दिया है, सर्वोत्तम प्रकार की अगोचर बाड़ से घेर दिया है, उस पर कब्जा कर लिया है, उसका दूध निकाल लिया है, उसका मंथन करके, मक्खन लेकर उसके लिए केवल मखनिया दूध छोड़ दिया है।

हौलवैल फार्म में मेरे लिए सबसे आकर्षक वस्तुएँ ये थीं: इसका एकांत, क्योंकि यह गाँव से लगभग दो मील की दूरी पर स्थित था, निकटतम पड़ोसी के घर से आध मील दूर और सड़क और इस फार्म के बीच एक विस्तृत खेत पड़ता था; इसके एक ओर नदी का किनारा, जिसके बारे में इसके मालिक ने बताया कि वह अपने कुहरे के द्वारा तुषार से इसकी रक्षा करती है, यद्यपि इस संरक्षण का मेरे निकट कोई महत्त्व नहीं था; इसके घर और खलिहान का धूसर रंग और भग्नावस्था, तथा टूटी-फूटी बाड़ जो मेरे और इस फार्म के पिछले स्वामी के बीच अंतराल उपस्थित करती थी; खोखले और काई लगे सेब के पेड़ जिन्हें खरहों ने काट डाला था, जो यह बताते थे कि मेरे पड़ोसी किस प्रकार के होंगे। लेकिन सबसे बड़ा आकर्षण थी इस नदी में मेरी सबसे पहली यात्राओं की स्मृति, जब यह घर लाल मेपिल के सघन कुंज के पीछे छिपा हुआ था, जिसमें होकर कुत्तों के भौंकने की आवाज़ मुझे सुनाई देती थी। मैं इस फार्म को जल्दी ही खरीद लेना चाहता था जिससे उसके मालिक को सारी चट्टानों को निकलवा लेने का और सेब के पुराने खोखले पेड़ों को काट डालने का, और मैदान में जहाँ-तहाँ उगे हुए भूर्ज के नए पेड़ों को खा डालने का, अथवा संक्षेप में, कोई सुधार करने का मौका न मिल सके। इन सब चीज़ों का लाभ उठाने के लिए मैं इसे खरीद लेने को ऐटलस[1] की भाँति दुनिया को अपने कंधों पर

१. ऐटलस—किवदंती है कि अफ्रीका के मौरिटानिया प्रदेश के राजा ऐटलस ने पृथ्वी को अपने कंधों पर उठा लिया था।

उठा लेने को तैयार था (मुझे पता नहीं कि इसका क्या पारिश्रमिक उसे मिला) और वे सब काम करने को तैयार था जिनका और कोई प्रयोजन नहीं था सिवा इसके कि मैं इसका मूल्य चुका सकूँ और निःसंशय होकर इस पर कब्जा कर सकूँ, क्योंकि मैं बखूबी जानता था कि यदि मैं इसे जैसे-का-तैसा रहने दूँगा तो मुझे उस प्रकार की खूब लहलहाती फसल मिलेगी, जिस प्रकार की मैं चाहता हूँ। लेकिन हुआ वह जो मैं बता चुका हूँ।

तब, बड़े पैमाने पर खेती करने के बारे में, मैं जो कह सकता हूँ (और मैंने हमेशा बाग में ही खेती की है) वह यह है कि मैंने अपने बीज तैयार कर लिए थे। कुछ लोगों का विचार है कि बीज ज्यों-ज्यों पुराना होता जाता है त्यों-त्यों अच्छा होता जाता है। मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि समय अच्छे और बुरे बीज में भेद बता देता है, और अन्त में जब मैं अपने बीज बोऊँगा तो मेरे निराश होने की सम्भावना बहुत कम रह जायगी। लेकिन मैं अपने बन्धुओं से हमेशा के लिए एक बात कह देना चाहता हूँ—जहाँ तक सम्भव हो स्वतंत्र और बिना बँधे रहिए। यह बंधन खेत का हो या जेलखाने का, बात एक ही है; इसमें बहुत कम फ़र्क है।

कैटो, जिसका ग्रंथ 'De Re Rustica' ही मेरा 'कृषि ग्रंथ' है, कहता है, "यदि आपको कोई खेत खरीदना है तो उसे ध्यान में रखिए; नदीदेपन से खरीद मत डालिए; उसे भलीभाँति देखने में कोई कसर न रखिए। यह मत सोचिए कि उसका केवल एक चक्कर लगा आना ही काफी है। यदि वह अच्छा है तो जितनी अधिक बार आप वहाँ जायँगे, उतना ही अधिक आनन्द आपको उससे प्राप्त होगा।" मेरा खयाल है कि मैं अधीर होकर नहीं खरीदूंगा, बल्कि जब तक कि जीवित रहूँगा उसके चक्कर काटता रहूँगा और पहले इसमें दफ्न हो जाऊँगा ताकि अंत में इससे मुझे और भी अधिक आनन्द प्राप्त हो सके।

यह इस प्रकार का मेरा अगला प्रयोग था; मैं इसका अधिक विस्तार से वर्णन करना चाहता हूँ और सुविधा के लिए दो वर्षों के अनुभव को एक वर्ष में ही प्रस्तुत करूँगा। जैसाकि मैं कह चुका हूँ मेरा इरादा 'निराशा के प्रति' गीत लिखने का नहीं है बल्कि जैसे सुबह अपने अड्डे पर खड़ा होकर मुर्गा बाँग देता है, वैसे ही जोर से मैं आवाज़ लगाना चाहता हूँ, चाहे इससे केवल मेरे पड़ोसियों की नींद ही टूटे।

जब मैंने प्रथम बार वनवास प्रारम्भ किया, यानी वहाँ दिन-रात रहना प्रारम्भ किया (वह संयोगवश, स्वतन्त्रता दिवस ४ जुलाई, १८४५ को हुआ) तो मेरा मकान जाड़ों के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया था; केवल बरसात में ही उसमें संरक्षण मिल सकता था। न तो चिमनी लग पाई थी, न उस पर पलस्तर हुआ था, दीवारों के तख्ते भी एकसार नहीं किए गए थे, उसमें बड़ी-बड़ी दरारें थी जिनसे रात को ठंड आती थी। सीधी सफेद छिली हुई मेखों और रंदाफिरे किवाड़ों और खिड़की की चौखटों में सफाई और ताजगी दिखाई देती थी, खास तौर पर सुबह जब यह इमारती लकड़ी ओस से भीगी होती थी, और मैं यह कल्पना करता था कि दोपहर होते-होते इसमें से मीठा मीठा गोंद झरने लगेगा। मेरी कल्पना के लिए तो इस घर के ऊपर उषाकाल ही छाया रहता था और मुझे पहाड़ पर स्थित एक घर की याद दिलाता था, जहाँ मैं एक साल पहले गया था। यह एक हवादार, बिना पलस्तर किया हुआ घर था जिसमें यात्रा पर निकला हुआ कोई देवता आराम से ठहर सकता था, जहाँ देवी अपने वस्त्रों से भूमि बुहारती चल सकती थी। मेरे घर के ऊपर से जो हवाएँ गुजरती थीं वे ठीक वैसी ही होती थीं जो पर्वतों के शिखरों के ऊपर से बहती हैं, जो पार्थिव संगीत के केवल दिव्य अंशों को लिए रहती हैं। प्रातःकालीन वायु सदा ही बहती रहती है, सृष्टि की कविता अबाध गति से प्रवाहित रहती है, कमी है तो केवल उसे ग्रहण करने वाले कानों की। इस पृथ्वी के बाहर ही सभी जगह देवलोक है।

एक नाव के अतिरिक्त, इससे पूर्व मैं जिस एक-मात्र मकान का स्वामी रहा था वह एक तम्बू था, जिसका प्रयोग मैं कभी-कभी गर्मियों में सैर सपाटे के समय किया करता था, और अब भी वह लिपटा हुआ मेरे भण्डारगृह में पड़ा है। किन्तु वह नाव एक दूसरे के पास जाते-जाते समय की सरिता में बह गई है। अपने इर्द-गिर्द यह अपेक्षाकृत अधिक ठोस वासस्थान बनाकर मैंने इस संसार में बस जाने की ओर प्रगति कर ली थी। यह जो इतना हल्का-सा छाया हुआ ढाँचा था, वह एक प्रकार से मेरे चारों ओर एक प्रकार का स्फुटन था, बनाने वाले पर इसकी प्रतिक्रिया होती थी। यह कुछ-कुछ किसी चित्र की रूप-रेखा की भाँति विचारोत्तेजक था। हवाखोरी के लिए मुझे बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती थी, क्योंकि अन्दर के वातावरण की ताजगी में जरा भी कमी नहीं आई थी। भरी बरसात में भी, जिस स्थान पर मैं बैठता था वह इतना

घर के भीतर नहीं था जितना किवाड़ों के पीछे। हरिवंश में लिखा है, 'बिना पक्षियों का घर, बिना भुने मांस के समान होता है।' मेरा घर ऐसा नहीं था; अनायास ही मैं पक्षियों का पड़ोसी बन गया था, उनको बंदी बनाकर नहीं, बल्कि अपने-आपको उनके निकट एक पिंजरे में रखकर। मैं न केवल उन्हीं पक्षियों के निकट पहुँच गया था जो साधारणत: बाग-बगीचों में रमते हैं, बल्कि सारिका, वन-गौरैया, वियरी, टैनेजर, विह्प-पूअर-विल[1] तथा और भी अनेक पक्षियों के सहवास में पहुँच गया था, जो अपेक्षाकृत वन्य होते हैं तथा वन को अधिक पुलकित करने वाले गायक होते हैं। ग्रामवासियों को ये पक्षी अपने संगीत का आनन्द कम ही प्रदान करते हैं।

एक छोटी-सी झील के किनारे, कौंकर्ड ग्राम से लगभग डेढ़ मील दक्षिण में उससे कुछ अधिक ऊँचाई पर, उसके और लिंकन नगर के बीच वाले विस्तीर्ण वन में मेरा स्थान था। यह हमारे एकमात्र यश-प्राप्त 'कौंकर्ड युद्ध-क्षेत्र' से दो मील दक्षिण में था। लेकिन चारों ओर इतना घना जंगल था कि लगभग आध मील की दूरी पर, अन्य स्थलों की भाँति, सघन वन से घिरा किनारा ही मेरा दूरतम क्षितिज था। प्रथम सप्ताह में, जब भी मैं इस सरोवर की ओर देखता तो वह मुझे किसी पहाड़ के ढाल पर अवस्थित एक छोटी-सी झील-सा लगता था जिसकी तली दूसरी झीलों की सतह से भी कहीं अधिक ऊँचाई पर हो; और ज्यों-ज्यों सूरज उगता था त्यों-त्यों मुझे प्रतीत होता था मानो यह झील धुँध की अपनी रात्रिकालीन सज्जा उतारकर फेंक रही हो और इधर-उधर क्रम से इसकी कोमल उर्मियाँ खुल रही हों अथवा इसकी चिकनी, प्रतिबिम्बित सतह अनावृत हो रही हो, और धुँध चुपचाप सभी दिशाओं से दुबककर वन में घुस रहा हो, मानो प्रेतों की कोई नैश सभा भंग हुई हो। पहाड़ों के पार्श्व की भाँति ही ओस की बूँदें भी बहुत देर तक पेड़ों पर लटकती दिखाई देती थीं।

अगस्त के महीने में, मेह-तूफान के अंतराल में, जब हवा और मेह दोनों शांत हो जाते और मेघाच्छादित आकाश के नीचे तीसरे पहर ही संध्या की नीरवता छा जाती, तथा सारिका गाती और उसका संगीत इस किनारे से उस किनारे तक गूँज उठता, उस समय इस छोटी-सी झील के पड़ोस का मूल्य सबसे अधिक प्रतीत होता था। इस प्रकार की झील ऐसे ही समय में सबसे अधिक शांत रहती है। ऊपर का वातावरण उथला और मेघश्याम होने के कारण, जल,

१. अमेरिका के पक्षी

प्रकाश और छाया से परिपूर्ण होकर स्वयं इस पृथ्वीतल का आकाश बन जाता है—ऊपर वाले आकाश से भी अधिक गरिमामय। पास की पहाड़ी की चोटी से, जहां का जंगल हाल ही में साफ कर दिया गया था, झील के पार, दक्षिण दिशा में, किनारे पर स्थित पहाड़ियों की विस्तृत घाटियों में होकर, बहुत दूर तक वृक्षावली का मनोरम दृश्य दिखाई देता था और प्रतीत होता था कि इन पहाड़ियों के बीच में वनाच्छादित घाटी में होकर कोई नदी बह रही है—किंतु नदी यहां थी नहीं। उस दिशा में, पास की हरी-भरी पहाड़ियों के ऊपर से और उनके बीच में से मुझे दूर तक कुछ ऊँची पहाड़ियों की क्षितिज को छूती हुई, नीलाभ चोटियाँ भी दिखाई देती थीं। और वास्तव में, पंजों के बल खड़े होने पर, और भी सुदूरवर्ती और नीली पर्वत-श्रेणियों (स्वर्ग की खास टकसाल में ढले नीले सिक्कों) की चोटियों की झलक उत्तर-पश्चिम दिशा में दिखाई दे जाती थी। साथ ही गांव का भी कुछ भाग दृष्टिगोचर होता था। लेकिन इसी स्थान से अन्य दिशाओं में, चारों ओर के जंगल के सिवा कुछ भी नहीं दिखता था। पृथ्वी को उल्लसित करने के लिए, उसे उतराने के लिए पड़ोस में एक जलाशय होना आवश्यक है। छोटे-से-छोटे कुएं का भी एक महत्त्व यह है कि जब आप उसमें झाँकते हैं तो आप देखते हैं कि यह पृथ्वी महाद्वीप नहीं एक द्वीप है। यह बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी यह कि इसके जल से मक्खन ठंडा बना रहता है। इस चोटी से जब मैं झील के पार सैंडबरी चरागाह की ओर देखता, जो बाढ़ के दिनों में कदाचित् उफनती हुई घाटी में मरीचिका के कारण ऊँचा उठा हुआ दिखाई देता था (पात्र में पड़े हुए सिक्के की भाँति) तो उस पार की सारी भूमि ऐसी प्रतीत होती थी मानो कोई पतली सतह इस जल की छोटी-सी पट्टी पर उतरा रही हो। यह चीज़ मुझे याद दिलाती थी कि जिस भूमि पर मैं रहता हूँ, वह केवल शुष्क भूमि है, सागर नहीं।

यद्यपि मेरे दरवाजे से दिखाई देने वाला दृश्य और भी संकीर्ण था, तो भी मुझे ज़रा भी महसूस नहीं होता था कि मैं घिरा हुआ हूँ या कैद में हूँ। मेरी कल्पना के विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र था। दूसरे किनारे का झाड़ीदार बलूत के वृक्षों वाला निचला पठार पश्चिम के मैदानों तक और टार्टरी के स्टैपीज़[1] तक विस्तृत प्रतीत होता था, जिसमें सभी घुमक्कड़ मानवपरिवारों के लिए यथेष्ट स्थान था। अपने पशुधन के लिए नए चरागाहों की

---

१. Steppes—वृक्षहीन विस्तृत क्षेत्र

आवश्यकता होने पर दामोदर ने कहा था, "संसार में केवल वही लोग सुखी हैं, जो विस्तृत क्षितिज के अबाध आनन्द का उपभोग करते हैं।"

काल और स्थान दोनों में परिवर्तन हो गया था, और मैं विश्व के उन प्रदेशों और युगों के अधिक निकट वास करने लगा था जो मुझे सबसे अधिक आकर्षित करते रहे थे। जहाँ मैं रहता था वह स्थान उतना ही सुदूरवर्ती था जितने कि वे प्रदेश, जिनका अध्ययन खगोल-शास्त्री रात को किया करते हैं। हमारी प्रवृति है कि हम शोर-गुल, विघ्न-बाधाओं से दूर, आसन्दी नक्षत्र से परे, इस संस्थान के किसी सुदूरवर्ती, दिव्यतर भाग में किसी अलभ्य और आनन्दप्रद स्थान की कल्पना किया करते हैं। मैंने देखा कि मेरा घर वास्तव में सृष्टि से उतना ही दूर, किसी चिरनवीन पवित्र स्थल में अवस्थित था। यदि कृत्तिका अथवा वृष-भिका, रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्रों के समीपवर्ती भागों में बस जाना समुचित हो तो मैं कह सकता हूँ कि मैं वास्तव में उन्हीं प्रदेशों में पहुँच गया था—या जिस जीवन को मैं पीछे छोड़ आया था उससे उतनी ही दूर हो गया था जितनी दूर कि ये नक्षत्र हैं, इस स्थल की आभा की उतनी ही सूक्ष्म किरणें मेरे निकट तम पड़ोसी को दिखाई देती होंगी; केवल शशि-प्रभाहीन रात्रि को ही वह इसका दर्शन पा सकता होगा। ऐसा था सृष्टि का वह भाग जहाँ मैं बस गया था :

कहीं एक चरवाहा था
उत्तुंग विचारों वाला,
जैसे शैल-शिखर पर चरता,
उसका रेवड़ आला।

और उस चरवाहे के जीवन के बारे में हम क्या सोचेंगे जिसके पशु सदा उसके विचारों से अधिक ऊँचाई पर स्थित चरागाहों में विचरण करते हों?

प्रत्येक प्रातःकाल, मेरे लिए अपने जीवन को प्रकृति के समान ही सादा (और मैं कह सकता हूँ कि निर्दोष) बनाने का उल्लासमय आमन्त्रण बनकर आता था। मैं उषा का उतना ही निष्ठावान् उपासक रहा हूँ जितने कि यूनानी लोग। यह एक धार्मिक क्रिया थी, मेरे सर्वोत्तम कर्मों में से एक। कहा जाता है कि राजा चिंगथांग के स्नान करने के टब पर लिखा हुआ था, "प्रत्येक दिन पूरी तरह अपने-आपको नया बनाओ; यह काम फिर करो, बार-बार करो, हमेशा करते रहो।" मैं इस बात को समझ गया हूँ। प्रातःकाल वीर-युग को वापिस ले आता है। उषा काल में, जब मैं अपने सब दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर

बैठ जाता था, तब कमरे में एक अदृष्ट और कल्पनातीत यात्रा करने वाले मच्छर की धीमी भनभनाहट से भी मैं उतना ही प्रभावित होता था जितना कि यशोगान करने वाले किसी भी तूर्यनाद से। यह महाकवि होमर का मृत्यु-गीत होता था; प्रतीत होता था मानो वायु में प्रवाहित होकर कोई इलियड और ओडिसी, स्वयं अपने पर्यटन और आक्रोश के गीत गा रहा हो। इसमें कोई ब्रह्म-तत्त्व होता था, संसार की अनन्त शक्ति और उर्वरता का एक स्थायी विज्ञापन होता था जो तब तक चलता रहता था जब तक कि उसे रोक न दिया जाय। प्रातःकाल, दिवस का सबसे स्मरणीय काल, जागरण का काल होता है। इसी काल में हममें सबसे कम सुषुप्ति होती है, और कम-से-कम एक घंटे के लिए हमारा वह अंश जाग्रत हो उठता है जो दिन-रात के बाकी के सारे समय सोता रहता है। उस दिवस से कम ही आशा की जा सकती है (यदि आप उसे दिवस की ही संज्ञा देते हैं) जब हमारी अपनी प्रतिभा की देवी हमें नहीं जगाती, बल्कि कोई यन्त्रवत् नौकर हमें हिलाकर जगाता है जबकि फैक्टरी के भोंपू के स्थान पर दिव्य संगीत की तरंगों से युक्त अपनी नवार्जित शक्ति और आकांक्षा हमें नहीं जगाती, जब हम जिस जीवन में सोये थे उससे उच्चतर जीवन में नहीं जागते ताकि अंधकार भी फलप्रद हो सके और वह अपने-आपको ज्योति के समान ही कल्याणकारी सिद्ध कर सके। यदि किसी व्यक्ति के मन में यह विश्वास नहीं है कि दिवस के जिस अंश को उसने अपवित्र कर दिया है, उससे पूर्वभावी, उससे अधिक पवित्र, उषाकाल प्रत्येक दिन आता है, तो यही समझिये कि वह जीवन से निराश हो गया है, और पतन के अंधकारपूर्ण मार्ग पर चल रहा है। ऐन्द्रिक जीवन के अधिकांश विराम के बाद आदमी की आत्मा का बल्कि यों कहिए, इसके अंग का, प्रत्येक दिन कायाकल्प होता है और उसकी 'प्रतिभा' फिर से उसके जीवन को यथाशक्ति श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करती है। मैं तो कहूँगा कि सभी स्मरणीय घटनाएँ प्रातःकाल में और प्रातःकालीन वातावरण में ही घटित होती हैं। वेद कहते हैं, "सम्पूर्ण प्रज्ञा प्रातःकाल में जाग्रत होती है।" कविता और कला का, मानव के सबसे सुन्दर और स्मरणीय कृतित्व का समारम्भ इसी समय होता है। सारे-के-सारे कवि और सूरमा, मैम्नन[1] की भाँति उषा की संतान होते हैं और सूर्योदय काल में अपना संगीत

---

१. मैम्नन—यूनानियों के अनुसार 'मैम्नन' उषा की सन्तान है। सूर्योदय के समय जब वह अपने बच्चे का चुम्बन लेती है तो संगीत प्रवाहित हो जाता है।

प्रवाहित करते हैं। जिस व्यक्ति के स्फूर्तिमय और सशक्त विचार सूर्य के साथ गतिशील होते हैं, उसका तो सारा दिन ही एक शाश्वत प्रातःकाल होता है। घड़ी में क्या बजता है या लोगों के परिश्रम की कौन-सी दशा है, यह बात ज़रा भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब मैं जाग्रत होऊँ और मेरे अंतःकरण में प्रभात हो तभी प्रातःकाल। सुषुप्ति के निवारण का प्रयास ही नैतिक उत्थान होता है। लोग दिन-भर सोए नहीं रहते तो अपने दिवस का ठीक-ठीक हिसाब क्यों नहीं दे पाते ? वे गणित में इतने कमजोर नहीं होते। यदि वे दिन-भर ऊँघते न रहते तो कुछ-न-कुछ जरूर कर लेते। लाखों लोग शारीरिक श्रम के लिए पर्याप्त रूप से जाग्रत रहते हैं, किन्तु लाखों व्यक्तियों में केवल एक ही प्रभावशाली बौद्धिक श्रम के प्रति यथेष्ट जाग्रत रहता है और काव्यमय अथवा दिव्य जीवन के प्रति तो करोड़ों में केवल एक ! जागृति ही जीवन है। अभी तक मुझे किसी ऐसे व्यक्ति का दर्शन नहीं हुआ जो सम्पूर्णतया जाग्रत हो। मैं उसके मुखमण्डल की ओर ही कैसे देख पाता ?

हमें एक बात तो सीखनी चाहिए और वह यह है कि किसी यान्त्रिक उपकरण की अपेशा हम उषा काल की अनन्त प्रत्याशा के ही द्वारा पुनर्जाग्रत हों और अपने को जाग्रत बनाए रखें। प्रगाढ़ निद्रा में भी वह हमारा परित्याग नहीं करती। प्रयासपूर्वक अपने जीवन का उत्थान करने की जो संशयहीन क्षमता मानव में है, उससे अधिक उत्साहवर्द्धक कोई चीज मुझे ज्ञात नहीं। कोई विशेष चित्र बनाना या मूर्ति बनाना और इस प्रकार कुछ सुन्दर वस्तुओं का निर्माण कर लेना बड़ी चीज़ है लेकिन जिस माध्यम, जिस वातावरण के द्वारा हम देखते हैं उसीको चित्रमय बना देना, उसीको मूर्ति की भाँति गढ़ लेना उससे कहीं बड़ी चीज़ है, और यह काम नैतिक रूप से किया जा सकता है। अपने दिवस के प्रकार को ढाल लेना ही श्रेष्ठतम कला है। अपने जीवन को, विशद रूप से, अपने सर्वोत्तम क्षणों के चिन्तन को योग्य बनाने का काम प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं करना होता है। जिन तुच्छ बातों को हम सुनते रहते हैं, उन्हें यदि हम ग्रहण न करें या यों कहिए कि उनको खत्म ही कर डालें तो स्वयं देवतागण स्पष्ट रूप से हमें निर्देशित करेंगे कि यह काम कैसे किया जा सकता है।

मैंने वन की दिशा ग्रहण की, क्योंकि मैं विमर्शपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता था, जीवन के केवल सारभूत तथ्यों का ही सामना करना चाहता था, क्योंकि मैं देखना चाहता था कि जीवन जो कुछ सिखाता है उसे मैं सीख सकता

हूँ या नहीं; और साथ ही मैं नहीं चाहता था कि अन्तकाल आने पर मुझे पता लगे कि अरे मैं तो जीवित ही नहीं रहा। सजीव ही रहना इतना दुर्लभ है, इसलिए जो वास्तव में जीवन नहीं है, उसे मैं जीना नहीं चाहता था। साथ ही मैं तितिक्षा अर्थात् 'बुराई को उदासीन भाव में सहन करने का' प्रयोग भी नहीं करना चाहता था, जब तक कि वह अत्यन्त आवश्यक ही न हो। मैं तो गहराई से रहना चाहता था, जीवन की सम्पूर्ण मज्जा का रस लेना चाहता था, इतने शक्तिशाली ढंग से जीवित रहना चाहता था कि जो कुछ जीवन नहीं है उसे खेत में से उखाड़ फेंकूं; और इस खेत में खूब चौड़ाई तक बिना ठूँठ छोड़े हुए जमीन से मिलाकर, काटकर रास्ता बनाना चाहता था; जीवन को ठेलकर कोने में ले जाना चाहता था; उसकी खूब कुटाई करना चाहता था; ताकि यदि इसका सार-तत्त्व निकृष्ट प्रकार का साबित हो तो उसकी सम्पूर्ण और विशुद्ध निकृष्टता को ग्रहण कर लूँ और संसार के आगे इस निकृष्टता को प्रकाशित कर दूँ और यदि कोई महिमामयी वस्तु हो तो अनुभव से उसका ज्ञान प्राप्त कर लूँ और अपनी अगली यात्रा में उसका सही-सही विवरण दे सकूँ। कारण यह कि मुझे लगता है कि अधिकतर व्यक्ति जीवन के बारे में एक विचित्र प्रकार के अनिश्चय में डूबे रहते हैं, कि यह शैतान की कृति है या ईश्वर की, और कुछ उतावली में वे यह निष्कर्ष निकाल बैठते हैं कि संसार में मानव का मुख्य ध्येय 'परमात्मा की स्तुति करो और मौज उड़ाओ' है।

फिर भी हम चींटियों की भाँति बड़ी तुच्छता से रहते हैं; हालाँकि कथाओं के अनुसार बहुत पहले ही हमें मानव-योनि मिल चुकी है, कथा के बौनों की भाँति हम सारसों से लड़ते हैं। यह तो गलती-पर-गलती है, पैबंद-पर-पैबंद लगाने की भाँति है—जब हमारे सर्वोत्तम गुणों का नम्बर आता है तो उन्हें मिलती है केवल एक फालतू और परिहार्य हीनावस्था। हमारा जीवन छोटी-छोटी बातों में ही नष्ट हो जाता है। ईमानदार आदमी को तो मुश्किल से अपने हाथों की दस उँगलियों तक की गिनती गिनने की आवश्यकता होती है, और बहुत हो तो पैरों की दस उँगलियाँ और जोड़ लें, और बाकी सबको ढेर में पड़ा रहने दें। सादगी, सादगी, सादगी! मैं कहता हूँ सैकड़ों हज़ारों कामों में उलझने के बजाय अपने कामों की संख्या केवल दो-तीन रखिए। लाखों की संख्या का हिसाब-किताब रखने जगह केवल आधा दर्जन तक ही गिनिए और अपना हिसाब उँगलियों के पोरों पर रखिए। इस सभ्य जीवन

के सागर में इतने बादल और तूफान होते हैं, इसमें इतनी जबरदस्त दलदल है तथा और भी ऐसी ही हज़ारों चीजें हैं, कि यदि आदमी रसातल को नहीं चला जाना चाहता तो उसे बड़े हिसाब से रहना पड़ता है, और जो व्यक्ति इसमें सफल हो जाय वह वास्तव में महान् गणितज्ञ है। अपने जीवन को सरल बनाइए, सरल। दिन में तीन बार खाना खाने की जगह, यदि आवश्यक हो तो केवल एक बार ही खाइए। सौ पकवानों की जगह केवल पाँच रखिए और इसी अनुपात में सभी चीजों की संख्या कम कर दीजिए। हमारी जिन्दगी जर्मनी की छोटी-छोटी रियासतों से बनी 'कन्फेडरेसी' (प्रसंघ) की तरह है जिसकी कि सीमा-रेखा बदलती रहती है। फलतः जर्मनी निवासी भी नहीं बता सकता कि कब उसके देश की सीमा कहाँ है।[1] तमाम तथाकथित आँतरिक सुधारों के बावजूद भी (और वे सुधार केवल बाहरी और ऊपरी हैं) इस समूचे राष्ट्र की स्थिति एक ऐसे घर के समान है जो इतना बढ़ गया है कि सम्भालना मुश्किल हो गया है, साज सामानों के अटाले से घिरा, अपने ही द्वारा लगाए गए पिंजरे में फँसा, विलासिता, और अपव्यय तथा ठीक हिसाब और समुचित ध्येय की कमी के कारण दुर्दशाग्रस्त। ठीक ऐसी ही हालत उस देश के लाखों परिवारों की भी है। इन दोनों का केवल एक ही इलाज है, और वह है सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था, जीवन की कठोर सादगी और ऊँचा लक्ष्य। अभी वह बरबादी के रास्ते पर है। लोग सोचते हैं कि यह आवश्यक है कि 'राष्ट्र' व्यापार करे, बर्फ का निर्यात करे, तार से बातचीत करे, तीस मील फी घन्टे की रफ्तार से यात्रा करे; भले ही वे स्वयं कुछ करें या न करें; किन्तु हम लोग बन्दरों की तरह रहें या आदमियों की तरह, यह बात कुछ अनिश्चित-सी रहती है। यदि हम लोग 'स्लीपर' न बनावें, पटरियाँ न ढालें और दिन-रात इसमें न लगाकर केवल अपने जीवन को ढालकर सुधारते रहें तो फिर रेलवे लाइन कौन बिछावेगा? और यदि रेलवे लाइन न बन सकी तो हम ठीक समय पर स्वर्ग-लोक कैसे पहुँच सकेंगे? किन्तु यदि घर बैठकर हम अपना-अपना काम देखें, तो रेलवे लाइन की आवश्कता ही किसको होगी? हम रेल पर सवार नहीं होते, वह हमारे ऊपर सवार होती है। क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि रेल की पटरियों के नीचे बिछे हुए ये 'स्लीपर' क्या हैं? इनमें से प्रत्येक एक आदमी है, हाँ, आयरलैण्ड का

---

१. लेखक ने जर्मनी के एकीकरण से पूर्व की स्थिति की ओर इशारा किया है।

आदमी, अमरीका का आदमी। इन आदमियो के ऊपर रेल की पटरी विछा दी जाती है; उन्हें रेत से ढक दिया जाता है और रेल के डिब्बे उनके ऊपर वड़ी सुगमता से दौड़ते जाते हैं। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे सब-के-सव खूब गहरी नींद सोने वाले (Sound sleepers)[१] हैं। प्रत्येक कुछ वर्ष वाद एक नया ढेर विछा दिया जाता है और उसके ऊपर से रेल दौड़ती रहती है। नतीजा यह होता है कि यदि कुछ लोगों को रेल की सवारी का आनन्द प्राप्त होता है तो दूसरों को रेल के नीचे दवे रहने का दुर्भाग्य। इन 'स्लीपरों' (सोए हुए लोगों) में से किसी ऐसे के ऊपर से रेल गुजरती है जो सोते में भी चलता हो, (अर्थात् कोई अतिरिक्त 'स्लीपर' गलत जगह पर पहुँच जाता है) और वह जाग उठता है, तो लोग अचानक गाड़ी रोककर इतना हल्ला-गुल्ला मचाते हैं मानो कोई अनहोनी घटना घटित हो गई हो। मुझे यह जानकर वड़ी प्रसन्नता है कि इन 'स्लीपरों' (सोने वालों) को ठीक स्थान पर लिटाए रखने के लिए प्रत्येक पाँच मील पर कर्मचारियों की एक टोली नियुक्त करना आवश्यक है। यह इस वात का सूचक है कि किसी समय वे फिर से उठ खड़े होंगे।

हम इतनी उतावली, जीवन की इतनी तवाही में क्यों रहते हैं? हमने तो मानो भूख लगने के पहले ही भूखों मर जाने का निश्चय कर लिया है। कहावत है कि जरा-सा कपड़ा फटते ही, ठीक समय पर एक टाँका लगा देने से नौ टाँकों की वचत हो जाती है—इसलिए लोग कल के नौ टाँके बचाने के लिए आज ही सैकड़ों टाँके लगा डालते हैं। जहाँ तक 'काम' का सवाल है, एक भी महत्त्वपूर्ण काम हमारे पास नहीं है। हमें तो नर्त्तन-व्याधि ने घेर लिया है—क्षण-भर को शांत नहीं रह पाते। यदि मैं यहाँ के घंटाघर के घंटे की रस्सी को कुछ झटके दे दूं, जैसे आग लगने पर दिये जाते हैं, अर्थात् घंटे को सीधा न करूँ, तो कौंकर्ड के आस-पास खेतों पर कोई भी आदसी ऐसा नहीं वचेगा जो अपनी व्यस्तता के भार (जिसका उसने सुवह ही अनेक वार वहाना किया होगा) के होते हुए भी दौड़ता न आवे; मैं तो कह सकता हूँ कि स्त्री और वच्चे तक सव अपना काम छोड़-छोड़कर इस आवाज की ओर दौड़े चले आयेंगे। ध्यान देने की वात है कि हमने आग नहीं लगाई और वे सव-के-सब दौड़े आयेंगे सम्पत्ति को वचाने के मुख्य ध्येय से नहीं, वल्कि यदि हम ईमान-

१. शब्द में श्लेष है। अर्थ सोने वाला, और शहतीर।

दारी से कहें तो, उसके जलने का तमाशा देखने के लिए (क्योंकि वह तो जलेगी ही) अथवा उसका बुझना देखने के लिए, और यह अगर सुन्दर ढंग से हो रहा हो तो उसमें मदद करने के लिए। चाहे गिरजाघर ही क्यों न जल रहा हो, होगा यही। खाना खाने के बाद आदमी मुश्किल से आधा घंटे की नींद लेगा और जागेगा तो सिर उठाकर पूछेगा, 'क्या खबर है?' मानो सारी दुनिया के बाकी लोगों ने चौकसी करने का ठेका ले रखा है। निस्संदेह इसी प्रयोजन से कुछ लोग आध-आध घंटे पर जगाए जाने का हुक्म दे देते हैं, और फिर जागने पर मानो पारिश्रमिक के रूप में, यह बताते हैं कि उन्होंने सपने में क्या देखा। और रात-भर सोने के बाद तो 'खबर' उतनी ही जरूरी हो जाती है जितना कि नाश्ता। 'इस पृथ्वी पर किसी भी आदमी के साथ अगर कोई नई घटना घटित हुई हो, मुझे मेहरबानी करके बता दीजिए।' काफी और नाश्ते के साथ वह पढ़ता है—आज सुबह वाचिटो नदी के किनारे एक आदमी ने अपनी आँखें निकलवा डालीं, और स्वप्न में भी उसे विचार नहीं आता कि वह स्वयं इस दुनिया की अँधेरी, अगाध, विराट् गुफा में रहता है और उसकी अपनी आँखें नितांत अविकसित दशा में हैं।

मेरा काम तो डाकघर के बिना बड़ी आसानी से चल जाता है। मैं समझता हूँ कि बहुत ही कम संख्या में महत्त्वपूर्ण संवाद इसके द्वारा भेजे जाते हैं। आलोचनात्मक ढंग से कहूँ तो जिन्दगी-भर में मैंने जो पत्र प्राप्त किये हैं उनमें ऐसे पत्रों की संख्या एक-दो से अधिक नहीं होगी जो डाक के टिकट के मूल्य के योग्य हों। यह बात मैंने कई वर्ष पूर्व लिखी थी। मज़ाक में लोग एक-दूसरे के विचारों के मूल्य के रूप में 'पैनी'[1] देने की बात कहते हैं, और उसे बचा ले जाते हैं। यही 'पैनी' आप गम्भीरतापूर्वक डाक के टिकट द्वारा प्रदान कर देते हैं। और मुझे पूरा विश्वास है कि आज तक अखबार में मैंने कोई भी स्मरणीय समाचार नहीं पढ़ा। यदि हमने एक बार यह खबर पढ़ ली है कि एक आदमी लुट गया, या मारा गया या दुर्घटनाग्रस्त हो गया, या एक घोड़ा आग में जल गया, या कोई जहाज टकराकर टूट गया, कोई स्टीमर फट गया, या एक गाय पश्चिमी रेलवे-लाइन पर कट गई या किसी पागल कुत्ते को मार दिया गया, या जाड़े के दिनों के मौसम में बहुत-से टिड्डे इत्यादि—तो दूसरी खबर पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। एक ही बहुत काफी है। यदि आप सिद्धान्त से

१. 'पैनी'—छोटा सिक्का

परिचित हैं तो हजारों उदाहरणों की चिन्ता क्यों ? जिसे आप 'खबर' कहते हैं, वह दार्शनिक के लिए तो कोरी बकवास है, और जो लोग इसे छापते या पढ़ते हैं वे सब चाय पर बैठकर बातचीत करती हुई वृद्धाएँ हैं। फिर भी इन बकवास-लोलुप व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है। मैंने सुना है कि अभी उस दिन ताज़ी-से-ताज़ी खबर जानने के लिए एक कार्यालय में इतनी भीड़-भाड़ हुई कि धक्का-मुक्की में उस इमारत के कितने ही बड़े-बड़े शीशे टूट गए। और यह खेल हुआ उस खबर को जानने के लिए जिसे कोई भी प्रत्युत्पन्न मति वाला व्यक्ति बारह महीने अथवा बारह साल पहले ही लिखकर दे सकता था और वह काफी अंशों में सही होती। उदाहरण के लिए स्पेन को ही लीजिए। 'स्पेन के समाचार' शीर्षक के नीचे यदि आप समय-समय पर सही अनुपात में डान काल और इन्फैंटा, डान पेड्रो से विल, और ग्रेनाडा की चर्चा करते रहें (जब मैंने अखबार देखा था तब से शायद नाम कुछ बदल गए हों) तथा जब कोई और मनोरंजन न हो तो साँडों की लड़ाई का वर्णन देते रहें, तो यह अक्षरशः सही वृत्तांत होगा और हमें स्पेन की दशा या उसकी दुर्दशा का उतना ही सही अन्दाज़ा मिल जाएगा, जितना अखबार के किसी भी विस्तृत संवाद से। इंग्लैंड की बात लीजिए; वहाँ से आने वाली पिछली सबसे महत्त्वपूर्ण खबर थी सन् १६४६ की क्रांति के बारे में। और यदि आपने उस देश की औसत साल की सफल का वृत्तांत पढ़ लिया है तो उसे दुबारा पढ़ने की जरूरत नहीं, हाँ आप सट्टे का व्यापार करते हैं तो बात दूसरी है। जो व्यक्ति बहुत कम अखबार पढ़ता है, वह यदि देखे तो पता चलेगा कि विदेशों में कोई भी नई घटना घटित नहीं होती, फ्रांस की राज्यक्रांति भी इसका अपवाद नहीं है।

क्या खबर है ! इससे कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है उस बात को जानना जो कभी भी पुरानी नहीं होती। 'वाई' राज्य के एक उच्चाधिकारी क्यू हे थू ने खुंग-त्सू के पास एक आदमी को समाचार लाने के लिए भेजा। खुंग-त्सू ने संदेशवाहक को अपने पास बैठा लिया और पूछा : "तुम्हारे स्वामी आजकल क्या कर रहे हैं ?" संदेशवाहक ने आदरपूर्वक उत्तर दिया, "मेरे स्वामी अपने दोषों की संख्या कम करना चाहते हैं, किन्तु उनका कोई अन्त ही नहीं आता।" संदेशवाहक के चले जाने के बाद इस दार्शनिक ने कहा, "कितना सुयोग्य है यह संदेशवाहक, कितना बुद्धिमान है वह।" रविवार, जो आराम

करने का दिन होता है, वह सप्ताह-भर तक समय का दुरुपयोग करने का यथोचित अंत होता है, नए सप्ताह की ताजगी और बहादुरी से भरा प्रारम्भ नहीं। इस दिन ऊँघते हुए किसानों के कानों में गन्दे, लिथड़ते हुए उपदेश भरने के बजाय पादरी को गरजकर घोषित करना चाहिए, "रुको! थमो! तुम जो इतनी तेजी से बढ़ते दिखाई देते हो, इतने धीमे क्यों हो ?"

लोग भ्रम और नकली चीजों को वास्तविक सत्य समझ बैठते हैं और यथार्थ को असत्य मान लेते हैं। यदि लोग निरन्तर वास्तविकताओं पर ही नज़र रखें और अपने-आपको भ्रम में न फँसने दें तो जीवन परियों की कहानी और अलिफ लैला के किस्सों की भाँति का हो जाय। हमारी जानकारी की चीजों में किसी से यदि उसकी तुलना हो सकती है तो इन्हीं किस्सों से। जो अपरिहार्य है, और जिसको अस्तित्व का अधिकार है, यदि हम केवल उसीका आदर करें तो हमारी गलियाँ और सड़कें काव्य से गुंजायमान हो जायँ। जब हम धैर्यपूर्वक बुद्धिमानी से देखते हैं, तो पता चलता है कि स्थायी और निर्विकल्प अस्तित्व तो केवल महान् और महत्त्वपूर्ण चीजों का ही है, बाकी, तुच्छ भय और तुच्छ आनन्द वास्तविकता की केवल छाया-मात्र हैं। यह बात सदा शक्तिप्रद और महिमामयी होती है। आँखें मूँदे रहने से, सोते रहने से, केवल जो दिखाई देता है उससे भ्रमित होते रहने से, लोग अपने जीवन को यांत्रिकता और आदतों का जीवन बना लेते हैं जो स्वयं विशुद्ध भ्रम पर आधारित होता हैं। बच्चे, जिनके लिए जीवन केवल एक खिलवाड़ होता है, उसके वास्तविक नियमों और सम्बन्धों को उन आदमियों की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से पहचानते हैं, जो जीवन को समुचित ढंग से निवाहने में असफल हो जाते हैं, किन्तु फिर भी यह समझते हैं कि 'अनुभव' (अर्थात् असफलता) के कारण वे अधिक बुद्धिमान हो गए हैं। एक हिन्दू ग्रंथ में मैंने पढ़ा है, "एक राजपुत्र को शैशव काल में ही जन्मभूमि से निर्वासित कर दिया गया था। उसका पालन-पोषण एक वनवासी ने किया था। इस प्रकार बड़े होने पर वह अपने को उन्हीं जंगली जातियों का सदस्य समझने लगा जिनमें वह रहता था। उसके पिता के एक मंत्री ने पहचानकर उसे बताया कि वह वास्तव में कौन है। तब कहीं उसके भ्रम का निवारण हुआ, और उसे भान हुआ कि वह राजकुमार है। इसी प्रकार आत्मा जिन परिस्थितियों में रहती है, उनके कारण अपने-आपको पहचान नहीं पाती जब तक कि गुरु के द्वारा उसे वास्त-

विकता का ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता। इस ज्ञान-प्राप्ति के वाद ही वह जान पाती है कि वह 'ब्रह्म' है।'' मैं देखता हूँ कि हम, न्यू इंग्लैण्ड के निवासी इतना निकृष्ट जीवन केवल इसलिए व्यतीत करते हैं कि हमारी दृष्टि सतह को भेद-कर गहराई तक नहीं पहुँच पाती। हम समझ लेते हैं कि जो 'सत्'-जैसा दिखाई देता है वह 'सत्' ही है। आप सोचते हैं कि यदि कोई व्यक्ति इस नगर में घूमे और केवल वास्तविकता ही देखता फिरे तो 'मिल की टंकी' को स्थान कहाँ मिलेगा ? जो कुछ वास्तविकता उसने देखी है, उसका यदि वह वर्णन करे तो उसके वृत्तांत में हम उस स्थान पर ध्यान नहीं देंगे। सभा-भवन या न्यायालय, या जेल या दूकान, या रहने के घर आदि पर नजर दौड़ाइए, और वताइए कि सच्ची दृष्टि के आगे वे वास्तव में क्या हैं—वस आपके वर्णन में वे सव-के-सव ध्वंस हो जायँगे। लोग समझते हैं कि सत्य कोई वहुत दूर की, इस संस्थान के छोर की, दूरतम तारे के उस पार की, आदम के पूर्व और अंतिम मनुष्य के वाद की वस्तु है। वास्तव में 'अनंत' में भी कुछ 'सत्य' है महिमामय है, किन्तु ये सभी स्थान, काल, अवसर आदि यहीं पर हैं, अभी इसी क्षण हैं। स्वयं ईश्वर का महत्तम रूप वर्तमान में ही प्रकट होता है—सभी युगों के वीत जाने पर भी वह और अधिक दिव्य नहीं हो जायगा। जो कुछ महिमामय है, श्रेष्ठ है उसे ग्रहण करने की शक्ति हमें मिलती है केवल अपने चारों ओर की वास्तविकता को निरन्तर अपने-आप में उँडेलते रहने से उसे पीते रहने से। विश्व हमारी धारणाओं का निरन्तर वड़ी आज्ञाकारिता से अनुमोदन करता रहता है—हम मंद गति से चलें या तेजी से, रास्ता हमारे लिए तैयार मिलता है। आइए, तव फिर हम अपना जीवन कल्पना करने में वितायें। किसी भी कवि या कलाकार ने अभी तक इतनी सुन्दर और श्रेष्ठ आकृति की कल्पना नहीं की है जिसकी निष्पत्ति उसकी भावी संतति के कम-से-कम कुछ लोग न कर सकें।

आइए, हम अपना एक दिन प्रकृति के समान ही संकल्पपूर्वक वितायँ और छोटी-मोटी वाधा से पथभ्रष्ट न हों। प्रातःकाल जल्दी उठें और शांत भाव से विना किसी विक्षोभ के व्रत रखें (या व्रत तोड़ें), लोगों को आने-जाने दीजिए, वच्चों को रोने दीजिए, घंटों को वजने दीजिए, दिन को वास्तव में दिन वना लेने का निश्चय कर लीजिए। हम अपने पैर उखाड़कर प्रवाह में क्यों वहने लगें ? मध्याह्न के उथले जल में 'भोजन' नाम की जो प्रचण्ड भँवर स्थित है

उसके चक्कर में हम न पड़ें। इस खतरे से बच जाने पर आप सर्वथा सुरक्षित होंगे, क्योंकि बाकी का प्रवाह सुगम है। अपने स्नायुओं को ढीला किये बिना, प्रातःकालीन स्फूर्ति के साथ, मुँह फेरकर, मस्तूल से बँधे हुए यूलिसीज की भाँति इसे पार कर जाइए। यदि एंजिन सीटी देता है, तो उसे गला फट जाने तक सीटी देने दीजिए। यदि घंटा बजता है तो हम क्यों दौड़ पड़ें? हम यह विचार करेंगे कि किस प्रकार के संगीत से उनकी तुलना की जा सकती है। हम स्थिर होकर खड़े हो जायँ। समय की धारा ने मिट्टी ला-लाकर सारे संसार की सतह पर जनमत की, और पूर्वग्रह की, और रूढ़ियों और भ्रम की और ढोंग की जो दलदल बिछा दी है उसमें, और लंदन और पैरिस में न्यूयार्क और बोस्टन और कौंकर्ड में, चर्च और राज्य में, काव्य, दर्शन और धर्म में, हम अपने पैर दृढ़तापूर्वक धँसाते चले जायँ जब तक कि वे यथार्थ की ठोस चट्टानी भूमि पर न जा टिकें, और हम कह उठें, 'हाँ यह है—इनमें कहीं कोई त्रुटि नहीं।' अग्नि, तुषार और बाढ़ के नीचे के इसी ठोस स्थल पर नींव डालिए। यहाँ आप निश्चिन्त होकर दीवार की या राज्य की नींव रख सकते हैं, चाहें तो प्रकाश-स्तम्भ खड़ा कर सकते हैं, या यथार्थ का मापदंड खड़ा कर सकते हैं ताकि आने वाले युगों को पता लग सके कि कालांतर में यहाँ ढोंग और दिखावट की कितनी मोटी तह जम गई थी। यदि आप किसी तथ्य के सामने खड़े होकर उसकी ओर देखेंगे तो तलवार की तरह उसकी दोनों ही सतहों पर सूर्य की चमक दिखाई पड़ेगी, और आपको अनुभव होगा कि उसकी पैनी धार आपके हृदय और मज्जा तक को चीर रही है, और इस प्रकार आपके नश्वर जीवन का सुखमय अंत हो जाएगा। मृत्यु हो, जीवन हो, हमें तो केवल यथार्थ ही चाहिए। यदि वास्तव में हमारी मृत्यु हो रही है तो हम अपने गले की घर्राहट सुनें और अपने हाथ पैरों के ठंडेपन का अनुभव करें; यदि हम जीवित हैं तो अपने काम में लगें।

समय केवल एक सरिता है जिसमें मैं मछलियाँ पकड़ता हूँ। मैं उसका जल पीता हूँ; किन्तु उसके जल का पान करते समय मैं उसकी रेतीली तली को देखता हूँ और जान लेता हूँ कि वह कितनी उथली है। इसकी पतली धारा निरन्तर प्रवाहित होती चली जाती है किन्तु अनंत बाकी रहता है। मैं और भी छककर पिऊँगा, मैं आकाश में बंसी डालूँगा जिसके तलभाग में सितारों के कंकड़ बिछे हुए हैं। इनमें से एक को भी गिन लेने की क्षमता मुझमें नहीं

है। उस वर्णमाला के प्रथम अक्षर का भी ज्ञान मुझे नहीं है। मुझे सदा यह पश्चात्ताप रहा है कि मैं अपने जन्म-दिन के समान ही बुद्धिमान नहीं रहा हूँ। बुद्धि एक तीक्ष्ण धार वाली छुरी है, वह वस्तुओं के रहस्य को खोलकर रख देती है। मैं अपने हाथों के काम में केवल उतना ही व्यस्त रहना चाहता हूँ जितना नितांत आवश्यक हो, उससे अधिक नहीं। मेरा मस्तिष्क ही मेरे हाथ-पैर हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि उसीमें मेरी सारी, मेरी सर्वोत्तम क्षमता केन्द्रित है। मेरी अंतर प्रकृति मुझे बताती है कि जिस प्रकार कुछ जानवर अपनी थूथन और पंजों की सहायता से मिट्टी खोदकर मांद बनाते हैं, उसी प्रकार मेरा मस्तिष्क भी मेरा खोदने का अंग है, उसकी सहायता से मैं इन पहाड़ियों में खोदकर अपनी मांद बनाऊँगा। मैं समझता हूँ कि यहीं कहीं वह सम्पन्नतम स्थल है जिसमें सबसे अधिक मूल्यवान पदार्थ दबा पड़ा है। मेरा अन्वेषणदण्ड[1] मुझे यही बताता है, ऊपर उठती हुई हल्की-फुल्की भाप से मुझे यही पता चलता है। और यहीं मैं खोदना प्रारम्भ करूँगा।

---

१. भूगर्भ में जल और खनिज पदार्थों का पता बताने वाला यंत्र।

३. अध्ययन

यदि लोग अपनी वृतियों का चुनाव करने में थोड़ा और विचार से काम लें तो शायद सभी लोग मूलतः विद्यार्थी और पर्यवेक्षक हो जायँगे, क्योंकि निश्चय ही सभी लोगों को अपनी प्रकृति और नियति में दिलचस्पी होती है। अपने लिए अथवा अपनी संतति के लिए सम्पत्ति इकट्ठी करते समय, परिवार अथवा राज्य की स्थापना करते समय, यहाँ तक कि यश अर्जित करते समय भी हम मरणशील ही रहते हैं। किन्तु 'सत्य' में संलग्न रहने के समय हम अमर हो जाते हैं—वहाँ हमें न परिवर्तन का भय होता है, न किसी दुर्घटना का। प्राचीनतम हिन्दू अथवा मिस्री दार्शनिक ने दिव्यत्व की मूर्ति के मुख के आवरण का एक कोना उठाया था, और अब तक यह कम्पित वस्त्र उठा हुआ है; उसकी कांति मुझे उतनी ही अभिनव दिखाई देती है जितनी कि उस प्रथम दार्शनिक को दिखाई दी होगी। क्योंकि उस समय उस दार्शनिक में समाहित था मैं स्वयं, जो उस काल में इतना साहसिक था, और मुझमे वह दार्शनिक समाहित है जो अब इस मूर्ति का दर्शन करता है। इस आवरण पर तनिक भी धूल नहीं जमी है; जब से यह दिव्यत्व प्रकट हुआ तब से समय बीता नहीं है, जहाँ का तहाँ है। जिस समय का हम पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, अथवा जिसका लाभ उठाया जा सकता है, वह न गत होता है, न आगत और न अनागत।

मेरा निवास-स्थान, चिंतन के दृष्टिकोण से ही नहीं वल्कि गम्भीर अध्ययन के दृष्टिकोण से भी, किसी भी विश्वविद्यालय से अधिक उपयुक्त था। यद्यपि मैं सामान्य पुस्तकालयों के क्षेत्र के वाहर आ गया था, तथापि सवसे अधिक यहीं पर मैं उन महान् ग्रन्थों के प्रभाव में आया जो संसार-भर में प्रचलित हैं, जिनके वाक्य पहले-पहल पेड़ों की छाल पर लिखे गए थे और अब समय-समय पर कागज पर जिनकी प्रतिलिपि-मात्र कर दी जाती है। मीर कमरुद्दीन 'मस्त' नाम के शायर ने कहा है, "एक ही स्थान पर बैठकर सारे आध्यात्मिक संसार की यात्रा का लाभ मुझे ग्रन्थों में मिला है। शराब के एक ही प्याले से मदहोश हो जाने के आनन्द का अनुभव मुझे रहस्यवादी सिद्धान्तों की शराब पीने में हुआ है।" गर्मियों भर होमर के महाकाव्य 'ईलियड' की एक प्रति मेरी मेज़

पर रखी रही थी, हालाँकि मैं कभी-कभी ही उसका एक-दो पृष्ठ पढ़ता था। मैंने अपना घर तैयार किया और साथ ही अपने हाथों से सेम के खेत की गोड़ाई भी की---इसलिए, प्रारम्भ में, शारीरिक श्रम के कारण इससे अधिक अध्ययन मेरे लिए असम्भव था। फिर, भी भविष्य में इस प्रकार के अध्ययन की आशा से मैंने अपने-आपको पोषित किया। अपने काम के बीच-बीच में एक-दो यात्रा-सम्बन्धी हल्की-फुल्की किताबें भी पढ़ीं, लेकिन इससे मैं अपने-आप पर शर्मिन्दा हो उठा और मैंने अपने से पूछा कि स्वयं 'मैं' कहाँ पर हूँ।

विद्यार्थी यदि होमर अथवा ईस्किलस के ग्रंथों का अध्ययन ग्रीक भाषा में ही करे तो शक्ति के अपव्यय का और विलासिता का खतरा नहीं उठायेगा, क्योंकि ऐसा करने में एक सीमा तक वह उनके नायकों का अनुसरण करेगा और अपना प्रातःकाल का समय इन ग्रंथों के पृष्ठों को अर्पित करेगा। इन वीर-ग्रंथों का मुद्रण हमारी आपनी मातृ-भाषा की लिपि में भले ही हो जाय, इस पतनशील युग के लिए तो वे सदा 'मृत-भाषा' के ग्रंथ ही रहेंगे। अपनी बुद्धि, शौर्य और उदारता के सीमित भंडार के आधार पर जो सामान्य अर्थ हम लगाते हैं, उससे कहीं अधिक विस्तृत अभिप्राय की कल्पना करते हुए हमें बड़े परिश्रम से इनके प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पंक्ति का अर्थ ढूँढना होगा। इतने अनुवादों के होते हुए भी, आज का सस्ता और उर्वर प्रकाशन हमें प्राचीन काल के वीर-ग्रंथों के रचयिताओं के निकट नहीं पहुँचा सका है। आज भी वे इतने ही एकाकी लगते हैं; जिन अक्षरों में उनके ग्रंथ छपते हैं, वे आज भी उतने ही दुर्बोध और विचित्र लगते हैं, जितने कि किसी अन्य काल में रहे होंगे। यदि आप किसी प्राचीन भाषा के केवल गिनती के शब्द (जिन्हें आज के सामान्य व्यवहार की क्षुद्रता ने निकालकर बाहर फेंक दिया है) सीख लें, उनसे अजस्र प्रेरणा और प्रोत्साहन ग्रहण कर सकें, तो समझ लें कि इस काम में जवानी के दिन और बहुमूल्य समय लगाना सार्थक हुआ। किसान लैटिन भाषा के जो कुछ सुने सुनाए शब्द याद रखता हैं और उन्हें बार-बार दुहराता रहता है वह सब बेकार नहीं हैं। लोग कभी-कभी ऐसे बात करते हैं मानो अंततोगत्वा 'क्लासिक' ग्रंथों के अध्ययन को अपना स्थान छोड़ना पड़ेगा और वहाँ अपेक्षाकृत आधुनिक और व्यावहारिक अध्ययन को प्रतिष्ठित कर दिया जायगा। किन्तु साहसी विद्यार्थी तो सदा ही प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करता रहेगा, वे चाहे जिस भाषा में रचे गए हों, चाहे जितने प्राचीन हों। कारण कि ये 'क्लासिक'

ग्रन्थ मानव के श्रेष्ठतम संग्रहीत विचार ही तो हैं। जो देववाणी उनमें है केवल वही अक्षय रही है—उनमें आधुनिकतम प्रश्नों के ऐसे उत्तर हैं जो 'डेल्फी' और 'डोडोना'[1] कभी न दे सके। यह तो ऐसे ही होगा जैसे हम प्रकृति का अध्ययन करना छोड़ दें, क्योंकि वह इतनी प्राचीन है! समुचित अध्ययन अर्थात् सच्ची भावना से सद्ग्रन्थों का अध्ययन एक श्रेष्ठ प्रकार का अभ्यास है। यह एक ऐसा अभ्यास है जिनमें पाठक को आज के आदृत किसी भी अभ्यास से अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसके लिए प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि खिलाड़ियों को। इस एक लक्ष्य पर लगभग सम्पूर्ण जीवन के प्रयोजन को केन्द्रित कर देना आवश्यक होता है। जितने विमर्श और सावधानी से इन ग्रन्थों की रचना हुई थी उतने ही विमर्श और सावधानी से इनका अध्ययन भी करना चाहिए। जिस ज़ाति के द्वारा इन ग्रन्थों की रचना हुई उसकी भाषा बोल लेने की क्षमता भी यथेष्ट नहीं है; क्योंकि बोली जाने वाली भाषा और लिखित भाषा, श्रव्य भाषा और पाठ्य भाषा के बीच एक स्मरणीय अन्तराल होता है। पहली साधारणत: अल्पकालिक होती है, वह एक ध्वनि, एक जुबान, केवल एक बोली होती है; वह लगभग पशुवत् होती है और उसे हम अनजाने ही, पशुओं की भाँति अपनी माता से सीखते हैं। दूसरी अर्थात् लिखित भाषा इसकी पक्व और अनुभवमय अवस्था है; यदि वह हमारी मातृभाषा होती है तो यह पितृभाषा। यह एक ऐसी संचित और प्रखर अभिव्यक्ति होती है, इतनी सार्थक होती है, कि कान से नहीं सुनी जा सकती; इसे बोलने के लिए फिर से जन्म लेना आवश्यक होता है। मध्यकाल में जो जनसमूह ग्रीक और लैटिन भाषाएँ 'बोलता' था, उसे केवल जन्म के संयोग के कारण ही भाषाओं में प्रतिभावान् व्यक्तियों द्वारा लिखे गए ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता था। कारण यह है कि ये ग्रन्थ लोगों की जानी-पहचानी ग्रीक और लैटिन भाषाओं में नहीं लिखे गए थे, वल्कि साहित्य की श्रेष्ठ भाषा में लिखे गए थे। वे लोग ग्रीस और रोम की उच्चतर बोली से सर्वथा अपरिचित थे, जिस पदार्थ पर ये ग्रन्थ लिखे जाते थे वह उनके लिए रद्दी कागज के बराबर था, जबकि वे अपने समय के सस्ते साहित्य को बड़ा मूल्यवान मानते थे। किन्तु जब अनेक यूरोपीय जातियों ने

---

१. प्राचीन ग्रीस के मंदिर, जहाँ जाकर लोग प्रश्न करते थे और देववाणी से उनका समाधान होता था। डेल्फी में 'अपोलो' की मूर्ति स्थापित थी और डोडोना में 'जुपिटर' की।

अपनी-अपनी लिखित भाषा प्राप्त कर ली जो उनके उदीयमान साहित्य के लिए पर्याप्त थी, तभी इस प्रथम पांडित्य का पुनरुत्थान हुआ और पंडितगण सुदूर अतीत में दवी हुई इस प्राचीन निधि को पहचान सके। जिसको ग्रीस और रोम का जनसमूह 'सुन' नहीं सका उसे अनेक युग वीतने के वाद गिनती के पंडितों ने 'पढ़ा' और गिनती के ही अध्येता अव भी पढ़ रहे हैं।

वक्ता के सामायिक वक्तृत्व के अलाप की हम चाहे जितनी प्रशंसा करें, बोली हुए क्षणिक भाषा की तुलना में सर्वश्रेष्ठ लिखित शब्द साधारणत: उतने ही पीछे, उतने ही ऊँचे रहते हैं जितने कि तारों से जगमगाते आकाश बादलों से। 'वहीं' पर ये नक्षत्र होते हैं, और वहीं पर होते हैं वे लोग जिनमें उनके अध्ययन की क्षमता है। खगोल-शास्त्री निरन्तर उन्हें देखते रहते हैं उनकी टीका किया करते हैं। वे हमारे दिन-प्रतिदिन के वार्तालाप और उड़ जाने वाले निश्वास की भाँति धुआँ-भाप नहीं हैं। मंच पर जिस चीज को 'वक्तृत्व' की संज्ञा दी जाती है, साधारणत: अध्ययन में वह चीज़ केवल 'अलंकार' होती है। वक्ता क्षणिक अवसर से प्रेरित होता है, और अपने सामने के जनसमूह के आगे बोलता है जो उसको सुन सकते हैं। किन्तु लेखक के लिए अपेक्षाकृत समान गति से बहती हुई उसकी ज़िन्दगी ही उसका 'अवसर' होती है; जो घटना और जनसमूह वक्ता को प्रेरणा देते हैं उनसे लेखक का ध्यान उचट जाता है। वह तो मानव जाति की वुद्धि और उसके हृदय को सम्वोधित करता है, उन सव लोगों को जो उसकी वात 'समझ' सकते हैं, चाहे वे किसी भी युग में हों।

तव कोई आश्चर्य की वात नहीं कि सिकन्दर अपने अभियान-काल में एक वहुमूल्य मंजूषा में 'ईलियड' की एक प्रति सदा अपने साथ रखता था। लिखित शब्द सर्वोत्तम प्रकार का अवशेष होता है। अन्य कला कृतियों की अपेक्षा कहीं अविक वह हमसे घनिष्ठ होता है और साथ ही कहीं अविक सार्वभौमिक होता है। यह वह कलाकृति है जो स्वयं जीवन के निकटतम होती है। इसको प्रत्येक भाषा में अनुदित किया जा सकता है, यह मानव-मात्र के ओष्ठाधरों को केवल पढ़ने के लिए ही नहीं, वस्तुत: पान करने के लिए होता है। केवल चित्र-पटल या संगमरमर पर ही नहीं, यह तो स्वयं जीवन के प्राण पर अंकित करने के लिए होता है। प्राचीन व्यक्तियों के विचारों का प्रतीक अर्वाचीन युग के लोगों की वाणी वन जाता है। ग्रीस की प्रस्तर-कृतियों की भाँति ही, वहाँ की साहित्यिक कृतियों पर दो हज़ार ग्रीष्म ऋतुओं ने और भी पक्का सुनहला शारदीय

रंग चढ़ा दिया है, क्योंकि काल के घर्षण से बचने के लिए इन कृतियों ने अपना प्रशांत और दिव्य वातावरण सभी देशों में फैला दिया था। ग्रंथ सारे संसार की संचित निधि होते हैं, पीढ़ियों और जातियों की वे सबसे कीमती विरासत होते हैं। प्राचीनतम सर्वोत्तम ग्रन्थ, स्वाभाविक और अधिकृत रूप से प्रत्येक झोंपड़ी में स्थान पाते हैं। वे अपने पक्ष में कुछ नहीं कहते, लेकिन जब वे पाठक को आलोकित करते हैं, उसे पोषित करते हैं तो उसकी बुद्धि उन्हें अस्वीकार नहीं कर पाती। इन ग्रन्थों के प्रणेता प्रत्येक समाज के स्वाभाविक और अदम्य अभिजात जन होते हैं, और मानव-जाति पर उनका प्रभाव राजों-महाराजों से कहीं अधिक होता है। जब कोई अपढ़ और कदाचित् तिरस्कारी व्यापारी अपनी व्यापार-बुद्धि और परिश्रम से मनोवांछित स्वतन्त्रता और अवकाश प्राप्त कर लेता है और धन-दौलत तथा शान-शौकत के समाज में प्रवेश पा चुकता है, तो वह निश्चय ही अन्त में प्रतिभा और बौद्धिकता के उच्चतर समाज की ओर मुड़ता है जहाँ अभी तक उसकी पहुँच नहीं हो पाई है। तब उसको अपनी सांस्कृतिक अपूर्णता, अपने दंभ, अपने तमाम धन-दौलत की अपर्याप्तता का बोध होता है। अपनी सुबुद्धि का और भी अधिक परिचय वह तब देता है जब वह अपने बच्चों के लिए बौद्धिक संस्कृति जुटाने का प्रयास करता है जिसकी कमी उसे अपने-आपमें महसूस होती रहती है। तभी वह एक परिवार का जनक बनता है।

जो लोग प्राचीन ग्रन्थों को उनकी मूल भाषा में पढ़ना नहीं सीख पाए हैं उनका मानव जाति के इतिहास का ज्ञान निश्चय ही अपूर्ण होगा। क्योंकि यह ध्यान देने योग्य बात है कि किसी भी आधुनिक भाषा में उनकी अनुलिपि नहीं की जा सकी है, जब तक कि हम अपनी सभ्यता को ही यह अनुलिपि न मान लें। अभी तक न होमर के, न ईस्किलस के, और न वर्जिल के ही ग्रन्थ अँग्रेजी भाषा में छापे जा सके हैं। ये ग्रन्थ उतने ही निर्मल, उतने ही ठोस, और उतने ही सुन्दर हैं जितना कि प्रातःकाल। इसका कारण यह है कि बाद के लेखकों की प्रतिभा के सम्बन्ध में हम चाहे जो कहें, वे कभी भी प्राचीन लेखकों के विराट् सौंदर्य, उनके शिल्प, उनकी आजीवन साहित्य-साधना की समानता नहीं कर पाए हैं। उनको भूल जाने की बात केवल वही लोग कहते हैं जिन्होंने उन्हें कभी जाना ही नहीं। जिस दिन हममें उनको समझने की, उनका रसास्वादन करने की विद्वत्ता और प्रतिभा आ जायगी उस दिन उनको भूल जाने का प्रश्न नहीं उठेगा। वास्तव में वह युग बड़ा सम्पन्न होगा जबकि वे सब अवशेष,

जिन्हें हम 'क्लासिक' कहकर पुकारते हैं, और उनसे भी कहीं प्राचीन और अधिक 'क्लासिक' किन्तु अपेक्षाकृत अज्ञात, धर्मग्रन्थ और भी एकत्र हो जाएँगे, जब पोप के राजभवन वेदों, जेन्दावेस्तों, और बाइबिलों तथा होमरों, दाँते, शेक्सपियरों के ग्रन्थों से भर जाएँगे और आने वाली सभी शताब्दियाँ क्रम से अपने विजय-चिह्न इस विश्व-मंच पर चुन देंगी। इसी राशि के द्वारा हम अन्त में स्वर्गारोहण की आशा कर सकते हैं।

मानव जाति ने अभी तक महान् कवियों की कृतियों को नहीं पढ़ा है, क्योंकि महान् कवि ही उन्हें पढ़ सकते हैं। जैसे जन साधारण नक्षत्रों का अध्ययन करते हैं, वैसे ही इनको पढ़ा गया है अर्थात् अधिक-से-अधिक फलित-ज्योतिष के दृष्टिकोण से, खगोल-शास्त्र के दृष्टिकोण से नहीं। अधिकतर लोगों ने किसी तुच्छ सुविधा के प्रयोजन से पढ़ना-लिखना सीख लिया है, जैसे उन्होंने गणित सीखा है हिसाब रखने के लिए और इसलिए कि कोई उन्हें व्यापार में ठग न ले। किन्तु जो पढ़ाई श्रेष्ठ बौद्धिक अभ्यास के लिए होती है उसका ज्ञान उन्हें या तो अत्यल्प मात्रा में है, या बिलकुल ही नहीं है। फिर भी श्रेष्ठ अर्थों में यही एक पढ़ाई होती है; वह नहीं जो विलास-वस्तु बनकर हमें थपकियाँ देती है और क्षण-भर के लिए हमारी श्रेष्ठतर प्रवृत्तियों को सुला देती है, बल्कि वह जिसके लिए हमें पंजों के बल खड़ा होना पड़ता है, जिसको हमें अपने सबसे जागरूक, सबसे सतर्क क्षण अर्पित करने पड़ते हैं।

हमें चाहिए कि अक्षर-ज्ञान होने के बाद हम वही पढ़ें जो साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है, न कि जीवन-भर प्राथमिक कक्षाओं में बैठे 'आ से आम' और एक स्वर वाले शब्दों को घोखते रहें। अधिकतर लोग (यदि वे कभी संयोगवश एक भी सद्ग्रन्थ से प्रभावित होने का अपराध कर बैठते हैं तो) बाइबिल को केवल सुनकर या पढ़-कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और फिर जीवन भर निष्क्रिय रहते हैं और हलकी-फुलकी किताबें पढ़ने में अपनी शक्ति नष्ट करते रहते हैं। हमारे पुस्तकालय में सात खण्डों की एक किताब है, जिसका नाम है 'लिटिल रीडिंग'। इसके नाम से मैं समझा करता था कि वह उस नाम के किसी नगर से सम्बन्धित होगी, जहाँ मैं कभी नहीं गया हूँ। कुछ लोग होते हैं जो खूब पेट भर भोजन कर लेने के बाद भी पनकौआ और शुतुरमुर्ग की भाँति इस प्रकार की सभी चीजों को पचा सकते हैं, क्योंकि वे किसी भी चीज को बरबाद नहीं होने देना चाहते। यदि दूसरे लोग यह चारा तैयार करने की मशीनें हैं तो ये लोग उसका प्रयोग कर लेने वाली मशीनें

हैं। वे 'ज़ेबूलन और सौफ्रोनिया' का नौ हज़ारवाँ किस्सा पढ़ते हैं, कि उन लोगों का प्रेम अपूर्व था और यह कि उनके प्रेम का मार्ग कितना कठिन था, इस बीहड़ पथ में उन्हें कितने कष्ट उठाने पड़े, कैसे उनका प्रेम गिरता-पड़ता आगे बढ़ता चला गया, कैसे कोई अभागा गिरजाघर के कंगूरे पर जा चढ़ा आदि। और फिर, उसे अनावश्यक रूप से वहाँ चढ़ा देने के बाद उपन्यासकार महोदय घंटा बजा-बजाकर सारी दुनिया को इकट्ठा करते हैं यह बताने के लिए कि वह नीचे कैसे उतरा। मैं तो सोचता हूँ कि अच्छा होता यदि वे उपन्यास-संसार के सभी आकाँक्षावान् नायकों को कंगूरों के ऊपर चढ़ाकर "वैदर-कौक" (बात-दर्शक) बनाकर जंग लग जाने तक लटका रहने देते, (जैसे कि प्राचीन काल में नायकों को नक्षत्रों में स्थान दे दिया जाता था) ताकि वे नीचे उतरकर अपनी कलाबाजियों से लोगों को तंग न कर सकें। अगली बार जब उपन्यासकार घंटा बजायगा तो मैं तो अपने स्थान से हिलूँगा भी नहीं, भले ही सभा-भवन जलकर भस्म हो जाए। "छप रहा है—मध्यकाल की अमर कथा पर आधारित सुप्रसिद्ध लेखक 'शीर्षक' जी का उपन्यास "ऊटपटाँग की छलाँग"—प्रति मास किश्तों में छप रहा है ! बहुत माँग है, प्रति सुरक्षित करा लें ! इस सबको आँखें फाड़-फाड़कर, बड़ी सतर्क और आदिम जिज्ञासा से, बिना अघाए, झुर्रीदार चेहरों वाले लोग पढ़ते हैं, ठीक जैसे चार बरस का नन्हा बच्चा सुन-हली जिल्द वाली परियों की कहानी की किताब पढ़ता है, बिना उच्चारण आदि में सुधार के, बिना कोई शिक्षा ग्रहण किए। नतीजे में, दृष्टि धुँधली हो जाती है, जीवन-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, कमजोरी आ जाती है, सारी बौद्धिक क्षमता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार का भूसी का लड्डू सीधी-सादी आटे की रोटी से भी अधिक बनाया जाता है और बाजार में खूब चल जाता है, हाथों-हाथ उसकी बिक्री हो जाती है।

जिन लोगों को 'अच्छा पाठक' कहा जाता है वे भी सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं पढ़ते। हमारे नगर कौंकर्ड की ही संस्कृति क्या है ? यहाँ कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर, जिस अँग्रेजी साहित्य के शब्दों को लोग लिख-पढ़ सकते हैं, उसके भी सर्वोत्तम अथवा उत्तम ग्रन्थों के प्रति रुचि लोगों में दिखाई नहीं देती। कालेजों में पढ़े और तथाकथित 'सांस्कृतिक-शिक्षा-प्राप्त' लोगों तक का कहीं भी अँग्रेजी भाषा के 'क्लासिक' ग्रन्थों से थोड़ा-बहुत परिचय भी नहीं होता, और जहाँ तक मानव की संग्रथित बुद्धिमत्ता यानी प्राचीन 'क्लासिक' ग्रन्थों,

वाइबिल आदि का प्रश्न है, जो सभी को सुलभ हैं, उनसे परिचित होने का तो रंच-मात्र भी प्रयास नहीं किया जाता। मैं एक लकड़ी फाड़ने वाले को जानता हूँ; वह एक फ्रेंच अखबार लेता है, और जैसा कि वह बताता है, खबर पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि 'अभ्यास बनाए रखने के लिए', क्योंकि वह जन्म से कैनेडा-वासी है। और जब मैं उससे पूछता हूँ कि इस संसार में वह कौन-सा ऐसा काम कर सकता है जिसे वह सर्वोत्तम समझता हो, तो वह उत्तर देता है कि, इसके अलावा, अँग्रेजी के ज्ञान में वृद्धि। लगभग इतना ही कालेज में पढ़े हुए लोग करते हैं, अथवा इसकी आकांक्षा करते हैं, और इसी प्रयोजन से वे अँग्रेजी का अखबार खरीदते हैं। मान लीजिए कि किसी आदमी ने अँग्रेजी के सर्वोत्तम ग्रन्थों में से किसी एक को पढ़कर समाप्त किया है, तो उसे कितने आदमी ऐसे मिलेंगे जो इसके बारे में बातचीत कर सकें? अथवा मान लीजिए कि उसने मूल भाषा में कोई ग्रीक या लैटिन प्राचीन ग्रन्थ पढ़ा है, जिसके यश से तथाकथित निरक्षर लोगों तक परिचित हैं, तो उसे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जिससे वह बात कर सके; उसे तो इस बारे में मौन ही रहना पड़ेगा। वास्तव में हमारे कालेजों में मुश्किल से ही कोई प्रोफेसर ऐसा निकलेगा जिसने भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद उसी अनुपात में किसी ग्रीक कवि की प्रगल्भता और उसके काव्य की दुरूहता पर भी अधिकार प्राप्त किया हो, और साथ ही जो किसी जागरूक और साहसी पाठक को सहानुभूति प्रदान कर सके। और जहाँ तक मानव जाति के पवित्र धर्मग्रन्थों और बाइबिलों का सवाल है, इस नगर में कौन होगा जो उनके नाम भी गिना सके? अधिकतर लोग यह नहीं जानते कि यहूदियों के अलावा और किसी जाति के भी धर्मग्रन्थ हुए हैं। कोई भी आदमी चाँदी का डालर उठा लेने के लिए काफी दूर का चक्कर लगा लेगा, किन्तु प्राचीनकाल के सबसे धीमान् व्यक्तियों की वाणी से निकले हुए सोने के शब्द इन ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं जिनके महत्त्व का विश्वास हमें आगे के प्रत्येक युग के धीमान् व्यक्तियों ने दिलाया है, फिर भी हम केवल 'सरल पाठमाला', प्रारम्भिक पुस्तक और कक्षाओं की पुस्तकों तक ही पढ़ना सीखते हैं, और स्कूल छोड़ने के बाद 'लिटिल रीडिंग' और कहानियों की किताबें पढ़ना आरम्भ कर देते हैं, जो बच्चों और नौसिखियों के ही उपयुक्त होती हैं। हमारी पढ़ाई, हमारी बातचीत, हमारे विचार सब बड़ी निम्न कोटि के, केवल छोटे-छोटे बौनों के उपयुक्त होते हैं।

कौंकर्ड की मिट्टी ने जिन लोगों को जन्म दिया है उनसे अधिक बुद्धिमान लोगों से परिचित होने की मेरी आकाँक्षा है, जिनके नाम तक यहाँ कोई नहीं जानता। अथवा क्या मैं प्लैटो का नाम सुनकर रह जाऊँ और उसके ग्रन्थ कभी न पढ़ूं ? यह ऐसे ही होगा जैसे प्लैटो मेरे नगर का ही वासी हो और उसके दर्शन मैंने कभी न किए हों; वह मेरा पड़ौसी हो और मैंने उसकी बोली ही न सुनी हो, उसके शब्दों की बुद्धिमानी पर कभी ध्यान न दिया हो। लेकिन वास्तव में होता क्या है ? जो कुछ भी प्लैटो में अमर था वह सब उसकी पुस्तक 'डॉयलाग्स' में संचित है; वह ग्रन्थ अलमारी में पड़ा रहता है और मैं कभी उसका अवलोकन नहीं करता। हम लोग कुसंस्कृत, अशिक्षित और निम्न-स्तर के होते हैं। और मैं यहाँ स्वीकार करता हूँ कि मेरे नगर के जो लोग निरक्षर हैं उनकी अशिक्षा में और जिन्होंने केवल बच्चों की तथा पिलपिले दिमाग वाले लेखकों की किताबें पढ़ना ही सीख लिया है उनकी अशिक्षा में मेरे निकट कोई विशेष अन्तर नहीं है। हमें उतना ही श्रेष्ठ बनना चाहिए जितने कि प्राचीन काल के महान् व्यक्ति थे, लेकिन अंशत: इसके लिए पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि वे लोग कितने श्रेष्ठ थे। हमारी जाति बहुत छोटे-छोटे आदमियों की जाति है, बौद्धिक उड़ान में हम दैनिक समाचार-पत्रों के कालमों से अधिक ऊँचे नहीं उठ पाते।

सभी किताबें उतनी नीरस नहीं होतीं जितने नीरस उनके पाठक होते हैं। ऐसे शब्द हैं जो कदाचित् ठीक हमीं को सम्बोधित करके कहे गए हैं। उन्हें यदि हम सचमुच सुनें और समझें तो वे हमारे जीवन के लिए प्रात:काल और मधु-ऋतु से भी अधिक स्वास्थ्यकर सिद्ध होंगे और हमें नई दृष्टि प्रदान करेंगे। न जाने कितने लोगों ने किसी एक ग्रंथ का अध्ययन करके अपने जीवन में एक नया युग प्रारम्भ किया है ! ग्रन्थ सम्भवत: ऐसा है, जो हमारे चमत्कारों को खोलकर रख दे और नये चत्मकार हमारे आगे प्रकट कर दे। जो बातें हमें आज 'अकथ' लगती हैं, वे हमें कहीं-न-कहीं कही हुई मिल सकती हैं। जो प्रश्न हमें बेचैन किए रहते हैं, चक्कर में डाल देते हैं, वे सब बुद्धिमान जनों के सामने भी आ चुके हैं, इनमें से एक भी बच नहीं पाया, और प्रत्येक ने अपनी-अपनी योग्यतानुसार, अपने शब्दों और अपने जीवन के द्वारा उनका उत्तर दिया है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञा के साथ-साथ हमको उदारता भी प्राप्त होगी। कौंकर्ड के छोर के खेत पर मजदूरी करने वाला एकाकी आदमी जिसका दूसरा जन्म

हो गया है, जिसे एक विचित्र धार्मिक अनुभूति हुई है, और जो सोचता है कि अपनी धर्मनिष्ठा के कारण उसे एक प्रकार की मौन गम्भीरता और निरालापन मिला है, वह भले ही इसे सत्य न समझे; किन्तु सहस्रों वर्ष पूर्व जोरोस्टर भी इसी पथ से गुजरा था और उसे भी यही अनुभूति हुई थी। लेकिन प्रज्ञावान् होने के कारण जोरोस्टर इस वात को समझता था कि यह तो सार्वत्रिक है, निराली चीज नहीं है और तदनुसार वह अपने पड़ोसियों से व्यवहार करता था। यहाँ तक कहा जाता है कि उसने पूजन का आविष्कार किया और लोगों में उसे चलाया। तो फिर वह विनम्रतापूर्वक जोरोस्टर से सम्भाषण करे, तमाम महा-पुरुषों के उदारताप्रद प्रभाव के द्वारा स्वयं ईसा मसीह से सम्भाषण करे और 'हमारे चर्च' को जहन्नुम में जाने दे।

हम लोग इस वात की डींग हांकते हैं कि हम उन्नीसवीं सदी में रहते हैं, और सभी जातियों से अधिक लम्वे डग भर कर उन्नति के पथ पर चले जा रहे हैं। लेकिन सोचिए तो कि यह गांव अपनी संस्कृति के सम्वन्ध में कितना कम प्रयत्नशील है! मैं अपने नगर-वासियों की चापलूसी नहीं करना चाहता और न मैं यही चाहता हूँ कि वे मेरी चापलूसी करें, क्योंकि इससे हममें से एक भी आगे नहीं वढ़ेगा। जो हमारी दशा है उससे तो हमें जगाए जाने की आवश्यकता है, वैलों की तरह चावुक मारकर हमें दौड़ाने की जरूरत है। हमारे यहाँ अपेक्षाकृत अच्छे सामान्य विद्यालय हैं, लेकिन वे केवल वच्चों के लिए हैं। जाड़े के दिनों में एक अधभूखे व्याख्यान-भवन और हाल में ही सरकार द्वारा प्रस्तावित एक छोटे-से प्रारम्भि पुस्त-कालय के अलावा हमारे अपने लिए कोई शिक्षण-संस्था नहीं है। हम अपने शारीरिक रोगों पर अधिक खर्च करते हैं वजाय मानसिक रोगों के। समय आ गया है कि हम अव 'असामान्य विद्यालय' खोल दें, ताकि स्त्री-पुरुष होना प्रारम्भ करते ही अपनी पढ़ाई न छोड़ वैठें। समय आ गया है कि प्रत्येक ग्राम विश्व-विद्यालय वन जाए और वहाँ के बुजुर्ग लोग इन विश्वविद्यालयों के अधिसदस्य हों और फ़ुरसत से (यदि वे सचमुच इतने सम्पन्न हों) वाकी जिन्दगी संस्कारी शिक्षा (Liberal Studies) ग्रहण करने में वितावें। क्या दुनिया सदा एक पेरिस या एक आक्सफोर्ड तक ही सीमित रहेगी? क्या विद्यार्थी यहाँ रहकर कौंकर्ड के आकाश के नीचे 'संस्कारी शिक्षा' प्राप्त नहीं कर सकते? क्या हम पारिश्रमिक देकर किसी 'ऐवीलार्ड' को व्याख्यान देने के लिए वुलाने का प्रवन्ध

नहीं कर सकते ? हाय, गाय-भैंसों को चारा देते और भण्डार की देख-भाल करते-करते हमें स्कूल से बहुत समय बहुत दूर रहना पड़ता है और हमारी शिक्षा बड़े दुःखद रूप से उपेक्षित रहती है। इस देश में गाँवों को कुछ अर्थों में यूरोप के अभिजात वर्ग का स्थान ले लेना चाहिए। यह गाँव ललित कलाओं का संरक्षक बन जाय। इसके पास धन का अभाव नहीं है, अभाव है केवल उदारता और परिष्कृति का। यह उन चीज़ों पर तो काफी खर्च कर सकता है जिनको किसान और व्यापारीगण मूल्यवान समझते हैं, किन्तु जिन चीज़ों को अधिक बुद्धिमान लोग कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं उन पर खर्च करने की बात को वह अव्यवहारिक मान लेता है। सम्पन्नता के कारण हो या राजनीति के कारण, जो भी हो, इस नगर ने सत्रह हज़ार डालर खर्च करके एक सभा-भवन बनवा लिया है, लेकिन एक बुद्धिमान व्यक्ति पर, जो इस बाहरी खोल का प्राण होगा, शायद सौ साल में भी इतना धन खर्च करना वह पसन्द नहीं करेगा। जाड़े में विद्यालय के लिए इकट्ठा किया जाने वाला १२५ डालर के धन का जितना सदुपयोग होता है उतना इतनी ही धन-राशि के और किसी चन्दे का नहीं होता। यदि हम उन्नीसवीं सदी में रहते हैं तो इस उन्नीसवीं सदी के सारे लाभों का उपयोग क्यों न करें ? हमारा जीवन किसी भी प्रकार सीमित क्यों हो ? यदि हम अखबार पढ़ना ही चाहते हैं तो बोस्टन की बकवास को छोड़-कर तुरन्त संसार का सर्वोत्तम अखबार क्यों न पढ़ने लगें ? न्यू इंग्लैण्ड के ही 'तटस्थ पारिवारिक' पत्रों की बचकाना खुराक ही क्यों लेते रहें ? यहाँ न्यू इंग्लैण्ड में बैठकर 'ओलिव ब्राँचेज' की ही पत्तियाँ क्यों चबाते रहें ? विभिन्न सभ्य समाजों की विवरण-पत्रिकाओं को प्राप्त करने का प्रबन्ध करिए। इनसे हमें पता चलेगा कि इन समाजों ने कितना ज्ञान संचय किया है। अपनी पाठ्य-सामग्री का चयन हम किसी 'हार्पर एण्ड ब्रदर्स' अथवा 'रेडिंग एण्ड कम्पनी' के ऊपर क्यों छोड़ दें ? जिस प्रकार कोई सुरुचि-सम्पन्न अभिजात व्यक्ति अपने सांस्कृतिक स्तर के अनुकूल, प्रतिभा, विद्वत्ता, ग्रन्थ, चित्र, संगीत, शिल्प आदि का संग्रह कर लेता है उसी प्रकार हमारे ग्रामों को भी करना चाहिए, न कि यह कि एक अध्यापक, एक पादरी, एक पुरोहित, एक छोटा-सा पुस्तकालय ही लेकर बैठे रहें, केवल इसलिए कि हमारे 'महायात्री' पूर्वजों[1] ने इन्हीं को लेकर

1. सन् १६२० में 'मे फ्लावर' नामक जहाज़ में इंग्लैंड से अमरीका के लिए प्रस्थान करने वाले १०२ यात्री। ये सब 'प्यूरिटन' थे।

ठण्डी नंगी चट्टानों पर शीतकाल व्यतीत किया था। सामूहिक रूप से कार्य करना हमारी संस्थाओं की आत्मा के अनुकूल है, और मुझे पूरा विश्वास है कि परिस्थितियाँ अधिक सम्पन्न होने के कारण हमारे साधन भी अभिजात वर्ग की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं। यह न्यू इंग्लैण्ड संसार-भर के विद्वानों को पारिश्रमिक पर बुलाकर अपनी शिक्षा का प्रबन्ध कर सकता है, उनके ठहरने की व्यवस्था कर सकता है और इस प्रकार 'प्रान्तीय' (सीमित) होने के दोष से बच सकता है। ऐसे ही 'असाधारण' मदरसे की हमें आवश्यकता है। 'अभिजात व्यक्ति' के बजाय हमें 'अभिजात ग्राम' चाहिए। आवश्यकता हो तो नदी पर एक पुल मत बनाइए, थोड़ा चक्कर ही काट लीजिए—लेकिन अज्ञान की जो अधिक अलंकार पूर्ण खाड़ी हमारे चारों ओर है उसके ऊपर सेतु का कम-से-कम एक वृत्त-खण्ड तो बना ही लीजिए।

४. ध्वनियाँ

किन्तु यदि हम ग्रन्थों तक ही सीमित रहते हैं (चाहे वे सर्वश्रेष्ठ प्राचीन महाग्रन्थ ही क्यों न हों) और केवल कुछ विशेष लिखित भाषाओं का ही अध्ययन करते हैं, जो स्वयं जनपदीय बोलियाँ और प्रादेशिक भाषाएँ ही होती हैं, तो उस भाषा को भूल जाने का खतरा रहता है, जिसे सभी वस्तुएँ, सभी घटनाएँ बिना किसी रूपक-अलंकार के बोलती हैं, केवल-मात्र जो महान् और प्रामाणिक होती है। प्रकाशित बहुत होता है लेकिन मुद्रित बहुत कम। किवाड़ों की संधों में से होकर आने वाली किरणों को, किवाड़ों को एकदम हटा देने पर भुला दिया जाएगा। हमेशा सतर्क रहने की आवश्यकता का स्थान कोई भी तरीका, किसी भी तरह का अनुशासन नहीं ले सकता। जो कुछ देखने को है निरन्तर उसी पर ध्यान देते रहने के अनुशासन की तुलना में इतिहास, दर्शन, सर्वश्रेष्ठ कविता का अच्छे-से-अच्छा पाठ्यक्रम अथवा सर्वश्रेष्ठ समाज या सर्वथा प्रशंसनीय जीवन-क्रम क्या है ? आप केवल एक पाठक, केवल एक विद्यार्थी होना पसन्द करेंगे या तत्त्व-दृष्टा ? अपनी नियति का अध्ययन कीजिए, जो आपके आगे है उसे पढ़िए, और भविष्यत् में पदार्पण करिए।

पहली गर्मियों में मैंने किताबें नहीं पढ़ीं, इसके स्थान पर मैंने सेम की गोड़ाई की। यही नहीं, अक्सर मैं इससे भी ज्यादा अच्छा काम किया करता था। कभी-कभी वर्त्तमान क्षण की प्रफुल्लता का बलिदान मैं किसी भी काम के लिए नहीं कर पाता था, चाहे वह काम हाथ-पैरों का हो या दिमाग का। अपने जीवन के लिए एक चौड़ा हाशिया मुझे प्रिय है। कभी-कभी गर्मियों में प्रातःकाल अभ्यास के अनुसार स्नान करने के बाद मैं अपने खुले दरवाजे में हिकौरी, चीड़ आदि वृक्षों के बीच, निर्विघ्न एकांत और नीरवता में सूर्योदय से मध्याह्न तक दिवास्वप्न में डूबा बैठा रहता था। पक्षी चहचहाते या घर में निःशब्द उड़ते-फिरते थे। जब सूर्य की किरणें मेरी पश्चिमी खिड़की पर पड़तीं या दूर सड़क से यात्रियों के सामान से लदी गाड़ियों की आवाज आती तब मुझे समय बीतने का भान होता था। उन क्षणों में मैं ठीक उसी प्रकार विकसित होता था जिस प्रकार कि रात को अनाज बढ़ाता है, और ये क्षण हाथों के किसी भी काम से

अधिक श्रेष्ठ होते थे। इन क्षणों का काल मेरी जिन्दगी में से घट जाने वाला काल नहीं होता था, यह मेरे नियत काल के अतिरिक्त होता था। प्राची के लोग जिसे 'चिन्तन' और 'कर्म रहित' होना कहते हैं उसीको मैं प्राप्त कर लेता था। अधिकांश में मुझे इस बात की चिन्ता न होती थी कि समय वीत रहा है। दिन मानो मेरे किसी काम को आलोकित करने के लिए ही आगे वढ़ता था; अभी सुवह थी, और लो अब शाम हो गई और कोई भी स्मरणीय काम सम्पन्न नहीं हुआ। पक्षियों की भाँति चहचहाने के बजाय मैं अपने अविरल सौभाग्य पर चुपचाप मुस्करा उठता था। जिस प्रकार मेरे द्वार पर खड़े 'हिकौरी' वृक्ष पर बैठकर गौरैया कम्पित स्वर से गाती, उसी प्रकार मैं भी मन्द-मन्द हँसता या धीमे से कुहकता, और इस कुहक को वह मेरे घोंसले के वाहर सुन सकती थी। मेरे दिवस, अ-धार्मिक लोगों के देवताओं की छाप लगे हुए 'सप्ताह' के दिवस नहीं होते थे, न वे घड़ी की टिक-टिक के द्वारा घिस-पिटकर घन्टों में ही विभक्त होते थे। मैं तो 'पुरी' जाति के रेड-इंडियनों की भाँति रहता था जिनके वारे में यह कहा जाता है 'उनके यहाँ गुजरे कल, आज और आगामी कल, तीनों के लिए एक ही शब्द है और इनकी विभिन्नता को वे इशारों से अभिव्यक्त करते हैं—गुजरे कल के लिए वे पीछे की ओर, आगामी कल के लिए सामने की ओर और आज के लिए ऊपर की ओर इशारा करते हैं।' निस्संदेह मेरे नगरवासी तो इस चीज को विशुद्ध अकर्मण्यता ही मानते थे, किन्तु पक्षी और फूल यदि मुझे अपने मापदंड से नापने बैठते तो उन्हें मुझमें कोई कमी नजर न आती। यह सत्य है कि आदमी को अपना अवसर अपने-आप में ही ढूंढ़ना चाहिए। प्रकृत-दिन अत्यन्त शान्त होता है, वह उसके आलस्य की निन्दा करने नहीं बैठेगा।

जिन लोगों को अपने मनोरंजन के साधन अपने से वाहर, समाज और नाटक आदि में खोजने पड़ते हैं उनकी अपेक्षा मुझे अपने जीवन के ढंग में कम-से कम यह लाभ था कि मेरा जीवन स्वयं एक मनोरंजन वन गया था और उसमें निरन्तर नवीनता रहती थी। यह अनेक अंकों वाला एक नाटक था जो निरन्तर चलता रहता था। वास्तव में यदि हमें जीवन-यापन के साधन उपलब्ध हों और हमने जो पिछला और सर्वश्रेष्ठ ढंग सीखा है उसीके अनुसार हम अपना जीवन संघटित करते रहें तो हमें कभी भी ऊब जाने की परेशानी नहीं होगी। अपनी प्रतिभा का यथासम्भव अनुसरण करिए और वह प्रत्येक क्षण

आपके आगे नई सम्भावनाएँ प्रस्तुत करने में नहीं चूकेगी। गृह-कार्य मेरे लिए मनोरंजन का साधन था। जब मेरा फर्श गंदा हो जाता था तो मैं प्रातःकाल जल्दी उठकर, बाहर घास में अपना सारा सामान, बिस्तरा, चारपाई आदि एक ढेर में रख देता था और फर्श पर पानी डालकर झील की थोड़ी-सी सफेद रेत छिड़क देता था और फिर झाड़ू से साफ करके उसे चमका देता था। ग्राम-वासियों के व्रत तोड़ने के नाश्ते के समय तक सूर्य उदित होकर मेरा फर्श सुखा देता था, ताकि मैं फिर से अन्दर आ सकूँ। इस प्रकार मेरे चिन्तन में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। जिप्सियों की सम्पत्ति की भाँति, घास पर अपने सामने के छोटे से ढेर और तीन टाँगों की मेज (जिस पर से मैं किताबें, दावात, कलम आदि नहीं हटाता था) को चीड़, हिकौरी आदि के बीच रखा देखने में बड़ा आनन्द आता था। लगता था मानो ये सब चीजें बाहर निकाले जाने से स्वयं प्रफुल्लित हो उठी हों और अन्दर लाए जाने की इच्छुक न हों। कभी-कभी मुझे वहीं उनके ऊपर चँदोबा तानकर बैठने का लोभ होता था। इस सामान पर सूरज को चमकते देखना, उस पर स्वच्छंद वायु की सरसराहट सुनना बड़ा अच्छा लगता था। सबसे सुपरिचित वस्तुएँ घर के बाहर जितनी मनोरम लगती हैं उतनी घर के भीतर नहीं। पास की ही शाखा पर एक चिड़िया बैठी है, मेज के नीचे अनन्त जीवन प्रस्फुटित हो रहा है, एक बेल उसके पैरों से लिपट रही है, चीड़ के और चेस्टनट के फल और स्ट्राबैरी के पत्ते चारों ओर बिछे हुए हैं। प्रतीत होता कि इसी तरीके से बदलकर इन आकृतियों ने हमारी मेज-कुर्सी-चारपाई आदि का रूप धारण कर लिया होगा—क्योंकि एक जमाने में वे इस वनस्पति के बीच खड़ी रही होंगी।

मेरा घर पहाड़ी की एक ढाल पर, बड़े जंगल के छोर पर, चीड़ और हिकौरी के एक नये जंगल के बीच स्थित था। यह स्थान सरोवर से लगभग साठ-पैंसठ गज की दूरी पर था वहाँ के लिए एक सँकरी पगडंडी उतरती थी। मेरे आँगन में स्ट्राबैरी, ब्लैकबैरी, सदाबहार आदि उगते थे। मई के अन्त में पगडंडी के दोनों ओर "सैंड चैरी" के छोटे-छोटे तनों में फूलों के लम्बे गुच्छे लगते थे जो चारों ओर किरणों की भाँति बिखर जाते थे। ये तने पिछले पतझड़ में बड़े आकार की चैरी के बोझ से झुक गए होंगे। यह चैरी स्वादिष्ट नहीं होती थी फिर भी प्रकृति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए मैं उसे चख लिया करता था। घर के चारों ओर मैंने जो भराव कर दिया था,

उस पर 'शूमक' (Rhus Glabra) प्रचुरता से उग आया था; पहले साल ही वह पांच-छः फीट ऊँचा हो गया था। इसकी चौड़ी उष्ण-कटिबंधीय पत्तियाँ देखने में अजीब होते हुए भी मनोहर लगती थीं। जो सूखी डंडियाँ मरी हुई दिखाई देती थीं उनमें से अचानक ही बसंत ऋतु में बड़े-बड़े कल्ले फूटने लगे और वे मानो जादू से बढ़कर सुन्दर सुकोमल हरी एक इंच मोटी टहनियाँ बन गईं। वे इतनी लापरवाही से उगती थीं और उनके जोड़ों पर इतना बोझ पड़ जाता था कि कभी-कभी बिना हवा के झोंके के ही इनकी टहनियाँ टूटकर पँखों की भाँति भूमि पर गिर पड़ती थीं। खिड़की में बैठने पर कभी-कभी इन टहनियों के टूटने की आवाज सुनाई पड़ती थी। इन फूलों ने अनेक वन्य मधुमक्खियों को आकर्षित किया और अगस्त के महीने में धीरे-धीरे इसके फलों ने लाल मखमली रंग धारण कर लिया और फिर उनके बोझ से टहनियाँ झुककर टूटने लगीं।

मैं ग्रीष्म के तीसरे पहर में अपनी खिड़की पर बैठा हूँ और बाज़ मेरी इस साफ की हुई जमीन पर मँडरा रहे हैं। जंगली कबूतर दो-दो तीन-तीन की संख्या में सरसराते हुए निकल जाते हैं या मेरे घर के पीछे चीड़ की सफेद डाल पर बैठकर आकुल होकर चिल्लाते हैं; उनकी आवाज मानो वायु की वाणी है। मछलीमार बाज़ सरोवर की चमकीली सतह पर गोता मारता है और मछली निकालकर ले आता है। एक छोटा-सा ऊदबिलाव सामने वाली दलदल में से चुपचाप निकलकर किनारे पर एक मेंढक को पकड़ लेता है। छोटी-छोटी चिड़ियों के फुदकने के कारण सरोवर के किनारे का नागरमोथा लहरा रहा है। साथ ही पिछले आध घंटे से सड़क पर चलने वाली गाड़ियों की आवाज मुझे सुनाई पड़ रही है, यह आवाज तीतर की आवाज की भाँति कभी तेज हो जाती है, तो कभी धीमी। ये गाड़ियाँ यात्रियों को बोस्टन नगर से गाँवों की ओर ले जा रही हैं। मैंने सुना है कि एक बार एक लड़के को नगर के पूर्वी भाग में एक किसान के पास रख दिया गया था, लेकिन वह जल्दी ही भाग कर थका-माँदा घर वापिस आ गया। उसे घर की याद आती थी और उसने कभी भी इतनी मनहूस और निर्जन जगह नहीं देखी थी। वहाँ से सभी लोग चले गए थे, वहाँ सीटी भी तो नहीं सुनाई पड़ती थी! लेकिन मैं दुनिया से उतनी दूर नहीं रहता था। मुझे तो इसमें संदेह है कि मैसाचुसेट्स में अब कोई वैसी जगह है—

सत्य ही, हमारा गाँव बन गया है लक्ष्य जिधर,
तीर रेलगाड़ी का तेजी से जाता है,
नीरव मैदान पर इसका स्वर
आता है तापहर—कौन्कर्ड।

मेरे वास-स्थान से लगभग ५५० गज की दूरी पर फिचवर्ग रेलवे-लाइन सरोवर को छूती है। बहुधा इसीके रास्ते मैं गाँव जाया करता हूँ, मानो इसी कड़ी के द्वारा मैं समाज से सम्बद्ध हूँ। जो लोग मालगाड़ी पर इस लाइन के एक छोर से दूसरे छोर तक जाते हैं वे इतनी बार मेरे पास से गुजरे हैं कि पुराने परिचित की भाँति अभिवादन करते हैं और जाहिर है कि वे मुझे रेल-कर्मचारी समझते हैं—और मैं हूँ भी वही। मैं सहर्ष इस पृथ्वी के पथ पर लाइन सुधारने वाले का काम करना पसंद करूँगा।

किसी किसान के खेत पर मँडराते हुए बाज़ की चीख की भाँति इंजन की सीटी गर्मी-जाड़ों में वन में गूँज उठती है। वह मुझे सूचना देती है कि बहुत से उतावले शहरी व्यापारी इस कस्बे के वृत्त में आ गए हैं अथवा दूसरी ओर से अनेक ग्रामीण व्यापारी आ पहुँचे हैं। जब वे एक ही क्षितिज के नीचे पहुँचते हैं तो एक-दूसरे को चिल्लाकर चेतावनी देते हैं, कि रास्ता छोड़ो। उनकी यह चेतावनी कभी-कभी दो नगरों के वृत्त तक सुनाई देती है। 'ऐ गाँव, यह रहा तुम्हारा नोन-तेल-लकड़ी, यह रहा तुम्हारा आटा-दाल, ग्राम-वासियो !' और कोई भी किसान ऐसा नहीं है जो उनकी उपेक्षा कर सके। 'और यह रहा इस सबका मूल्य !' ग्रामवासी की सीटी चीखती है। दीवारों और दरवाजों को तोड़ने के काम में लाई जाने वाली प्राचीन काल की बल्लियों की भाँति, बीस मील की रफ़्तार से इमारती लड़की शहर की दीवारों की ओर जाती है, बहुत-सी कुर्सियाँ भी जाती हैं जिन पर इन दीवारों के घेरे में रहने वाले सभी थके ओर भारग्रस्त लोग बैठ सकें। इतनी जबरदस्त, ढेर सारी भारी भरकम शिष्टता से गाँव नगर को कुर्सी देता है। सारी पहाड़ियों से 'हकलबैरी' और मैदानों से 'क्रैनबेरी' झूरकर शहर में पहुँचा दी जाती है। एक ओर से रूई जाती है, दूसरी ओर से कपड़ा आता है, इस ओर से रेशम जाता है उस ओर से ऊनी कपड़ा आता है, एक ओर से किताबें जाती हैं, किन्तु दूसरी दिशा को उन किताबों को लिखने वाली बुद्धि निकल जाती है।

जब भी मैं इंजन को डिब्बों के साथ ग्रह की भांति चलते हुए देखता हूँ

(वल्कि यों कहिए कि धूमकेतु की भाँति गुजरते हुए देखता हूँ, क्योंकि देखने वाले को पता नहीं रहता कि कभी वह इसी तेजी से इसी पथ पर वापिस भी लौटेगा, इसके पथ पर लौटने का मोड़ नहीं दिखाई देता), जब भी मैं इसकी भाप के वादलों को पताका की भाँति सोने-चाँदी के हारों के रूप में पीछे की ओर फहराते देखता हूँ, मानो यह यांत्रिक देव जल्दी ही सांध्य आकाश की पोशाक गाड़ी को पहना देगा, जब मैं इस लौह-अश्व को अपनी गर्जना से पहाड़ियों को गुंजाते सुनता हूँ और इसके पैरों से पृथ्वी को कम्पित होते देखता हूँ और इसके नथुनों में से धुआँ और अग्नि का उच्छ्वास देखता हूँ (पता नहीं नई पौराणिक कथाओं में किस प्रकार का पंखों वाला घोड़ा अथवा अग्नि-व्याल रखा जायगा) तो लगता है मानो इस पृथ्वी पर वास करने योग्य जाति पैदा हो गई है। काश, सब-कुछ वैसा ही होता जैसा दिखाई देता है, और मानव ने प्राकृतिक तत्त्वों को कल्याणकारी लक्ष्यों के हेतु वशीभूत किया होता! यदि इंजिन के ऊपर लहराने वाला वादल महान् कामों का श्रम-सीकर होता, या उतना ही कल्याणकारी होता जितना कि किसान के खेत के ऊपर झूमने वाला वादल, तो सारे भौतिक तत्त्व और स्वयं प्रकृति वड़ी उमंग से आदमी का साथ देती और उसकी रक्षा करती।

सुवह गुज़रने वाली इस रेलगाड़ी को मैं उसी भावना से देखता हूँ जिस भावना से सूर्योदय को देखता हूँ, जो इससे अधिक नियमित नहीं होता। क्षण-भर को तो वोस्टन जाती हुई इस रेलगाड़ी का वादल उत्तरोत्तर ऊँचा उठकर आकाश में छा जाता है और सूर्य को ढक देता है और मेरे सुदूरवर्ती खेत पर छाया कर देता है। इन वादलों के दल की दिव्य रेलगाड़ी की तुलना में पृथ्वी पर चिपकी रहने वाली तुच्छ रेलगाड़ी भाले की नोक के वरावर होती है। इस लौह-अश्व का साईस आजकल जाड़ों में पहाड़ों के वीच सुवह जल्दी ही तारों की छाँह में जागता होगा, अपने घोड़े को दाना-पानी देकर कसने के लिए। इतने तड़के ही उसने अग्नि को भी प्रज्ज्वलित किया होगा, उसमें जीवन की उष्णता भरकर चलने के लिए। काश, यह काम जितना सवेरे किया जाता है उतना ही निर्दोष भी होता! यदि वर्फ गहरी जमी होती है तो उसके पैरों पर वर्फ के जूते वाँध दिए जाते हैं, और यह भीमकाय हल पहाड़ों से सागर तट तक एक कूंड वना देता है। इस कूंड में वीज वोने की मशीन की तरह डिव्वे चलते चले जाते हैं, चारों ओर वेचैन आदमियों और तिरते हुए सौदागरी माल को

बिखेरते जाते हैं। दिन-भर यह अग्नि-अश्व देश से उड़ता फिरता है, कहीं रुकता है तो केवल इसलिए कि इसका स्वामी आराम कर सके। आधी रात को जंगल में दूर किसी सँकरी घाटी में जब वह बर्फ और तुषार के बीच पहुँचता है तो उसकी चाल और ललकारती हुई हिनहिनाहट से मैं जाग पड़ता हूँ। वह अपने अस्तबल में शुक्र के उदय होने तक ही पहुँच पायगा, और फिर एक बार बिना सोए, बिना आराम किये अपनी यात्रा पर चल देगा। अथवा, संयोगवश, कभी-कभी शाम को उसकी दिन-भर की अतिरिक्त शक्ति निकालने की आवाज सुनाई पड़ती है। इससे उसके स्नायुमंडल को उसके दिमाग और उदर को कुछ घंटों के लिए पूर्ण विश्राम मिल सकेगा। काश, यह उद्यम उतना ही महान् और प्रभावशाली भी होता जितना कि दीर्घ और अथक है!

नगरों के चारों ओर घिरे हुए अगम वनों में होकर (जहाँ शिकारी केवल दिन में घुस पाता है) रात के गहनतम अंधकार में ये डिब्बे उड़े चले आते हैं, इन डिब्बों में बैठने वालों को पता भी नहीं चल पाता। एक क्षण यह गाड़ी किसी शहर या कस्बे के भीड़-भाड़ वाले जगमगाते हुए स्टेशन पर खड़ी होती है तो दूसरे क्षण 'डिस्मल स्वैम्प' (भयानक दलदल) नामक स्थान पर उल्लुओं और लोमड़ियों को भयभीत करती है। रेलगाड़ियों के आने-जाने का समय गाँव के दिवस का महत्त्वपूर्ण काल होता है। वे नियम से इतने ठीक समय पर आती-जाती हैं, और उनकी सीटी इतनी दूर तक सुनाई पड़ती है कि किसान अपनी घड़ियाँ मिला लेते हैं और इस प्रकार एक सुसंचालित संस्था से सारा देश नियमित हो जाता है। जब से रेल चली है तब से क्या लोग वक़्त के अधिक पाबन्द नहीं हो गए हैं? लोग जिस रफ़्तार से घोड़ागाड़ी के अड्डों पर बात करते थे, विचार करते थे, क्या उससे अधिक तेजी से अब वे स्टेशन पर बातचीत और विचार नहीं करते? स्टेशन के वातावरण में कोई ऐसी चीज होती है जिससे बिजली-सी दौड़ जाती है। इसने ऐसे चमत्कार कर दिखाए हैं कि मैं चकित रह गया हूँ। मेरे कुछ पड़ोसी जिनके बारे में मैं भविष्यवाणी कर सकता था कि वे कभी भी इतनी तेज गाड़ी से बोस्टन नहीं जायँगे, अब घंटी बजते ही सवार हो जाते हैं। कोई काम "रेलगाड़ी की तरह करना" एक प्रचलित मुहावरा बन गया है, और बारम्बार इसके रास्ते से हट जाने की जो सच्ची चेतावनी दी जाती है वह समुचित ही है। इस मामले में दंगों के कानून का अध्ययन नहीं करना पड़ता, न भीड़-भाड़ के सिर के ऊपर गोली ही दाग़ी

जाती है। हम लोगों ने भाग्य के एक 'एट्रोपोस' (Atropos)[१] का निर्माण कर लिया है जो कभी भी मार्ग-च्युत नहीं होता। अपने इंजन का यही नाम रख लीजिए। लोगों में घोषणा कर दी जाती है कि अमुक समय पर अमुक दिशा में तीर छोड़ा जायगा फिर भी इससे किसी के काम में विघ्न नहीं पड़ता। बच्चे दूसरे रास्ते से चलकर मदरसे चले जाते हैं। इसके कारण हम अधिक सावधान होकर रहने लगे हैं। इस प्रकार हमें 'टैल' (Tell)[२] की संतान वन जाने की शिक्षा मिली है। यह वायुमंडल सहस्रों अदृश्य तीरों से भरा हुआ है। केवल अपने पथ को छोड़कर वाकी सब भाग्य के पथ हैं। तव फिर अपने ही पथ पर चलिए।

वाणिज्य में जो चीज मुझे आकर्षित करती है वह है इसकी जोखिम और साहस। वह हाथ जोड़कर देवता से याचना नहीं करता। प्रतिदिन मुझे लोग वड़े साहस और संतोष के साथ अपने व्यापार में व्यस्त दिखाई देते हैं, और वे इतना कर लेते हैं जितने की वे स्वयं कल्पना नहीं कर सकते। और वे सोच-समझकर अपने लिए जो काम निकालते, शायद उससे भी अच्छी तरह इस काम में लगे हुए हैं। जो लोग आध घंटे तक 'बुऐना विस्टा' (Buena Vista)[3] के सामने खड़े रहे उनकी वीरता की अपेक्षा मैं उन लोगों की मुस्तैद और उल्लासमयी वहादुरी से अधिक प्रभावित होता हूँ जो जाड़ों में वरफ साफ करने की गाड़ी में वैठे रहते हैं; उनमें केवल 'सुवह तीन वजे का साहस' होता है जिसे वोनापार्ट अलभ्य समझता था, वल्कि कहना चाहिए कि उनका साहस कभी इतनी जल्दी सोता नहीं है, वे केवल तभी सोते हैं जव तूफान सोता है या उनके लोह-अश्व की पेशियाँ जम जाती हैं। संयोगवश आज सुवह भी, जवकि जवर-दस्त वर्फ गिर रही है और लोगों का खून तक जमा जा रहा है, मुझे दूर से, उन लोगों की जमी हुई साँस के कुहरे में से आती हुई उनके इंजन के घंटे की

१. Atropos—ग्रीक कथाओं की भाग्य-भगिनियों में से एक, जिसका निश्चय अकाट्य माना जाता था।

२. Tell—स्विस कथाओं के एक योद्धा विलियम टैल के वारे में कहा जाता है कि आस्ट्रिया को मान्यता न देने के कारण उससे कहा गया कि या तो वह अपने पुत्र के सिर पर रखे हुए सेव को तीर से वेध दे वरना उसे प्राण-दंड दिया जायगा। उसने तीर से सेव को काट दिया। वाद में उसे प्राण-दंड भी दिया गया। लेकिन वह वच निकला।

३. Buena Vista—एक अन्तरीप।

आवाज सुनाई पड़ रही है जो यह घोषित करती है कि गाड़ी आने में देर नहीं है, भले ही उत्तरी-पश्चिमी बर्फ का तूफान उसे रोकने की कोशिश करे।

वाणिज्य अप्रत्याशित रूप से विश्वस्त और शांत, सतर्क, साहसिक और अथक होता है। साथ ही इसके तरीके अत्यन्त स्वाभाविक होते हैं, वे बहुत-से विलक्षण कामों और भावुक प्रयोगों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक होते हैं। यही इसकी असाधारण सफलता का कारण है। जब मालगाड़ी धड़धड़ाती हुई गुजरती है तो मैं तरोताजा हो जाता हूँ, फूल जाता हूँ और उस सब सामान की खुशबू लेता हूँ जो "लौंगव्हार्फ" से "लेक चैम्प्लेन" तक अपनी गंध बिखेरता आता है। वह मुझे विदेशों की याद दिलाता है, मोतियों के तटों की याद दिलाता है, हिन्द महासागर की और उष्ण कटिबंधीय जलवायु की याद दिलाता है, पृथ्वी के सारे विस्तार की याद दिलाता है। खजूर की पत्तियाँ जो न्यू इंग्लैंड के अनेक निवासियों को अगली गर्मियों में छत्र-छाया प्रदान करेंगी, मनीला का सन, नारियल की जटाएँ, पुराना सामान, बोरे, और लोहा-लंगड़, इस सबको देखकर मैं अपने-आपको सारे संसार का नागरिक महसूस करने लगता हूँ। यह जो गाड़ी भर फटे-फटाए पाल चले जा रहे हैं वे अभी अधिक सुपाठ्य और दिलचस्प हैं बजाय कागज़ बनकर और छपकर किताबों का रूप धारण कर लेने के। जिन तूफानों को उन्होंने झेला है उनका विशद इतिहास इन चिथड़ों के समान अच्छी तरह और कौन लिख सकता है? ये प्रूफ-शीट हैं, जिनमें संशोधन की आवश्यकता नहीं है। यह है मैन के जंगलों की लकड़ी, जो पिछली बाढ़ में बहकर समुद्र में नहीं पहुँची। जो लकड़ी उस बाढ़ में बह गई या फट गई, उसके कारण कीमत चार डालर हजार के हिसाब से चढ़ गई। यह चीड़, देवदार आदि की पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी किस्मों की लकड़ी है जो अभी तक अभिन्न रूप से एक ही किस्म की थी और समान रूप से भालुओं और बारहसिंगों के ऊपर लहराती थी। बाद वाले डिब्बे में अपने मूल रूप में चूना जा रहा है, जो बुझाने के पहले ही बहुत दूर पहाड़ियों में पहुँच जाएगा। इन गाँठों में सभी रंग के सभी किस्म के कपड़ों के चिथड़े हैं, यह सूती वस्त्रों की अन्तिम सीमा है, पोशाक का अन्तिम रूप है। अब इनकी अँग्रेजी, फ्रेंच और अमरीकी छींट, मलमल आदि के रूप में प्रशंसा नहीं होती। इन्हें सम्पन्न और दरिद्र सभी स्थानों से एकत्रित किया गया होगा और इन सबसे एक रंग या कुछ भिन्न रंगों का कागज बनाया जायगा जिस पर यथार्थ जीवन

की, तथ्यों पर आधारित, ऊँची-नीची जिन्दगी की कथाएँ लिखी जायँगी। और इस वन्द डिब्बे में से मछली की गंध आ रही है, न्यू इंग्लैण्ड की व्यापारिक गंध; जो मुझे ग्राण्ड-वैंक और मत्स्य-केन्द्रों की याद दिलाती है। नमक लगी मछली को किसने नही देखा होगा, जो इस ससांर के लिए पूरी तरह रक्षित हो जाती है, इतनी कि कोई भी चीज उसे विगाड़ नहीं सकती, और जो संतों की साधना को भी लज्जित कर देती है? चाहें तो इससे झाड़ू लगाइये, इसे सड़क पर विछा दीजिए, या इससे छिपुटियों को तोड़ लीजिए। अपने ऊपर इसे डालकर हँकैया अपनी और अपने वोझ की धूप, हवा और मेह से रक्षा कर सकता है; और व्यापारी (जैसा कि कौंकर्ड के एक दूकानदार ने किया था) अपना व्यापार प्रारम्भ करते समय उसे अपने द्वार पर चिन्ह के रूप में लटका सकता है। यह तव तक लटकी रहेगी जव तक कि पुराने-से पुराना ग्राहक भी यह न वता सके कि यह जीव है, या वनस्पति है या कोई खनिज पदार्थ है। फिर भी यह बर्फ के गालों की तरह सफेद रहेगी, और वर्तन में रखकर उवाल लीजिए तो मजे से खाने पर परोस लीजिए। इसके पीछे के डिब्बे में खालें लदी हुई हैं जिनमें पूछों का टेढ़ापन अव भी वाकी है, वे अब भी उसी कोण पर उठी हुई हैं जिस पर 'स्पेनिशमेन' के मैदानों में विचरण करने वाला भैंसा उन्हें धारण किये हुए था। यह एक प्रकार का दुराग्रह है, जिद है, और इससे यह पता चलता है कि स्वभाव का ऐव कितना ला-इलाज और निराशाजनक होता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि व्यवहारिक रूप से, जव मैंने किसी व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव को पहचान लिया है, तो फिर मुझे इस जिन्दगी में उसे भले या बुरे में परिवर्तित करने की आशा नहीं रहती। जैसा कि पूर्व के लोग कहते हैं, 'कुत्ते की पूंछ को तपाइए, दवाइए, चारों ओर से वांध दीजिए ओर वारह साल की मेहनत के वाद भी वह टेढ़ी-की टेढ़ी ही रहेगी।" जो पक्कापन दुमों में मिलता है, उसका केवल यह इलाज है कि उनकी लेई वना ली जाय (और मेरा खयाल है कि किया भी यही जाता है) फिर वे ज्यों-की-त्यों जमी रहेंगी और चिपक जायँगी। यह सीरे या वियर का पीपा किसी व्यापारी 'जानस्मिथ, कटिंगविल, वर्मोण्ट' के पते पर जा रहा है जो आस-पास के किसानों के लिए माल मँगाता है। वह शायद इस समय खड़ा-खड़ा समुद्र-तट पर माल आने के वारे में सोच रहा होगा, कि उससे कीमतों पर क्या असर पड़ेगा। साथ ही शायद वह इस क्षण अपने ग्राहकों से कह रहा है (जैसा कि आज से पहले वीसियों वार कह

चुका है) कि अगली गाड़ी से ऊँची किस्म का माल आने वाला है। इसका विज्ञापन भी 'कटिंग्सविल टाइम्स' में निकल चुका है।

यह सामान उत्तर की ओर जाता है तो उस ओर से और चीजें आती हैं। गाड़ी की सरसाहट सुनकर मैं किताब से नजर उठाता हूँ तो मुझे उत्तरी पहाड़ियों से काटा हुआ लम्बा चीड़ का दरख्त दिखाई देता है जो 'ग्रीन माउण्टेन्स' और कनेक्टीकट के ऊपर से उड़कर आया है, तीर की भाँति यह उस नगर को दस मिनट में पार कर गया होगा। दूसरी बार उस पर नजर ही नहीं पड़ने पाती। वह जा रहा है,

बनने को मस्तूल,
जल-सेना के किसी महानायक का।

और सुनो! ये पशुओं के डिब्बे आ रहे हैं। हजारों पहाड़ियों के चौपाए इस हवाई अस्तबल, गोशाला, और बाड़े में बन्द चले जा रहे हैं। हाथ में लाठी लिये हाँकने वाले हैं, भेड़ों के बीच चरवाहे हैं, केवल पहाड़ी चरागाहों के सिवाय सब-कुछ हैं। यह सब ऐसे चक्कर काटते हुए चले जा रहे हैं जैसे सितम्बर की वायु में पहाड़ों से पत्ते उड़ते हैं। बछड़ों और भेड़ों के रँभाने की आवाज और बैलों की धक्कम-धक्का वायु-मंडल में भर गई है मानो कोई चरागाहों की घाटी चली जा रही हो। जब भी यह आगे वाला भेड़ा अपनी घंटी बजाता है तो सचमुच जैसे पर्वत भेड़ों के समान और पहाड़ियाँ मेमनों की भाँति उछलने लगती हैं। बीच के एक डिब्बे में अपने पशुओं के स्तर पर ही हँकैये भी भरे हुए हैं। उनका धन्धा तो खत्म हो गया फिर भी वे अपने पेशे के चिन्ह स्वरूप अपनी लाठियाँ लिये हुए हैं। लेकिन उन के कुत्ते! वे कहाँ रह गए? उनमें तो भगदड़ मच गई है, उन्हें छोड़ दिया गया है, वे भटक गए हैं। मुझे लगता है जैसे मैं उन्हें पीटरबरो हिल में पीछे भौंकते या ग्रीन माउण्टेन्स के पश्चिमी ढाल पर हाँफते हुए सुन रहा हूँ। अब मृत्यु के समय वे घर में उपस्थित नहीं रहेंगे। उनका भी धंधा चला गया। उनकी भक्ति और चतुराई अब अपने स्तर से गिर चुकी है। अब वे अपमानित होकर अपनी माँद में लौट जायँगे। यह भी हो सकता है कि जंगली हो जायँ और भेड़ियों और लोमड़ियों का साथ पकड़ लें। इस प्रकार तुम्हारा चरागाही जीवन चला गया, दूर निकल गया। लेकिन अब घंटी बज रही है, मुझे रेल के रास्ते से हट जाना होगा, और गाड़ी को रास्ता देना होगा—

मेरे लिए रेल का पथ यह क्या है ?
कभी नहीं जाता मैं, इसका
अन्त जहाँ होता है।
कुछ गड्ढों को यह पाट देती है,
और फिर कुछ के लिए तट बांध देती है;
रेत को उड़ाती है,
बेरियाँ उगाती है।

लेकिन मैं उसे ठीक वैसे ही पार कर जाता हूँ जैसे जंगल के किसी गड़ियारे को। मैं गाड़ी के धुएँ, भाप और गड़गड़ाहट से अपनी आँखें खराब नहीं करूँगा, अपने कान नहीं फोड़ डालूँगा।

अब गाड़ी के डिब्बे गुजर गए हैं और उनके साथ ही वह बेचैन दुनिया भी चली गई। अब सरोवर की मछलियों को उनकी गड़गड़ाहट चौंकाती नहीं, और मैं फिर से सर्वथा एकाकी हो गया हूँ। बची हुई लम्बी संध्या मेरे चिन्तन के बीच केवल दूर सड़क से आने वाली गाड़ियों की धीमी आवाज से बाधा भले ही पड़े।

कभी-कभी रविवार को, अनुकूल वायु होने पर मुझे लिंकन, ऐक्टन, बेडफोर्ड या कौंकर्ड के घंटों की आवाज सुनाई पड़ती थी। यह धीमी मधुर ध्वनि मानो प्राकृतिक संगीत है, जो इस वन में आयात करने योग्य हो। पर्याप्त दूरी से इस वन के ऊपर तक आते-आते इस ध्वनि में एक विशेष झंकार पैदा हो जाती है, मानो क्षितिज पर स्थित चीड़ के वृक्षों की पत्तियाँ किसी वीण के तार हों जिन्हें यह ध्वनि छू देती हो। अधिकतम दूरी से सुनने पर सभी ध्वनियों का एक-सा ही प्रभाव पड़ता है, किसी विश्वव्यापी वीणा की झंकार उसमें समा जाती है, ठीक जैसे पृथ्वी के छोर के दूरस्थ दृश्य को मध्यवर्ती वायुमण्डल नीलिमा प्रदान करके मनोहर बना देता है। यह मधुर लय मेरे पास तक वायु में छनने के बाद, वन की प्रत्येक पत्ती से बात कर लेने के बाद, आती थी; उसका वही अंश मुझ तक पहुँचता था जिसे मूल तत्त्वों ने आत्मसात् करके, स्वर-भेद करके घाटी-घाटी में प्रतिध्वनित कर दिया होता। एक सीमा तक प्रतिध्वनि मौलिक ध्वनि ही होती है, इसी में इसका जादू है, आकर्षण है। घंटे की ध्वनि में जो कुछ दुहराने योग्य होता है केवल-मात्र उसकी आवृत्ति नहीं होती, बल्कि अंशतः यह वन की भी ध्वनि होती है, वह ध्वनि, वे शब्द

जिन्हें वन-देवी गाती है।

सांध्यकाल में वन के उस पार क्षितिज पर स्थित गायों की दूर से आने वाली रंभाने की आवाज़ मधुर और संगीतमयी लगती थी। पहले तो मैं इस आवाज़ को सुनकर यही समझता था कि कोई ग्रामीण गायक (जिनके गीत मैंने बहुत बार सुने हों) इधर-उधर पहाड़ियों और घाटियों में घूम रहे होंगे और गा रहे होंगे। लेकिन जल्दी ही मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यह गौओं का सुलभ नैसर्गिक संगीत है। मैं व्यंग्य में नहीं, बल्कि प्रशंसा में कह रहा हूँ कि मैंने देखा कि इन तरुणों का गायन गौओं के संगीत के अत्यन्त निकट था—अंततः उन दोनों में ही प्रकृति की वाणी से निकला हुआ संगीत होता है।

ग्रीष्म के एक भाग में, शाम की गाड़ी निकल जाने के बाद ठीक साढ़े सात बजे मेरे द्वार के ठूँठ पर बैठकर या छप्पर की बल्ली पर बैठकर 'व्हिप-पूअर-विल' (अमेरिकन पक्षी) आध घंटे तक संध्या-वंदन करते थे। हरेक दिन शाम को सूरज डूबने के पाँच मिनट के अंदर ही, घड़ी के समान नियमित रूप से वे गाना प्रारम्भ कर देते थे। मुझे उनके स्वभाव से परिचित होने का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। कभी-कभी मुझे वन में संयोगवश एक-दूसरे के पीछे बैठे हुए चार-पाँच पक्षियों का गाना एक साथ सुनाई पड़ता था और वह भी मेरे इतने निकट कि मैं न केवल प्रत्येक ध्वनि के बाद उनकी 'गुटर गूँ' भी साफ-साफ सुन लेता था बल्कि वह विशिष्ट भनभनाहट भी सुन लेता था जो ठीक वैसी होती थी जैसी मकड़ी के जाल में फँसी मक्खी करती है, केवल वह अपेक्षाकृत अधिक ज़ोर की होती थी। कभी-कभी कोई पक्षी वन में मेरे चारों ओर, कुछ फीट की दूरी पर चक्कर काटता था मानो किसी डोर से बँधा हो। ऐसा शायद तब होता था जब मैं उसके अंडों के नज़दीक पहुँच जाता था। वे थोड़ी-थोड़ी देर के अंतर से रात-भर गाते रहते थे, और पौ फटने के क़रीब खूब संगीतमय हो जाते थे।

जिस समय अन्य पक्षी चुप होते हैं उस समय घुग्घू तान छेड़ते हैं मानो शोकाकुल स्त्रियाँ क्रन्दन कर रही हों। आधी रात की बुद्धिमान वृद्धाएँ! उनकी निराशा से भरी पुकार सचमुच बेन जोन्सन[1] के ढंग की होती है। यह कवियों का वास्तविक और स्पष्ट 'टू-विट-टू-हू' नहीं होता, बल्कि, मज़ाक़ नहीं, इसे

---

१. बेन जोन्सन—शेक्सपियर का समकालीन अंग्रेज कवि और नाटककार।

तो कब्रिस्तान का मर्सिया समझिए, आत्महत्या करने वाले प्रेमियों की परस्पर सांत्वना, जो नरक-कुंजों में दिव्य प्रेम की वेदना और आनन्द की याद किया करते हैं। फिर भी सारे वन में फैलता हुआ उनका क्रन्दन, उनका शोकग्रस्त उत्तर-प्रत्युत्तर मुझे सुनने में अच्छा लगता है, यह मुझे कभी संगीत की और कभी गाते हुए पक्षियों की याद दिलाता है; लगता है जैसे यह संगीत का अंधकारपूर्ण, अश्रुपूर्ण पहलू हो, निःश्वास हो, शोक हो; जो गीत में उमड़ना चाहता है। मानो ये उन पतित आत्माओं के प्रेत हों जो एक ज़माने में मानव रूप में निशाचरण करती रही हों, काले कारनामे करती रही हों और अब यह क्रन्दन करके प्रायश्चित्त कर रही हों! जिस प्रकृति में हम सामान्यतः निवास करते हैं उसके वैचित्र्य और उसकी क्षमता का इनसे मुझे एक नया आभास मिला है। एक सरोवर के इस पार से आह भरता है, "हाय मैं क···भी···पैदा···ही······न हुआ होता रे" और निराशा की व्याकुलता से चक्कर काटकर बलूत की किसी दूसरी डाल पर जा बैठता है। तब उस पार से दूसरा काँपते हुए निष्कपट भाव से प्रतिध्वनित करता है "मैं कभी पै···दा ही······न हुआ हो···ता" और 'रे··· रे···रे' की धीमी-सी आवाज़ दूर लिकन वन से आती है।

उल्लू भी मुझे अपना गीत सुनाता था। प्रतीत होता था कि यह प्रकृति की सबसे शोकमयी आवाज़ है, मानो प्रकृति इस स्वर के द्वारा किसी मानवप्राणी के प्राणांत की कराह को अपने समवेत संगीत में स्थायी रूप से अंकित कर देना चाहती हो; नश्वरता के किसी दीन-हीन अवशेष की कराह को, जो आशा को पीछे छोड़ आया है और उस अँधेरी घाटी में प्रवेश करने पर पशु की भाँति कराह उठा है। यद्यपि यह कराह मानव की आह के रूप में ही निकलती है, यह अँधेरी घाटी इस आवाज़ की संगीतमयता से और भी भयानक हो उठती है। यह कराह एक ऐसे मस्तिष्क को प्रकट करती है जो सम्पूर्ण स्वस्थ और साहसपूर्ण विचार के गल जाने के कारण चिपचिपा हो गया हो और फफूंद गया हो। यह मुझे मुर्दाखोर प्रेतों, मूर्खों और विक्षिप्तजनों के प्रलाप की याद दिलाती थी। लेकिन तभी सुदूर वन से आवाज़ आती थी, हू—हू—हुई—हू। यह आवाज दूरी के कारण सचमुच संगीतमय लगती थी, और इसको सुनकर अधिकतर मनोरम संसर्ग ही दिमाग में आते थे, चाहे इसे दिन में सुनूँ या रात में, जाड़ों में सुनूँ या गर्मियों में।

मुझे प्रसन्नता है कि उल्लुओं का भी अस्तित्व है। मानव की जगह वे

मूर्खतापूर्ण और विक्षिप्त प्रलाप करते रहें। यह ऐसी ध्वनि है जो दलदलों और गहन वनों के लिए समुचित है, जहाँ दिन का आलोक नहीं पहुँच पाता, जो उस विस्तीर्ण और अविकसित प्रकृति की ओर इशारा करते हैं जिसे मानव अभी तक नहीं पहचान पाया है। वे धुंधले और अतृप्त विचारों के प्रतीक हैं, और ऐसे विचार हम सभी में होते हैं। दिन-भर किसी निर्जन दलदल पर सूरज चमकता रहा है, जहाँ केवल एक 'स्प्रूस' का वृक्ष 'लाइकेन' के भार से झुका खड़ा है। उस पर केवल छोटे-छोटे बाज मँडराते हैं, और नीचे तीतर और खरगोश छिपे बैठे रहे हैं। लेकिन अब अपेक्षाकृत मलिन और उपयुक्त 'दिन' का प्रारंभ होता है और प्राणियों की एक दूसरी ही जाति वहाँ जागकर प्रकृति के अर्थ को अभिव्यक्त करने लगती है।

रात को पुल पार करते हुए डिब्बों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती थी। यह गड़गड़ाहट रात में किसी और आवाज़ की अपेक्षा अधिक दूर तक सुनाई पड़ती थी। कुत्तों का भौंकना सुनाई पड़ता था और कभी-कभी दूर किसी खलिहान से किसी अकेली दुखी गाय के रंभाने की आवाज भी आती थी। इसी बीच सारा तट मेंढकों की टर्र-टर्र से गूँज उठता था। लगता था मानो प्राचीन मद्यपों की पश्चात्ताप-हीन हठीली आत्माएँ वैतरणी में तान छेड़ने की कोशिश कर रही हों (वालडेन की जल-देवियाँ इस तुलना को क्षमा करें, क्योंकि यहाँ पानी की घास आदि न होने पर भी मेंढक तो हैं ही)। ये आत्माएँ मानो अपने मदोत्सव के उल्लासमय नियमों को अब भी जारी रखना चाहती हैं, यद्यपि उनका गला बैठ गया है, आवाज भारी हो गई है, शराब की गंध उड़ गई है, और एक तरल पदार्थ-मात्र रह गया है जिससे केवल पेट फूल जाता है किन्तु जिसकी मधुर मादकता में पिछली स्मृतियाँ नहीं डूबतीं। इनका सरदार ठोड़ी उठाकर (जो उसके गीले जबड़ों पर नैपकिन का काम देती है) इस उत्तरी किनारे पर जल का एक घूंट पीता है (जिस जल से उसे एक ज़माने में अरुचि रही होगी और 'टर्र,टर्र, टुंक करके मानो जाम आगे बढ़ा देता है। फिर किसी दूरस्थ गड्ढे से इस सरदार का नायब घूंट लेकर वही सांकेतिक शब्द दुहराता है। जब यह क्रिया सारे तट का चक्कर लगा चुकती है तो सरदार संतोष से आवाज़ करता है 'ट-र्र-रुंक!' और फिर इनमें से प्रत्येक, सबसे कमज़ोर और पिचका हुआ मेंढक तक इसे दुहराता है ताकि कहीं कोई गलती न रह जाय। फिर यह दौर तब तक चलता रहता है जब तक सूर्य उदित होकर

सुवह की धुंध नहीं मिटा देता। तव ये सव सरोवर के तल भाग में चले जाते हैं, केवल सरदार रह जाता है, उत्तर पाने के लिए रुक-रुक कर समय-समय- ट्रुंक ट्रुंक करता रहता है।

मैं निश्चयपूर्वक यह नहीं वता सकता कि कभी मैंने अपने स्थान पर मुर्गे की वाँग सुनी हो। मुझे यह विचार आता था कि एक मुर्गे को केवल उसके संगीत के लिए, गाने वाले पक्षी के रूप में पाल लेना अच्छा रहेगा। एक जमाने में यह पक्षी जंगली रहा होगा। इसकी आवाज़ दूसरे किसी भी पक्षी की अपेक्षा अधिक आकर्षक होती है। यदि इस पक्षी को घरेलू वनाये विना यहाँ वसा लिया जाता तो उसकी आवाज वनों की सवसे उत्कृष्ट आवाज हो जाती; हाँ, उल्लू और हंस की आवाज़ से भी कहीं अधिक। फिर कल्पना कीजिए अपने स्वामी के तूर्यनाद के अंतराल में मुर्गियों के कुड़कुड़ाने की! कोई आश्चर्य की वात नहीं कि आदमी ने इस पक्षी को अपने पालतू जानवरों में शामिल कर लिया; अंडों और मुर्गे के गोश्त का तो कहना ही क्या। ज़रा कल्पना कीजिए, जाड़े में प्रातःकाल आप एक ऐसे वन में भ्रमण कर रहे हैं, जहाँ ये पक्षी अपनी जन्म-भूमि में वड़ी संख्या में विचरण करते हैं, और आपको पेड़ों पर वैठे जंगली मुर्गों की मीलों तक गूँजती हुई, अन्य पक्षियों के रव को डुवाती हुई, साफ और तेज़ आवाज सुनाई देती है। यह आवाज राष्ट्रों को जाग्रति प्रदान कर देती। फिर कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो जीवन भर, दिनों-दिन जल्दी, और जल्दी, जागकर अकथ रूप से स्वस्थ, धनवान और वुद्धिमान न हो जाय? सभी देशों के कवियों ने अपने देशी पक्षियों के गायन के साथ-साथ इस विदेशी पक्षी की आवाज की भी प्रशंसा की है। इस वहादुर 'शांटिक्लियर'[1] को सभी किस्म की जलवायु अनुकूल पड़ती है। वह देशी पक्षियों से भी अधिक देशी हो जाता है। उसका स्वास्थ्य हमेशा अच्छा रहता है, फेफड़े सदा स्वस्थ रहते हैं, उसका उत्साह कभी कम नहीं होता। एटलांटिक और पैसिफिक महासागरों के तट पर रहने वाले नाविक भी उसकी आवाज़ पर जागते हैं, किन्तु इसकी तेज़ वाँग पर जागने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। आपको मेरे यहाँ घरेलू ध्वनियों की कमी महसूस हुई होती; क्योंकि मैंने न तो कुत्ता, विल्ली, गाय, सुअर आदि पाले थे और न मुर्गियाँ। यहाँ न मथानी थी, और न चरखा, न केतली की खुदवुद थी, न चायदानी की सनसनाहट, न वच्चों का

१. इंग्लैण्ड के कवि चॉसर की एक कविता में मुर्गे का नाम।

ऊधम, जिससे किसी को सांत्वना मिलती। पुरानी चाल का आदमी बहुत पहले ही या तो पागल हो गया होता या ऊबकर मर जाता। दीवारों में चूहे भी तो नहीं थे, क्योंकि वे भूखों मर गए या यों कहिए कि उन्हें कभी भी यहाँ बसने का प्रलोभन नहीं दिया गया। केवल, छत और फर्श पर गिलहरियाँ थीं, खम्भों पर 'व्हिप-पूअर-विल', खिड़की के नीचे नीलकंठ, घर के नीचे खरगोश या 'वुडचक', घर के पीछे घुग्घू और उल्लू, सरोवर में हंसों का झुंड या हँसने वाला लून (निभज्जूक) और रात को भौंकने वाली लोमड़ी। मेरे भू-खंड में न लवा आता था और न "औरिओल'। मेरे अहाते में न मुर्गा बाँग देता था, न मुर्गियां कुड़कुड़ाती थीं—न अहाता ही था। यहाँ तो प्रकृति आपकी चौखट तक पहुँचती थी, बिना किसी बाधा के। आपकी खिड़की के नीचे उगता हुआ नया जंगल था, और आपके तहखाने में घुसती हुई बेलें; जगह की कमी के कारण चीड़ के तगड़े वृक्ष आपके पटाव से रगड़ खाते थे, और उनकी जड़ें सीधी घर के नीचे तक पहुँचती थीं। तूफान में यहाँ खिड़की की झिलमिली या किवाड़ नहीं टूटते थे; यहाँ तो घर के पिछवाड़े दरख्त थे जो जड़ से उखड़कर ईंधन का काम देते थे। बर्फ गिरने पर अहाते के फाटक का रास्ता गुम हो जाने के बजाय, यहाँ न फाटक था, न अहाता था—और न सभ्य संसार की ओर ले जाने वाला रास्ता।

●

५. एकांत

बड़ी मनोहर संध्या है, सम्पूर्ण शरीर मानो एक ही इंद्रिय हो गया है, और अपने प्रत्येक रोम से आनन्द पान कर रहा है। प्रकृति का ही एक अंग हूँ मैं; एक विचित्र स्वच्छन्दता से मैं उसकी गोद में आ-जा रहा हूँ। हालाँकि थोड़ी ठंड पड़ रही है और बादल छाए हुए हैं फिर भी मैं केवल एक पूरी बाँहों की कमीज पहने सरोवर के पथरीले किनारे पर टहल रहा हूँ; इस समय कोई भी वस्तु मुझे विशेष आकर्षक दिखाई नहीं दे रही है; सारे-के-सारे भौतिक तत्त्व असाधारण रूप से सुहावने लग रहे हैं। रात के आगमन की सूचना मेंढक अपने ताल स्वर से दे रहे हैं और 'व्हिप-पूअर-विल' का गीत जल के ऊपर लहराती हुई वायु में फैल रहा है। सरसराते हुए 'एल्डर' (भूर्जबंधु) और चिनार की पत्तियों के प्रति सहानुभूति से मेरी श्वास लगभग गतिहीन हो गई है। फिर भी सरोवर की ही भाँति, मेरी शांति में लहरियाँ उठती हैं, उसमें उथल-पुथल नहीं होती। संध्याकालीन वायु के कारण उठने वाली ये हिलोरें तूफान से उतनी ही दूर हैं जितनी कि वह प्रशांत प्रतिबिम्बित सतह। अब अँधेरा हो गया है, फिर भी हवा चल रही है और अब भी वन में गरज रही है, लहरें अब भी टकरा रही हैं और कुछ प्राणी अपने संगीत से दूसरों को थपकियां दे रहे हैं। यहाँ पूर्णविराम कहीं नहीं होता। जंगली जानवर इस समय आराम नहीं करते, वे अपना शिकार तलाश करते हैं। लोमड़ी, स्कंक[1], खरगोश, इस समय खेतों और वन में निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं। वे प्रकृति के पहरुए हैं; क्रियाशील जीवन के दो दिनों के बीच की कड़ी हैं वे।

घर लौटने पर मुझे पता चलता है कि कुछ मिलने वाले आये थे और अपना 'विज़िटिंग कार्ड' छोड़ गए हैं—यह या तो फूलों का गुच्छा होता है, या सदाबहार की एक माला या वे अखरोट की पत्ती या छाल पर पेंसिल से नाम लिखकर छोड़ जाते हैं। जो लोग वन में बहुत कम आते हैं वे केवल खेल के लिए कोई-न-कोई वन्य वस्तु उठा लेते हैं, जिसे जान-बूझकर या संयोगवश छोड़

---

१. उत्तरी अमरीका का एक जानवर।

जाते हैं। कोई साहब 'विलो' (willow) वृक्ष की छाल का एक छल्ला बनाकर मेरी मेज पर छोड़ गए हैं। यदि मेरी अनुपस्थिति में कोई अतिथि आता था तो झुकी हुई पत्तियों और घास को देखकर अथवा जूतों के चिह्नों को देखकर मैं फौरन बता देता था कि कोई आया होगा, और साधारणतः यह भी बता देता था कि वे किस लिंग के, किस आयु के और किस भाँति के व्यक्ति थे। इसका पता मुझे आध मील दूर, रेल के किनारे तक गिरे हुए फूल से, घास के उखाड़े हुए गुच्छे से अथवा पाइप या सिगरेट की बची हुई गंध से लग जाता था। यहीं नहीं ३००-३५० गज दूर सड़क पर किसी यात्री के गुज़रने का पता मुझे उसके पाइप की गंध से लग जाता था।

साधारणतः हमारे चारों ओर पर्याप्त् शून्य स्थान रहता है, हमारा क्षितिज कोहनी पर नहीं लगा होता, घना जंगल या सरोवर ठीक हमारे द्वार पर कभी नहीं होता, हमेशा बीच में थोड़ी-बहुत खाली जगह रहती ही है। यह साफ की हुई खाली जगह सुपरिचित होती है, प्रकृति से इसका उद्धार कर लिया जाता है और किसी-न-किसी प्रकार की बाड़ उसमें लगा दी जाती है। किस कारण से इस भूमि का कई वर्गमील लंबा-चौड़ा परित्यक्त स्थल मैंने अपने एकांत-वास के लिए चुना है? मेरा निकटतम पड़ोसी एक मील की दूरी पर स्थित है और कोई भी घर कहीं से भी नजर नहीं आता, सिवाय पहाड़ की चोटियों के, जो मेरे घर से आध मील दूर हैं। मेरा क्षितिज जंगल से घिरा हुआ है, और मुझ तक ही सीमित है। एक ओर दूर रेल की लाइन दिखाई देती है, जहाँ वह सरोवर को छूती है, और दूसरी ओर जंगल की सड़क की बाड़। लेकिन अधिकांश में मेरे रहने का स्थान उतना ही एकांत है जितने कि घास के सुदूरवर्त्ती वृक्ष-हीन 'प्रेयरी' मैदान। यह स्थल उतना ही एशिया या अफ्रीका है जितना कि न्यू-इंग्लैण्ड। लगता है जैसे मेरा अपना सूर्य हो, चन्द्रमा हो, सितारे हों, मेरा अपना छोटा-सा विश्व हो। रात को कभी कोई यात्री मेरे घर के पास से नहीं गुजरता था, कोई दरवाजा नहीं खटखटाता था, मानो मैं ही प्रथम या अंतिम व्यक्ति होऊँ। हाँ, वसंत ऋतु में जरूर कुछ लोग कभी-कभी मछली पकड़ने के लिए आते थे (स्पष्ट ही वे अपने स्वभाव के वालडेन-सरोवर में मछलियाँ पकड़ते थे, अपने काँटों पर अंधकार का चारा लगाकर)। लेकिन वे भी बिना टोकरियाँ भरे जल्दी ही वापिस चले जाते थे 'इस विश्व को अंधकार के और मेरे लिए छोड़कर।' और रात्रि का काला गूदा, उसका तत्त्व

किसी भी मानवीय पड़ोस के द्वारा अपवित्र नहीं किया जाता था। मेरा खयाल है कि लोग अब भी अंधकार से थोड़ा भयभीत रहते हैं, हालाँकि सब डाइनों को फांसी दी चुकी हैं और ईसाई धर्म और बत्तियों का प्रचलन हो गया है।

फिर भी मैं कभी-कभी यह अनुभव करता था कि मानव-मात्र से घृणा करने वाले बेचारे और सबसे मनहूस आदमी को भी प्राकृतिक वस्तुओं में सबसे मधुर और कोमल, सबसे निर्दोष और उत्साहवर्धक संग-साथ मिल सकता है। जो दुरुस्त होश-हवास वाला व्यक्ति प्रकृति की गोद में रहता है, उसके ऊपर, मनहूसियत की बहुत काली छाया कभी नहीं रह सकती। कोई भी ऐसा तूफान अभी तक नहीं आया जो स्वस्थ और सीधे-सादे व्यक्ति को 'वायुदेव' का संगीत प्रतीत न हो। साहसी और सरल व्यक्ति को कोई भी चीज़ ज़बरदस्ती मनहूस नहीं बना सकती। जब तक मैं ऋतुओं की मैत्री का आनन्द उठाता हूँ, तब तक मुझे विश्वास है कि कोई भी चीज मेरे जीवन के लिए बोझ नहीं बनेगी। यह वर्षा की फुहार, जो मेरे सेम के खेत को सींच रही है (और मुझे घर में बंद किये हुए है,) मनहूस और नीरस नहीं है, वह मेरे लिए भी अच्छी और स्वास्थ्यप्रद है। हालाँकि इसके कारण सेम की गोड़ाई में बाधा पड़ती है, फिर भी इसका मूल्य गोड़ाई से कहीं अधिक है। यदि यह बहुत दिनों तक ज़ारी रही तो ज़मीन में बीज सड़ जायगा, और निचली भूमि का आलू सड़ जायगा, किन्तु उस दशा में भी यह ऊँची भूमि पर उगने वाली घास के लिए लाभदायक होगी, और घास के लिए लाभदायक होने के कारण यह मेरे लिए भी लाभप्रद होगी। कभी-कभी जब मैं दूसरे लोगों से अपनी तुलना करता हूँ तो लगता है जैसे देवगण उनकी अपेक्षा मेरे अनुकूल कहीं अधिक हैं, मानो मुझे उनका संरक्षण मिला है जो मेरे साथियों को उपलब्ध नहीं है, मानो मुझे खास तौर पर यह संरक्षण और पथप्रदर्शन मिला है। मैं अपनी बड़ाई नहीं करता, सम्भवतः वे ही मेरी बड़ाई करते हैं। कभी मुझे अकेला बन खला नहीं, मैं कभी उससे उत्पीड़ित नहीं हुआ, सिवा एक बार के जब बन में आने के कुछ सप्ताह बाद ही केवल एक घंटे के लिए मुझे इसमें संदेह हुआ था कि स्वस्थ और शांतिपूर्ण जीवन के लिए आदमी का निकट पड़ोस आवश्यक नहीं है। उस समय लगा जैसे एकाकीपन कष्टदायक हो। किन्तु साथ ही मुझे अपनी मनो-दशा में थोड़ी विक्षिप्ति का भी भान था और मैं जानता था कि जल्दी ही स्वस्थ हो जाऊँगा। मंद-मंद फुहार के बीच जिस समय मेरे मन में ये विचार

आ रहे थे, उसी समय अचानक ही मुझे प्रकृति में, बूँदों की टपटपाहट में, घर के चारों ओर की प्रत्येक आवाज़ में, प्रत्येक दृश्य में इतने मधुर और कल्याणकारी, साहचर्य का, एक अनंत और गूढ़ सौहार्द का, पोषणप्रद वातावरण का भान हुआ कि उसके आगे मानव-सम्पर्क के सारे काल्पनिक लाभ महत्त्वहीन हो गए। तब से उनका विचार मेरे मन में नहीं आया है। चीड़ की प्रत्येक टहनी और पत्ती मानो सहानुभूति से भरकर फैल गई, विस्तृत हो गई, और मेरी मित्र वन गई। जिन दृश्यों को हम जंगली और नीरस कहने के आदी हैं उन तक में अपने प्रति किसी आत्मीय तत्त्व का स्पष्ट ही मुझे भान हुआ और इसका भी कि मेरे या सर्वाधिक मानवीय व्यक्ति के रक्त का निकटतम सम्वन्ध किसी व्यक्ति से या किसी ग्रामीण से नहीं है। यह आभास इतना स्पष्ट था कि मैंने सोचा कि अब आगे से कोई भी स्थान मेरे लिए अपरिचित नहीं रह जायगा—"शोक आदमी को अकाल ही खा जाता है।"

मेरे कुछ सवसे आनन्दप्रद क्षण वसंत ऋतु या पतझड़ में होते थे जव मेह के लम्बे दौर के कारण मैं दोपहर से शाम तक घर में क़ैद हो जाता था। इन क्षणों में अविराम वौछार और गर्जन से चित्त प्रसन्न हो जाता था। दिन जल्दी छिप जाता था जिसके कारण दीर्घ संध्याकाल में अनेक विचारों को जड़ जमाकर प्रस्फुटित होने का अवसर प्राप्त होता था। इन-उत्तरी पूर्वी वरसातों में, जब गाँव के घरों की परीक्षा होती थी और जिस समय स्त्रियाँ हाथ में वाल्टी और झाड़ू लिए घर में घुसती जल-रशि को वाहर निकालने के लिए द्वार में खड़ी रहती थीं, उस समय मैं अपने छोटे से घर में (जो रास्ता-ही-रास्ता था) वैठकर उसकी छत्र-छाया का पूरा आनन्द लेता था। एक वार ज़ोर के मेह में सरोवर के उस पार के एक बड़े देवदार वृक्ष पर विजली गिरी और ऊपर से नीचे तक उस पर लगभग एक इंच गहरी और चार-पाँच इंच चौड़ी एक स्पष्ट सर्पिल धारी खुद गई, जैसी कि आप छड़ी में वनाते हैं। अभी उस दिन मैं फिर उधर से गुजरा था, और इस निशान को देखकर (यह निशान और भी उभर आया है) जहाँ आठ साल पूर्व निर्दोष आकाश से एक भयानक दुर्दम वज्रपात हुआ था, मैं भयभीत हो उठा। लोग अक्सर मुझसे कहा करते हैं, "हमारा खयाल है कि तुम वहाँ अकेलापन महसूस करते होगे और लोगों के निकट आ जाना चाहते होगे; खासतौर पर वर्षा और वरफ के समय।" मेरी इच्छा होती है कि इन लोगों से कहूँ कि यह पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, समूचे

अंतरिक्ष का एक विन्दु-मात्र है। आप सोचिए तो कि वह जो दूर दिखाई देने वाला तारा है जिसके वृत्त की चौड़ाई आपके यंत्र भी नहीं नाप पाते, उसमें सबसे अधिक दूरी पर रहने वाले दो व्यक्ति परस्पर कितनी दूर होंगे? मैं एकाकीपन का अनुभव क्यों करूँ? क्या हमारा ग्रह आकाश गंगा में नहीं है? जो प्रश्न आप मुझसे कर रहे हैं वह मुझे सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं मालूम पड़ता। वह कौन-सा आकाश है जो एक व्यक्ति को अपने साथियों से अलग करके उसे एकाकी बनाता है? मैंने पाया है कि पैरों का कितना ही श्रम दो दिमागों को एक-दूसरे के निकटतर नहीं ला सकता। हम किस चीज के निकटतम रहना चाहते हैं? अवश्य ही हम उन स्थलों के तो निकटतम नहीं रहना चाहते जहाँ सबसे अधिक लोग इकट्ठे होते हैं, यथा गोदाम, डाकखाना, पंसारी की दूकान, शरावघर, सभा-भवन, मदरसा आदि वल्कि जीवन के अजस्र स्रोत के निकटतम रहना चाहते हैं, जहाँ से हमें अपने प्रत्येक अनुभव में उसका प्रवाह मिलता है, ठीक जैसे विलो का वृक्ष जल के किनारे उगता है और उसकी दिशा में उसकी जड़े फैलती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिए यह स्थल भी भिन्न ही होगा, किन्तु इसी स्थल पर बुद्धिमान व्यक्ति अपना वासस्थान बनायगा।……एक दिन शाम को अपने एक नगरवासी से, वालडेन रोड पर मेरी भेंट हुई, उसने "अच्छी खासी सम्पत्ति" जुटा ली है, हालाँकि मुझे यह सम्पत्ति किसी भी तरह "अच्छी" नहीं दिखाई दी। वह पशुओं की जोड़ी को बाजार लिये जा रहा था। उसने मुझसे पूछा कि जीवन के इतने आरामों का परित्याग कर देने का विचार मेरे दिमाग में कैसे आया। मैंने उत्तर दिया कि निश्चय ही यह मुझे काफी भला लगता है। मैं मजाक नहीं कर रहा था। इसके बाद मैं आराम से विस्तर पर सोने के लिए अपने घर चला गया और उसको दलदल और अंधकार में ब्राइटन का रास्ता नापने के लिए छोड़ गया, जहाँ वह सवेरे किसी वक्त पहुँचा होगा।

मृत व्यक्ति के जागने की या पुनर्जीवित होने की सम्भावना के लिए तो सभी काल और स्थान एक समान होते हैं। जिस स्थान पर यह सम्भव हो वह सदा एक-सा ही होता है और हमारी सभी इन्द्रियों को इतना सुखकर होता है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अधिकांश में हम केवल ऊपरी और क्षण-स्थायी परिस्थितियों को ही 'अवसर' वन जाने देते हैं, किन्तु वास्तव में वे हमारे ध्यान वँटाने का कारण होती हैं। सभी वस्तुओं के निकटतम तो वह शक्ति होती है जो उनके अस्तित्व का निर्माण करती है। हमारे अनंतर

चारों ओर महानतम नियमों का अविराम गति से पालन होता रहता है। हमारे समीपस्थ वह कारीगर नहीं होता, जिससे हम मजदूरी पर काम कराते हैं, जिससे बातचीत करना हमें इतना प्रिय होता है, बल्कि वह कारीगर होता है जिसकी कृति हम स्वयं हैं।

"आकाश और पृथ्वी की गूढ़ शक्तियों का कितना व्यापक और गहरा प्रभाव होता है !"

"हम इन शक्तियों को देखने का प्रयत्न करते हैं, और देख नहीं पाते, हम उनको सुनने का प्रयत्न करते हैं और सुन नहीं पाते। ये शक्तियाँ तत्त्वों में अभिन्न रूप से व्याप्त हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।"

"इन्हीं शक्तियों के कारण सृष्टि-भर में लोग अपने हृदय को शुद्ध और पवित्र करते हैं और उत्सव की वेश-भूषा धारण करके अपने पूर्वजों का श्राद्ध और यज्ञादि करते हैं। यह परिव्याप्त बुद्धि का सागर है। ये शक्तियाँ सर्वव्यापी हैं, हमारे दायें,बायें, ऊपर, नीचे सभी जगह हैं, वे हमारे चारों ओर व्याप्त हैं।"

हम सब एक प्रयोग की वस्तुएँ हैं, जिसमें मेरी दिलचस्पी कम नहीं हैं। क्या इस परिस्थिति में थोड़ी देर के लिए भी इस गप्पों के समाज के बिना काम नहीं चल सकता, ताकि अपने निजी विचारों का आनन्द हम उठा सकें? कन्फ्यूशस का कथन है, "साधुता परित्यक्त अनाथ की भांति नहीं रहती, उसके लिए पड़ोसियों का होना आवश्यक है।"

चिंतन के द्वारा हम समुचित अर्थों में अपने-आपसे पृथक् हो सकते हैं, मन की सविवेक चेष्टा द्वारा हम कर्मों और उनके फल से पृथक रह सकते हैं, और सभी चीजें, भली और बुरी, एक धारा की भाँति हमारे पास से गुजर जाती हैं। हम पूर्ण रूप से प्रकृति में अन्तर्ग्रस्त नहीं हैं। मैं या तो धारा में बहती लकड़ी हो सकता हूँ या ऊपर से देखने वाला आकाश स्थित इंद्र भी हो सकता हूँ। मैं किसी नाटक के प्रदर्शन से प्रभावित हो 'सकता' हूँ, इसके विपरीत किसी ऐसी वास्तविक घटना में भी प्रभावित 'नहीं हो सकता हूँ', जिससे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो। मैं अपने को केवल एक मानव-अस्तित्व (हस्ती) के रूप में ही जानता हूँ, (जिसे कहना चाहिए, विचारों और भावनाओं के "दृश्य" के रूप में) और मुझे अपने "द्वित्व" का भान है जिससे मैं अपने-आपसे उतनी ही दूर खड़ा हो सकता हूँ जितनी दूर कि किसी अन्य व्यक्ति से। मेरी अनुभूति चाहे जितनी गहरी हो, मुझे अपने एक अंश की उपस्थिति और उसके द्वारा की गई आलोचना का भान रहता है जो

मानो मेरा अंश न होकर दर्शक मात्र हो, जो अनुभूतियों में भाग तो न लेता हो किन्तु उन पर नजर रखता हो, और यह भी कि यह उतना ही "मैं" (प्रथम पुरुष) है जितना कि "तुम" (द्वितीय पुरुष), इससे अधिक नहीं। जब जीवन का नाटक समाप्त हो जाता है (वह दुःखांत भी हो सकता है) दर्शक अपने रास्ते चल देता है। जहाँ तक उसका सम्बन्ध है, यह तो केवल एक कहानी-मात्र थी, केवल कल्पना की एक कृति। यह द्वित्व बड़ी आसानी से हमें कभी बुरा पड़ोसी और कभी अच्छा मित्र बना सकता है।

समय के अधिकांश भाग में एकाकी रहना मुझे स्वास्थ्यकर प्रतीत होता है! संग-साथ, चाहे वह सर्वोत्तम ही क्यों न हो, जल्दी ही नीरस और ह्रासकारी लगने लगता है। मुझे एकांत प्रिय है। मुझे कभी कोई साथी उतना साथ रहने 'योग्य' नहीं मिला जितना कि एकांत। अधिकांश में हम अपने घर पर रहने की अपेक्षा जन-समूह में अधिक एकाकी होते हैं। चिंतन करता हुआ या काम में लगा हुआ व्यक्ति सदा एकाकी ही रहता है, चाहे वह कहीं भी रहे। एक व्यक्ति और उसके बंधुओं के बीच की दूरी के मीलों से एकांत को नहीं नापा जा सकता। कैम्ब्रिज-कालेज की भीड़-भाड़ में रहने वाला परिश्रमी विद्यार्थी वास्तव में उतना ही एकाकी होता है जितना कि मरुभूमि में स्थित कोई दरवेश। किसान दिन-भर खेत में परिश्रम करता रहता है, निराई या लकड़ी की फटाई करता रहता है फिर भी अकेलापन उसे महसूस नहीं होता; क्योंकि वह काम में लगा रहता है। लेकिन जब वह घर लौटकर आता है तो अपने कमरे में, अपने विचारों के सहारे अकेला नहीं बैठ सकता, बल्कि वह अवश्य ही ऐसी जगह जाना चाहता है जहाँ उसे "लोग दिखाई दें", जहाँ उसका मनोरंजन हो, और उसके विचार से, दिन-भर के एकांत की पूर्त्ति हो सके। इसीलिए उसे आश्चर्य होता है कि विद्यार्थी कैसे अपने घर में दिन-रात, बिना ऊबे, बिना थके अकेला बैठा रहता है। लेकिन यह बात उसकी समझ में नहीं आती कि घर में रहते हुए भी विद्यार्थी किसान की ही भाँति 'अपने' खेत में काम करता रहता है, 'अपने' वन में लकड़ी फाड़ा करता है, और इसके बाद किसान की ही भाँति वह कुछ मनोरंजन चाहता है, हालाँकि यह मनोरंजन अपेक्षाकृत अधिक कसा हुआ और अधिक ठोस होगा।

साधारणतः संग-साथ बहुत सस्ते किस्म का होता है। हम एक-दूसरे से समय के बहुत थोड़े-थोड़े अन्तर पर मिलते हैं, इसलिए हमें एक-दूसरे के लिए

कोई नई चीज़ उपलब्ध करने का अवसर नहीं मिल पाता। दिन में तीन बार हम भोजन पर मिलते हैं और परस्पर अपनी बासी कढ़ी चखाते रहते हैं। इस बार-बार की भेंट को सहज बनाने के लिए, और युद्ध न कर बैठने के लिए हमें कुछ निर्धारित नियमों का पालन करना पड़ता है, जिन्हें हम शिष्टाचार और विनम्रता की संज्ञा देते हैं। हमारी भेंट डाकघर में होती है, सभा-समाज में होती है, रात को अंगीठी के सहारे होती है। हम बहुत भीड़-भड़क्के में रहते हैं, एक-दूसरे का मार्ग रोकते हैं, परस्पर टकराते रहते हैं और मेरा खयाल है कि इस प्रकार एक-दूसरे के प्रति सम्मानभाव खो देते हैं। इससे कम बार भेंट करने से ही निश्चयपूर्वक हमारी सब महत्त्वपूर्ण और हार्दिक बातचीत पूरी हो सकती है। कल्पना कीजिए कारखानों में काम करने वाली लड़कियों की— क्षण-भर को भी अकेले रहकर स्वप्नों में खोने का अवसर उन्हें नहीं मिलता। कहीं अच्छा हो यदि एक वर्ग मील में केवल एक व्यक्ति रहे जैसे कि मैं रहता हूँ। आदमी का मूल्य उसकी त्वचा में नहीं है कि हम उसे छू ही लें।

मैंने एक आदमी के बारे में सुना है कि जंगल में भटक जाने से भूख और कमजोरी के कारण एक पेड़ के नीचे उसका प्राणांत हो रहा था। शारीरिक शिथिलता के कारण उसके रुग्ण मन में बहुत-सी आकृतियाँ आती थीं, जिन्हें वह यथार्थ समझता था। इस प्रकार वह अपने को अकेला महसूस नहीं करता था। इसी प्रकार स्वस्थ और सशक्त शरीर और मन लेकर हम निरन्तर इसी भाँति के, किन्तु सामान्य और प्रकृत, समाज का आनन्द उठा सकते हैं, और यह जान सकते हैं कि हम कभी भी एकाकी नहीं रहते।

अपने घर में ही मुझे बहुत-सा संग-साथ मिल जाता है, खास तौर पर जब कोई भेंट करने नहीं आता। अपनी स्थिति समझाने के लिए मैं एक तुलना पेश करूँगा। मैं झील पर जोर से हँसने वाले "लून" (जल पक्षी) से अधिक एकाकी नहीं हूँ अथवा वालडेन सरोवर से अधिक एकाकी नहीं हूँ। मैं पूछता हूँ कि इस एकाकी सरोवर का साथी कौन है? फिर भी इसे भूत नहीं घेरता, बल्कि इसके आसमानी जल में परियाँ वास करती हैं। सूर्य भी अकेला ही रहता है, केवल आच्छादित आकाश को छोड़कर जबकि दो सूर्य दिखाई देते हैं, जिनमें से एक नकली होता है। ईश्वर भी अकेला ही है; किन्तु शैतान अकेला नहीं है, उसके तो बहुत-से साथी हैं। वह तो स्वयं एक विशाल सेना है। चरागाह के एक छोटे पौधे, सेम की एक पत्ती, एक बघी, एक भौंरे जितना ही मैं एकाकी हूँ

उससे अधिक नहीं। मैं नाले की, या "वैदर कौक"[1] की, या ध्रुव तारे की, या दक्षिणी वायु की, या अप्रैल की वर्षा की, या जनवरी के हिमपात की, या किसी नये भवन में जाल बिछाने वाले प्रथम मकड़े की अपेक्षा अधिक एकाकी नहीं हूँ।

जाड़ों की सुदीर्घ संध्यावेला में, जब खूब वर्फ गिरती है, जंगल में वायु का गर्जन चलता रहता है तब कभी-कभी, यहाँ का एक पुराना वासी, इस स्थल का प्रथम स्वामी मुझ से भेंट करने के लिए आता है। कहा जाता है कि उसी ने इस वालडेन झील को खोदा था, इसमें पत्थर की चट्टानें जमाई थीं और इसके चारों ओर चीड़ का वन लगाया था। वह मुझे प्राचीन काल और नवीन 'अनंत' की कथाएँ सुनाता है। हम दोनों मिलकर बड़ी मौज से, बड़ी खुशहाली से, बिना सेव या सेव की शराब के ही, शाम गुजार देते हैं। यह मेरा मित्र बड़ा बुद्धिमान और विनोदी प्रकृति का व्यक्ति है; उससे मुझे अत्यंत प्रेम है, वह अपने-आपको 'गोफ'[2] अथवा 'व्हाले'[3] से भी अधिक गोपन रखता है। लोग उसे मृत समझते हैं, लेकिन यह कोई भी नहीं बता सकता कि उसे दफनाया कहाँ गया था। मेरे पड़ोस में एक वृद्ध महिला भी रहती है, जो अधिकतर लोगों को दिखाई नहीं देती, जिसके सुरभित उद्यान में, सादगी इकट्ठे करते और कहानियाँ सुनते हुए विचरण करना मुझे बहुत प्रिय है। उसकी प्रतिभा अद्वितीय रूप से उर्वर है; उसको पुराणों से भी अधिक प्राचीन बातें याद हैं, वह मुझे प्रत्येक कथा को मूल रूप में सुना सकती है; वह यह भी बता सकती है कि इनमें से प्रत्येक कथा किस तथ्य पर आधारित है, क्योंकि ये घटनाएँ उस काल में घटित हुई थीं जब वह तरुणावस्था में थी वह स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट वृद्धा सभी मौसमों और ऋतुओं का आनन्द उठाती है, सम्भवतः वह अपनी सारी संतान के बाद भी जीवित ही रहेगी।

प्रकृति की (सूर्य और वायु और वर्षा की, जाड़े और गर्मी की) अवर्णनीय सरलता और उदारता से सदा ही कितना स्वास्थ्य, कितना उल्लास प्राप्त होता रहता है! और हमारी मानव जाति से कितनी सहानुभूति है उन सबको कि

---

१. इमारतों के ऊपर लगाया जाने वाला लोहे का कुक्कुट।

२. गोफ, ३. व्हाले — चार्ल्स प्रथम के काल में इंग्लैण्ड के गृह-युद्ध में भाग लेने वाले दो राज-विरोधी योद्धा। इनके लिए प्राण-दंड का निश्चय किया गया था, किंतु वे छिपकर भाग निकले और अमरीका में जा बसे। गोफ बोस्टन में बसा और व्हालें मैसाचुसेट्स में।

यदि किसी व्यक्ति को सही कारण से शोक होता है तो सारी प्रकृति प्रभावित हो उठती है, सूर्य की चमक धुँधली हो जाती है, वायु करुणा से निश्वास भरती है, मेघ आँसुओं की वर्षा करते हैं, और वृक्ष शोक में अपनी पत्तियों का परित्याग कर देते हैं। क्या मैं पृथ्वी से बातचीत न करूँ? क्या मैं स्वयं अंशतः पत्ती और सड़ी-गली वनस्पति नहीं हूँ?

कौन-सी वह गोली है जो हमें स्वस्थ, शांत और संतुष्ट बनाये रखेगी? मेरे या आपके बापदादा की नहीं, बल्कि हमारी पितामही प्रकृति की सार्वभौमिक, वानस्पतिक औषधियाँ, जिनसे उसने अपने आपको चिरकाल से तरुण बनाए रखा है, और अपने जमाने के अनेकों 'पारों'[1] के मर जाने के बाद भी जीवित रही है, और उनके पंचभूतों में विलीन होती हुई वसा से अपने स्वास्थ्य को भोजन दिया है। उस प्रकृति से वह औषधि मिलेगी। मेरे लिए तो सब रोगों की एक महौषधि है, उथले जहाजनुमा डिब्बों में से निकलने वाली, मृतसागर में डुबाई गई नीम-हकीमी शीशियों की अपेक्षा मुझे तो विशुद्ध प्रातःकालीन वायु की एक खुराक ही चाहिए। प्रातःकालीन वायु! यदि लोग दिवस के मूल स्रोत पर इसका सेवन नहीं करना चाहते तो हमें इसको बोतल में बन्द करके दूकानों में बेचना पड़ेगा, उन लोगों के लाभ के लिए जिन्होंने इस संसार में प्रातःकालीन समय का अपना टिकट खो दिया है। लेकिन याद रहे कि यह वायु ठंडे-से-ठंडे तहखाने में भी दोपहर तक सुरक्षित नहीं रहेगी, बल्कि उससे बहुत पहले ही डाट को निकाल फेंकेगी और उषा के पश्चिमगामी चरण चिह्नों का अनुसरण करेगी। मैं प्राचीन वैद्य ऐस्कूलेपियस की पुत्री 'हाइजियो' का पूजक नहीं हूँ जिसकी मूर्ति के हाथ में सर्प होता है और दूसरे हाथ में एक प्याला, जिसमें से वह सर्प कभी-कभी पान करता रहता है। मैं तो 'जूनो' और 'वनस्पति' की पुत्री 'हीबी' (यौवन की देवी) का भक्त हूँ जो देवराज जुपिटर को जाम पिलाती थी, जिसके पास देवताओं और मानवों का कायाकल्प कर देने की शक्ति थी। इस पृथ्वी पर शायद वही एक-मात्र पूर्णतः स्वस्थ और हृष्टपुष्ट तरुणी हुई है। जहाँ भी उसके चरण पड़ते थे, वसंत आ जाता था।

---

१. Parrs—टौमस पार (१५८३–१६३५) नामक किसान, जो १५२ वर्ष की आयु तक जीवित रहा।

६. अतिथिगरा

मेरा ख्याल है कि मुझे संग-साथ से उतना ही प्रेम है जितना कि अधिकतर व्यक्तियों को होता है और मैं इस बात के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ कि मुझे कोई सजीव व्यक्ति मिले तो मैं उससे जोंक की तरह चिपक जाऊँ। स्वभावतः मैं विरागी नहीं हूँ और यदि आवश्यकता हो तो शायद मैं जमने में तगड़े-से-तगड़े शराबी से भी बाजी मार ले जाऊँगा।

मेरे घर में तीन कुर्सियाँ थीं, एक एकांत के लिए, दो मित्रता के लिए और तीन समाज के लिए। जब अतिथिगण अधिक और आशातीत संख्या में पधारते तो उन सबके लिए केवल एक तीसरी कुर्सी ही रह जाती थी, लेकिन वे लोग खड़े रहकर जगह की किफायत कर लेते थे। यह आश्चर्य की ही बात कि कितने सारे महान् स्त्री-पुरुष एक छोटे-से घर में समा जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि २५-३० आत्माएँ एक साथ मेरे घर में सशरीर उपस्थित रही हैं और बहुधा विदा लेते समय हम लोगों को इस बात का भान नहीं हुआ कि हम एक-दूसरे के अति निकट आ गए थे। असंख्य कमरों, बड़े-बड़े हालों और शराब रखने के तहखानों तथा शांति के दूसरे शस्त्रागारों वाले बड़े-बड़े निजी और सार्वजनिक भवन मुझे उनके निवासियों के लिए आवश्यकता से अधिक बड़े प्रतीत होते हैं। ये भवन इतने बड़े, इतने शानदार होते हैं कि उनमें रहने वाले जीव छोटे-छोटे कीड़ों-मकौड़ों-जैसे प्रतीत होते हैं। जब अग्रदूत गाजे-बाजे के साथ किसी ट्रेमोण्ट, ऐस्टर, या मिडिलसेक्स महल के सामने आवाज लगाता है तो इन महलों में से निवासी के रूप में केवल एक चूहा रेंगता हुआ चौक पर चला आता है और जल्दी ही भागकर फुटपाथ के किसी बिल में घुस जाता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है।

इतने छोटे-से घर में मुझे कभी-कभी एक असुविधा का अनुभव होता था और वह यह कि जब हम बड़े-बड़े विचार बड़े-बड़े शब्दों में व्यक्त करने लगते थे तब मुझे अपने मेहमानों से काफी दूर हट जाने में कठिनाई होती थी। जहाजों की भाँति बंदरगाह पर ठहरने के पहले विचार को भी, एक-दो चक्कर लगाने के लिए खाली जगह की जरूरत होती है। विचार गोली की तरह होता

है—सुनने वाले के कान तक पहुँचने के पहले इसकी पार्श्विकगति और उड़ान पूरी हो जानी चाहिए और इसे अपनी गति के अन्तिम सीधे चरण में पहुँच जाना चाहिए, वरना वह दिमाग को फोड़कर, दूसरी ओर से बाहर निकल जायगा। हमारे वाक्यों को भी बीच में फैल-फूटकर पंक्तियाँ बनाने के लिए खाली स्थान की आवश्यकता होती है। राष्ट्रों की भाँति, व्यक्तियों की भी विस्तृत और प्राकृतिक सीमा रेखा होनी आवश्यक है, उनके बीच में पर्याप्त तटस्थ भूमि होनी चाहिए ! सरोवर के इस किनारे पर खड़े होकर दूसरे किनारे पर खड़े साथी से बात करने में मुझे अनुपम आनन्द आता है। मेरे इस घर में हम इतने करीब होते थे कि हम सुनना प्रारम्भ नहीं कर पाते थे; हम इतने धीमे नहीं बोल पाते थे कि दूसरे लोग सुन सके, ठीक जैसे आप प्रशांत जल में दो कंकड़ पास-पास फेंकें तो वे एक-दूसरे की हिलोरों को तोड़ देते हैं। यदि हम केवल वक्की हों, और जोर-जोर से बात करने वाले हों, तो एक-दूसरे के मुँह से मुँह मिलाकर, पास-पास खड़े होकर एक-दूसरे की साँस महसूस करते हुए काम चला सकते हैं। किन्तु यदि हमें विचारपूर्वक, गम्भीरतापूर्वक बात करनी है तो हम दूर-दूर रहना चाहते हैं जिससे जैविक ताप और नमी को भाप बनकर उड़ जाने का मौका मिल सके। हममें से प्रत्येक के भीतर जो कुछ वार्तालाप के परे है उसके साथ यदि हम घनिष्ठतम सम्पर्क का आनन्द उठाना चाहते हैं तो हमारे लिए न केवल मौन रहना आवश्यक है, बल्कि शारीरिक रूप से भी इतनी दूर रहना आवश्यक है कि हम किसी प्रकार भी एक-दूसरे की आवाज न सुन सकें। इस हिसाब से वाणी तो उन लोगों की सुविधा के लिए है जो बहरे हैं। किन्तु बहुत-सी सूक्ष्म बातें ऐसी होती हैं जिन्हें हम चिल्लाकर व्यक्त नहीं कर सकते। ज्यों-ज्यों हमारी बातचीत का स्तर ऊँचा होता जाता था, श्रेष्ठतर होता जाता था त्यों-त्यों हम अपनी कुर्सियाँ पीछे खिसकाते जाते थे जब तक कि वे पीछे वाले कोने में दीवार से न सट जातीं। तब साधारणतः महसूस होता कि जगह की कमी है।

मेरा मुख्य कमरा, मेरा 'विद्-ड्रांइग रूम' जो हमेशा खुला रहता था, जिसके फर्श को सूर्य का प्रकाश बहुत कम छूता था, घर के पीछे का चीड़ का जंगल था। गर्मी के दिनों में जब मेरे विशिष्ट अतिथि पधारते थे तो मैं उन्हें वहीं ले जाता था। एक निर्मूल्य परिचारिका उसका फर्श बुहार देती थी, फर्नीचर झाड़ देती थी ओर सब सामान व्यवस्थित ढंग से जमा देती थी।

जब कोई एक अतिथि आता था तो वह मेरे सादा भोजन में हिस्सा बाँट लेता था, और इसी बीच लपसी बनाने या अंगारों पर रोटी पकाते रहने से बातचीत में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। लेकिन यदि बीस व्यक्ति मेरे घर में आकर आसन ग्रहण कर लेते थे तो भोजन का जिक्र ही नहीं होता था, (भले ही दो-जनों के लिए पर्याप्त भोजन हो) मानो हम लोगों ने भोजन करने की आदत ही छोड़ दी हो। लेकिन हम लोग तो स्वभावत: संयम करते थे। और इस ढंग को कभी भी अतिथि सत्कार के प्रति आचार नहीं समझा गया, उल्टे इसको उचित और विचारपूर्ण ढंग ही माना गया। भौतिक जीवन का ह्रास और क्षय, जिसकी पूर्ति इतनी आवश्यक होती है, इस मामले में आश्चर्यजनक रूप से रुक जाता था और जीवन-शक्ति की विजय होती थी। इस प्रकार मैं हजारों अतिथियों का स्वागत भी उतनी ही अच्छी तरह कर सकता था, जितनी अच्छी तरह बीस का। और घर पर मुझसे भेंट होने के बाद यदि कभी कोई सज्जन निराश या भूखे लौटे हों, तो वे यकीन मानें कि कम-से-कम उनके साथ मेरी सहानुभूति रही है। बहुत-सें गृह-स्वामियों को इसमें संदेह भले ही हो, लेकिन पुरानी रीतियों के स्थान पर नई रीतियाँ स्थापित करना कितना आसान है। आप जो दावतें देते हैं, उन पर अपनी कीर्ति को आधारित करने की जरूरत नहीं है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, कभी भी मुझे किसी आदमी के घर जाने में किसी भी प्रकार के चौकीदार के कारण इतनी रुकावट नहीं पड़ती थी जितनी कि मुझे भोजन कराने के उसके आडम्बर के कारण पड़ती थी। इस आडम्बर को मैं घुमा-फिराकर, विनम्रता पूर्वक यह सूचना देने का ढंग मानता था कि मैं उसे दुबारा कष्ट न दूँ। मेरा विचार है कि मैं फिर कभी इन दृश्यों को देखने नहीं जाऊँगा। मेरे लिए गर्व की बात है कि मेरी कुटिया का आदर्श महाकवि स्पेंसर की वे पंक्तियाँ हैं, जिनको मेरे एक अतिथि ने अखरोट की पीली पत्ती पर लिख दिया था:

> **वहाँ पहुँचते वह संकुल आवास गया भर,**
> **आतिथेय का नहीं चिन्ह भी होता गोचर,**
> **शांति-पान ही आतिथेय था—पीलो जी भर,**
> **श्रेष्ठजनों की होती है संतृप्ति श्रेष्ठतर।**

एक बार विन्स्लो नाम के एक सज्जन, जो बाद में प्लाइमाउथ उपनिवेश के गवर्नर हुए, अपने एक साथी के साथ वन में होकर पैदल 'मैसासोइट' के पास

एक उत्सव देखने के लिए गए। जब वे भूखे और थके अपने ठहरने के स्थान पर पहुँचे तो वहाँ के राजा ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया, लेकिन उस दिन भोजन की कोई चर्चा ही नहीं चली। रात हुई तो उन्हींके शब्दों में, "उसने हमें सोने के लिए अपने और अपनी पत्नी के साथ ही एक फुट ऊँचे तख्ते पर स्थान दिया, जिस पर एक पतली चटाई बिछी हुई थी। जगह की कमी के कारण उनके दो सरदार भी हमारे ही साथ लेटे—नतीजा यह हुआ कि यात्रा की थकान से भी अधिक इस वासस्थान की थकान रही। दूसरे दिन एक बजे के करीब मैसासोइट दो मछलियाँ मार लाया। ये मछलियाँ बड़ी-बड़ी थीं। इनको उबाला गया तो कम-से-कम चालीस लोग इस भोजन मे हिस्सा लेने वाले निकल आए। दो दिन और एक रात में केवल यही भोजन मिला था और हममें से एक ने यदि एक तीतर न खरीद लिया होता तो हमें भूखे ही यात्रा करनी पड़ती।" नींद और भोजन की कमी से और इन लोगों के जंगली गीतों से (सोने के वक्त भी वे लोग गाना गाते थे) कहीं उनका दिमाग खराब न हो जाय, और शक्ति रहते घर पहुँच जाने के विचार से, वे वहाँ से रवाना हो गए। जहाँ तक वासस्थान का प्रश्न है, यह सही है कि ठहरने की व्यवस्था ठीक नहीं थी, यद्यपि जो चीज उन्हें असुविधाजनक लगी थी उसका प्रयोजन आदर-सत्कार ही था। किन्तु जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, मेरी समझ में नहीं आता कि ये रेड इंडियन लोग इससे अधिक और क्या कर सकते थे। उनके पास तो अपने ही खाने के लिए कुछ नहीं था, और यह सोचना कि अतिथियों को भोजन कराने के स्थान पर क्षमा-याचना से ही काम चल जायगा, इससे अधिक बुद्धि उनमें थी। इसलिए उन्होंने पेट थोड़ा और कस लिया और इसके बारे में कोई बात ही नहीं की। अगली बार जब विंस्लो उनके यहाँ गया तो प्रचुरता का समय होने के कारण इस सम्बन्ध में कोई कमी नजर नहीं आई।

कोई कहीं भी हो, आदमियों की कभी कमी नहीं होती। जिन दिनों मैं वन में रहता था उन दिनों जितने अतिथि मेरे यहाँ आते थे उतने जीवन-भर कभी नहीं आए, मेरा मतलब है कि मेरे यहाँ कुछ अतिथि तो आते ही थे। यहाँ अनेक अतिथियों से मेरी भेंट जैसी अनुकूल अवस्था में हुई, वैसी अनुकूल अवस्था में कहीं और नहीं हो सकती थी। लेकिन तुच्छ मामलों में मुझसे भेंट करने के लिए अपेक्षाकृत कम ही लोग आते थे। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि नगर से दूर स्थित होने के कारण मेरा संग-साथ मेरे पास तक छनकर

आता था। एकांत के महासागर में (जिसमें समाज की धाराएँ आकर गिरती हैं) मैं इतनी दूर पहुँच गया था कि जहाँ तक मेरी आवश्यकताओं का प्रश्न था, अधिकांश में मेरे चारों ओर केवल बहुत बारीक तलछट ही इकट्ठी हो पाती थी। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर के अनेक अज्ञात और नए महाद्वीपों के प्रमाण प्रवाहित होते हुए मेरे पास आते थे।

लीजिए, आज सुबह मेरे यहाँ एक कैनेडावासी लकड़हारा, लट्ठे बनाने वाला आया है, वह होमर के या ल्पैफेगोनियन[1] ढंग का है—उसका नाम इतना उपयुक्त और काव्यमय है कि मुझे दुःख है मैं यहाँ नहीं लिख सकता। वह दिन-भर में पचास लट्ठे गाड़ सकता है। उसने पिछली शाम एक 'वुडचक' का भोजन किया था जिसे उसका कुत्ता मार लाया था। उसने भी होमर का नाम सुन रखा है। वह कहता है, "अगर किताबें न होतीं तो पता नहीं बरसात के दिनों में क्या करता," हालाँकि कितनी ही बरसातें बीतती गई और वह एक भी किताब पूरी नहीं पढ़ सका। उसके सूदूरवर्त्ती गाँव में किसी पादरी ने, जोस्वयं ग्रीक भाषा का उच्चारण कर लेता था, उसे बाइबिल के पद्य पढ़ना सिखाया था। और अब वह किताब लिये रहेगा और मुझे होमर के ग्रन्थ के उस अंश का अनुवाद करके सुनाना होगा जहाँ 'ऐचिलस' पेट्रोक्लस को उसकी उदास मुख-मुद्रा के लिए फटकार बताता है—"यह क्या, छोटी-सी लड़की की तरह आँखों में आँसू भरे हो, पैट्रोक्लस ? क्या केवल तुम्हीं ने पिथया से आने वाली कोई खबर सुनी है ?" इत्यादि। वह कहता है, "हाँ यह ठीक है।" उसकी बगल में बलूत की छाल का एक गट्ठर दबा हुआ है जिसे उसने एक बीमार के लिए आज रविवार को सुबह इकट्ठा किया था। वह कहता है, "मेरे खयाल से आज यह काम कर लेने में कोई बुराई नहीं है।" उसके निकट होमर एक महान् लेखक है, हालाँकि होमर ने किसके बारे में लिखा है, उसे कुछ नहीं मालूम। उससे अधिक सहज और प्रकृत आदमी ढूँढ निकालना कठिन है। रोग-दोष, जो संसार के ऊपर इतनी मलिन नैतिक छाया डालते हैं, उनका उसके लिए मानो कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह लगभग अट्ठाइस वर्ष का था, और कैनेडा में अपने पितृ-गृह को छोड़कर लगभग बारह वर्ष पूर्व काम की तलाश में संयुक्त राष्ट्र अमरीका चला आया था, जिससे कुछ धन कमाकर अंत में कदाचित् अपनी मातृ-भूमि में, एक खेत खरीद ले। उसका ढाँचा अनगढ़ था—हट्टा-कट्टा मट्ठर

---

१. पैल्फ़ेगोनियन—एशिया माइनर के प्राचीन राज्य के निवासी।

शरीर, मंथर किन्तु शानदार चाल, मोटी ताम्रवर्ण गर्दन, घने काले बाल, निस्तेज निंदियारी नीली आँखें, जो कभी-कभी अभिव्यंजना से चमक उठती थीं। एक चपटी भूरे रंग की कपड़े की टोपी, एक भूरा ओवरकोट, और गौचर्म के जूते, यही उसकी पोशाक थी। वह जबरदस्त मांस-भक्षी था, साधारणतः अपना भोजन वह एक टीन की डोलची में साथ ले जाया करता था, मेरे घर से दो मील और आगे। ठण्डा गोश्त जो अक्सर ठण्डा 'वुडचक' होता था और पत्थर की वोतल में कॉफी। यह वोतल एक रस्सी से उसकी पेटी में लटकी रहती थी। कभी-कभी वह मुझे यह पेय पेश करता था। वह प्रातःकाल जल्दी ही मेरे सेम के खेत को पार करता हुआ निकलता था। तो भी उसको काम पर पहुँचाने की चिन्ता या हड़बड़ी नहीं होती थी, जैसी कि अमरीकावासियों को होती है। अपने को कोई पीस थोड़े ही डालना है। यदि केवल अपने रहने-भर की भी कमाई कर ली तो फिर उसे कोई फिक्र नहीं। जब उसका कुत्ता किसी 'वुडचक' को पकड़ लेता तो था, अक्सर अपना भोजन झाड़ियों में छोड़कर, वह इसे साफ करके अपने घर में रखने के लिए डेढ़ मील चला जाता था। इसके पहले वह आध घण्टे तक विचार करता था कि यदि वह इसे सरोवर में डुवो दे तो शाम तक यह सुरक्षित रह सकेगा या नहीं। उसको इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करना प्रिय था। सुबह गुजरते वक्त वह कहता, 'आहा, कितने कबूतर हैं। अगर रोज काम पर नहीं जाना पड़ता तो कबूतर, वुडचक, खरगोश, तीतर आदि से ही मेरा काम चल जाता—ईमान से, मेरी हफ्ते-भर की रसद एक दिन में ही इकट्ठी हो जाती।"

वह वड़ा होशियार लकड़ी काटने वाला था। वह अपने काम में कुछ दक्षता और कुछ दस्तकारी भी दिखाता जाता था। पेड़ों को वह जमीन के समतल काटता था जिससे आगे चलकर जो कल्ले फूटें वे अधिक मजबूत हों, और स्लेज गाड़ी भी ठूँठों पर से निकल जाय, और लकड़ी के गट्ठर को टिकाने के लिए पूरा एक पेड़ छोड़ने के वजाय वह, उसे छाँटकर पतली लाठी सी वना लेता था ताकि वाद में उसे हाथ से ही तोड़ा जा सके।

मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ क्योंकि वह इतना शांत और इतना एकाकी था, फिर भी इतना सुखी था; सद्भाव और सन्तोष का स्रोत उसकी आँखों में उमड़ता दिखाई देता था। उसका आनन्द विशुद्ध था। मैं कभी-कभी जंगल में उसे काम करते, पेड़ काटते देखने जाता था; वह हमेशा

एक अकथ संतोष की हँसी से मेरा स्वागत करता था और हालाँकि वह अंग्रेजी बोल लेता था फिर भी 'कैनेडियन फ्रेंच' में अभिवादन करता था। मेरे पहुँचने पर वह अपना काम बन्द कर देता था और अर्द्ध-दमित उल्लास से अपनी काटी हुई चीड़ की डाल के सहारे लेट जाता था, और उसकी छाल छीलकर गोली बनाकर हँसते और बात करते समय उसे चबाता जाता था। पशु-प्रवृत्ति की इतनी प्रचुरता उसमें थी कि कभी-कभी वह किसी भी बात पर, जो उसे गुदगुदाती थी, हँसते-हँसते जमीन पर लोट-पोट हो जाता था। पेड़ों की ओर देखकर वह कहता, "खुदा कसम, लकड़ी काटने में ही मुझे बड़ा आनन्द आ जाता है, मुझे इससे बढ़िया और कोई मनोरंजन नहीं चाहिए।" कभी-कभी फुरसत में वह थोड़ी-थोड़ी देर पर इधर-उधर घूमते हुए जेबी पिस्तौल दागकर अपने-आपको सलामी देकर खुश होता था। जाड़ों में वह आग जलाकर एक केतली में कॉफी गरम करता था, और जब कटे हुए पेड़ पर बैठकर वह भोजन करता था तो पक्षी उसकी बाँह पर बैठकर उसके हाथ से आलू में चोंच मारते थे और वह कहता, "मुझे इन नन्हें प्राणियों का साथ बहुत पसन्द है।"

उसमें 'पशु-मानव' विशेष विकसित था। शारीरिक सहन-शक्ति और संतोष में वह चीड़ और चट्टान का बंधु था। एक बार मैंने उससे पूछा कि क्या वह दिन-भर की मेहनत के बाद रात को थक जाता है तो उसने निष्कपट भाव से गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "नहीं, मैं उम्र-भर कभीं नहीं थका।" किन्तु जिसे बौद्धिक और आध्यात्मिक मानव कहा जाता है वह उसमें उसी भाँति सुप्तावस्था में था जैसे कि एक शिशु में। उसे उसी निर्दोष और प्रभावहीन ढंग से शिक्षा मिली थी जिससे कि कैथलिक पादरी आदिवासियों को शिक्षा देते हैं—जिससे कि शिष्य जागृति की नहीं, केवल निष्ठा और आदर की अवस्था तक ही शिक्षित होता है, और बच्चा विकसित होकर आदमी नहीं बन पाता, बल्कि उसे बच्चा ही रखा जाता है। उसे बनाते समय प्रकृति ने सशक्त शरीर और संतोष उसके भाग में रख दिया था और चारों ओर से निष्ठा और आदर भाव के स्तम्भों का लगा दिया था ताकि वह 'तीन-बीसी-दस' साल तक बच्चा ही बना रहे। वह इतना प्रकृत, इतना अकृत्रिम था कि किसी भी परिचय से उसका परिचय देने का प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, ठीक जैसे किसी वुडचक का परिचय आप अपने पड़ोसी को दें। जैसे आपको इसका पता लगाना पड़ता, वैसे ही उसको भी अपना पता लगाना पड़ता था। अभिनय वह नहीं करता था। लोग

उसे काम के बदले में मजदूरी देते थे और इस प्रकार भोजन और वस्त्र में उसकी सहायता करते थे, किन्तु वह कभी भी उनसे विचार-विनिमय नहीं करता था। जिस व्यक्ति के मन में कोई आकांक्षा न हो उसे यदि 'शालीन' कहा जाय, तो वह इतने सरल और प्रकृत रूप से शालीन था कि शालीनता उसका कोई विशेष गुण नहीं थी, न स्वयं उसे ही इसका भान था। उससे अधिक बुद्धिमान जन उसके निकट देवतुल्य थे। यदि आप उससे कहते कि फलाँ आदमी आ रहा है, तो वह ऐसे व्यवहार करता था मानो वह सोचता हो कि इतनी शानदार चीज को उसकी ओर से कोई उम्मीद नहीं हो सकती—वह सारा उत्तरदायित्व अपने ही ऊपर रखेगी, और उसे भुला ही देगी। प्रशंसा का स्वर उसने कभी सुना नहीं था। लेखक और धर्मोपदेशक के प्रति उसके मन में विशेष श्रद्धा थी। इनके काम उसके निकट चमत्कार से कम नहीं थे। जब मैंने उसे बताया कि मैं भी काफी लिखा करता हूँ, तो बहुत देर तक तो वह यही समझता रहा कि मेरा तात्पर्य 'सुलेख' से है—कारण कि वह स्वयं बहुत सुन्दर अक्षरों में लिख लेता था। कभी-कभी मुझे सड़क के किनारे बर्फ में उसके गाँव का नाम फ्रेंच उच्चारण में, सुन्दर अक्षरों में लिखा मिलता था और मैं जान लेता था कि वह इधर से गुजरा है। एक बार मैंने उससे पूछा कि क्या कभी अपने विचार लिख लेने की इच्छा उसके मन में होती है? उसने बताया कि उसने उन लोगों के पत्र तो लिखे-पढ़े थे जो स्वयं लिख-पढ़ नहीं पाते, लेकिन कभी भी अपने विचारों को लिखने की चेष्टा उसने नहीं की थी—नहीं, वह नहीं जानता कि पहले क्या लिखना पड़ता है, इससे तो उसका दम ही निकल जायगा, और फिर साथ-ही-साथ हिज्जे का भी तो ध्यान रखना होगा।

एक बार एक विख्यात समाज-सुधारक ने उससे प्रश्न किया कि क्या वह संसार में कोई परिवर्तन चाहता है, लेकिन उसने आश्चर्य से खिलखिलाते हुए अपने कैनेडियन उच्चारण में उत्तर दिया, "नहीं, मुझे तो यह संसार बहुत पसंद है।" उसे यह पता नहीं था कि इससे पहले भी कभी इस प्रश्न पर ध्यान दिया गया है। उससे बातचीत करने पर, उसके संपर्क में आने पर दार्शनिक के मन में बहुत-सी बातें आ जातीं। किसी अपरिचित के मन में तो यह भाव उठता कि सामान्यत: उसे किसी भी चीज का ज्ञान नहीं है, लेकिन मुझे तो उसमें कभी-कभी ऐसा व्यक्ति दिखाई देता था जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था—मैं नहीं जानता कि वह शेक्सपियर के समान बुद्धिमान था या किसी बच्चे के

समान अज्ञानी, उसके अंदर मैं काव्योचित विवेक की अपेक्षा करूँ या मूर्खता की। मेरे नगर में रहने वाले एक व्यक्ति ने मुझे वताया था कि जव उसने इस आदमी को ठसी हुई टोपी लगाकर गाँव में घूमते हुए देखा तो उसे लगा मानो कोई राजकुमार वेश वदलकर घूम रहा हो।

गणित की एक पुस्तक और एक पंचांग ये दो ही पुस्तकें उसके पास थीं, और इसमें वह काफी होशियार भी था। पंचांग, उसके लिए एक प्रकार का 'विश्वकोष' था, वह समझता था कि इसमें सारे मानव-ज्ञान का सार भरा हुआ है और एक हद तक है भी ऐसा ही। आजकल के सुधारों के वारे में उसे वताना मुझे अच्छा लगता था—और वह इन सुधारों को समतल और व्यावहारिक दृष्टि से देखता था। उसने पहले कभी इन चीजों के वारे में नहीं सुना था। एक वार मैंने उससे पूछा, "क्या तुम्हारा काम कारखानों के विना चल सकता है?" उसने उत्तर दिया कि वह घर का वुना हुआ कपड़ा पहनता है और यह अच्छा भी होता है। क्या वह कॉफी और चाय के विना रह सकता है? क्या इस देश में जल के अलावा और कोई पेय भी होता है? उसने 'हैमलौक' (एक विषाक्त पौधा) की पत्तियाँ पानी में भिगोकर उस पानी को पी लिया था और उसका विचार था कि गर्मियों में यह पानी से भी अच्छा रहता है। एक वार, जव मैंने उससे पूछा कि क्या विना 'धन' (मुद्रा) के उसका काम चल सकता है, तो उसने विनिमय की इस सुविधा के वारे में इतने विशद रूप से वताया कि मुझे लगा मानो वह इस संस्था के आरम्भ की ही सैद्धांतिक व्याख्या कर रहा हो, मानो इस शब्द की ही व्युत्पत्ति वता रहा हो। उसने वताया कि मान लीजिए उसके पास एक वैल है, और उसे सुई और धागे की आवश्यकता है, तो इस विनिमय के लिए वैल के किसी अंग को गिरवी रखना वड़ा असुविधाजनक और साथ ही असम्भव भी होगा। वहुत-सी संस्थाओं का प्रतिपादन वह शास्त्रियों से भी अधिक अच्छी तरह से कर सकता था, क्योंकि वह उनसे अपने सम्वन्ध का वर्णन करते हुए उनके प्रचलन का वास्तविक कारण वता देता था। दूसरे किसी कारण की वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। एक वार मैंने उसे वताया कि प्लैटो के अनुसार आदमी 'विना पंखों का द्विपद जन्तु है', और यह किस्सा भी सुनाया कि एक व्यक्ति ने एक मुर्गी के पंख नोच डाले और कहने लगा, "यह रहा प्लैटो का आदमी।" यह सुनकर उसने तुरन्त कह दिया कि उसमें एक महत्त्वपूर्ण भिन्नता यह थी कि मुर्गे के घुटने उलटी ओर मुड़ते हैं। कभी-कभी

वह कह उठता था : "मुझे बातचीत कितनी अच्छी लगती है। भगवान् कसम मैं तो दिन-भर बातचीत करता रहूँ।" एक बार बहुत दिनों बाद भेंट होने पर मैंने उससे पूछा कि इन गर्मियों में क्या कोई नया विचार उसके मन में आया है? उसने उत्तर दिया, "हे भगवान् जिस आदमी के पास मेरे बराबर काम हो, वह अगर अपने पुराने विचारों को ही न भूल जाय तो उसका काम अच्छी तरह चलता रहेगा। हो सकता है कि जिस आदमी के साथ आप गुड़ाई कर रहे हैं, उसने होड़ लगा रखी है—तब तो, ईमान से, आपका दिमाग उसी में लगा रहेगा, और आप घात-पात की ही बात सोचेंगे।" ऐसे मौकों पर कभी-कभी वह मुझसे पहले ही पूछ बैठता था कि मेरे विचारों में क्या प्रगति हुई है। एक बार जाड़ों में मैंने सोचा कि किसी बाहरी धर्मोपदेशक के स्थान पर इसके अन्तर में ही कोई स्थापना कर दूँ, जीवन का कोई उच्चतर ध्येय उसके मन में बैठा दूँ। इस इरादे से मैंने उससे एक दिन पूछा कि क्या उसे अपने-आप से सदा संतोष ! रहता है। उत्तर मिला, "संतोष ! कुछ लोग एक चीज से संतुष्ट होते हैं, कुछ दूसरी चीज से। कोई-कोई तो, अगर उनके पास खाने-पहनने को काफी हो तो मेज की ओर तोंद और आग की ओर पीठ करके बैठे ही रहेंगे, भगवान् कसम।" फिर भी मैं किसी भी तरकीब से आध्यात्मिक दृष्टि से उसे नहीं दे सका। ऊँची-से-ऊँची बात जो वह सोच पाता था, वह होती थी किसी सरल उपाय के बारे में जिसकी आशा आप किसी जानवर से कर सकते हैं और व्यावहारिक तौर पर यही बात अधिकतर व्यक्तियों के बारे में सही है। यदि कभी मैं उसके जीवन के ढंग में किसी सुधार का सुझाव रखता तो वह बिना पश्चात्ताप के कह देता कि इसका समय निकल चुका है। फिर भी सत्य-निष्ठा प्रभृति अनेक सद्‌गुणों में उसका पूर्ण विश्वास था।

उसमें एक सुनिश्चित मौलिकता दिखाई देती थी, चाहे वह कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न हो और कभी-कभी मुझे दिखाई देता था कि वह स्वयं विचार करता है और अपना ही मत अभिव्यक्त करता है, जो एक इतनी दुर्लभ घटना है कि केवल इसे देखने के लिए मैं दस मील तक पैदल चला जाऊँगा; इसे तो समाज की कितनी ही संस्थाओं की पुनरुत्पत्ति समझिए। हालाँकि उसे कुछ झिझक लगती थी और वह साफ तौर पर अपनी बात अभिव्यक्त नहीं कर पाता था, तो भी पृष्ठिभूमि में सदा उसके पास प्रकट करने योग्य एक विचार रहता था। फिर भी उसके विचार इतने आदिम होते थे, उसके पशु-जीवन में

इतने डूबे हुए होते थे कि वे बहुत कम परिपक्व होकर ऐसी चीज बन पाते थे जिसका वर्णन किया जा सके, यद्यपि वे कोरे पण्डितों के विचारों से कहीं अधिक आशाजनक होते थे। उसे देखकर प्रतीत होता था कि जीवन के निम्नतम स्तर में भी प्रतिभावान व्यक्ति हो सकते हैं, (स्थायी रूप से वे चाहे जितने दीन-हीन और अशिक्षित हों,) जिनका हमेशा अपना दृष्टिकोण होता है, अथवा जो कुछ भी देखने का बहाना नहीं करते—वे अतल होते हैं ठीक जैसे वालडेन-सरोवर को अतल समझा जाता था। हाँ, वे गहरे रंग के और मटमैले हो सकते हैं जो वालडेन नहीं है।

कितने ही यात्री पानी पीने के बहाने मुझे और मेरे घर को देखने के लिए अपना रास्ता छोड़कर आते थे। मैं बता देता था कि मैं तो सरोवर का जल पीता हूँ और उन्हें सरोवर का रास्ता दिखाकर एक लोटा पेश कर देता था। साल में एक बार पहली अप्रैल के लगभग लोग एक-दूसरे से भेंट करने के लिए जाते हैं। इतनी दूर रहते हुए भी इस 'वार्षिक भेंट' के मामले में मुझे लोग भुला नहीं देते थे; इस सौभाग्य में मेरा भाग मुझे मिलता था, हालाँकि मेरे अतिथियों में कुछ अजीब-अजीब किस्म के लोग भी होते थे। खैरातखानों से, दूसरी जगहों से कुछ अध-पगले भी मुझसे भेंट करने के लिए आते थे। किन्तु मेरी क्षति-पूर्त्ति इस प्रकार हो जाती थी कि मैं अपने बातचीत के विषय के द्वारा यह चेष्टा करता था कि जो कुछ भी बुद्धि उनमें है, उसका वे प्रयोग करें, और अपने मन की बात मुझसे कहें। वास्तव में, इनमें से कुछ को मैं दरिद्रों के तथाकथित 'ओवरसियरों' और नगर के संभ्रांत व्यक्तियों से अधिक बुद्धिमान पाता था, और मेरे मन में विचार आता था कि समय आ गया है कि अब बाजी पलट जाय। जहाँ तक बुद्धि का प्रश्न है, मैंने सीखा कि 'अल्प' और 'पूर्ण' बुद्धि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। एक दिन मेरे यहाँ एक सरल हृदय, निरीह दरिद्र आया। यह आदमी अक्सर मुझे दूसरों के साथ "बाड़" का काम करता दिखाई देता था, खेत में खड़े होकर वह जानवरों की और अपनी रखवाली करता था कि कहीं वे भटक न जायँ। मेरे पास आकर उसने मेरे ही ढंग से रहने की इच्छा प्रकट की। नितांत सरलता और सचाई से (जो विनम्रता से उच्चतर बल्कि यों कहिए "निम्नतर" थी) उसने मुझे बताया कि उसमें "बुद्धि की कमी है।" ये शब्द उसीके हैं। भगवान् ने उसे ऐसा ही बनाया था, फिर भी वह सोचता था कि भगवान् को उसकी उतनी

ही फिक्र है जितनी कि किसी और आदमी की। "मैं शुरू से ऐसा ही रहा हूँ, कभी मुझमें इससे अधिक बुद्धि नहीं रही, मैं दूसरे बच्चों की तरह नहीं था, मेरा दिमाग कमजोर है। मैं सोचता हूँ कि परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी।" और उसको देखने से इन शब्दों की सचाई का पता चल जाता था। वह मेरे लिए एक आध्यात्मिक पहेली था। ऐसी आशाजनक भूमि पर खड़े हुए व्यक्ति मुझे बहुत कम मिले हैं—जो कुछ वह कहता था इतना सरल, सत्य और स्पष्ट होता था। और सचमुच, वह जितना ही अपने-आपको दीन-हीन बनाता दिखाई देता था, उतना ही ऊँचा उठता जाता था। पहले तो मैं समझ नहीं पाया कि यह एक चतुराई की नीति का फल है। प्रतीत होता था कि इस अल्प-बुद्धि दरिद्र ने सचाई और स्पष्टवादिता का जो आधार बनाया है उस पर हमारी बातचीत आगे चल सकती है, जो ऋषि-मुनियों की बातचीत से भी अधिक श्रेष्ठ होगी।

मेरे कुछ अतिथि उन लोगों में से होते थे जिनकी गणना साधारणतः नगर के दरिद्रों में नहीं होती, लेकिन होनी चाहिए। ये लोग तो संसार के दरिद्रों में होते हैं। ये अतिथिगण आपसे 'अतिथि सत्कार' नहीं चाहते, उदारता चाहते हैं, वे सचमुच सहायता की याचना करते हैं और इस याचना की भूमिका में ही यह सूचना दे देते हैं कि उन्होंने कम-से-कम इस बात का तो दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वे स्वयं कभी अपनी सहायता नहीं करेंगे। मैं अपने अतिथि में एक बात चाहता हूँ—वह सचमुच भूखा न मर रहा हो, भले ही उसकी भूख दुनिया में सबसे अच्छी हो, चाहे जैसे यह भूख मिली हो। दान के पात्र अतिथि नहीं होते। ऐसे लोग भी आते थे जिनको यह पता नहीं रहता था कि उनका आतिथ्यकाल कब समाप्त हो गया, हालाँकि मैं अपने काम में पुनः लग जाता था और अधिकाधिक दूरी से उनकी बात का उत्तर देने लगता था। इस प्रव्राजी काल में लगभग सभी बौद्धिक स्तरों के व्यक्ति भेंट करने के लिए आते थे। कुछ लोगों में आवश्यकता से अधिक बुद्धि होती थी, इतनी कि वे इस अतिरिक्त बुद्धि का प्रयोग नहीं जानते थे। बागानों से भागे हुए गुलाम भी आते थे जो कथा की लोमड़ी की भाँति, समय-समय पर आहट लेते थे मानो पीछा करने वाले भौंकते हुए कुत्तों की आहट ले रहे हों, और कातर भाव से मेरी ओर देखते थे मानो कह रहे हों—

"ओ ईसाई, क्या तुम मुझे वापिस लौटा दोगे?"

एक वार वास्तव में भगोड़ा गुलाम भी ऐसा आया था जिसे मैंने ध्रुव तारे की दिशा में भाग जाने में सहायता दी थी। तरह-तरह के लोग आते थे। कुछ लोग आते थे जिनके पास एक ही विचार होता था जिनकी समता उस मुर्गी से की जा सकती है जिसके पास एक ही चूजा हो और सो भी अपना नहीं वत्तख का ! कुछ हजारों विचार और अस्त-व्यस्त सिर वाले आते थे, उन मुर्गियों की तरह जिन्हें सौ-सौ चूजों की देख-भाल करनी पड़ती है (जो सव एक ही कीड़े की तलाश करते फिरते हैं और वीसियों सुवह की ओस में खो जाते हैं) फलतः वे खुजैली हो जाती हैं और उनके पंख गिर जाते हैं। पैरों की वजाय विचारों के वल चलने वाले, वौद्धिक कान-खजूरे जिनका रेंगना आप समूचे शरीर पर महसूस करने लगते हैं। एक सज्जन ने मुझे सुझाव दिया कि मैं एक रजिस्टर रखूं, जिसमें अतिथिगण अपना नाम लिख दिया करें, जैसा कि लोग "व्हाइट माउण्टेन्स" (श्वेत पर्वत) पर किया करते हैं। किन्तु हाय, मेरी स्मरण-शक्ति इतनी अच्छी है कि इसकी आवश्यकता ही नहीं होती।

अपने अतिथियों की कुछ विशेषताओं पर मेरा ध्यान चला ही जाता था। लड़के-लड़कियाँ और तरुण स्त्रियाँ, सामान्यतः सभी वन में आने पर फूल उठते थे। वे सरोवर में झाँकते थे, फूलों की ओर देखते थे और समय का सदुपयोग करते थे। व्यापारीगण, यहाँ तक किसान भी, केवल एकांत और काम की वात सोचते थे और इस वात का हिसाव लगाते थे कि मैं इस या उस चीज से कितनी दूरी पर रहता हूँ, और यद्यपि वे कह सकते थे कि कभी-कभी वन में घूमने में उन्हें आनन्द आता है, फिर भी यह स्पष्ट था कि इसमें उन्हें आनन्द नहीं आता था। व्याकुल, व्यस्त लोग, जिनका सारा समय जीविकोपार्जन में या संग्रह करने में चला जाता था, पादरी लोग, जो परमात्मा के वारे में इस ढंग से वात करते थे जैसे इस विषय पर उनका एकाधिकार हो, जो दूसरों का मत सहन नहीं कर सकते थे; डॉक्टर, वकील और वेचैन गृहस्थ जो मेरी अनुपस्थिति में मेरी अलमारी और विस्तर की परीक्षा करते थे (श्रीमती··· को ही लीजिए जो यह जानना चाहती थी कि मेरे विछौने की चादर उनकी चादरों के समान साफ थी या नहीं), अकाल-वृद्ध नवयुवक जो इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि रोजगार के घिसे-पिटे रास्ते पर चलना ही सवसे सुरक्षित होगा—ये सव लोग सामान्यतः यही कहते थे कि मेरी स्थिति में रहकर इतना भला काम करना सम्भव नहीं है। हाँ, कठिनाई यही होती है। वृद्ध, शिथिल

और डरपोक, वे चाहे जिस आयु या लिंग के हों, सबसे अधिक बीमारी, आकस्मिक दुर्घटना और मृत्यु की ही बात सोचते थे; उनको सारा जीवन ही खतरों से भरा दिखाई देता था (और यदि आप खतरों के बारे में न सोचें तो कौन-सा खतरा रह जाता है ?) और वे सोचते थे कि चतुर व्यक्ति तो अपने लिए सबसे सुरक्षित स्थान चुनेगा जहाँ से मिनट भर में डा० बी० को बुलाया जा सके। उनके लिए तो गाँव शब्दश: समिति होता है, (परस्पर सुरक्षा के लिए एक संघ) और वे "हकलबेरी" तोड़ने जायँगे तो दवाओं का एक बक्स साथ में लेकर। कुल मिलाकर इसका अर्थ यह हुआ कि आदमी जब तक जीवित रहेगा तब तक उसके मरने का 'खतरा' बना ही रहेगा, हालाँकि पहली बात तो यही है कि आदमी जितना ही अधिक मरा-सा होगा उसी अनुपात में खतरा भी कम होगा। घर बैठे भी उतना ही खतरा होता है जितना कि बाहर। और, अन्त में, अपने-आपको सुधारक कहने वाले लोग भी, सबसे अधिक ऊबाने वाले लोग—आते थे, जिनसे सबसे अधिक तबियत ऊबती थी। ये लोग सोचते थे कि मैं हमेशा निम्न पंक्तियाँ गुनगुनाता रहता हूँ—

यह घर है जिसको मैंने बनाया हैं,
यह उस घर का वासी है जिसको मैंने बनाया है।

किन्तु उन्हें पता नहीं कि इसकी तीसरी पंक्ति थी—

ये हैं वे लोग जो तंग करते हैं,
उस घर के वासी को, जो मैंने बनाया है।

मुझे मुर्गी-मार बाज़ों का डर नहीं था क्योंकि मुर्गियाँ मेरे पास थी ही नहीं। मुझे तो 'आदमी-मार' बाज़ों का डर था।

इन पिछले लोगों से अधिक आनन्ददायक अतिथि भी मेरे यहाँ आते थे। बच्चे बेर तोड़ने के लिए आते थे, रेल-लाइन के मज़दूर रविवार को साफ कपड़े पहनकर आते थे, मछुए, शिकारी, कविगण और दार्शनिक, संक्षेप में, सब सच्चे यात्री, जो स्वतंत्रता का उपभोग करने के लिए वन में आते थे। ये लोग वास्तव में गाँव को पीछे ही छोड़ आते थे, अपने साथ नहीं ले आते थे। इन सबका मैं स्वागत करता था, "स्वागत है, अंग्रेज बंधुओ, स्वागत है।"

७. सेम का खेत

इस बीच मेरी सेमें जिनकी पाँतों की लम्बाई का कुल योग सात मील होगा, गोड़ाई के लिए अधीर हो रहीं थीं, क्योंकि बाद वाली सेम के बोए जाने के पूर्व ही पहले वाली बहुत काफी बढ़ चुकी थीं। सचमुच अब इस काम को स्थगित नहीं किया जा सकता था। इस निरन्तर, कठिन, आत्म-सम्मानपूर्ण श्रम का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता था। मुझे इन पाँतों से, अपनी सेम से प्रेम हो गया था, यद्यपि वे मेरी आवश्यकता से कहीं अधिक थीं। उन्होंने मुझे पृथ्वी से सम्बद्ध कर दिया था और इस प्रकार मेरे अन्दर 'ऐण्टियस'[1] की भाँति शक्ति आ गई थी। किन्तु मैं उन्हें उगाऊँ ही क्यों? परमात्मा ही जाने। गर्मियों भर मैं इसी मनोरंजक श्रम में लगा रहा—पृथ्वी-तल के इस भाग पर जहाँ अभी तक केवल पंचपतिया, ब्लैकबेरी, और जोन्सवार्ट आदि जंगली फल और मनोहर फूल उगते आए थे वहाँ मैंने यह अनाज उगाया। मैं सेम से क्या सीखूंगा, अथवा सेम मुझसे क्या सीखेगी? मैं उसे पोषित करता हूं, उसकी गुड़ाई करता हूँ; सुबह-शाम उसकी देख-भाल करता हूँ, यह मेरा दिन-भर का काम है। देखने में इसकी पत्ती अच्छी चौड़ी लगती है। इस काम में मेरी सहायक हैं, ओस और मेह की बूंदें जो इस शुष्क भूमि को सींचती हैं, तथा भूमि की बची-खुची उर्वरता जो अधिकाँश में अत्यन्त क्षीण हैं। मेरे शत्रु हैं कीड़े-मकौड़े और ठण्डे दिन, किन्तु सबसे बड़े शत्रु हैं वुडचक, जिन्होंने मेरा एक चौथाई एकड़ साफ कर दिया है। किन्तु जोन्सवार्ट आदि को निकाल फेंकने का, उनके प्राचीन उपवन को नष्ट कर देने का मुझे क्या अधिकार है? जल्दी ही बाकी सेम भी उसके मुकाबले काफी तगड़ी हो जायगी और नये शत्रुओं का सामना करेगी।

मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं चार साल का था तब मुझे इसी वन, इसी खेत में होकर इस झील पर, इस जन्म-भूमि पर लाया गया था। यह मेरे स्मृति-पट पर अंकित सबसे पुराने दृश्यों में से है। और आज, इस रात को, मेरी बाँसुरी ने सरोवर के उसी जल के ऊपर प्रतिध्वनियों को जगा दिया है।

---

१. ऐण्टियस—ग्रीक कथाओं का एक पहलवान। भूमि का स्पर्श होते ही उसमें अदम्य शक्ति आ जाती थी।

आयु में मुझसे बड़े चीड़ के वृक्ष अब तक खड़े हुए हैं अथवा यदि उनमें से कुछ गिर गए हैं, तो उनके ठूँठों से मैंने अपना खाना पका लिया है और चारों ओर नये कल्ले फूट रहे हैं, नयी कोपलें आ रही हैं। इस मैदना में एक ही अक्षय जड़ में से लगभग वही 'जोन्सवोर्ट' फिर निकलता है, और यहाँ तक कि मैंने भी अपने नन्हें काल्पनिक स्वप्नों के इस भू-दृश्य को सजाने की चेष्टा की है; मेरी उपस्थिति और मेरे प्रभाव का एक फल इस सेम की पत्तियों में, मक्का की लम्बी पतली पत्तियों में और आलू की बेलों में दिखाई देता है।

मैंने लगभग ढाई एकड़ पठारी भूमि में खेती की। केवल पन्द्रह वर्ष पहले यह जंगल साफ किया गया था, और ढाई सौ वर्ग फुट लकड़ी तो मैंने स्वयं ही काटी थी। इसलिए मैंने इस खेत में जरा भी खाद न दी। किन्तु गर्मियों में गोड़ाई करते समय मुझे कुछ चिह्न मिले, जिनसे पता चला कि प्राचीन काल में कोई जाति वहाँ रह चुकी होगी जो अब नहीं पाई जाती। गोरे लोगों के जमीन को साफ करने से पहले ही इस जाति ने वहाँ मक्का और सेम की खेती की थी। इस प्रकार कुछ हद तक इस फसल के लिए इस मिट्टी की उर्वरता समाप्त हो चुकी थी।

किसी गिलहरी या वुडचक के दौड़कर सड़क पार करने से पहले ही, जबकि सूर्य बलूत के झाड़ से ऊपर नहीं उठ पाता था, ओस रहते ही मैं सेम की निराई का काम प्रारम्भ कर देता था। जंगली पौधों को खोदकर उन पर धूल डाल देता था हालाँकि किसान लोग इतनी ओस में काम करने से मुझे रोकते थे। (मैं आपको सलाह दूँगा कि यथा सम्भव ओस रहते ही अपना काम पूरा कर डालिए।) प्रातःकाल में नंगे पैरों ओस से गीली, सरकती रेत में शिल्पकार की भाँति खेलते हुए मैं काम करता था, किन्तु वाद में दिन चढ़ने पर धूप में मेरे पैरों में फफोले पड़ जाते थे। सेम की गोड़ाई करने के समय सूर्य मुझे रोशनी देता था, धीमे-धीमे, इस पीली रेतीली ऊँची भूमि पर आगे-पीछे वढ़ते हुए, वयासी गज लम्बी हरी पाँतों के वीच जिनके एक ओर विश्राम करने के लिए बलूत के झाड़ की छाया थी और दूसरी ओर ब्लैकबेरी का एक खेत, जिसके हरे फल मेरा दूसरा चक्कर लगते-लगते गहरा रंग धारण कर लेते थे। जंगली पौधों को निकालकर सेम के तनों पर नई मिट्टी डालना और अपने वोए हुए इन जंगली पौधों को प्रोत्साहित करना, पीली मिट्टी से उसके ग्रीष्म-कालीन मनोभावों को चिरायता; ज्वार आदि के स्थान पर सेम के

फूलों और पत्तियों के रूप में अभिव्यक्त करवाना; पृथ्वी की जिह्वा से घास के वजाय सेम कहलवाना, यह मेरा नित्य प्रति का काम था। पशुओं से, या किराए के मजदूरों से, या खेती के सुधरे हुए औजारों से कोई सहायता न लेने के कारण मेरा काम अपेक्षाकृत वहुत धीमा था। इसलिए असाधारण तौर पर अपनी सेमों से मेरी घनिष्ठता हो गई थी। हाथों की मेहनत, चाहे जितनी करनी पड़े, शायद कभी भी वह निष्क्रियता का सबसे बुरा रूप नहीं होती। इससे एक सुस्थिर और अमिट सीख मिलती है और विद्यार्थी को इससे एक महान् फल प्राप्त होता है। लिंकन और वैलैण्ड होकर पश्चिम की ओर न जाने कहाँ-कहाँ जाने वाले यात्रियों के लिए तो मैं साक्षत् 'कृषि-श्रम' था। वे आराम से घुटनों पर कोहनियाँ टिकाए रास ढीली किये अपनी टमटम पर सवार यात्री और मैं घर पर रहने वाला, इस भूमि का मेहनतकश वासी। लेकिन जल्दी ही मेरी गृह-भूमि उनकी आँखों और विचारों से ओझल हो जाती थी। सड़क के दोनों ओर इस भूमि के सिवाय बहुत दूर तक कोई इतना खुला, खेत नहीं पड़ता था इसलिए वे इसीकी चर्चा करते थे। कभी-कभी इस खेत में काम करने वाले के कानों तक उनकी वातचीत का वह अंश भी पहुँच जाता था जो उसके लिए नहीं होता था। "सेम अव! इतनी देर में! मटर, अव!" क्योंकि जिस समय तक दूसरे लोगों ने गोड़ाई प्रारम्भ कर दी थी, उस समय तक मैं वुवाई करता रहा था। सरकारी किसान को इस पर शंका नहीं हुई थी। "यह तो चारे के लिए मक्का वोई गई है, चारे के लिए मक्का।" इस भूरे कोट की काली टोपी (पत्नी) पूछती है, "क्या वह यहाँ रहता भी है?" और वह कठोर 'आकृति' वाला किसान अहने कृतज्ञ घोड़े की रास मोड़कर मेरे पास पूछने आता है कि यहाँ मैं क्या कर रहा हूँ, जहाँ उसे कूडों में खाद भी नहीं दिखाई देती। इसके वाद वह यहाँ थोड़ी-सी राख, बुरादा या कूड़ा-करकट डालने की सलाह देता है। किन्तु यहाँ ढाई एकड़ जमीन में कूँड वने हुए थे—गाड़ी के स्थान पर केवल एक फावड़ा था, उसे खींचने के लिए घोड़े के स्थान पर दो हाथ थे (अन्य प्रकार की गाड़ी और घोड़ों से मुझे अरुचि है) और बुरादा दूर था। सहयात्री वहाँ से गाड़ी में गुजरते समय जोर-जोर से इस खेत की तुलना दूसरे खेतों से करते जाते थे जो उनके रास्ते में पड़े होते। इससे मुझे पता चल जाता था कि खेती-वाड़ी की दुनिया में मैं कहाँ ख़ड़ा हूँ। इस खेत का जिक्र मिस्टर कोलमैन की रिपोर्ट में

नहीं होता था। और मैं तो यह पूछता हूँ कि जिन वन्य-प्रदेशों को मानव ने अभी तक नहीं छुआ है, उनमें प्रकृति जो फसल उगाती है उसकी कीमत कौन आंकता है ? अंग्रेज़ी घास की फसल को बड़ी सावधानी से तोला जाता है, उसमें कितनी नमी है, इसका हिसाब लगाया जाता है, उसमें कितना सिलिकेट और कितना पोटाश है यह भी देखा जाता है। किन्तु छोटी-छोटी घाटियों में, जंगल में, झील के गड्ढों में, चरागाहों में, दलदलों में एक बढ़िया फसल उगती है जिसे आदमी नहीं काटता। मेरा खेत मानो जंगली भूमि और खेती के लिए जोती-बोई भूमि के बीच की कड़ी था। जिस प्रकार कि कुछ राज्य सभ्य होते हैं, कुछ अर्द्ध-सभ्य होते हैं और कुछ असभ्य अथवा जंगली होते हैं, उसी प्रकार मेरा खेत अर्द्ध-विकसित था (बुरे अर्थों में नहीं)। मैंने जो सेमें उगाई थीं वे बड़े आनन्द से अपनी वन्य और मूल अवस्था को लौट रहीं थीं और मेरी कुदाली से वही संगीत निकलता था जो एक युग में गायों और भेड़ों को बुलाने के काम में लाया जाता था।

निकट ही भोजपत्र की सबसे ऊँची फुनगी पर बैठकर 'ब्राऊन थ्रैशर' (जिसे हम 'रेड मैविस' कहकर पुकारते हैं) बैठी आपके संसर्ग से आनन्दित होकर गा रही है। यदि आप यहाँ न होते तो वह किसी दूसरे किसान के खेत पर जा पहुँचती। बीज बोते समय वह गाती है, "बीज गिराओ, बीज गिराओ, ढक दो, ढक दो, खींचो, खीचो, खींचो।" यह मक्का नहीं सेम थी इसलिए उसके जैसे शत्रु से सुरक्षित थी। आपको आश्चर्य हो सकता है कि वह एक तार पर या बीस तारों पर बैठकर अपना निरर्थक राग, अपना शौकिया संगीत अलापे, इससे आपकी बुवाई को क्या लेना देना है। किन्तु फिर भी आप इसे राख या पलस्तर की खाद की अपेक्षा अधिक पसंद करेंगे। यह एक प्रकार की सस्ती खाद थी जिसमें मेरा पूरा विश्वास था।

गोड़ाई करके अपनी सेम की पाँतों पर और भी नई मिट्टी डालते समय मैं उन जातियों की भस्म को खोद रहा था जिनका इतिहास में उल्लेख नहीं है, जो प्रारम्भिक युग में इसी आकाश के नीचे रहती थीं। उनके शिकार और युद्ध के आदिम हथियारों को मैं इस वर्तमान दिवस के आलोक में ला रहा था। वे दूसरे प्रकृत पत्थरों में घुले-मिले पड़े थे, जिनमें से कुछ पर रेड-इंडियनों द्वारा जलाई गई आग के चिह्न थे और कुछ पर सूर्योत्ताप से जलने के। साथ ही उन बरतनों के अवशेष भी निकले जिन्हें निकट भूत के किसान इधर लाए होंगे।

जब मेरी कुदाली पत्थरों पर खनकती तो इस संगीत से सारा वन और आकाश गूंज उठता था। यह मेरे श्रम का साथ देने वाला वाद्य-संगीत था जिसकी अपरिमित फसल तुरन्त ही मिल जाती थी। इस समय न तो वह सेम ही रहती थी जिसे मैं गोड़ता था और न वह गोड़ने वाला मैं ही रहता था, और कभी-कभी नौटंकी देखने के लिए शहर जाने वाले परिचित जनों की याद करके मेरे मन में जितनी दया उमड़ आती थी उतना ही गर्व भी होता था। उजले तीसरे पहर में सिर के ऊपर 'बाज़' मँडराते थे, आँख में, आसमान की आँखमें किरकिरी की भाँति। समय-समय पर वे आवाज़ के साथ नीचे की ओर झपट्टा मारते थे मानो आसमान फट गया हो, फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गया हो, फिर भी बिना सींवन का एक चोगा बाकी ही रह जाता था। ये सब छोटे-छोटे प्रेत हवा में भीड़ लगाए रहते हैं, ज़मीन पर खुली रेत में या पहाड़ी की चोटियों पर चट्टानों में अंडे देते हैं जो किसी को दिखाई नहीं देते, मानो ये सुन्दर और पतली आकृतियाँ झील में से निकाली गई लहरियाँ हों, ठीक जैसे हवा में उड़कर पत्तियाँ आसमान में तिरने लगती हैं। प्रकृति में इतनी आत्मीयता है। जिस लहर के ऊपर बाज़ मँडराता है उसका वह आकाशी बन्धु है, उसके वे निर्दोष हवा-भरे पंख सागर के पंखहीन जलीय डैनों का जवाब हैं। या कभी-कभी "हैन हौक" का एक जोड़ा मुझे आसमान में चक्कर काटता और बारी-बारी से ऊपर उड़ता और नीचे आता, एक-दूसरे से मिलता और बिछुड़ता दिखाई देता था। वे मानो मेरे ही विचारों की मूर्तियाँ हों। अथवा कभी इस वन से उस वन को जाते हुए जंगली कबूतरों की कँपनयुक्त सरसराती हुई तेज़ उड़ान मेरा ध्यान आकर्षित करती थी। या मेरी कुदाली की चोट के कारण किसी सड़े हुए ठूँठ में से कोई आलसी अशुभ, धब्बेदार, विदेशी "सैलामैण्डर"[1] निकल पड़ता था। नील नदी और मिस्र का यह चिह्न हमारा समकालीन होता था। जब मैं सुस्ताने के लिए अपनी कुदाली के सहारे झुकता तब ये दृश्य और ये ध्वनियां कहीं भी मुझे एक कतार में दिखाई और सुनाई देती थीं। देहात जो अक्षय मनोरंजन प्रदान करता है, उसका यह केवल एक अंश होता था।

उत्सव के दिनों में नगर में तोपें दगती हैं जिनकी आवाज़ इस वन में बच्चों की बंदूक की भाँति गूंजती है। कभी-कभी सैनिक-संगीत का झोंका

---

१. सैलामैण्डर—छिपकली की जाति का एक जंतु।

यहाँ तक आ जाता है। नगर के इस छोर पर, सेम के खेत में मुझे बड़ी-बड़ी तोपों की आवाज ऐसी लगती है मानो कोई बौंड़ी फट गई हो। कभी-कभी जब फौज की कोई टुकड़ी निकलती थी, जिसकी सूचना मुझे नहीं होती थी तो दिन भर मुझे क्षितिज पर व्याकुलता और बीमारी का धूँधला-सा आभास होता रहता था मानो अभी वहाँ लाल बुखार या कोई चर्मरोग फूट पड़ेगा। फिर वायु का उस ओर से आता हुआ कोई झोंका खेतों और वेलेण्ड रोड को तेजी से पार करता हुआ आता और मुझे इस प्रशिक्षण की सूचना दे देता। दूर से आने वाली इस भनभनाहट से मुझे लगता था मानो किसी की मधुमक्खियों का दल उड़ रहा हो और पड़ोसी लोग महाकवि वर्जिल की सलाह के मुताबिक अपने सबसे संगीतमय बरतन को ठनठनाकर उनको छत्ते पर वापिस बुला रहे हों। जब यह आवाज बन्द हो जाती, भनभनाहट रुक जाती और अनुकूलतम वायु भी कोई सूचना नहीं देती तब मैं जान जाता था कि उनकी अंतिम नरमक्खी तक मिडिल-सेक्स के छत्ते में बंद हो गई है और अब इन मधुमक्खियों का ध्यान छत्ते में लगे हुए मधु की ओर आकर्षित हो गया है।

मुझे यह जानकर गर्व होता था कि मैसाचुसेट्स की और हमारे पितृ-देश की स्वतंत्रता बिलकुल सुरक्षित है, और फिर से गोड़ाई आरम्भ करते समय मेरा मन एक अवर्णनीय विश्वास से भरा होता था। भविष्य के प्रति निश्चल भरोसे के साथ मैं अपने काम में जुट जाता था।

जब संगीत-वादकों के कई समूह होते थे, तो लगता था मानो सारा ग्राम एक जबरदस्त धौंकनी हो और स्वरों के क्रम से सारे भवन आदि फूलते और सिकुड़ते जाते हों। लेकिन कभी-कभी सचमुच बड़ी उच्चकोटि की, स्फूर्तिप्रद धुन इस वन में पहुँचती थी, यशोगान करने वाली तुरही की आवाज आती थी, और मेरा मन होता था कि किसी मैक्सिको-वासी से भिड़ जाऊँ, और अपने शौर्य का परिचय देने के लिए किसी 'वुडचक' या 'स्कंक' की तलाश करने लगता था। सैनिक धुनें इतनी दूर प्रतीत होती थीं जितनी दूर फिलिस्तीन हो, और मुझे मालूम पड़ता मानो जिहादियों की सेना क्षितिज पर कूच कर रही हो जिससे गाँव के ऊपर झूमने वाले 'ऐल्म' (उपकर) वृक्षों की चोटियों पर हल्की-सी सरसराहट और थोड़ा-सा कम्पन हो रहा हो। इस प्रकार के दिन की गिनती बहुत बड़े दिनों में होती थी, यद्यपि मेरी साफ की हुई भूमि से आसमान का वही नित्य का चिर महान् दृश्य दिखाई देता था। मुझे

इसमें कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता था।

सेम को बोने में, गोड़ने में, काटने में, पीटने में और बेचने में (यह सबसे कठिक काम था) और साथ ही खाने में (क्योंकि मैं खाता भी था) मैंने उससे जो लम्बा परिचय प्राप्त किया, वह एक अद्वितीय अनुभव था। अपनी सेमों से परिचित होने का मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था। जब वे उग रही थीं तब मैं सुबह पांच बजे से दोपहर तक उनकी गोड़ाई में लगा रहता था और बाकी का दिन साधारणतया दूसरे कामों में गुजरता था। तरह-तरह के जंगली पौधों के कोमल संस्थानों को इतनी निर्ममता से नष्ट करते समय, और एक जाति के जंगली पौधों की पूरी पाँत को खोदकर दूसरी जाति के पौधों को श्रमपूर्वक उगाने में कुदाली से इतना ईर्ष्यापूर्ण भेद-भाव करते समय आदमी उनसे कितना घनिष्ठ, कितना अनोखा परिचय प्राप्त कर लेता है! (इस वर्णन में यदि कुछ पुनरुक्ति आ गई है तो वह केवल इसलिए कि इस श्रम में भी पुनरुक्ति होती है।) यह चिरायता है, यह 'पिगवीड' यह अम्लवेत है, यह पाइपर घास है, इसे पकड़ो, इसे काट डालो, इसकी जड़ों को खोदकर धूप में डाल दो, इसका एक भी तंतु छाया में न रहे वरना वह दूसरी ओर पलट जायगा और दो दिन में हरा-भरा हो जायगा। एक लम्बा युद्ध चलता है, सारसों से नहीं बल्कि जंगली पौधों से, ट्राय के इन योद्धाओं से जिनका पक्ष सूर्य, मेंह और ओस-बिन्दु लेते हैं। प्रतिदिन सेमें देखती थीं कि मैं कुदाली से हथियार बंद होकर उनकी रक्षा के लिए आ रहा हूँ, उनके शत्रुओं के दल का संहार कर रहा हूँ और खाइयों को मृतकों से पाट रहा हूँ। अनेक भीमकाय 'हैक्टर'[1] जो अपने साथियों के दल से एक फुट भर ऊँचे झूमते दिखाई देते थे, मेरे हथियार के वार से गिरकर धूल में लोटने लगते थे।

गर्मी के इन दिनों में, जबकि मेरे कुछ समसामयिक बोस्टन और रोम में ललित कलाओं में तल्लीन रहते थे, कुछ भारत में चिंतन में लीन रहते थे और कुछ लंदन या न्यूयार्क में व्यापार में जुटे रहते थे, तब मैं इस प्रकार न्यू इंग्लैण्ड के दूसरे किसानों के साथ कृषि में लगा रहता था। यह नहीं कि भोजन के लिए मुझे सेम की आवश्यकता थी; क्योंकि जहाँ तक सेम का संबन्ध है, चाहे उसकी लपसी बनानी हो या मतदान करना हो, मैं स्वभावतः पैथागोरस

१. हैक्टर—ट्राय का योद्धा। होमर के महाकाव्य 'ईलियड' का एक पात्र।

का अनुयायी हूँ[1] और मैं सेम के वदले में चावल ले लिया-करता था। वल्कि मैंने तो सेम की खेती इस कारण की थी कि किसी दिन किसी दृष्टांतकार की सेवा कर सकूँ, क्योंकि भले ही केवल अभिव्यक्ति और अलंकार के लिए हो कुछ लोगों को तो खेत में काम करना ही चाहिए। कुल मिलाकर यह एक दुर्लभ मनोरंजन था जिसे यदि आवश्यकता से अधिक चलाया जाता तो शक्ति-क्षय में परिणत हो जाता। यद्यपि मैंने सेम में कोई खाद नहीं दी, और सबकी एक साथ गोड़ाई भी नहीं की, फिर भी मैं वहुधा जहाँ तक जाता था, वहाँ तक गोड़ता जाता था और अंत में इसका फल भी मुझे मिला। ईवलिन का कथन है कि मिट्टी को निरन्तर पलटने और फावड़े से गोड़ाई करने का मुकाबला कोई भी खाद नहीं कर सकती। कहीं और उसने यह भी कहा है, 'मिट्टी में, खास तौर पर यदि वह ताजी है तो, एक प्रकार की आकर्षण शक्ति होती है जो नमक, शक्ति या गुण (चाहे जो कहिए) को खींचती है जो उसे जीवन देता है। इस कारण हम पोषण देने के प्रयोजन से इस पर इतनी मेहनत करते हैं। बाकी, गोवर डालने और दूसरी निचले दर्जे की चीजें डालने की क्रियाएँ तो केवल इसके स्थानोपन्न का काम कर सकती हैं।" इसके अलावा यह खेत "श्रांत, पड़ती छोड़े हुए खेतों में से था, जो विश्राम करते हैं।" इस कारण शायद, जैसा कि सर कैनेल्म डिग्वी का विचार है, यह भूमि वायु में से 'स्फूर्ति' ग्रहण करती थी। फसल में मुझे बारह वुशल[2] सेम प्राप्त हुई।

यह शिकायत की जाती है कि मि० कोलमैन ने मुख्यतया केवल शौकिया खेती करने वालों के खर्चीले प्रयोगों की ही रिपोर्ट लिखी है, इसलिए मैं पूरा पूरा हिसाव दे रहा हूँ। मेरा खर्च था :—

	डा०	सें०
एक कुदाली	०	५४
हल चलाने, पाटा चलाने और कूँड वनाने का खर्च—	७	५० (अत्यधिक)
सेम का वीज	३	१२½

---

१. यूनानी दार्शनिक पैथागोरस ने शिष्यों को 'सेम के वीज' के प्रयोग का निषेध कर दिया था। उस युग में 'सेम के वीज' राजनीतिक क्षेत्र में मतदान के काम में लाए जाते थे।

२. वुशल—आठ गैलन का माप

आलू का बीज	१	३३
मटर ,, ,,	०	४०
शलजम ,, ,,	०	०६
कौओं की रोक के लिए सफेद लाइन—	०	०२
घोड़ा और लड़का-(तीन घंटे)—	१	००
घोड़ा और गाड़ी, फसल लाने के लिए—	०	७५
	१४——	७२½

मेरी आमदनी थी :—

नौ बुशल बारह क्वार्ट्स सेम बेची—	१६	९४
पाँच ,, बड़े आलू	२	५०
नौ ,, छोटे आलू	२	५५
घास	१	०
डंठल	०	७५
	२३——	४४

जैसा कि मैं पहले कहीं बता चुका हूँ इससे
आर्थिक लाभ हुआ— ८——७१½

सेम की खेती में मेरे अनुभव का नतीजा यह है: छोटी झाड़ी वाली सफेद सेम तीन फुट दूर की पाँतों में हाथ-भर की दूरी पर बोइए। ताजा, गोल बिना मिलावट का बीज लेने में सावधान रहिए। पहले कीड़ों से देख-भाल कीजिए, बीच-बीच में खाली जगह होने पर फिर बो दीजिए। यदि जगह खुली हुई है, तो वुडचकों का भी ध्यान रखिए, क्योंकि वे नई कोंपलों को साफ कुतर जायँगे। इसके बाद भी जब धागे फूटेंगे तो वे देख लेंगे और फूल और फली दोनों को गिलहरी की भाँति सीधे बैठकर काट डालेंगे। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि आप तुपार से बचाना चाहते हैं तो जितनी जल्दी हो सके फसल काट लीजिए। इस प्रकार आप हानि से बच सकते हैं।

इसके अतिरिक्त मुझे और भी अनुभव-लाभ हुआ: मैंने विचार कर लिया कि अब अगली गर्मियों में इतनी मेहनत से सेम और मक्का नहीं बोऊँगा बल्कि उसके स्थान पर, यदि बीज नष्ट न हो गया तो, ईमानदारी, सत्य, सरलता, विश्वास, भोलापन प्रभृति गुणों का बीजारोपण करूँगा और देखूँगा कि इससे

भी कम परिश्रम और खाद से वे इस भूमि में उगकर मुझे पोषित करते हैं या नहीं, क्योंकि निश्चय ही इस भूमि की उर्वरता इन फसलों के लिए समाप्त नहीं हो गई हैं। हाय, यह मैंने सोचा था। किन्तु अगली गर्मियाँ आईं और बीत गईं, और अगली, और अगली भी गुजर गईं; और हे पाठक, मुझे यह कहना पड़ता है कि जो वीज मैंने वोए (यदि वे वास्तव में इन सद्गुणों के बीज थे) उनमें या तो कीड़ा लग गया, या वे निर्जीव हो चुके थे, इसलिए वे अंकुरित नहीं हुए; साधारणतः लोग उतने ही बहादुर या डरपोक होते हैं जितने कि उनके पूर्वज। यह पीढ़ी निश्चय ही प्रत्येक नववर्ष में मक्का और सेम वोती जायगी, ठीक जैसे कि शताब्दियों पहले रेड-इंडियन करते रहे थे, जैसा कि उन्होंने प्रथम वसने वालों को भी सिखाया था, मानो यही नियति का आदेश हो। मैं अभी उस दिन एक बूढ़े को देखकर चकित रह गया; वह कुदाली से कम-से-कम सत्तरवीं वार गड्ढे खोद रहा था, और वह भी अंतिम शैया के लिए नहीं। किन्तु न्यू इंग्लैण्डवासी अपने अनाज, आलू, घास और अपने वगीचों को इतना महत्त्व न देकर कोई नया काम क्यों न करें, अन्य फसल क्यों न उगायें? क्यों हम वीज के लिए सेम में ही लगे रहें और लोगों की नई पीढ़ी की तनिक भी चिंता न करें? जव हमें किसी ऐसे व्यक्ति का दर्शन प्राप्त हो जिसके वारे में हमें निश्चय हो कि उपरोक्त गुणों में से कुछ वीज, उसके मन में जड़ पकड़कर उग रहे हैं, जिन्हें हम अन्य सभी उत्पादनों से अधिक मूल्यवान् मानते हैं किन्तु जो अधिकतर वायुमण्डल में विखरे रहते हैं, तो हमें वास्तव में तृप्त और आनन्दित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यह देखिए सत्य अथवा न्याय जैसा गूढ़ और अवर्णनीय गुण (चाहे अल्प मात्रा में ही सही) राजमार्ग पर चला आ रहा है। हमारे राजदूतों को आदेश मिलना चाहिए कि वे इस प्रकार के वीज अपनी मातृभूमि को भेजें और विधान सभा उन्हें सारे देश में विखराने के काम में सहायता दे। ईमानदारी के विषय में हम औपचारिकता के चक्कर में न पड़ें। यदि बंधुत्व और श्रेष्ठता रूपी सारतत्त्व हमारे पास हो तो हम कभी भी अपनी नीचता से एक-दूसरे को ठगें नहीं, अपमानित नहीं करें, एक दूसरे की उपेक्षा नहीं करें। हम एक दूसरे से इतनी भड़भड़ी में न मिले। अधिकतर व्यक्तियों से मैं भेंट नहीं करता हूँ क्योंकि उनके पास समय की कमी दिखाई देती है, वे सव अपनी-अपनी सेमों में व्यस्त रहते हैं। हमारा स्वभाव है कि हम उस व्यक्ति से व्यवहार नहीं करते जो हमेशा इसप्रकार अपने खेत में जुटा रहता है और बीच-बीच में फावड़े के सहारे खड़ा हो जाता है मानो वह लाठी

हो, कुकुरमुत्ते की तरह नहीं, वल्कि पृथ्वी से थोड़ा उठा हुआ, केवल सीधा ही नहीं है वल्कि थोड़ा झुका हुआ मानो अवावीलें पृथ्वी पर उतर आई हों, जिससे हमें संदेह हो कि हम फरिश्ते से वात कर रहे हैं। रोटी से भले ही हमें सदा पोषण न मिले किन्तु मानव और प्रकृति की उदारता को पहचानने से किसी विशुद्ध और वीरतापूर्ण आनन्द में हिस्सा वँटाने से सदा ही हमारा मंगल होता है; इससे हमारे जोड़ों का कड़ापन निकल जाता है। हममें लोच और उल्लास पैदा हो जाता है, भले ही हमें अपने रोग का ज्ञान न हो।

प्राचीन काव्य और पौराणिक कथाओं से हमें कम-से-कम यह आभास तो मिलता ही है कि एक जमाने में कृषि को एक पवित्र कला माना जाता था। किन्तु आज हम उसका वड़ी अश्रद्धापूर्ण जल्दवाजी और लापरवाही से अनुसरण करते हैं, और हमारा ध्येय केवल वड़े-वड़े फार्म, वड़ी फसलें प्राप्त करना ही रह गया है। न हमारा कोई त्यौहार होता है, न उत्सव, न जलूस निकलता है; हमारे पशु-मेले और तथाकथित 'धन्यवादोत्सव' तक में कुछ नहीं होता जिनके द्वारा किसान अपने धंधे की पवित्रता अभिव्यक्त करे अथवा उसके पवित्र प्रारंभ का स्मरण करे। उसे तो भेंट पूजा और दावत का ही प्रलोभन रह गया है। अव वह पृथ्वी-माता की, पार्थिव देवराज की पूजा नहीं करता, वह तो नारकीय कुवेर की पूजा करने लगा है। लोभ और स्वार्थ, तथा पृथ्वी की सम्पत्ति या सम्पत्ति का साधन समझ लेने के निकृष्ट स्वभाव (जिससे हममें से कोई भी मुक्त नहीं है) के कारण सारा भूदृश्य विकृत हो गया है; हमारे साथ कृषि का भी पतन हो गया है, और किसान निकृष्टतम जीवन विता रहा है; उसका प्रकृति से केवल लुटेरे के रूप में परिचय होता है। कैटो का कथन है कि कृषि की आमदनी विशेषत: पवित्र या न्यायपूर्ण होती है, और वारो ने कहा है कि रोमन लोग "भूमि को ही माता और भूदेवी कहकर पुकारते थे। वे लोग सोचते थे कि जो उसे जोतते-वोते हैं, वे एक पवित्र और मंगलकारी जीवन व्यतीत करते हैं—शनि (कालदेव) की संतति में केवल वे वाकी वचे हैं।"[1]

यह भूल जाने का हमारा स्वभाव वन गया है कि सूर्य हमारी खेती की भूमि मैदानों और जंगलों को विना किसी भेद-भाव के समान रूप से आलोकित करता है। वे सव समान रूप से उसकी किरणों को प्रतिविम्वित करते हैं, उनका समान

---

१. कथा है कि saturn (कालदेव) ने अपनी संतान में केवल वायु, जल और कब्र को छोड़कर वाकी सवका भक्षण कर डाला था।

रूप से पान करते हैं, और अपनी दैनिक यात्रा में सूर्यदेव जिस देदीप्यमान चित्र का अवलोकन करते हैं, कृषि-भूमि उसका केवल एक बहुत छोटा-सा अंश है। उनकी दृष्टि में तो सारी पृथ्वी एक उद्यान की भाँति समान रूप से जोती बोई हुई है। इसलिए हमें उनके आलोक और ताप का लाभ यथासंगत विश्वास और उदारता से उठाना चाहिए। मैं इन सेम के बीजों को मूल्यवान् समझता हूँ और वर्ष की समाप्ति पर उन्हें काट लेता हूँ तो क्या हुआ ? यह विस्तृत खेत जिसकी ओर मैं इतने समय तक देखता रहा हूँ, वह अपना प्रमुख कृषक मानकर मेरी ओर नहीं देखता बल्कि मुझसे दूर उसकी ओर देखता है जो इसके लिए अधिक सुखकर है, जो इसे जल देता है और हरा-भरा रखता है। इन सेमों के ऐसे भी फल होते हैं जिन्हें मैं प्राप्त नहीं करता। क्या वे अंशत: वुडचक के लिए नहीं उगतीं ? गेहूँ की वाल (लैटिन स्पाइका धातु स्पे—आशा) ही कृषक की एक-मात्र आशा नहीं होनी चाहिए। यह केवल गूदा या दाना (लैंटिन ग्रैनम, धातु ग्रैनेडो धारण करना)ही धारणनहीं करती। तब फिर हमारी फसल कैसे नष्ट हो सकती है? क्या मुझे खेत में उगने वाली जंगली घास-पात के वाहुल्य पर आनन्दित न होना चाहिए जिनकी फलियाँ पक्षियों के धान्यागार हैं ? खेत किसान का खलिहान भरते हैं या नहीं, यह बात अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार गिलहरी इस बात से चिंतित नहीं होती कि इस वर्ष वन में चैस्टनट फलेगा या नहीं उसी प्रकार सच्चा किसान चिंता नहीं करेगा; वह तो प्रत्येक दिन के साथ, अपने खेत के उत्पादन के स्वतत्व का परित्याग करके अपने मन में अपने प्रथम और अंतिम सभी फलों का अर्पण करके, अपना दैनिक श्रम समाप्त करेगा।

●

८. ग्राम

गुड़ाई करने के बाद या कभी लिखने-पढ़ने के पश्चात् मैं बहुधा पूर्वाह्न में फिर एक बार सरोवर में स्नान करता था—इसकी एक खाड़ी को तैरकर पार करता था। इस प्रकार अपने शरीर की श्रम-धूलि को धो देता था या अध्ययन के कारण पड़ी हुई प्रत्येक झुर्री को दूर कर देता था और तीसरे पहर के लिए एकदम स्वतंत्र हो जाता था। एक-दो दिन बीच में देकर मैं टहलता हुआ गाँव की ओर निकल जाता था वहाँ की गप-शप सुनने के लिए, जो वहाँ निरंतर एक मुँह से दूसरे मुँह या एक अखबार से दूसरे अखबार तक चलती रहती है। होमियोपैथिक खुराकों में सेवन करने पर यह सचमुच उतना ही तरोताजा करने वाली होती थी जितनी कि पत्तियों की सरसराहट और मेंढकों की ताक-झाँक। जिस प्रकार मैं पक्षियों और गिलहरियों को देखने के लिए वन में टहलता था उसी प्रकार आदमियों और बालकों को देखने के लिए गाँव में जाता था। यहां चीड़ में वायु की सरसराहट के स्थान पर गाड़ियों की खड़-खड़ सुनाई देती थी। मेरे घर से एक दिशा में, नदी के किनारे घास के एक मैदान में छछूंदरों की बस्ती थी, दूसरे क्षितिज पर 'ऐलम' (उपकर) और 'बटनवुड' के कुंजों में व्यस्त लोगों का एक ग्राम था। वे लोग मुझे उतने ही अजीब लगते थे जितने कि 'मार्मोट'[1]—प्रत्येक अपनी माँद के मुँह पर बैठा हुआ या गप लड़ाने के लिए पड़ोसी के घर की ओर दौड़ लगाता हुआ। मैं वहाँ उनकी आदतों का अध्ययन करने के लिए अक्सर जाया करता था। यह गाँव मुझे समाचारों का एक बड़ा-सा आगार प्रतीत होता था; और इसको जीवित करने के लिए एक ओर अखरोट, दाख, नमक तथा परचूनी का दूसरा सामान रहता था ठीक जैसे कि एक जमाने में स्टेट स्ट्रीट पर रेडिंग एण्ड कम्पनी का दफ्तर था। कुछ लोगों को पहली चीज यानी समाचार की इतनी भीषण क्षुधा होती है और उनका पाचन-यंत्र इतना अच्छा होता है कि वे बिना ही हिले-डुले चिरकाल तक सड़कों पर बैठे रह सकते हैं और यह (समाचार) लू की भाँति उनके भीतर उमड़ता और फुसफुसाता रहता है। अथवा मानो वे 'ईथर' सूंघते रहते हैं जिससे वे सुन्न पड़ जाते हैं और विवेक पर

---

१. मार्मोट—बड़ी गिलहरी की तरह का एक अमरीकी जानवर।

कोई प्रभाव नहीं पड़ता —वरना अवश्य ही ये समाचार सुनना पीड़ाजनक रहता होगा। गाँव में घूमने पर शायद ही कभी ऐसा होता हो कि मुझे इन सज्जनों की पाँत न दिखाई पड़ती हो। वे या तो सीढ़ी पर बैठे आगे को झुककर, बड़ी लालसा से इधर-से-उधर तक ताकते रहते या जेबों में हाथ डाले खलिहान पर पड़े रहते, मानो खम्भों पर अंकित नारी-रूपों के समान खलिहान को सहारा दे रहे हों। बहुधा घर से बाहर रहने के कारण, हवा में जो कुछ भी होता था सबको वे सुन लेते थे। ये मोटी चक्कियाँ होती हैं जिनमें प्रत्येक खबर फोड़ी जाती है और फिर बाद में घर के भीतर की महीन चक्कियों में उसे डाला जाता है। मैंने देखा कि परचूनी दूकान, शराबघर, डाकघर और बैंक गाँव के आवश्यक अंग होते हैं, और सुविधाजनक स्थानों पर घंटा, एक तोप, दमकल आदि की भी योजना रहती हैं मानो ये भी इस मशीन के आवश्यक पुर्जे हों। घरों की व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि मानवजाति का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके। वे गलियों में आमने-सामने बने हुए थे ताकि प्रत्येक यात्री को घेरा जा सके और प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बच्चा उस पर हाथ गरमा सके। और हाँ, कुछ लोग इस पंक्ति के सिरे पर प्रमुख स्थान पर रहते थे जहाँ से वे सबसे अधिक देख सकें और स्वयं दिखाई दे सके, और यात्री पर पहला वार कर सकें। इसके लिए वे सबसे अधिक कीमत भी चुकाते थे। गाँव के बाहरी हिस्से में मुट्ठी-भर फिसिड्डी लोग रहते थे; यहाँ बीच-बीच में जगह छूटी हुई थी, और दीवारों से छुटकारा पाकर यात्री, पगडंडियों में मुड़कर जान बचा सकता था। इसलिए यहाँ रहने वालों को बहुत कम टैक्स देना पड़ता था। यात्री को लुभाने के लिए चारों ओर चिह्न लटके हुए थे, कुछ उसकी रुचि को पकड़कर खींचते थे जैसे शराबघर, होटल आदि; कुछ उसकी रुचि को आकर्षित करते थे जैसे कपड़े और सोने-चाँदी के व्यापारी और कुछ उसके बाल, पैर या वस्त्र पकड़कर खींचते थे जैसे नाई, मोची और दर्जी। इसके अलावा इन सबसे अधिक भीषण होता था इनमें से प्रत्येक घर पर जाने का चिर आमंत्रण और साथ ही यह आशा कि लोग मिलने-जुलने के लिए आयँगे। अधिकतर, मैं बड़े आश्चर्यजनक रूप से इन सब खतरों से बचकर निकल जाता था। या तो मैं दृढ़तापूर्वक, बिना झिझके सीधा अपने गंतव्य की ओर चला जाता था जैसा कि सशस्त्र सिपाहियों की दो कतारों के बीच में से ले जाए जाने वाले अपराधी के लिए नियत होता है, या उच्चतर वस्तुओं के विचार में मग्न निकला चला जाता है जैसे ओर्फ्यूस "अपनी वीणा पर जोर जोर से देवताओं की

स्तुति गाकर 'साइरेनों' की आवाज़ को डुबाकर खतरे से बच जाता था।" 'कभी कभी मैं अचानक ही इतनी तेजी से निकल जाता था कि किसी को पता भी न लग पाता था, क्योंकि मैं कभी भी शिष्टाचार के चक्कर में अधिक नहीं पड़ता था और किसी वाड़ में ज़रा-सा खुला स्थान मिलने पर जरा भी झिझकता नहीं था। कभी-कभी कुछ घरों में अचानक ही फूट पड़ता था, जहाँ मेरा यथेष्ट सत्कार होता था। वहाँ से सबसे महीन चलनी में से निकला हुआ खबरों का सबसे वारीक और अंतिम सार (जैसे, कोई दवी हुई खबर, युद्ध और शांति की सम्भावनाएँ, दुनिया अब एक रह सकेगी या नहीं, इत्यादि) लेकर मैं पीछे की गलियों से निकल जाता था और वचकर पुनः वन में चला जाता था।

जब कभी मैं देर तक वस्ती में रह जाता था तो रात को समुद्र में, खासतौर पर घने और अँधेरे और तूफान में, निकलना वड़ा आनन्ददायक था। कँधे पर राई या मक्का का थैला लादे हुए मैं गाँव के किसी आलोकित बैठकघर या भाषण-भवन से वन के अपने सुखदायी बंदरगाह के लिए अपना जहाज छोड़ देता था। उस समय वाहर से अच्छी तरह बंदकर के मैं विचारों के नाविक-दल के साथ अपने जहाज के तहखाने में चला जाता था। अपने वाह्य व्यक्ति को ही पतवार पर छोड़ देता था, या कभी सीधी-सादी यात्रा होती तो पतवार को भी वाँध देता था। इस प्रकार की यात्रा में केबिन में बैठे-बैठे अनेक सुखकर विचार मेरे मन में आते थे। कभी भी किसी भी मौसम में न तो मैं भटका और न मेरे ऊपर कोई विपत्ति ही आई, हालांकि कभी-कभी मुझे भयानक तूफानों का सामना करना पड़ता था। मामूली रातों को भी जंगल में अधिकतर लोगों के अनुमान से कहीं अधिक अंधेरा रहता है। मुझे राह पहचानने के लिए वरावर राह के ऊपर के पेड़ों के वीच की खुली जगह को देखना पड़ता था, और जहाँ गड़ियारा (गाड़ी का रास्ता) नहीं होता था, अपने पैरों से वनी हल्की-सीं पगडंडी को पैरों से टटोलना पड़ता था। कभी-कभी विशेष पेड़ों के सहारे चलना पड़ता था जिनके आपसी सम्वन्ध से मैं परिचित था और घोर अँधेरी रात को इस वन में, हाथ से छूकर उन्हें जान जाता था—यथा दो चीड़ के वृक्षों के वीच से गुजरना पड़ता था जिनकी आपस की दूरी एक हाथ से

---

१. ग्रीक कवियों के अनुसार 'साइरेन' नामक स्त्रियाँ अपने मधुर संगीत से नाविकों को इतना लुभा लेती थीं कि सुनने वाले सब-कुछ भूल जाते थे और भूख से तड़प-तड़पकर प्राण दे देते थे।

अधिक नहीं थी। कभी-कभी इतनी काली और गीली रात को मैं, अपने पैरों से उस पथ को टटोलता हुआ जिसे मेरी आँखें नहीं देख पाती थीं, रास्ते-भर स्वप्नों में खोया हुआ बेसुध-सा घर पहुँचता था और तभी जागता था जब हाथ उठाकर कुँडी खोलनी पड़ती थी। ऐसे अवसरों पर मैं अपनी यात्रा का एक कदम भी याद नहीं रख पाया हूँ, और मैंने सोचा कि यदि मेरे शरीर का स्वामी उसे त्याग दे तब भी वह अपने घर पहुँच ही जायगा ठीक जैसे हाथ बिना किसी सहायता के मुँह तक पहुँच जाता है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि कोई अतिथि अँधेरी रात को देर तक रुका रहा और मुझे घर के पीछे के गड़ियारे तक उसे पहुँचाने जाना पड़ा। मैं उसे उसके गंतव्य की दिशा बताकर लौट आता था और उसे आँखों के बजाय पैरों के पथ-प्रदर्शन पर चलना पड़ता था। एक बार ऐसी ही बहुत अँधेरी रात को मैंने दो नौजवानों को रास्ता बताया जो झील में मछली मारते रह गए थे। वे जंगल से लगभग एक मील की दूरी पर रहते थे और रास्ते से भली-भांति परिचित थे। एक-दो दिन बाद उनमें से एक ने बताया कि उस रात के अधिकांश भाग में वे अपने घर के आस-पास ही भटकते रहे और सवेरा होने पर ही घर पहुँच पाए। तब तक वे बिलकुल भीग चुके थे, क्योंकि इसी बीच कई बार जोर से मेंह बरस गया था। मैंने कई लोगों के बारे में सुना है कि वे अपने गाँव की गली में भटक गए हैं जबकि रात इतनी अँधेरी थी कि उसे आप, कहावत के अनुसार, चाकू से तराश लें। कभी-कभी नगर के बाहरी भागों में रहने वालों को अपनी गाड़ी में सामान खरीदने के लिए जाने पर नगर में ही रात बितानी पड़ी है, और भेंट करने के लिए जाने वाले पुरुषों और महिलाओं को पैरों से पगडंडी को टटोलकर चलने और मोड़ का पता न लगने के कारण अनेक बार रास्ते से आध-आध मील तक भटकना पड़ा है। वन में भटक जाना एक आश्चर्यजनक स्मरणीय और बहुमूल्य अनुभव होता है। अक्सर बर्फ के तूफान में, दिन में ही ऐसा हो जाता है कि सुपरिचित मार्ग पर पहुँचने के बाद भी आदमी यह नहीं बता पाता कि गाँव तक कौन-सा मार्ग जाता है। यद्यपि वह जानता है कि वह इस सड़क पर हजारों बार आया-गया है, तथापि वह इसको तनिक भी नहीं पहचान पाता और यह उसके लिए उतनी ही अपरिचित हो जाती है जितनी कि साइबेरिया की कोई सड़क। रात को यह हैरानी बेहद बढ़ जाती है। अपनी मामूली-से-मामूली यात्राओं में भी, हम, अनजाने ही, नाविकों की भाँति निरंतर

अपना मार्ग कुछ सुपरिचित प्रकाश-स्तम्भों के सहारे निश्चित करते रहते हैं, और यदि अपने नित्यप्रति के मार्ग से आगे निकल जाते हैं तो भी अपने दिमाग में आस-पास के किसी अंतरीप का खयाल रखते हैं, और जब तक हम एकदम भटक नहीं जाते, (इन संसार में भटक जाने के लिए केवल एक बार आँखें मूंद-कर घूम जाने की जरूरत है,) तब तक प्रकृति के विस्तार और वैचित्र्य का आनन्द नहीं पा सकते। प्रत्येक व्यक्ति को दिशा-ज्ञान के लिए उतनी ही बार कुतुबनुमा की सुइयाँ देखनी पड़ती हैं, जितनी बार कि वह जागता है, यह जागरण नींद से हो अथवा अचेतनता से। जब तक हम खो नहीं जाते, अथवा यों कहिए कि दुनिया को नहीं खो देते, तब तक हम अपने-आपको पाना प्रारम्भ नहीं करते, और यह नहीं जान पाते कि हम कहाँ हैं, और हमारे सम्बन्धों का विस्तार कैसा अनंत है।

प्रथम ग्रीष्म के अंत में, एक दिन तीसरे पहर जब मैं मोची से अपना जूता लेने गया तो मुझे पकड़कर जेल में बंद कर दिया गया, क्योंकि जैसा मैं अन्यत्र बता चुका हूँ, मैं टैक्स नहीं देता था, या दूसरे शब्दों में उस राज्यसत्ता को मान्यता नहीं देता था जो अपने सभा-भवन के द्वार पर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का पशुओं की भाँति क्रय-विक्रय करती हैं। मैं अन्य प्रयोजनों से वन में चला गया था किन्तु व्यक्ति जहां भी जाता है, लोग उसका पीछा करते हैं और अपनी गंदी संस्थाओं का पंजा उसके ऊपर डाल ही देते हैं, और हो सके तो, उसे अपने ऊटपटाँग समाज में सम्मिलित होने को बाध्य करते हैं। यह सच है कि मैं ताकत से थोड़ा-बहुत सामना कर सकता था, समाज के ऊपर 'पागल' (amok)[1] होकर दौड़ सकता था, किन्तु मैंने यही पसन्द किया कि समाज ही पागल होकर दौड़े, क्योंकि हम दोनों में वही हताश है। जो भी हो, दूसरे दिन मुझे मुक्त कर दिया गया और मैं अपना मरम्मत किया हुआ जूता लेकर जंगल में वापिस आ गया और आकर ठीक समय पर मैंने 'फेयर हैविन हिल' पर हकलबैरी का भोजन किया। मुझे कभी किसी ने नहीं सताया, सिवाय उन लोगों के जो राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरे पास अपने कागज रखने की डेस्क के अलावा और कोई ताला कुंजी नहीं था, यहाँ तक कि कुंडी में अटकाने के लिए एक कील भी नहीं थी। दिन हो या रात, कभी

---

१. Amok—एक प्रकार का पागलपन, जिससे आदमी रक्त-पिपासु हो जाता है।

भी मैं द्वार में ताला नहीं लगाता था, भले ही कई दिनों के लिए बाहर जाना पड़े; अगले पतझड़ में एक पखवारे तक मैं 'मेन' वन में रहा तब भी ताला नहीं लगाया। किन्तु यदि सिपाहियों के दल का पहरा लगा होता, तो भी मेरा घर इतना सम्मानित नहीं रहता। थका हुआ घुमक्कड़ मेरी अंगीठी के सहारे आराम से ठंड छुड़ा सकता था। साहित्यिक मेरी मेज की कुछ पुस्तकों का आनन्द ले सकता था और यदि कोई जिज्ञासु आता तो मेरी कोठरी का दरवाजा खोलकर यह देख सकता था कि खाने-पीने का क्या प्रबंध है। यद्यपि प्रत्येक वर्ग के अनेक व्यक्ति इधर से सरोवर पर आते थे, फिर भी मुझे उनके कारण कभी कोई असुविधा नहीं हुई और कभी मेरी कोई चीज नहीं खोई, सिवाय होमर की एक छोटी-सी पुस्तक के; जिस पर, शायद, अनुचित ढंग से सुनहली जिल्द चढ़ी हुई थी, और मुझे विश्वास है कि वह हमारे कैम्प के एक सिपाही के हाथों में पहुँच गई है। मुझे प्रतीति है कि यदि सभी लोग उतने ही सादा ढंग से रहने लगें, जितने सादा ढंग से उन दिनों मैं रहता था, तो चोरी-डकैती का नाम भी न रहे। चोरी-डकैती केवल उन्हीं जातियों में होती है जिनमें कुछ लोगों के पास आवश्यकता से अधिक होता है और दूसरों के पास अपर्याप्त। पोप द्वारा अनुवादित होमर के ग्रंथ भी जल्दी ही समुचित रूप से वितरित होना चाहेंगे।

"Nor wars did men motest,
When only beechen bowls were in request."

(लोगों को युद्ध परेशान नहीं करते थे, जिस युग में केवल कठौती की माँग थी।)

"आप, जो जनता के मामलों को नियंत्रित करते हैं, सजा देने की आवश्यकता आपको क्यों होती है? सदाचार से प्रेम करिए, लोग सदाचारी हो जायँगे। श्रेष्ठतर व्यक्ति का गुण वायु की भाँति होता है, जनसाधारण का गुण तृण की भाँति होता है; वायु ऊपर से निकलती है तो तृण झुक जाता है।"

९. सरोवर

कभी-कभी अतिरिक्त मानव-संसर्ग तथा वातचीत के वाद, जव गाँव के मित्रगणों को थका डालने के वाद मैं और भी पश्चिम की ओर, नगर के ऐसे स्थानों की ओर चला जाता था जहाँ वहुत कम लोग जाते हैं। अथवा सूरज डूवने के समय 'फेयर हैविन हिल' पर हकलवैरी और व्लूवैरी का भोजन करके कुछ दिनों के लिए रसद इकट्ठी कर लेता था। इन फलों का असली स्वाद खरीदने वालों को नहीं मिलता, न उन लोगों को ही मिलता है जो उन्हें वाजार में वेचने के लिए उगाते हैं। उस स्वाद को प्राप्त करने का केवल एक ही तरीका है, फिर भी वहुत कम लोग उस तरीके पर चलते हैं। यदि आप 'हकलवैरी' का स्वाद जानना चाहते हैं तो किसी चरवाहे से पूछिए या किसी तीतर से। जिन लोगों ने कभी 'हकलवैरी' हाथ से तोड़ी नहीं वे उसका स्वाद जानते हैं, यह समझना एक भद्दी भूल है। हकलवैरी कभी वोस्टन नहीं पहुँचती। एक जमाने में वहाँ की तीन पहाड़ियों पर हकलवैरी फलती थी, उसके वाद से वहाँ यह दिखाई नहीं दी। फल का दिव्य अंश, उसका सार-तत्त्व उसकी चमक के साथ-साथ, गाड़ी में वाजार ले जाते समय रगड़कर नष्ट हो जाता है, और केवल चारा-मात्र रह जाता है। जव तक 'शाश्वत न्याय का शासन रहेगा तव तक एक भी निर्दोष हकलवैरी को देहाती पहाड़ियों से वहाँ नहीं ले जाया जा सकता।'

कभी-कभी दिन-भर की गोड़ाई समाप्त करने के वाद मैं ऐसे व्यक्ति का साथ जा पकड़ता था जो सुवह से सरोवर में मछली पकड़ते-पकड़ते अधीर हो गया हो और वत्तख या किसी तिरती हुई पत्ती की भाँति निश्चल मौन हो गया हो और अनेक प्रकार का दर्शन टटोलने के वाद, मेरे पहुँचने तक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका होता कि वह सोनोवाइट सम्प्रदाय (मठ में रहने वाले संन्यासियों का एक प्राचीन सम्प्रदाय) का है। एक और वूढ़ा आदमी था जो मछली पकड़ने और सभी प्रकार की लकड़ी की दस्तकारी में वड़ा निपुण था। उसने मेरे घर को एक ऐसी इमारत समझ लिया था जिसे मछली मारने वालों की सुविधा के लिए ही वनाया गया हो। और मुझे भी उसे अपने द्वार पर डोरी सँभालते

देखकर समान रूप से प्रसन्नता होती थी। यदा-कदा हम झील की सतह पर साथ-साथ बैठते थे, वह नाव के एक छोर पर और मैं दूसरे छोर पर; हम लोगों में अधिक बातचीत नहीं होती थी, क्योंकि आयु-भार के कारण वह कुछ बहरा हो गया था; किन्तु कभी-कभी वह एक भजन गुनगुना उठता था, जो मेरे जीवन-दर्शन से काफी मेल खाता था। इस प्रकार हमारे संसर्ग में एक अबाध माधुर्य होता था, यदि बातचीत चलती रहती तो इस संसर्ग की याद इतनी मधुर न रही होती। जब कोई बातचीत करने को नहीं होता था (साधारणतः यही स्थिति होती थी) तो मैं अपनी नाव के बाजू पर डाँड का ताल देकर प्रतिध्वनि पैदा करके चारों ओर के वन को चक्राकार फैलती हुई ध्वनि से भरकर जगा देता था जैसे वन्यपशुओं के पिंजरों का रखवाला करता है। यह क्रम तब तक चलता रहता था जब तक कि वनस्पति से ढकी प्रत्येक घाटी और ढाल से गुर्राहट न निकलने लगे।

गरमी की संध्या को बहुधा मैं नाव में बैठकर बाँसुरी बजाता था और 'पर्च' मछलियों को देखा करता था जो मानो मंत्रमुग्ध होकर मेरे चारों ओर चक्कर काटती फिरती थीं। वन की ध्वस्त सामग्री से आवृत लहरियोंदार सरोवर-तल में चलता हुआ चंद्रमा दिखाई देता था। पहले मैं कभी-कभी गरमी की अँधेरी रातों में अपने एक साथी को लेकर इसी झील पर आया करता था, और पानी के किनारे आग जलाकर (जिससे, हम समझते थे कि मछलियाँ आकर्षित होंगी) डोरी में कीड़े लगाकर हम 'पाउट' मछलियाँ पकड़ते थे। काम समाप्त होने पर हम लोग जलती हुई लकड़ियों को आकाश-वाण की भाँति खूब ऊँचा फेंक देते थे, जो झील में गिरते हुए सिसकारी के साथ बुझ जाती थीं और हम सहसा पूर्ण अंधकार में टटोलते रह जाते थे। इस अंधकार में सीटी से धुन निकालते हुए हम फिर से जन-समुदाय का रास्ता पकड़ते थे। किन्तु अब तो मैंने अपना घर घाट पर ही बना लिया था।

कितनी ही बार गाँव की किसी बैठक में देर तक रहने के बाद, जब सारा परिवार सोने के लिए चला गया होता, मैं वन को लौटा हूँ, और अंशतः अगले दिन के भोजन के प्रयोजन से आधी रात को अनेक घंटे मैंने मछली पकड़ने के लिए चाँदनी में नाव पर बिताए हैं। उल्लू और लोमड़ी अपना गीत सुनाते रहते और बीच-बीच में पास ही किसी अपरिचित पक्षी की चरचराहट सुनाई पड़ती थी। ये अनुभव मेरे लिए अत्यन्त स्मरणीय और मूल्यवान होते

थे—चालीस फीट गहरे पानी में, किनारे से सौ-डेढ़सौ गज की दूरी पर लंगर डाले, कभी-कभी चाँदनी में अपनी पूँछ से जल छिटकाती हुई हजारों 'पर्च' और 'शाइनर' मछलियों से घिरे हुए सन की एक डोरी द्वारा इन रहस्यमयी, चालीस फीट की गहराई में वास करने वाली रात्रिकालीन मछलियों से बातचीत करते हुए, अथवा कभी-कभी रात्रिकालीन बयार के साथ बहकर साठ फीट लम्बी डोरी को सरोवर में खींचते हुए, और समय-समय पर उसमें हल्के से कम्पन का अनुभव करते हुए, जो यह बताता था कि कोई सजीव प्राणी इस डोरी के सिरे के निकट ही शिकार की तलाश में निकला है और गलती से उसे लक्ष्य मानकर कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा है। इस कम्पन में उसका यह अनिश्चय झलकता था। और अंत में धीरे-धीरे, हाथों-हाथ खींचकर, मैं ऊपर की वायु में घबराकर ऐंठती हुई, किकियाती हुई 'पाउट' को निकाल लेता था। यह वड़ा अनूठा अनुभव होता था और विशेषकर अँधेरी रातों में जब मेरे विचार दूसरों लोकों में, सृष्टि की उत्पत्ति-सम्बधी विषयों के विस्तीर्ण क्षेत्रों में, विचरण कर रहे होते तब यह हल्का-सा झटका स्वप्न को भंग कर देता था और फिर से प्रकृति से सम्पर्क स्थापित करा देता था। लगता था मानो अगली बार मैं अपनी डोर नीचे जल में फेंकने के साथ-साथ हवा में भी उछाल दूँगा, जो जल से अधिक घनीभूत तत्त्व नहीं होता। इस प्रकार मानों मैं एक ही काँटे से दो मछलियाँ पकड़ लेता था।

वालडेन का दृश्य साधारण है, वह अत्यंत सुन्दर है; किंतु उसमें भव्यता नहीं है और न वह उस व्यक्ति को अधिक आकर्षित कर सकता है जिसने बहुत दिनों तक वहाँ के चक्कर न काटे हों या उसके किनारे न रहा हो। फिर भी यह अपनी गहराई और निर्मलता के कारण इतना अनूठा हो गया है कि विशेप वर्णन करने योग्य है। एक स्वच्छ और गहरे हरे रंग का कुआ है; यह आध मील लम्बा है, पौने दो मील इसकी परिधि है और लगभग साढ़े इकसठ एकड़ में फैला हुआ है। चीड़ और शाहबलूत के वन के बीच यह एक अजस्र स्रोत है। इसका न कोई पानी आने का रास्ता है न निकास, सिवाय बादलों और वाष्पीकरण के। घिरी हुई पहाड़ियाँ अनायास ही पानी की सतह से सीधी चालीस से अस्सी फीट ऊँचाई तक चली गई हैं, हालाँकि $\frac{1}{4}$ से $3\frac{1}{3}$ मील के भीतर ही दक्षिण-पूर्व और पूर्व की दिशा में वे क्रमशः सौ फीट और डेढ़ सौ फीट की ऊँचाई तक चली गई हैं। ये सब वन से ढँकी हुई हैं। हमारे

कौंकडे के सभी जलाशयों में कम-से-कम दो रंग होते हैं, एक जो दूर से दिखाई देता है और दूसरा जो पास से दिखाई देता है, जो अधिक सही होता है। पहला रंग प्रकाश पर अधिक अवलम्बित होता है और आकाश का अनुकरण करता है। गर्मियों में, साफ मौसम में, खास तौर पर उद्वेलित होने की दशा में थोड़ी दूर से ये जलाशय नील वर्ण दिखाई देते हैं और बहुत दूर से देखने पर सब एक-से नजर आते हैं। तूफान के दिनों में कभी-कभी वे स्लेट का गहरा रंग धारण कर लेते हैं। कहा जाता है कि मौसम में बिना किसी प्रत्यक्ष परिवर्तन के समुद्र का जल एक दिन नीला दिखाई देता है और दूसरे दिन हरा। चारों ओर बरफ़ जम जाने पर हमारे यहाँ की नदी के जल और बरफ दोनों ही घास के समान हरे दिखाई देते हैं। कुछ लोग नीले रंग को ही "निर्मल जल का रंग", चाहे वह तरल हो अथवा ठोस, समझते हैं। किन्तु हमारे यहाँ के जलाशय नाव से सीधे देखने पर विभिन्न रंगों के दिखाई देते हैं। एक ही कोण से देखने पर वालडेन कभी नीला दिखाई देता है, कभी हरा। पृथ्वी और आकाश के बीच स्थित होने के कारण यह दोनों का ही रंग ग्रहण कर लेता है। पहाड़ी की चोटी से देखने पर इसमें आसमानी रंग झलकता है, किन्तु निकट से देखने पर किनारे के पास जहाँ बालू दिखाई देती है, जल कुछ पीताभ लगता है, इसके आगे हल्का हरा, जो धीरे-धीरे सरोवर के मध्य तक गहरा हरा होता जाता है। कभी-कभी विशेष ज्योति में पहाड़ी पर से देखने में किनारे पर भी यह हरा ही दिखाई देता है। कुछ लोग इसे हरीतिमा का प्रतिबिम्ब बताते हैं, किन्तु यह तो रेल की पटरी वाले रेतीले किनारे पर भी समान रूप से हरा नजर आता है और वसंत ऋतु में हरियाली फैलने के पहले भी यही रंग होता है; सम्भवतः यह विस्तृत नीले रंग और बालू के पीले रंग के मिश्रण के कारण ऐसा हो जाता होगा। ऐसा है इसकी आँख की पुतली का रंग। यही वह भाग है, जहाँ मधु ऋतु में, तल भाग से प्रतिलक्षित सूर्योत्ताप तथा पृथ्वी की उष्णता के कारण सबसे पहले बरफ पिघलती है और जमे हुए मध्य भाग तक एक पतली-सी नहर बन जाती है। हमारे अन्य जलाशयों की भाँति ही खुले मौसम में जब यह बहुत उद्वलित हो उठता है तो लहरों की सतह आकाश को समकोण पर प्रतिबिम्बित करती है। इस कारण अथवा अधिक प्रकाश होने के कारण थोड़ी-सी दूरी पर यह आकाश से भी अधिक गहरे नीले रंग का दिखाई देता है। ऐसे ही अवसर पर इसकी सतह पर स्थित होकर जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पाने के लिए विभाजित दृष्टि से देखने पर मुझे एक

अनुपम और अवर्णनीय हल्का नीला रंग दिखाई दिया है जिसकी झलक हमें तलवार की धार या धूपछाँही रंग के रेशम में मिलती है, आसमान से भी अधिक आसमानी और लहरों के दूसरी ओर गहरा हरा जो इसकी तुलना में मटमैली लगती है। जहाँ तक मुझे याद है इसकी आभा काँच के समान हरित-नील वर्ण होती थी, जैसी कि जाड़ों में सूर्यास्त के पहले बादलों की दृश्यावली के पार आसमान में झलकती है। फिर भी इसका एक गिलास जल रोशनी में उतना ही वर्णहीन होता है जितना कि उसी परिमाण में वायु। सभी जानते हैं कि काँच की एक बड़ी तश्तरी, (जैसाकि बनाने वाले कहते हैं) अपने आकार के कारण हरे रंग की दिखाई देती है, किन्तु उसका एक छोटा-सा टुकड़ा वर्णहीन होता है। यह मैंने कभी सिद्ध नहीं किया है कि वालडेन के जल की कितनी राशि हरी झलक दिखाई देने के लिए आवश्यक होगी। हमारी नदी का जल ऊपर से देखने में काला या गहरे भूरे रंग का दिखता है, और अधिकतर जलाशयों के जल की भाँति इसमें नहाने वाले व्यक्ति का शरीर पीताभ दिखाई देता है। किन्तु इस जलाशय (वालडेन) का जल बिल्लौर के समान इतना निर्मल है कि स्नान करने वाले का शरीर सेलखड़ी-सा सफेद झलकता है, जो अपेक्षाकृत और भी अस्वाभाविक है, जिससे अंग-प्रत्यंग अधिक बड़े और विकृत दिखने के कारण दैत्याकार लगते हैं, और किसी माइकेल एंजिलों के अध्ययन की सामग्री उपस्थित हो जाती है।

यह जल इतना निर्मल है कि पच्चीस-तीस फीट की गहराई पर भी तली बड़ी आसानी से दिखाई देती है। डाँड चलाते हुए, आप सतह से कई फीट की गहराई पर 'पर्च' और 'शाइनर' के झुंडों को देख सकते हैं। वे शायद केवल एक इंच लम्बी होंगी, फिर भी आप पर्च को आड़ी धारियों से पहचान जायँगे और सोचेंगे कि यहाँ रहने वाली मछलियाँ अवश्य ही आत्म संयमी होंगी। कई वर्ष पहले जाड़े के दिनों में एक बार मैं 'पाइक' मछली पकड़ने के लिए बरफ में छेद कर रहा था। किनारे पर आते ही मैंने अपनी कुल्हाड़ी बरफ पर फेंक दी। वह मानो किसी शैतान के इशारे पर बीस पच्चीस गज फिसलकर एक छेद में चली गई जहाँ पानी पच्चीस फीट गहरा था; जिज्ञासावश मैंने बरफ पर लेटकर उस छेद में से देखा कि कुल्हाड़ी एक ओर को झुकी हुई सिर के बल खड़ी है और उसका बेंटा सरोवर के स्पन्दन के साथ-साथ धीमे-धीमे इधर-उधर झुक रहा है। यदि मैं उसे न छेड़ता तो वह उस समय तक वहीं खड़ी रहती जब तक कि काल गति से उसका बेंटा सड़ न जाता। मैंने छैनी से उसके

ठीक ऊपर एक और छेद किया और पास में ही जो 'भूर्ज' की सबसे लम्बी टहनी मिल सकी उसे चाकू से काट लाया और एक सरकने वाला फंदा बनाकर इसके सिरे में बाँध दिया। इसके बाद उसे सावधानी से बेंटे की मुठिया के ऊपर डाल कर कुल्हाड़ी को फिर से बाहर निकाल लिया।

इस सरोवर का तट सफेद चिकनाए हुए पत्थरों का बना है—केवल बीच में एक-दो स्थान पर थोड़ी-सी रेत पड़ती है। वह इतना ढालू है कि कहीं-कहीं तो आप केवल एक छलाँग में ही डुबान पानी में पहुँच जायँगे। यदि जल इतना पारदर्शक न होता तो इस किनारे के बाद तली केवल दूसरे किनारे पर ही दिखाई देती। कुछ लोगों का कहना है कि यह सरोवर अतल है। कहीं जल मटमैला नहीं है और मामूली तौर पर देखने वाला तो यह कहेगा इसमें जरा भी घास-पात नहीं है। ध्यान से देखने पर भी यहाँ (मैदान के उस भाग को छोड़कर जो हाल ही में आप्लावित हो गया है और जो सही अर्थों में इस सरोवर की सम्पत्ति नहीं है) न 'फ़्लैग' दिखाई देता है, न 'बुलरश', न पीली या सफेद कुमुदनी; केवल कुछ छोटी जाति के हार्टलीव्स, 'पोटा मेगेटन' और दो-एक 'वाटर टार्जेट' ही दिखाई देते हैं और इनकी ओर भी स्नान करने वाले का ध्यान शायद न जाय। ये पौधे उगते हैं उसी के समान निर्मल और चमकीले हैं। जल में पाँच से दस गज़ तक पत्थर चला गया है और इसके बाद तल में विशुद्ध बालू है किन्तु सबसे गहरे तल भाग में साधारणतः कुछ तलछट रहती है जो शायद एक के बाद एक पतझड़ में उड़कर आई हुई पत्तियों के सड़ने के कारण जमा हो जाती है। लंगरों पर कड़ाके के जाड़ों में भी हरी चमकीली घास जम जाती है।

लगभग ढाई मील पश्चिम की ओर 'नाइन एकड़ कौर्नर' में हमारे यहाँ का लगभग इसी प्रकार का एक और सरोवर है, जिसका नाम है 'व्हाइट पोंड' (श्वेत सरोवर)। इस केन्द्र से बारह मील के घेरे में स्थित अधिकतर झीलों से मैं भली-भाँति परिचित हूँ; जहाँ तक मैं जानता हूँ कि इतना निर्मल कोई और तीसरा सरोवर नहीं है। एक के बाद एक, आने वाली जातियों ने इसका जल पिया होगा, इसकी गहराई नापी होगी, और वे गुजर गई होंगी—फिर भी इसका जल उतना ही हरा और निर्मल बना हुआ है। इसमें कभी अंतर नहीं हुआ। मधु ऋतु के उस प्रातःकाल में जिस समय आदम और हव्वा को अदन के बाग से निकाला गया, उस समय भी शायद वालडेन-सरोवर का अस्तित्व रहा होगा, तब भी कुहरे और पछुवा हवा को साथ लेकर आने वाली बसंत ऋतु की

हल्की फुहार इसके ऊपर पड़ती रही होगी, और यह असंख्य बत्तखों और कल-हंसों से ढँका रहा होगा, जिन्होंने जब तक यह निर्मल सरोवर उनके लिए पर्याप्त है, आदम और हव्वा के पतन के बारे में कुछ नहीं सुना होगा। तब भी इसकी सतह ऊपर चढ़ी और गिरी होगी, तब भी इसने अपने जल को निर्मल करके वह रंग घोल दिया होगा जो आज है, और इसने देवलोक में यह 'पेटेण्ट' (एकस्व) करा लिया होगा कि इस पृथ्वीतल पर केवल-मात्र यही 'वालडेन सरोवर' रहे दिव्य ओस की शराब खींचने का ठेका केवल इसीके पास रहे। कौन जानता है कि कितनी विस्मृत जातियों के साहित्यों का यह प्रेरणा-स्रोत रहा है? अथवा स्वर्णयुग में कौन-सी अप्सराओं ने इस पर शासन किया होगा? यह कौंकर्ड के मुकुट का सबसे पानीदार रत्न है।

फिर भी जो लोग सर्वप्रथम इस जलाशय पर आये होंगे वे अनायास ही अपने कुछ पद-चिह्न छोड़ गए हैं। सरोवर के चारों ओर, जहाँ किनारे का घना जंगल अभी हाल ही में साफ किया गया है, वहाँ भी ऊपर चढ़ती और नीचे उतरती हुई, जल से दूर और कभी जल के निकट जाती हुई एक सँकरी-सी पगडंडी देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। यह पगडंडी शायद उतनी ही प्राचीन रही होगी जितना प्राचीन कि इस स्थल पर मानव का अस्तित्व। आदिवासी शिकारी इस पर चले होंगे और अब भी इस भूमि के वर्तमान वासी समय-समय पर अनजाने ही इस पगडंडी पर जाते हैं। जाड़ों में सरोवर के बीच में खड़े होने वाले को यह पगडंडी विशेष स्पष्ट रूप से दिखाई देती है और हल्की बरफ गिरने के बाद यह एक लहराती हुई रेखा प्रतीत होती है, और घास-पत्ती और टहनियाँ इसे नहीं ढँकती, एक चौथाई मील की दूरी तक से इस समय यह साफ नजर आती है; जबकि गर्मियों में अत्यन्त निकट जाने पर भी दिखाई नहीं देती। प्रतीत होता है कि हिम-पात इसे साफ सफेद रंग में उत्कीर्ण कर देता है। यहाँ किसी दिन जो भवन खड़े किए जायँगे उनके सजे-सजाए उद्यानों में भी शायद इस पगडंडी के कुछ चिह्न सुरक्षित रहेंगे।

इस सरोवर का जल चढ़ता है और गिरता है, किन्तु ऐसा नियमित रूप से होता है या नहीं, कितने काल में होता है, इसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता, हालाँकि अनेक लोग यह जानने का बहाना करते हैं। साधारणतः जाड़ों में इसका जल अपेक्षाकृत चढ़ जाता है, गर्मियों में कम हो जाता है, यद्यपि ऐसा सामान्य नमी या सूखेपन के ठीक अनुपात में नहीं होता। जब मैं इसके किनारे रहता था

तब की अपेक्षा इसका जल कब एक-दो फुट नीचे गिरा और कब कम-से-कम पाँच फुट ऊपर चढ़ा, मुझे यह भलीभाँति याद है। रेत की एक सँकरी-सी पट्टी है जो पानी में चली गई है। इसके एक ओर बहुत गहरा पानी है। इस पट्टी के किनारे से पैंतीस गज़ आगे सन् १८२४ के लगभग—मैंने एक केतली में 'चाउडर' (गड्ड) उबालने में मदद दी थी, जो अब पिछले पच्चीस वर्षों में सम्भव नहीं हो सका है। इसके विपरीत, जब मैं अपने मित्रों को बताता था कि इसके कुछ वर्ष बाद तक मैं उनके जाने-पहचाने किनारे से ७५ गज ऊपर एक छोटी-सी खाड़ी में नाव से मछली मारा करता था, जहां अब घास का मैदान हो गया है, तो उन्हें विश्वास नहीं होता था। किन्तु दो वर्षों से सरोवर का जल बराबर ऊपर चढ़ता जा रहा है और अब, सन् १८५२ की ग्रीष्म ऋतु में जब मैं वहाँ रहता था तब से पाँच फुट ऊपर चढ़ गया है, या यों कहिए, कि इसकी सतह अब तीस वर्ष पहले जितनी ही हो गई है और उस मैदान में फिर से मछली पकड़ी जाने लगी हैं। इससे बाहर की ओर की सतह में फर्क पड़ गया है। किन्तु चारों ओर की पहाड़ियों से चूने वाला जल तो नगण्य है, इसलिए इस बढ़ती का कारण उन बातों में तलाश करना पड़ेगा जिनका प्रभाव सोतों पर पड़ता है। इस गर्मी में सरोवर की सतह फिर नीचे गिरने लगी है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस उतार-चढ़ाव के होने में कई वर्ष लग जाते हैं। मैंने एक चढ़ाव देखा है, और दो उतारों को अंशतः देखा है और मुझे आशा है कि अब से बारह-पन्द्रह वर्षों में पानी फिर उतना नीचे उतर जायगा, जितना कि मैंने कभी देखा हो। यद्यपि एक मील उत्तर में स्थित फ़्लिण्ट सरोवर में पानी आने और निकलने के अनेक मार्ग हैं फिर भी लगता है कि इस सरोवर और बीच की अनेक छोटी-छोटी झीलों को वालडेन से सहानुभूति है और हाल ही में वालडेन के साथ ही उनका पानी भी सबसे अधिक ऊँचाई पर पहुँच गया है।

दीर्घ कालांतर पर वालडेन के उतार-चढ़ाव से कम-से-कम एक लाभ तो होता ही है, वह यह कि इस ऊँचाई पर साल-भर तक पानी चढ़ा रहने से (हालाँकि इसके चारों ओर चलना कठिन हो जाता है) 'पिच पाइन', 'बर्च', 'एलडर', 'ऐस्पन' आदि के वे सब पेड़ और झाड़ियाँ मर जाते हैं जो पिछले चढ़ाव से अब तक पैदा हो गए हों, और उतार आने पर एक सपाट, साफ किनारा निकल आता है। कारण कि जिन झीलों में रोज उतार-चढ़ाव होता है उनसे विपरीत, वालडेन का किनारा सबसे साफ तभी होता है जब इसका जल निम्नतम स्तर पर होता है। मेरे घर से झील की ओर कीचड़ की पन्द्रह फुट ऊँची पाँत मारी गई है,

मानो किसी यंत्र से गिराकर उनकी अनधिकार चेष्टा में विराम लगा दिया हो। इन वृक्षों के आकार से पता चलता है कि पिछले चढ़ाव के बाद अब इस ऊँचाई तक पानी चढ़ने में कितने वर्ष लगे होंगे। इस उतार-चढ़ाव के द्वारा सरोवर तट पर अपना अधिकार जमाए रखता है, किनारा छट जाता है और उस पर 'सम्पत्ति के अधिकार' के नियम से पेड़-पौधों का कब्जा नहीं रह पाता। ये किनारे के ओठ हैं जिन पर दाढ़ी नहीं उग पाती। समय-समय पर यह अपने ओठों पर जीभ फेरा करता है। जब जल चढ़ाव पर होता है तो 'ऐलडर', 'विलो' और 'मेंपिल' अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने तने से चारों ओर कई फुट लम्बी लाल तंतुमय जड़ों की एक बड़ी राशि जल में भेज देते हैं, जमीन से तीन-चार फुट की ऊँचाई तक। मैंने देखा है कि किनारे की 'ब्लूबेरी' की झाड़ियाँ, जिनमें साधारणतः कोई फल नहीं लगता, इस स्थिति में अच्छी फसल देती हैं।

कुछ लोगों के सामने यह एक पहेली रही है कि वालडेन के किनारे पर इतने समतल पत्थर कैसे जड़े होंगे। मेरे सब नगरवासियों ने यह किंवदंती सुनी है (सबसे बूढ़े लोगों ने मुझे बताया है कि उन्होंने इसे अपनी युवावस्था में सुना था) कि प्राचीन काल में यहाँ एक पहाड़ी पर रेड इंडियन लोगों की एक सभा हुई थी। यह पहाड़ी उतनी ही ऊँची थी जितनी गहरी यह झील है। कथा के अनुसार इन लोगों के भ्रष्टाचरण (यह अपराध रेड इंडियनों ने कभी नहीं किया) के कारण सभाकाल में पहाड़ी हिली और अचानक बैठ गई, और केवल एक बुढ़िया बच रही, जिसका नाम वालडेन था। उसी पल से इस झील का यह नाम पड़ गया। यह कल्पना की गई है कि जब वह पहाड़ी हिली तो उस पर से ये चट्टानें लुढकीं और वर्तमान किनारा बन गया। जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि एक युग में यहाँ सरोवर नहीं रहा होगा, और अब है। और यह रेड-इंडियन कथा किसी प्रकार भी यहाँ के उस प्राचीन वासी के विवरण का विरोध नहीं करती जिसका मैं जिक्र कर चुका हूँ, जिसे भली भाँति याद है कि कब वह पृथ्वीतल के नीचे की धातुओं का पता लगाने वाला यंत्र यहाँ प्रथम बार आया था और उसने हरी-भरी भूमि से एक हल्की भाप उठती देखी, जैतून की लकड़ी की सुई ने नीचे की ओर इशारा किया और उसने वहाँ एक कुआ खोदने का निश्चय कर लिया। जहाँ तक पत्थरों का प्रश्न है कितने ही लोगों का अब भी यही विचार है कि इन पहाड़ियों से लहरों का टकराना इसका कारण नहीं हो सकता। किन्तु मैं देखता

हूँ कि चारों ओर की पहाड़ियों में उसी प्रकार का पत्थर भरा पड़ा है, जिसके कारण रेल-लाइन के दोनों ओर काटकर पत्थरों की दीवारें बना देनी पड़ी हैं। इसके सिवाय, जहाँ किनारा सबसे अधिक सीधा है, जहाँ सबसे अधिक पत्थर हैं। इस प्रकार दुर्भाग्यवश, अब यह मेरे लिए रहस्य नहीं रह गया है। मैंने पत्थर बिछाने वाले का पता लगा लिया है। यदि यह नाम 'सैफ्रन वालडेन' की तरह की किसी बस्ती से नहीं लिया गया है तो हम समझ सकते हैं कि मूलतः इसका नाम Walled-in Pond (दिवारों से घिरा सरोवर) रहा होगा।

यह झील मेरी खुदी-खुदाई बावड़ी थी। साल में चार महीने इसका जल उतना ही ठंडा रहता है जितना कि पूरे वर्ष निर्मल, और मेरा खयाल है उन दिनों वह सबसे अच्छा नहीं, तो कम-से-कम नगर के किसी भी जलाशय के जल के समान तो रहता ही है। जाड़े के दिनों में जो जल हवा में खुला रहता है वह कुओं और स्रोतों के जल से अधिक ठंडा रहता है, क्योंकि यह ढँका रहता है। ६ मार्च, १८४६ को जब कि थर्मामीटर का पारा ६५° से ७०° तक तापमान दिखा रहा था, मेरे कमरे में रखे हुए, वालडेन के जल का तापमान शाम के पाँच बजे से दूसरे दिन के दोपहर तक ४२° रहा। यह गाँव के सबसे ठंडे कुए में से खींचे हुए ताजे पानी से एक डिग्री अधिक ठंडा था। उसी दिन 'वोइलिंग स्प्रिंग' के जल का तापमान ४५° था—यह सभी जलाशयों के जल की अपेक्षा अधिक गरम था, हालाँकि उथला और रुका हुआ सतह का पानी इसमें नहीं मिलाया गया था। फिर भी मुझे यह पता है कि गर्मियों में इसका पानी सबसे ठंडा रहता है। इसके अलावा सूर्योत्ताप में खुला हुआ पानी जितना गरम हो जाता है, वालडेन का पानी उतना गरम कभी नहीं होता, क्योंकि यह सरोवर काफी गहरा है। गरम से गरम मौसम में एक बालटी-भर पानी मैं अपने तहखाने में रख देता था जहाँ यह रात में ठंडा हो जाता था और फिर दिन-भर ठंडा रहता था। कभी-कभी मैं पड़ोस के एक सोते के जल का भी प्रयोग कर लेता था। एक हफ्ते तक रखा रहने के बाद भी वालडेन का पानी तुरन्त निकाले हुए पानी के समान ही ताजा रहता था, और साथ ही इसमें पम्पे का स्वाद नहीं आ पाता था। जो भी गर्मियों के दिनों में एक हफ्ते के लिए किसी झील के किनारे पड़ाव डाले, उसे बरफ की विलासिता से मुक्त रहने के लिए केवल एक बाल्टी-पर पानी को अपने तम्बू की छाया में कुछ फुट की गहराई पर जमीन पर गाड़ने की जरूरत है।

वालडेन सरोवर में से 'पिकेरेल', 'पर्च', 'ट्राउट' 'शाइनर', 'चिविन' आदि

मछलियाँ पकड़ी गई हैं। एक पिकेरेल सात पौंड वजन की थी और दूसरी का तो कहना ही क्या, जो बड़ी तेजी से डोरी लपेटने की लकड़ी को ही खींच ले गई थी। इसे मछुआ देख नहीं पाया था इसलिए उसका कहना था कि यह आठ पौंड की अवश्य रही होगी। कुछ 'पर्च' और 'ट्राउट' दो-दो पौंड की रही होंगी। 'ब्रीम' बहुत थोड़ी थी। दो 'ईल' मछलियाँ भी पकड़ी गई हैं, जिनमें से एक का वजन चार पौंड था। यह बात मैं विशेष रूप से इसलिए कह रहा हूँ कि साधारणतः मछली की विशेषता उसके वजन में ही मानी जाती है। यहाँ मैंने केवल इन्हीं दो 'ईल' मछलियों के बारे में सुना है। एक और मछली की मुझे धुँधली-सी याद है जो पाँच इंच लम्बी थी, जिसके बाजू रूपहले थे और पीठ हरी थी, 'डेस' की भाँति की, जिसका जिक्र मैं अपने तथ्यों से कल्पना का योग देने के लिए कर रहा हूँ। फिर भी यह सरोवर मछलियों के लिए अधिक उपजाऊ नहीं है। 'पिकेरेल' यहाँ की विशेषता है, हालाँकि उसका भी बाहुल्य नहीं है। एक बार बर्फ पर लेटकर मैंने कम-से-कम तीन प्रकार की 'पिकेरेल' देखी हैं एक लम्बी और एक पतली, लोहे के रंग की, जैसी नदी में पाई जाती है, दूसरी हरी आभा लिए हुए सुनहले रंग की, जो यहाँ अधिकतर पाई जाती है, और तीसरी दूसरी के समान आकार की, सुनहले रंग की, किन्तु जिसके दोनों ओर—भूरे या काले रंग के छींटे होते हैं और बीच में कहीं-कहीं सुर्ख धब्बे होते हैं। यह 'ट्राउट' से बहुत मिलती-जुलती है। इसका जाति-गत नाम 'रैटीकुलेटस' (Retticulatus) नहीं हो सकता, इसे 'गटेटस' (Guttatus) कहना अधिक उपयुक्त होगा। ये सब बड़ी ठोस मछलियाँ होती हैं और आकार की अपेक्षा इनका वजन अधिक होता है। 'पर्च', 'शाइनर', 'ट्राउट', बल्कि यों कहिए कि इस सरोवर की सभी मछलियाँ, नदी या दूसरी झीलों में पाई जाने वाली मछलियों से कहीं अधिक स्वच्छ, सुन्दर और ठोस होती हैं, क्योंकि इसका जल अपेक्षाकृत निर्मल है। इसकी मछलियों को दूर से ही पहचाना जा सकता है। शायद मत्स्य-विशेषज्ञों को इनमें कुछ नई जातियाँ मिलें। इसमें स्वच्छ जाति के कुछ मेंढक, कछुए और घोंघे भी पाये जाते हैं। कभी-कभी दलदली कछुआ भी यहाँ आ जाता है। कभी-कभी सुबह जब मैं अपनी नाव ठेलता था तो उसके नीचे बड़ा-सा दलदली कछुआ निकल आता था, जो रात को नाव के पीछे छिपा होता था। वसन्त ऋतु और पतझड़ में यहाँ बत्तख और कलहंस घिर आते हैं, सफेद पेट वाले अबाबील (Hirundo bicolor)

इसके ऊपर मँडराते हैं और गर्मियों भर इसके पथरीले तट पर 'पीवीट' (Totanus Macularius) चहचहाते रहते हैं। कभी-कभी 'फिश हौक' (मछलीमार वाज) मुझे आते देखकर सफेद चीड़ पर से उड़ गया है किन्तु मुझे इसमें संदेह है कि 'गल' (समुद्री पक्षी) के पंख ने कभी भी 'फेयर हैवन' की भाँति इसके जल को अपने स्पर्श से भ्रष्ट किया हो। अधिक-से-अधिक, वर्ष में एक वार 'लून' पक्षी (निमजूक) यहाँ आता है। अव जो पशु-पक्षी इस झील पर आते हैं, इनमें ये ही विशेष हैं।

रेतीले पूर्व तट पर, जहाँ जल आठ-दस फुट गहरा है, और सरोवर के कुछ अन्य भागों में शाँत मौसम में आपको नाव में से मुर्गी के अंडो के आकार के छोटे-छोटे पत्थरों के कुछ ढेर रेत में दिखाई देंगे। इन गोल ढेरों का व्यास लगभग छै फुट होता है और ऊँचाई लगभग एक फुट। इन्हें देखकर आप सोचेंगे कि शायद रेड-इंडियन लोगों ने वरफ पर किसी प्रयोजन से ये ढेर वनाए होंगे, जो वरफ पिघलने पर नीचे तली में धसक गए। किन्तु वे सुव्यस्थित हैं और हाल ही के हैं। ऐसे ढेर नदियों में पाए जाते हैं, किन्तु इस सरोवर में 'सकर' 'लैम्प्रै' जाति की मछलियाँ नहीं हैं इसलिए मैं नहीं जानता कि कौन सी मछली ने इन्हें वनाया होगा। हो सकता है कि ये 'चिविन' के घोंसले हों। इनके कारण यह सरोवर-तल रहस्यमय हो गया है।

वालडेन का तट विषम है, इसलिए इसमें वैचित्र्य की कमी नही दिखायी देती। मेरे मस्तिष्क के नेत्रों के आगे पश्चिमी तट है जिसमें गहरी खाड़ियाँ हैं, उभरा हुआ उत्तरी तट है, और मनोहर घुमावों वाला दक्षिणी तट है जिस पर एक के वाद एक अंतरीप चले गए हैं। इन अंतरीपों से प्रतीत होता है कि इनके वीच की छोटी-छोटी खाड़ियां अभी तक अछूती है। कहीं भी वन इतना शोभायमान नहीं होता न इतना सुन्दर ही प्रतीत होता है, जितना कि किसी छोटी झील के मध्य से, जिसके किनारे चारों ओर पहाड़ियाँ खड़ी हों। इसका कारण यह है कि ऐसी स्थिति में वन का प्रतिविम्व पड़ने से जलाशय सर्वोत्तम प्रकार की अग्रभूमि हो जाती है और साथ ही इसके घुमावदार तट से वन की एक प्राकृतिक और मनोहर सीमा वन जाता है। कुल्हाड़ी से साफ की हुई भूमि में अथवा निकट की जोती हुई भूमि में जो अपूर्णता आ जाती है वह इसके तट में नही दिखाई देती। वृक्षों को जल की दिशा में फैलने के लिए पर्याप्त स्थान है और तट का प्रत्येक वृक्ष अपनी पुष्टतम शाखा को उस ओर फैला देता है।

प्रकृति ने स्वयं अपने हाथों बुनकर एक प्राकृतिक गोट वहाँ लगा दी है और दृष्टि धीरे-धीरे क्रमानुसार किनारे की नीची झाड़ियों से सबसे ऊँचे पेड़ तक उठती है। आदमी के हाथों के चिह्न कम ही नज़र आते हैं। आज भी जल तट को ठीक उसी प्रकार धो रहा है जिस प्रकार कि हजार वर्ष पूर्व धोता रहा होगा।

भूदृश्य का सबसे स्पष्ट और सुन्दर अंग सरोवर होता है। यह पृथ्वी का नेत्र होता है जिसमें झाँककर देखने वाला स्वयं अपनी प्रकृति की गहराई नाप लेता है। तटवर्ती वृक्ष इस नेत्र की घरोनियाँ होते हैं और वनाच्छादित पहाड़ियाँ और चोटियाँ उसकी भौंह।

इस सरोवर के पूर्वी सिरे के सपाट रेतीले तट पर खड़े होकर सितम्बर की प्रशांत अपराह्न वेला में, जबकि हल्का-सा धुन्ध सामने की तट-रेखा को धुँधला बना देता है मैंने देखा है कि 'झील की कांच की सी सतह' का मुहावरा कहां से निकला है। उलटा सिर करके देखने से प्रतीत होता है मानो महीन-से-महीन तंतुओं से बना कोई जाला घाटी के एक छोर से दूसरे छोर तक बिछा हुआ है और सुदूरवर्ती चीड़ के वन की पृष्ठभूमि होने के कारण चमक रहा है। यह मानो वायुमंडल की एक तह को दूसरी तह से अलग करता है। आपको लगेगा मानो हम इसके नीचे चलते हुए बिना भीगे ही दूसरे तट तक की पहाड़ियों तक जा सकते हैं, और इसके ऊपर मँडराती हुई अबाबीलें इस पर आनन्द से बैठ सकती हैं। वास्तव में, मानों गलती से वे इस रेखा के नीचे गोता लगातीं हैं और तब उनका भ्रमनिवारण हो जाता है। जब आप पश्चिम की ओर झील पर देखते हैं तो प्रतिबिम्बित और वास्तविक दोनों ही सूर्यों से रक्षा के लिए दोनों हाथों से अपनी-अपनी आँखों को झाँप लगानी पड़ती है, क्योंकि वे दोनों ही समान रूप से चमकते हैं। यदि इन दोनों के बीच आप इसकी सतह को ध्यान से देखें तो वह अक्षरश: काँच की-सी चिकनी दिखाई देगी केवल उन स्थलों को छोड़कर, जहाँ छोटे-छोटे कीड़े बराबर की दूरी में इस सतह पर अपनी गति से अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारी-सी पैदा करते हैं, अथवा कोई बत्तख पंख फुलाए दिखाई देती है, या जैसा कि मैं बता चुका हूँ, कोई अबाबील इतनी नीचे उतर आती है कि इसे छू ले। कभी-कभी, दूर कोई मछली, हवा में दो-तीन फुट का अर्द्ध-वृत्त बना देती है। जहाँ यह जल में से उछलती है वहाँ एक चमक आ जाती है और जहाँ यह जल में फिर से घुसती है वहाँ भी चमक दिखाई देती है। कभी-

कभी यह रुपहला अर्द्ध-वृत्त पूरा-का-पूरा दृष्टिगोचर हो जाता है। बीच में यत्र-तत्र गोखरू के सूक्ष्म तंतुमय बीज इसकी सतह पर तिरते दिखाई देते हैं, जिन पर झपटकर मछलियाँ डुबा देती हैं। यह सतह ऐसे पिघले हुए काँच-सी लगती है जो ठंडा-ठंडा तो हो गया किन्तु जमकर ठोस न हुआ हो, और ये कुछ कण काँच की कमियों के समान ही सुन्दर और विशुद्ध होते हैं। आपको इससे अधिक चिकना और गहरे रंग का जलांश दिखाई देगा जो मानो बाकी की जल-राशि से किसी अदृश्य जाले के द्वारा अलग कर दिया गया हो, जहाँ जल-अप्सराएँ विश्राम कर रही हों। पहाड़ी की चोटी से आप इसके किसी भी भाग में उछलने वाली मछली को देख सकते हैं, क्योंकि 'पिकेरेल' या 'शाइनर' मछली इसकी सपाट सतह से कीड़ा ही नहीं पकड़ती वल्कि स्पष्ट ही समूचे सरोवर का संतुलन विगाड़ती है। बड़े आश्चर्य की बात है कि यह एक मामूली-सी बात कितने विस्तार से प्रकाशित कर दी जाती है, (यह हत्याकाँड छिपा नहीं रहता) और बहुत दूर से ही तीस-पैंतीस गज व्यास की इन चक्राकार हिलोरों को मैं देख लेता हूँ। चौथाई मील की दूरी पर निरंतर वढ़ता हुआ जल-कीट (Gyrinus) दिखाई दे जायगा; क्योंकि वह जल को धीमे से काटकर दो रेखाओं के बीच लहरें बनाता जाता है। किन्तु 'स्केटर' विना लहरें बनाए सतह पर सरकता चला जाता है। जिस समय पानी में उथल-पुथल चलती रहती है, उस समय 'वाटर वग' और 'स्केटर' दिखाई नहीं देते, किन्तु प्रशांत दिनों में वे दुस्साहसपूर्वक निकल पड़ते हैं, एक किनारे से दूसरे किनारे तक जल में अपना प्रभाव दिखाते हुए चले जाते हैं। पतझड़ के दिनों में जब धूप सुहानी लगने लगती है, तब इस ऊँचाई पर किसी ठूँठ पर बैठकर सरोवर की ओर देखना, और निरंतर वनने वाले इन चक्रों का अध्ययन करना बड़ा सुहाना लगता है। इस विस्तीर्ण जल-राशि पर कोई आलोडन ऐसा नहीं होता जो तुरन्त ही धीमे से शोभित होता न चला जाता हो, जैसे किसी पात्र में जल भरकर उसे हिलाइए तो कम्पनयुक्त चक्र किनारे को छूने लगते हैं और फिर सब शांत हो जाता है। कोई भी मछली-उछली, कोई कीड़ा इस सरोवर में गिरा कि उसका संवाद इन चक्र वनाते हुए गड्ढों में, सौंदर्य की रेखाओं में प्रकाशित हो जाता है, मानो इसका कोई स्रोत नीचे से निरंतर बहता रहता हो, या इसके जीवन का मन्द स्पन्दन हो, मानो इसका वक्ष श्वास-निश्वास के साथ उठ रहा हो और नीचे हो रहा हो। इसके आनन्द की पुलक और वेदना की थरथराहट, इन दोनों का भेद पहचाना नहीं जा सकता। यह सरोवर कितना

शांतिमय है। मानव की क्रियाएँ भी वसंत काल की भांति चमक उठती हैं। हाँ, प्रत्येक पत्ती, प्रत्येक टहनी, और शिला, और मकड़ी का जाला इस अपराह्न में ऐसा जगमगाता है जैसे मधु-ऋतु के प्रातःकाल में ओस से ढँका होने पर। प्रत्येक डांड और कीड़े की गति से चमक पैदा हो जाती है और डांड के गिरने से कितनी मधुर प्रतिध्वनि होती है।

ऐसे ही दिन, सितम्बर या अक्तूबर के महीनों में, वालडेन सरोवर वन का दर्पण-सा लगता है जो मानो चारों ओर जितने मूल्यवान उतने ही दुर्लभ पत्थरों से जड़ा हुआ हो। मुझे तो ऐसा ही लगता है। सरोवर की भाँति शायद और कोई वस्तु इस पृथ्वीतल पर नहीं है जो इतनी मनोहर हो, इतनी निर्मल हो और साथ ही इतनी विस्तीर्ण भी हो। आसमानी जल। इसकी रक्षा के लिए किसी चौहद्दी की आवश्यकता नहीं है। जातियाँ आती हैं और चली जाती हैं, विना इसे कलुपित किये। यह एक दर्पण है जिसे कोई भी पत्थर चटखा नहीं सकता, जिसका पारा कभी नष्ट नहीं होगा, जिसके सुनहले चौखटे को प्रकृति निरन्तर संवारा करती है, किसी भी तूफान, या धूलि के कारण इसकी चिर नवीन सतह धूमिल नहीं हो सकती। यह एक ऐसा दर्पण है जिसमें, जो भी कूड़ा-करकट आता है सब डूब जाता है, जिसकी झाड़-पोंछ सूर्य अपने आलोक के झाड़न से करता है। इस दर्पण पर श्वास जमती नहीं है, वल्कि यह अपनी श्वास को भी बहुत ऊँचाई पर भेज देता है जहाँ वह वादलों के रूप में प्रवाहित होती रहती है और फिर भी इसी के वक्ष में प्रतिविम्वित होती रहती है।

जलाशय से वायुमण्डल की वृत्ति का पता चल जाता है। वह निरन्तर ऊपर से नया जीवन और गति प्राप्त करता रहता है। स्वभाव में यह आकाश और पृथ्वी का मध्यवर्ती होता है। भूमि पर केवल घास और वृक्ष लहराते हैं, किन्तु जल स्वयं वायु से लहरा उठता है। रोशनी की धारियों और उसके गालों से मैं देख लेता हूं कि बयार इससे कहाँ टकरा रही है। यह वात महत्त्व-पूर्ण है कि हम इसकी सतह को देख पाते हैं। शायद किसी दिन हम वायु की ऊपरी सतह को देख लेंगे और उसके ऊपर एक सूक्ष्मतर तत्त्व को प्रवाहित पायेंगे।

अक्तूबर के उत्तरांश में जब खूब तुषार-पात होने लगता है तो 'स्केटर' और 'वाटरवग' जलकीट विलुप्त हो जाते हैं। उस समय, और नवम्बर के महीने में,

प्रशांत वातावरण में सामान्यत: कोई भी चीज इसकी सतह को तरंगित नहीं करती। नवम्बर के महीने में एक दिन तीसरे पहर, कई दिनों के मेंह-तूफान के बाद की शांति में, जबकि आसमान आच्छादित ही था, मैंने सरोवर को विशेष रूप से चौरस पाया। इस कारण इसकी सतह का पता लगाना भी कठिन था। इसमें अक्तूबर के चमकीले रंग नहीं झलक रहे थे, केवल चारों ओर की पहाड़ियों के धूमिल रंग ही प्रतिबिम्बित हो रहे थे। यद्यपि मैं यथासम्भव धीमे से जा रहा था फिर भी मेरी नाव से बनी हल्की-सी तरंगें जहाँ तक मेरी दृष्टि पहुँचती थीं वहाँ तक जा रहीं थीं। प्रतीत होता था कि इन तरंगों से प्रतिबिम्बों में पसलियाँ लग गई हैं। किन्तु सतह पर देखने से यत्र-तत्र मुझे हल्की-सी चमक दिखाई भी देती थी मानो तुषार से बचकर कुछ 'स्केटर' वहाँ एकत्र हुए हों अथवा सतह इतनी सम होने के कारण तल भाग के किसी स्रोत का पता लग गया हो। धीरे से नाव खेकर ऐसे ही एक स्थान पर जाने से मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चारों ओर लगभग चार-पाँच इंच लम्बी ताम्र-वर्ण 'पर्च' मछलियाँ बड़ी संख्या में हरे जल में खेल रही हैं। वे निरंतर सतह पर आ-जा रही थीं और कभी सतह पर छेद-सा कर रही थीं तो कभी बबूले उठा रही थीं। इतने पारदर्शी और अतल दिखाई देने वाले जल में (जिसमें बादलों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था) प्रतीत हो रहा था मानो मैं किसी गुब्बारे में बैठकर हवा में उतर रहा हूँ; और इन मछलियों के तैरने से लग रहा था मानों पक्षियों का एक घना झुंड मेरे ठीक नीचे से दाएँ-बाएँ उड़कर जा रहा हो। सरोवर में इस प्रकार के अनेक स्थल थे। जाड़ा आयगा और उनके लिए इस विस्तीर्ण आकाश पर एक बरफीला कपाट लगा देगा, इसलिए स्पष्ट ही ये मछलियाँ इससे पूर्व थोड़े-से समय का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहती थीं। उनकी प्रतारणा से कभी-कभी ऐसा लगता था मानो बयार का हल्का-सा झोंका जल को छूता हुआ निकल गया हो या मेंह की कुछ बूँदें गिर गई हों। मैंने असावधानी से जाकर एक बार उन्हें भयभीत कर दिया तो वे अपनी पूँछ से जल छिटकारती और हिलोरें उठाती हुई ऐसे भागीं मानो कोई झबराली डाल जल में मार दी गई हो। तुरन्त उन्होंने गहराई में शरण ले ली। अंत में हवा जोर से चली, धुंध बढ़ गया,, लहरें दौड़ने लगीं और 'पर्च' मछलियाँ पहले से कहीं अधिक ऊँची उछलने लगीं। सैकड़ों काले-काले धब्बे सतह से लगभग तीन इंच ऊपर तक उछलने लगे। एक साल तो पाँच दिसम्बर के दिन भी मुझे सतह पर कुछ छोटे-छोटे

गड्ढे से दिखाई दिये। हवा में धुंध था इसलिए मैंने, यह सोचकर कि तुरन्त ही जोर से मेंह बरसने लगेगा, जल्दी-जल्दी घर की ओर नाव खेना शुरू कर दिया। मेरे मुँह पर एक बूंद नहीं पड़ी फिर भी लग रहा था मानो मेंह जोर पकड़ रहा है और मैं जल्दी ही सरावोर हो जाऊँगा। लेकिन अचानक ही मैंने देखा कि ये गड्ढे पड़ने बन्द हो गए हैं; इन्हें 'पर्च' मछलियों ने बनाया था जो अब मेरे डाँडों की छपछपाहट से डरकर गहराई की ओर चली गई थीं; उनके झुंड मुझे गायब होते दिखाई दिए थे। इस प्रकार उस शाम को मैं भीग नहीं पाया, सूखा ही रहा।

एक वृद्ध लगभग साठ वर्ष पूर्व इस सरोवर पर आया करते थे। तब यह चारों ओर सघन वन से घिरा हुआ था। वे मुझे बताते हैं कि उन दिनों कभी-कभी बत्तखों और अन्य जल-पक्षियों से यह सरोवर सजीव दिखाई देता था; कितने ही गरुड़ इस पर मँडराते थे। वे यहाँ मछली पकड़ने के लिए आते थे और किनारे पर रखी एक डोंगी का प्रयोग करते थे। यह डोंगी सफेद चीड़ के दो लट्ठों को बीच में से खोदकर और उन्हें जोड़कर बनाई गई थी और दोनों किनारों पर वह चौकोर कटी हुई थी। उसकी बनावट साफ नहीं थी, लेकिन वह बहुत वर्षों तक चली; अंत में उसमें पानी समा गया और शायद वह तली में बैठ गई। वृद्ध को पता नहीं कि यह नाव किसकी थी, यह तो सरोवर की ही सम्पत्ति थी। हिकौरी की छाल बटकर वह लंगर के लिए रस्सा बना लेते थे। एक बूढ़े कुम्हार ने, जो क्रांति से पूर्व इस तट पर रहा करता था, उन्हें एक बार बताया था कि सरोवर के तल में लोहे का एक संदूक था जिसे उसने खुद अपनी आँखों से देखा था। कभी-कभी यह संदूक तैरकर किनारे तक आ जाता था और यदि कोई इसके पास जाता तो यह गहरे जल में सरक कर गायब हो जाता था। लकड़ी के लट्ठों की बनी उस प्राचीन डोंगी के बारे में जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई जिसने रेड इंडियनों की, इसी सामग्री की बनी किन्तु अधिक भव्य डोंगी का स्थान ले रखा था। शायद वह इसी सरोवर के तट पर एक वृक्ष रही होगी और फिर गिरकर एक पीढ़ी तक इसी सरोवर पर तैरती रही। इससे अधिक उपयुक्त यान इस झील के लिए दूसरा नहीं हो सकता। मुझे याद है कि जब मैंने पहली बार इस गहराई में झाँका था, तो मुझे अनेक धुंधली शाखाएं इसके तले में पड़ी दिखाई दी थीं जो या तो पूर्वकाल में टूट कर गिर पड़ी होंगी या सस्ते ज़माने में, पिछली कटाई में इन्हें बर्फ पर पड़ा छोड़

दिया गया होगा। किन्तु अब वे अधिकतर गायब हो चुकी हैं।

जब मैंने प्रथम बार वालडेन पर नाव खेई थी, तब इसके चारों ओर भीमकाय चीड़ और बलूत के वृक्ष थे और इसकी छोटी खाड़ियों के किनारों से लगी कुछ बेलें पेड़ों पर फैली हुई थी और कुंज बन गए थे, जिनके नीचे से नाव जा सकती थी। इसके तट की पहाड़ियाँ इतनी ढालू हैं, और उन पर खड़े वृक्ष इतने ऊँचे थे, कि यदि आप पश्चिमी सिरे से देखते तो प्रतीत होता कि यहाँ किसी वन्य रंगमंच की नाट्यशाला स्थित है। अपने युवा काल में इसके बीच में नाव ले जाकर उसे पछुआ हवा के अनुकूल छोड़कर, इसकी सतह पर उतारते हुए, पटरों पर चित्त लेटकर, जागृत स्वप्नों में, गर्मियों के पूर्वाह्न के अनेक घंटे मैंने बिताए हैं। किनारे पर टकराने पर ही मैं जागता था और उठकर देखता था कि भाग्य ने मुझे किस ओर ठेल दिया है, उन दिनों जब निष्क्रियता ही मेरा सबसे आकर्षक और सबसे अधिक फलप्रद उद्यम था। दिन के सबसे मूल्यवान भाग का इस प्रकार उपभोग करने के लिए अनेक बार मैं पूर्वाह्न में चुपचाप खिसक गया हूँ, कारण यह था कि मैं धन के हिसाब से नहीं, तो ग्रीष्म-दिवसों और सूर्यालोकित क्षणों के हिसाब से सम्पन्न था, और उन्हें उन्मुक्त होकर खर्च करता था। मुझे इस बात का पश्चात्ताप भी नहीं है कि मैंने इन क्षणों को किसी कारखाने में या किसी अध्यापक की मेज के सामने और अधिक नष्ट नहीं किया। किन्तु जब से मैं इस तट को छोड़ आया हूँ तब से लकड़हारों ने उसे और भी नष्ट कर दिया है और अब कई वर्षों तक इस वन की वीथियों में विचरण नहीं हो सकेगा। वृक्षों की दृश्यावली के बीच से जल का दर्शन नहीं हो सकेगा। इसके आगे मेरी सरस्वती यदि मौन रहे तो वह क्षम्य है। पक्षियों से मधुर संगीत की आशा आप कैसे कर सकते हैं, जब उनकी वाटिका को ही उजाड़ दिया जाय ?

अब तलभाग में वृक्षों की शाखाएँ नहीं रहीं, वह प्राचीन नाव नहीं रही, चारों ओर का वह सघन वन भी नहीं रहा। और अब ग्रामवासी, जिन्हें इस सरोवर की स्थिति का भी ज्ञान नहीं है, वहाँ तक जाकर स्नान अथवा तृषा निवारण करने की अपेक्षा इसके कम-से-कम गंगा-जल के समान पवित्र जल को नल के द्वारा गाँव में लाने की बात सोच रहे हैं, अपने बरतनों को धोने के लिए। एक पेच घुमाकर या बटन खींचकर वे वालडेन को उपलब्ध करना चाहते हैं। उस शैतानी लौह अश्व (इंजन) ने, जिसकी कान फोड़ने वाली हिनहिनाहट

नगर-भर में सुनाई पड़ती है, अपने पैरों से 'बॉइलिंग स्प्रिंग, (उबलता सोता) को गँदला कर दिया है, उसी ने वालडेन-तट के वन को चर डाला है। उसे तो उदर में हजारों आदमियों को छिपाए ट्राय का घोड़ा समझिए जिसका निर्माण ग्रीस के कुछ भाड़े के टट्टुओं ने किया था। कहाँ है देश का वीर योद्धा, मूर हाल का मूर, जो उसका मुकाबला कर सके, जो उसकी छाती में भाला मारकर प्रतिशोध ले सके ?

तो भी, जितने चरित्रों से मेरा परिचय हुआ है, उनमें कदाचित् वालडेन ही अक्षय रहा है, उसी में अपनी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने की सबसे अधिक क्षमता है। अनेक व्यक्तियों से इसकी समता की गई है, किन्तु उनमें से बहुत कम लोग इस आदर के उचित पात्र हैं। यद्यपि लकड़हारों ने पहले इस तट को और फिर उस तट को उजाड़ दिया है, आयरलैंडवासियों ने इस पर अपनी टपरियाँ बना ली हैं, इसके किनारे रेल-लाइन निकाल दी गई है, तथा बरफ वालों ने इसे मथ डाला है, फिर भी यह स्वयं अपरिवर्तित रहा—इसका जल अब भी वही है जिस पर मेरे तरुणाई-भरे नेत्र विचरण किया करते थे; परिवर्तन तो सारा मुझ में आया है। इतनी लहरें उठने पर भी एक भी स्थायी झुर्री-इसके मुख पर नहीं पड़ी है। इसका यौवन अक्षय है, और प्राचीन काल की ही भाँति आज भी मैं खड़ा होकर, इसकी सतह पर से कीड़ा पकड़ने के लिए गोता मारती हुई अबाबील को देख सकता हूँ। आज रात को फिर से मेरे मन में यह बात आई है (मानो मैंने बीस से भी अधिक वर्षों तक लगभग प्रति-दिन इसका दर्शन किया हो।)—अरे यह रहा वालडेन, वही वनस्थित सरोवर जिसका पता मैंने इतने वर्ष पहले लगाया था; पिछले वर्ष जिस स्थल पर पेड़ काट डाले गए थे, अब वहाँ सदा की भाँति नई पौध बड़े उल्लास से उग रही है, तब की भाँति वही विचार तल-भाग से इसकी सतह तक उमग रहा है, यह अब भी वही पहले का तरल आनन्द और सुख है, अपने प्रति, अपने सृष्टिकर्ता के प्रति, और हाँ सम्भवतः मेरे प्रति भी। निश्चय ही यह किसी ऐसे बहादुर व्यक्ति का काम है जिसके मन में छल-कपट नहीं रहा होगा। उसने इस जलाशय को अपने हाथों सम्हाला होगा, अपने मन में इसे गहराई दी होगी, साफ किया होगा, और विरासत में इसे कन्कौर्ड के नाम लिख दिया होगा। इसके चेहरे पर मुझे वही प्रतिबिम्ब झलकता दिखाई देता है। और मैं मानो कहना चाहता हूँ अरे वालडेन, तुम हो ?

It is no dream of mine,
To ornament a line;
I cannot come nearer to God and Heaven
Than I live to Walden even.
I am its stony shore,
And the breeze that passes over;
In the hallow of my hand
Are its water and its sand,
And its deepest resort
Lies in high in my thoght.

गाड़ियों के डिब्बे इस ओर दृष्टिपात करने को नहीं रुकते फिर भी मैं यह समझता हूँ कि इंजीनियर, फायरमैन, ब्रेकमैन आदि रेल-कर्मचारी तथा वे यात्री जो 'सीजन टिकट' लेकर बहुधा इसका दर्शन करते रहते हैं, शायद इस दृश्य से श्रेष्ठतर व्यक्ति हो गए हैं। रात को भी इंजीनियर नहीं भूलता, अथवा यों कहिए कि उसकी प्रकृति नहीं भूल पाती कि उसने शांति और पवित्रता के इस दृष्टि को दिन में कम-से-कम एक बार तो देखा ही है। केवल एक बार के दर्शन से ही स्ट्रेट स्ट्रीट की और इंजन की सारी कलिमा धुल जाती है। किसी का प्रस्ताव है कि इसका नाम 'God's drop' रख दिया जाय।

मैं बता चुका हूँ कि वालडेन का पानी आने-जाने का दिखाई देने वाला कोई भी रास्ता नहीं है। किन्तु एक ओर तो यह अप्रत्यक्ष रूप से काफी दूर और अधिक ऊँचाई पर स्थित 'फ्लिण्ट झील' से, छोटी-छोटी अनेक झीलों की कड़ियों के द्वारा सम्बन्धित है, और दूसरी ओर इसका सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध कौंकर्ड नदी से है। इस निचली सतह पर बहने वाली नदी से भी इसका सम्बन्ध इसी प्रकार की छोटी-छोटी झीलों के द्वारा ही है। भूतत्त्व के किसी अन्य युग में शायद यह नदी इन झीलों में होकर बहती रही होगी और अब भी (परमात्मा न करे) थोड़ी-सी खुदाई करके इसको उसी दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है। इस प्रकार इतने काल तक वन में तपस्वी की भाँति एकांत और आत्म-संयम से रहने के बाद इसने जो आश्चर्यजनक पवित्रता अर्जित की है उसमें यदि 'फ्लिण्ट झील' का अपेक्षाकृत अपवित्र जल मिला दिया जाय, अथवा यदि यह सरोवर स्वयं

अपने माधुर्य को सागर के जल में मिलकर नष्ट कर दे तो किसको दुःख न होगा ?

'लिकन' की फ्लिण्ट या रेतीली झील जो हमारी सबसे बड़ी झील और हमारे भूभाग का सबसे बड़ा समुद्र है, वालडेन से लगभग एक मील पूर्व में स्थित है। यह अपेक्षाकृत बहुत बड़ी है; कहा जाता है कि वह ९७ एकड़ में फैली हुई है। साथ ही वह मछलियों के लिए कहीं अधिक उपजाऊ है। किन्तु वह वालडेन की तुलना में उथली है और उतनी निर्मल नहीं है। मैं अक्सर दिलबहलाव के लिए वन भ्रमण को उधर जाया करता था। गालों पर स्वच्छन्द वायु का अनुभव होता था, लहरें दौड़ती दिखलाई पड़ती थीं, और नाविक जीवन का स्मरण हो आता था; इतने से ही यह भ्रमण सार्थक हो जाता था। पतझड़ के मौसम में जिन दिनों तेज हवा चलती थी, मैं वहाँ जाकर अखरोट खाता था; अखरोट जल में गिरते और लहरों के द्वारा मेरे पैरों के पास आ लगते थे। एक दिन मैं जब इसके दलदली घास से भरे किनारे पर जा रहा था, और ताजी फुहार मेरे मुँह पर लग रही थी, तो मुझे एक सड़ी हुई नाव का अवशेष दिखाई दिया। इस नाव के बाजू नष्ट हो चुके थे, और इसकी तली का एक अंश ही सरपत में रह गया था। सागर तट पर जितने मर्मस्पर्शी विध्वंस की कल्पना की जा सकती है उतना मर्मस्पर्शी यह अवशेष था, और उतना ही शिक्षाप्रद भी था। अब यह अवशेष भी केवल वानस्पतिक कूड़ा-करकट बनकर झील के तट का अभिन्न भाग हो गया है और इसमें सरपत और दूसरे दलदली पौधे उग आए हैं। इस सरोवर के उत्तरी सिरे पर तल-भाग की रेत में लहरियों के चिह्न बने देखकर तो मन प्रशंसा से भर जाता था। यहाँ पर तली जल के दबाव के कारण इतनी जम गई थी कि चलने वाले के पैरों को कड़ी लगती थी। इन चिह्नों के साथ ही एक के पीछे एक सरपत की पाँत उग आई थी, मानो लहरों ने उन्हें बोया हो। यहाँ मुझे काफी परिमाण में अजीब तरह के गोले मिले जो शायद 'पाइप वौर्ट' से या महीन घास से या जड़ों से बन गए होंगे। ये लगभग आध इंच से चार इंच तक के व्यास के होते हैं और बिलकुल गोल। प्रवाह के साथ कभी ये आगे पहुँच जाते हैं, कभी उथले जल में रेत से आ लगते हैं, और कभी किनारे पर फेंक दिये जाते हैं। वे या तो घास से ठोस बने होते हैं या उनके बीच में थोड़ी-सी रेत होती है। पहले देखने पर तो आप कह देंगे कि पत्थर के गोल टुकड़ों की भाँति वे भी लहरों की क्रिया के द्वारा बन गए हैं। किन्तु उनमें से सबसे छोटा गोला तक घास के इन्हीं

आध-आध इंच के टुकड़ों का बना होता है, और वे वर्ष की केवल एक विशेष ऋतु में ही बनते हैं। इसके अलावा, मैं समझता हूँ कि किसी ऐसे पदार्थ को जिसकी रूपरेखा बन चुकी है, लहरें उतना बनाती नहीं हैं जितना नष्ट करती हैं। सूखने पर ये गोले अनिश्चित काल तक यही रूप धारण किए रहते हैं।

'फ्लिण्ट की झील'! हमारी नामकरण की क्रिया कितनी अभावपूर्ण है! उस गंदे बुद्धिहीन किसान को, जिसका खेत इस सरोवर के तट पर था तथा जिसने इसके तट को निर्ममता से नंगा कर दिया, उसको क्या अधिकार था इसे अपना नाम दे डालने का? कोई बालू में से तेल निकालने वाला व्यक्ति, जिसे डालर की या सेंट की चमकती हुई सतह के प्रति अधिक अनुराग था, जिसमें वह अपना बेशर्म चेहरा देख सकता जो इस झील में बसने वाली बत्तखों को भी अनाधिकारी समझ बैठा था, दैत्य की भाँति प्रत्येक वस्तु को कसकर पकड़ने की पुरानी आदत के कारण जिसकी अंगुलियों ने जानवरों के से पंजों का रूप धारण कर लिया था: ऐसे व्यक्सि के नाम के साथ कम-से-कम मैं तो इस सरोवर का नाम नहीं जोड़ूँगा। मैं वहाँ कभी उस व्यक्ति से मिलने के लिए नहीं जाता, उसके बारे में सुनने के लिए नहीं जाता, जिसने कभी इसे देखा नहीं, कभी इसमें अवगाहन नहीं किया, कभी इससे प्रेम नहीं किया, कभी इसकी रक्षा नहीं की, कभी इसकी प्रशंसा नहीं की, कभी परमात्मा के लिए इसके सर्जन के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन नहीं किया। कहीं अच्छा हो, यदि इस सरोवर को उन मछलियों का नाम दे दिया जाय जो इसमें तैरती रहती हैं, उन पशु-पक्षियों का नाम दे दिया जाय जो यहाँ विचरण करते हैं, उन वन्य पुष्पों का जो इसके किनारे खिलते हैं, अथवा किसी जंगली आदमी या बच्चे का जिसके इतिहास का सूत्र स्वयं इसके इतिहास के सूत्र के साथ बुना हुआ है, न कि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम इसे दिया जाय जिसका इस पर कोई अधिकार नहीं है सिवाय उस दस्तावेज के जो उसीके समान बुद्धि वाले पड़ोसी अथवा संसद-सदस्य ने उसके नाम लिख दिया है। और यह दस्तावेज लिखा गया है ऐसे व्यक्ति के नाम जो इसे केवल आर्थिक दृष्टि से देखता है, जिसकी उपस्थिति से सारा-का-सारा तट अभिशप्त हो गया है, जिसने इसके चारों ओर की भूमि को चूस डाला है, और बड़ी खुशी से इसके जल को भी समाप्त कर दिया होता, जिसे इस बात का दुःख है कि यह घास का मैदान नहीं, (और जिसकी दृष्टि में उसके 'उद्धार' का कोई उपाय नहीं,) जिसने इस सरोवर को सूखा बेच डाला होता उस मिट्टी के मोल जो इस तल भाग में है। इससे उसकी

पनचक्की तो चलती नहीं है, और केवल इसके दर्शन से लाभ ही क्या है? मेरे मन में उसके परिश्रम और उसके खेत के प्रति कोई आदर भाव नहीं है जहाँ प्रत्येक वस्तु का आर्थिक मूल्य होता है, जो, यदि वदले में कुछ मिल सकता तो शायद सारे भूदृश्य को, भगवान को भी ढोकर बाज़ार ले जाता, जो केवल अपने देवता के प्रयोजन से ही बाजार जाता है, जिसके खेत में कोई भी वस्तु बिना मूल्य के नहीं लगती, जिसके मैदान में फूल नहीं लगते, पेड़ों पर फल नहीं लगते, डालर लगते हैं। उसे अपने फलों की सुन्दरता प्यारी नहीं है, और फल उसके लिए तब तक नहीं पकते जब तक वह उन्हें डालरों में भुना नहीं लेता। मुझे तो वह निर्धनता पसन्द है जिसमें वास्तविक धन का उपभोग होता है। जिस अनुपात में किसान निर्धन होते हैं उसी अनुपात में वे मुझे आदरणीय और आकर्षक लगते हैं—बेचारे किसान। और आदर्श फार्म! जहाँ घर ऐसा होता है जैसे कूड़े के ढेर पर कुकुरमुत्ता, जहाँ आदमियों की, घोड़ों की, बैलों और सुअरों की गंदी और साफ कोठरियाँ एक-दूसरे से सटी रहती हैं! आदमी ठुँसे रहते हैं! खाद और मखनिया दूध की सड़ाँध से भरा 'ग्रीजस्पौट'! ऊँचे दरजे की कृषि जिसमें आदमी के हृदय की, उसके मस्तिष्क की खाद लगती है! मानो, आपको कब्रिस्तान में आलू की खेती करनी हो! ऐसा होता है—'मौडेल फार्म'।

नहीं नहीं, भूदृश्य के सुन्दरतम अंश को यदि आदमियों का ही नाम देना हो, तो उन्हें श्रेष्ठतम और योग्यतम व्यक्तियों के ही नाम दीजिए। हमारे सरोवरों को कम-से-कम उतने सच्चे नाम प्राप्त होने चाहिएँ जितना कि 'आइकेरियन सागर'[1] को, अब तक शौर्य गूंजता रहता है जिसके तट।"

छोटा-सा 'गूंज पौंड' (हंस सरोवर) 'फ्लिण्टस पौंड' के रास्ते में पड़ता है; लगभग सत्तर एकड़ में फैला हुआ 'फेयर हेविन', (जो कन्कोर्ड नदी का ही विस्तार है) एक मील दक्षिण-पश्चिम में है, और लगभग चालीस एकड़ का 'व्हाइट पौंड' (श्वेत सरोवर) 'फेयर हेविन' से डेढ़ मील और आगे है। यह है मेरा झीलों का प्रदेश। ये सरोवर और यह कन्कोर्ड नदी, ये मेरे जलीय विशेपाधिकार हैं। दिन हो या रात, वर्ष का कोई भी भाग हो, जो पिसान मैं उनके पास

---

१. कथा है कि आइकेरस ने मोम के पंख चिपकाकर उड़ने की चेष्टा की थी, किन्तु सूर्योताप के कारण मोम पिघल गया और आइकेरस सागर में जा गिरा। इसीसे सागर का नाम 'आइकेरियन' सागर हो गया।

ले जाता हूँ उसे वे पीस देते हैं।

लकड़हारों ने, रेलवे लाइन ने, और स्वयं मैंने वालडेन को दूषित कर दिया है। इसलिए अब हमारी झीलों में सबसे सुन्दर नहीं तो सबसे आकर्षक 'व्हाइट पौंड' (श्वेत सरोवर) रह गया है। यह वन की मणि है। यह नाम बड़ा चालू-सा है इसलिए अनुपयुक्त है भले ही यह नाम इसके जल की निर्मलता के कारण दिया गया हो अथवा इसकी रेत के रंग के कारण। फिर भी दूसरी बातों के समान इन बातों में भी यह वालडेन का जुड़वाँ छोटा भाई है। इन दोनों में इतनी समानता है कि आप सोचेंगे कि ये दोनों भूमि के नीचे अवश्य मिले हुए होंगे। इसका भी वैसा ही पथरीला किनारा है और जल भी उसी वर्ण का है। वालडेन की ही भाँति गर्मी के दिनों में वृक्षों के बीच में से इसकी खाड़ियों की ओर (जो इतनी गहरी नहीं हैं, केवल परछाईं के कारण गहरी दिखाई देती हैं) इसका जल धुंधला नीलाभ-हरा या आसमानी दिखाई देता है। बरसों पहले मैं रेगमाल बनाने के लिए गाड़ियों रेत लाने के प्रयोजन से वहाँ जाया करता था—अब तक मैंने वहाँ जाना जारी ही रखा है। एक सज्जन का, जो इस सरोवर पर बहुधा जाया करते हैं, प्रस्ताव है कि इसका नाम 'हरी झील' रख दिया जाय। निम्नलिखित कारण से इसका नाम 'पीत चीड़ झील' भी हो सकता है। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व, किनारे से कई गज की दूरी पर, गहरे जल में, सतह से निकली हुई 'पीत चीड़' की एक चोटी दिखाई देती थी। कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान किया कि यहाँ एक युग में वन रहा होगा जो धसककर सरोवर बन गया और यह उसी काल का वृक्ष है। मैं देखता हूँ कि मैसाचुसेट्स इतिहास परिषद् के संग्रहालय के एक नागरिक के लिखे हुए 'टौपोग्राफिकल डेस्क्रिप्शन एण्ड दा टाउन आफ कौंकर्ड' नामक ग्रंथ में सन् १७९२ में लेखक ने वालडेन और व्हाइट सरोवरों का वर्णन करने के बाद लिखा है, "जब पानी नीचा होता है तो व्हाइट पौंड के मध्य में एक वृक्ष खड़ा दिखाई देता है, जो लगता है मानो इसी स्थान पर उगा होगा, हालाँकि इसकी जड़ें पानी की सतह से पचास फीट गहराई तक चली गई हैं। इस वृक्ष की चोटी टूट गई है और वहाँ तने का व्यास चौदह इंच है।" सन् १८४९ की वसंतु ऋतु में मैंने एक आदमी से बात की जो इस सरोवर के निकटतम, सडबरी में रहता है। उसने मुझे बताया कि उसीने दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व इस वृक्ष को निकाल लिया था। जहाँ तक उसे याद था, यह किनारे से ७०-८० गज की दूरी पर तीस-चालीस फुट गहरे जल में खड़ा था। जाड़ों में एक दिन वह

पूर्वाह्न में बर्फ खोद रहा था कि उसे विचार आया कि अपराह्न में पड़ोसियों की सहायता से इस वृक्ष को निकाल लिया जाय। उसने बर्फ में एक नहर किनारे तक खोद ली और बैलों की सहायता से इसे ऊपर खींचा। लेकिन थोड़ी देर मेहनत करने के बाद ही उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह पेड़ उलटा खड़ा है, शाखाओं के ठूँठ नीचे की ओर गए हैं, और उसका ऊपरी छोर दृढ़ता से रेतीली तली में जमा हुआ है। इसका तना लगभग एक फुट का था और उसने सोचा था कि चीरने पर इसमें से एक अच्छा लट्ठा निकल आयगा। किन्तु यह इतना सड़ा-गला निकला कि ईंधन के अलावा और किसी काम नहीं आ सकता था। इस समय तक उसका कुछ भाग उसके छप्पर में लगा हुआ था। इस पर कुल्हाड़ी के चिह्न थे नीचे के हिस्से में खुटबढ़इया की चोटों के निशान थे। उसका खयाल था कि यह किनारे पर कोई मरा हुआ वृक्ष रहा होगा, जो बाद में सरोवर में गिर गया और पानी में उसका ऊपरी भाग फूल गया होगा जबकि निचला भाग सूखा रहा होगा। इस प्रकार वह उलटा गड़ गया। उसके अस्सी वर्षीय वृद्ध पिता को याद नहीं था कि यह वृक्ष वहाँ कब नहीं था। कितने ही बड़े लट्ठे शायद अब भी तल भाग में पड़े होंगे, जो सतह की तरंगों के कारण रेंगते हुए दीर्घाकार जलसर्प-से दिखाई देते हैं।

यह सरोवर नावों द्वारा बहुत कम दूषित हुआ है, क्योंकि इसमें मछुओं को आकर्षित करने की सामग्री अधिक नहीं है। श्वेत लिली, जिसके लिए मिट्टी की आवश्यकता होती है, या मीठे 'फ्लैग' के स्थान पर नील फ़्लैग इसके निर्मल जल में थोड़ा-सा उगता है, पथरीले तल से निकलकर किनारे पर फैला रहता है और जून के महीने में इस पर 'हमिंगबर्ड' आती है। इसकी नीले रंग की घास और नीले फूल, और खास तौर पर उन दोनों का प्रतिबिम्ब बड़े अनोखे ढंग से आसमानी जल के साथ मेल खाता है।

श्वेत सरोवर और वालडेन इस पृथ्वीतल के बड़े-बड़े बिल्लौर हैं। वे ज्योति के सरोवर हैं। यदि इनको स्थायी रूप से जमा दिया जाता, और वे इतने छोटे होते कि मुट्ठी में आ जाते, तो शायद गुलाम लोग इन्हें हीरे जवाहरात की भाँति सम्राटों का शीश जगमगाने के लिए उठा ले जाते। किन्तु वे तरल हैं और काफी बड़े हैं और चिरकाल तक हमारे और हमारी संतति के लिए सुरक्षित हैं। इन कारणों से हम उनकी उपेक्षा करते हैं और कोहेनूर हीरे के पीछे भागते फिरते हैं। वे विशुद्ध हैं, उनका कोई बाजारू माप नहीं हो सकता—

उनमें जरा भी कूड़े-कचरे की मिलावट नहीं हैं। हमारे जीवन की तुलना में वे कितने अधिक सुन्दर, हमारे चरित्र की अपेक्षा कितने अधिक निर्मल हैं वे ! हमें उनमें लेश-मात्र भी क्षुद्रता नहीं दिखाई देती। किसान के घर के सामने के पोखर की अपेक्षा, जिसमें उसकी बत्तखें तैरा करती हैं, कितने अधिक सुन्दर और स्वच्छ हैं वे ! यहाँ तो उज्ज्वल जंगली बत्तखें ही आती हैं। प्रकृति में किसी मानव का वास नहीं है, जो उसका गुण-ग्राहक हो। रंग-विरंगे पंखों वाले, चहचहाते पक्षीगण पुष्पों से लय मिलाते हैं, किन्तु कौन-सा नवयुवक, कौन सी युवती प्रकृति के वहुल सौंदर्य में योग देती है ? वह तो उनके नगरों से दूर, नितांत एकाकी ही प्रफुल्लित होती है। तुम स्वर्ग की बातें करते हो ! तुम तो पृथ्वी को भी कलंकित करते हो !

१०. बेकर फार्म

कभी-कभी टहलता हुआ मैं देव-मन्दिरों के समान गड़े चीड़ के वृक्षों के उपवन की ओर निकल जाता था; उन्हें देखकर प्रतीत होता मानो नावों के सजे-सजाए तैयार वेड़े समुद्र में पड़े हुए हैं। उनकी डालें झोंके खाती थीं और उनमें से प्रकाश लहराता था। इतनी कोमल, हरी और छायादार ये डालें होती थीं कि प्राचीन काल के पुजारी भी वलूत वृक्ष को छोड़कर यहाँ पूजा करने के लिए आ जाते। कभी मैं फ्लिण्ट सरोवर से आगे देवदारु के वन में चला जाता था जहाँ से पुरानी 'ब्लूबेरी' से ढँके ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाले वृक्ष मानो स्कैंडिनेविया के पौराणिक भवन 'वल्हला' की अग्रभूमि में खड़े होने के योग्य हैं। सारी भूमि 'जूनियर' (हपुषा) की फलयुक्त पुष्पावली से ढँकी हुई है। कभी मैं दलदल की ओर निकल जाता था जहाँ 'स्पूस' वृक्षों पर 'यूस्निआ लाइकेन' की वन्दनवार बँधी हुई है, और छत्रक (टोडस्टूल) नाम के कवक से सारी भूमि छाई हुई है जिसे देखकर प्रतीत होता है कि यह दलदल के देवताओं का सभास्थल होगा। यहाँ तरह-तरह के कवक ठूँठों पर उगा करते हैं, मानो तितलियाँ वैठी हों अथवा वनस्पति के घोंघे जड़े हुए हों। यहाँ 'स्वैम्प-पिंक' और 'डौग-वुड' उगते हैं, 'ऐलडर' (भूर्ज का एक प्रकार) का लाल फल शैतान के वच्चे की आँख-जैसा चमकता है, 'वैक्सवर्क' भी है जो कड़ी-से-कड़ी लकड़ी को जकड़कर तोड़ डालता है, और जंगली शूल पर्णी (हौली वेरी) तो अपनी छटा से देखने वाले को घर की याद भी भुला देती है। और अनेक, अनाम, वर्जित, वन्य फलों को देखकर दर्शक का मन ललचा उठता है, वे इतने सुन्दर होते हैं कि अभी तक इस मर्त्यलोक में कोई उनका स्वाद नहीं ले पाया है। वनस्पति-शास्त्र के किसी पंडित के पास जाने की वजाय मैं कुछ विशेष वृक्षों के पास वार-वार जाता था जो आस-पास उपलब्ध नहीं हैं। ये वृक्ष दूर कहीं मैदान में, या घने जगल के वीच में, या दलदल में या पहाड़ी की चोटी पर खड़े मिलते थे। यह श्याम-भूर्ज-है—जिसके दो फुट व्यास के कुछ वृक्ष हमारे यहाँ हैं। इसीका चचेरा भाई पीत-भूर्ज है जो सुनहले, ढीले-ढाले वस्त्र धारण किये हुए है, और श्याम-भूर्ज की ही भाँति सुगन्धित है। यह करंज है,

इसके स्कन्ध साफ छँटे हुए हैं और बड़ी सुन्दरता से 'लाइकेन' उन पर छा गई है। इसके अंग-अंग में सम्पूर्णता समाई हुई है। इस जाति के वृक्ष यत्र-तत्र बिखरे हुए मिल जाते हैं; इसके अलावा मुझे पता है कि इसके काफी बड़े वृक्षों का निकुंज एक जगह बाकी बच रहा है। वहाँ किसी जमाने में इसके फल का चुग्गा डालकर कबूतरों को आकर्षित किया जाता था। कुछ लोगों का अनुमान है कि इस निकुंज के वृक्षों का बीजारोपण कबूतरों ने ही किया होगा। इसकी लकड़ी को चीरने पर बड़े मनोहर रुपहले दाने निकलते हैं। यह 'वैस' (पर्ष) है, यह 'हौर्नवीम' (शृंगद्रु) है, यह 'सेल्टिस औधटीडेण्टिलिस' या नकली 'एल्म' है। इस जाति का एक ही बड़ा वृक्ष हमारे यहाँ है। कुछ बहुत ऊँचे चीड़ और 'शिग्ल' के वृक्ष हैं, असाधारण रूप से विकसित 'हैमलौक' के भी कुछ नमूने हैं जो वन के बीच पगोडा की भाँति खड़े हुए हैं। जाड़ों और गर्मियों दोनों में ही मैं इन मन्दिरों की यात्रा किया करता था।

एक बार अचानक ही मैंने अपने को इन्द्रधनुष के अर्द्ध-वृत्त के एक सिरे के ठीक नीचे खड़ा पाया। यह वायुमण्डल के निचले स्तर तक आ गया था और चारों ओर के घास-पात को इसने अपने रंगों से रंग दिया था। देखने पर लगा मानो मैं किसी रंगीन बिल्लौर में से देख रहा होऊँ। इन्द्रधनुष के आलोक की इस झील में थोड़े-से समय के लिए मैं मछली बन गया था। यदि यह स्थिति अधिक काल तक रहती तो शायद इसका रंग मेरे जीवन और मेरे व्यवहार पर भी चढ़ जाता। जब मैं रेल-लाइन के बाँध पर चलता था तो अपनी छाया के चारों ओर एक प्रभा-मण्डल देखकर आश्चर्य-चकित रह जाता था और अपने-आपको उन कुछ लोगों में मान लेता था जिन्हें परमात्मा ने मोक्ष प्रदान करने के लिए चुन रखा हो। एक सज्जन ने, जो मुझसे मिलने आये थे, एक बार मुझे बताया था कि उनके आगे चलने वाले कुछ आयर्लैण्ड-वासियों की छाया पर प्रभा-मण्डल नहीं था—यह विशेषता केवल अमरीका-वासियों को ही मिली है। बेनवेनुटो सेलिनी ने अपने संस्मरणों में बताया है कि जब वह किले में कैद था तो एक दिन उसने एक भयंकर स्वप्न देखा। इस दुःस्वप्न के बाद सुबह-शाम उसे अपने सिर की परछाईं के चारों ओर एक प्रभा-मण्डल दिखाई देने लगा, चाहे वह इटली में हो या फ्रांस में। घास जब ओस से नम होती तो यह प्रभा-मण्डल और भी स्पष्ट दिखाई देता था। जिस चीज का मैंने जिक्र किया है, वह भी सम्भवतः यही रही होगी। यह प्रभा-मण्डल

साधारणत: प्रात:काल में दिखाई देता है, किन्तु कभी-कभी दूसरे समय भी दृष्टिगोचर होता है, यहाँ तक कि चाँदनी में भी। ऐसा होता ही रहता है, फिर भी साधारणत: लोग इसे नहीं देख पाते और सेलिनी के समान उत्तेजनीय कल्पना वाले व्यक्ति के लिए यह अन्धविश्वास का एक अच्छा आधार बन जाता है। इसके अलावा उसका कहना है कि बहुत कम लोगों को उसने इस प्रभा-मण्डल का दर्शन कराया है। किन्तु जिन लोगों को इस बात का भान है कि उन्हें थोड़ी भी प्रतिष्ठा मिली है, वे क्या वास्तव में विशिष्ट जन नहीं हैं ?

एक दिन तीसरे पहर, अपनी साग-भाजी के थोड़े-से भण्डार की पूर्ति करने के प्रयोजन से मछली मारने के लिए मैं वन में होकर 'फेयर हैवन' की ओर चला। रास्ते में बेकर फार्म से लगा हुआ 'प्लैजेण्ट मीडो' (चरागाह) पड़ता था। इस स्थल के बारे में एक कवि ने गीत लिखा है जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं :

"Thy entry is a pleasant field,
Which some mossy fruit trees yield
Partly to a ruddy brook,
By gliding musquash undertook,
And mercurial trout,
Darting about."

वालडेन के किनारे बसने के पूर्व यहाँ रहने की बात मेरे मन में आई थी। मैंने कुछ सेबों को 'काँटे में फँसाया', छलाँग मारकर नाले को पार किया और 'मस्कोश' तथा 'ट्राउट' को भयभीत कर दिया। जब मैं घर से चला था तो आधी शाम जा चुकी थी, फिर यह एक ऐसी शाम थी जो आदमी को बहुत लम्बी दिखाई देती है, जिसमें अनेक घटनाएँ घटित हो सकती हैं, जो हमारे प्रकृत जीवन का एक बड़ा अंग होती हैं। संयोगवश मेह की एक बौछार आ गई जिसके कारण मुझे आध घण्टे तक चीड़ के एक वृक्ष के नीचे खड़ा रहना पड़ा। ऊपर चीड़ की शाखाएँ थीं, उनके नीचे बचाव के लिए एक रूमाल सिर पर डालकर मैं खड़ा हो गया। अन्त में, जब कमर तक जल में खड़े होकर मैंने 'मिकेरेल' के लिए जाल फेंका, तो मैंने देखा कि अचानक ही एक बादल मेरे ऊपर छा गया है और इतनी जोर से गड़गड़ाहट हुई कि मैं उसे सुनने के सिवाय और कुछ कर ही न सका। मैंने सोचा कि एक बेचारे निःशस्त्र मछुए

के ऊपर अनेक जिह्वाओं वाली विजली से प्रहार करने में, देवताओं को अवश्य ही गौरव का अनुभव हो रहा होगा। इसलिए मैंने तुरन्त सबसे निकट का कुटिया में शरण ली, जो किसी भी सड़क से आध मील की दूरी पर थी; किन्तु सरोवर के निकटतर थी और वहुत दिनों से खाली पड़ी रही थी।

"और यहाँ एक कवि ने
अंतिम दिनों में घर बनाया,
क्योंकि, देखो एक कुटिया
ध्वंस की ओर जा रही है।"

यह काव्य-कथा है। लेकिन मैंने देखा कि अब उसमें जौन फील्ड नामक आयर्लैण्डवासी, उसकी पत्नी, और उनके अनेक बच्चे आ बसे थे। उनकी सबसे बड़ी संतान वह चौड़े मुँह वाला लड़का था जो काम में अपने पिता की सहायता करता और अभी-अभी उसके साथ मेह से बचने के लिए भागकर आया था, और सबसे छोटा बच्चा था वह झुर्रियां पड़ा हुआ, बुढ़ियों-जैसा नुकीले सिर वाला शिशु जो पिता की गोद में बैठा हुआ, मानो नवावों के महल से इस सीलन और भूख के बीच, शैशव विशेषाधिकार से इस अपरिचित की ओर जिज्ञासावश झाँक रहा था। उसे पता नहीं था कि वह जौन फील्ड का भुखमरा बच्चा नहीं है बल्कि एक श्रेष्ठ परिवार का अंतिम सदस्य है, संसार की आशाओं का केन्द्र है। बाहर जोर से मेह वरस रहा था, बादल गरज रहे थे और हम सब लोग घिरे हुए ऐसे स्थान पर बैठे थे जहाँ सबसे कम पानी चू रहा था। जो जहाज इस परिवार को आयर्लैण्ड से लाया था उसके निर्माण से भी पूर्व अनेक बार मैं इस कुटिया में बैठ चुका था। ईमानदार, मेहनती किन्तु मन्द आदमी था जौन फील्ड। और उसकी पत्नी, वह भी बड़ी बहादुरी से इतने आदमियों का भोजन पकाने के लिए दिन-प्रति-दिन चूल्हा फूंकती चली जा रही थी, गोल चिकना चेहरा, खुला वक्ष लिये, अब भी उसे आशा थी कि कभी उसके दिन फिरेंगे। उसके एक हाथ में चिर उपस्थित झाड़ थी, किन्तु उसका प्रभाव कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। मुर्गियों ने भी मेह के कारण वहाँ शरण ले ली थी और वे इधर-उधर घूम रही थीं मानो इस परिवार की सदस्या हों। मुझे लगा कि उनका इतना मानवीकरण हो चुका है कि अब उन्हें पकाया नहीं जा सकता। वे रुककर मेरी आँख की ओर देखतीं अथवा किसी अभिप्राय से मेरे जूते में चोंच मारतीं। इसी बीच मेरे मेजवान

ने अपना किस्सा सुनाया कि वह अपने पड़ोस के ही एक किसान को दलदल फावड़े से साफ करने में कठिन परिश्रम करता है । पारिश्रमिक में उसे दस डालर फी एकड़ और भूमि का एक वर्ष तक मय खाद के प्रयोग, यही मिलता था। उसका चौड़े चेहरे वाला लड़का वड़ी उमंग से अपने पिता के साथ काम करता था; उस बेचारे को क्या पता कि उसके पिता ने कितने घाटे का सौदा कर लिया है। मैंने उसे अपने अनुभवों का लाभ देने की चेष्टा की और उसे वताया कि वह मेरा निकटतम पड़ोसी है, और मैं भी, जो यहाँ मछली मारने के लिए आया हूँ और आवारा-सा दिखाई देता हूँ उसी की तरह जीवकोपार्जन करता हूँ। मैंने उसे समझाया कि मैं एक साफ-सुथरे और सुघर घर में रहता हूँ जिसकी कीमत मुश्किल से उतनी होगी जितनी रकम वह अपने इस खण्डहर के लिए वर्ष-भर में किराये के रूप में दे देता है, और यदि वह चाहे तो महीने दो महीने में अपना महल वना सकता है। मैंने उसे यह भी वताया कि मैं न चाय का प्रयोग करता हूँ और न कॉफी, न मक्खन, न दूध, न गोश्त का; इसलिए इन वस्तुओं के मूल्य के उपार्जन के लिए मुझे परिश्रम भी नहीं करना पड़ता, किन्तु चूँकि चाय और कॉफी तथा मक्खन, दूध और गोश्त के विना उसका काम नहीं चलता इसलिए इनके धनोपार्जन के लिए उसे कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, और जब वह कम परिश्रम करता है तो अपनी शक्ति की क्षतिपूर्ति के लिए उसे खाना भी अधिक पड़ता है। किसी भी ओर से देखें, उसके हिसाव का एक ही फल निकलता था। साथ ही वह असन्तुष्ट भी था और अपना जीवन इस सौदे में नष्ट कर रहा था। फिर भी उसने सोचा था कि अमरीका जाने में लाभ होगा, क्योंकि उसे यहाँ चाय, कॉफी और गोश्त हर रोज मिल सकेगा। किन्तु वास्तविक अमरीका तो वही देश है जहाँ आपको यह स्वतन्त्रता हो कि आप चाहें तो ऐसा जीवन व्यतीत कर सकें, जिसमें इन वस्तुओं के विना काम चल सके, जहाँ राज्य आपको वाध्य न कर सके कि आप गुलामी और युद्ध तथा दूसरे फालतू खर्चों में योग दें जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में इन्हीं वस्तुओं के परिणाम होते हैं। मैं जान-बूझकर इस ढंग से वात कर रहा था मानो वह कोई दार्शनिक हो या दार्शनिक होने की इच्छा उसके मन में हो। लोग अपने उद्धार की चेष्टा करना प्रारम्भ करें और इसके फलस्वरूप यदि दुनिया-भर के सारे मैदान, विना खेती के, वन्यस्थिति में ही पड़े रहें, तो इससे मुझे प्रसन्नता ही होगी।

किसी व्यक्ति के सांस्कृतिक विकास के लिए कौन-सी चीज सर्वश्रेष्ठ है, यह जानने के लिए उसे इतिहास को टटोलने की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन हाय, किसी आयर्लैण्डवासी का उद्धार तो एक ऐसा काम है जिसे एक प्रकार के नैतिक फावड़े से करना पड़ेगा। मैंने उसे बताया कि दलदली भूमि में कड़ी मेहनत करने के लिए उसे मोटे और मजबूत जूतों-कपड़ों की आवश्यकता होती है, और वे भी जल्दी ही गन्दे होकर फट जाते हैं। इसके विपरीत मैं हल्के जूते और महीन कपड़े पहनता हूँ जिनका मूल्य उसका लगभग आधा होता है, हालाँकि वह सोचता होगा कि मैं बाबू साहबी ढंग से रहता हूँ (जैसा कि नहीं था) और बिना मेहनत के, मनोरंजन के तौर पर मैं यदि चाहूँ तो, एक-दो घण्टे में ही इतनी मछली मार सकता हूँ कि जिससे मेरा दो दिन का काम चल जाय, अथवा इतना धन कमा सकता हूँ जो मेरे लिए सप्ताह-भर को पर्याप्त हो जाय। यदि वह और उसका परिवार सादगी से रहे, तो वे सब मनोरंजन के लिए गर्मियों में 'हकलबेरी' खाने को जा सकते हैं। यह सुनकर जौन ने एक लम्बी साँस ली और उसकी पत्नी कमर पर हाथ रखे टकटकी लगाकर मेरे मुँह की ओर देखने लगी और प्रतीत होता था कि मानों दोनों यह सोच रहे हों कि उनके पास इतनी पूँजी ही कहाँ है जो यह जीवन-क्रम चालू कर सकें, और न गणित का ही इतना ज्ञान है जो इतना सब हिसाब लगा सकें। उनके लिए तो यह वैसा ही था जैसा तूफान आने पर समुद्र में जहाज का हिसाब (जो कुतुबनुमा, लट्ठों आदि के आधार पर लगाया जाता है, क्योंकि कुछ भी नहीं दिखाई देता) और उन्हें पता नहीं कि वे अपना बन्दरगाह कहाँ बनायँ। इसलिए मेरा खयाल है कि वे लोग अब भी अपने ही ढंग पर, पूरी ताक़त लगाकर जीवन का बहादुरी से सामना कर रहे हैं। उनमें इतनी दक्षता नहीं है कि जीवन के बड़े-बड़े लट्ठों को कोई पैना पच्चड़ ठोंक कर चीर गिरायँ, वे तो यही सोचते हैं कि इनको ताकत से उसी प्रकार उखाड़ फेंकेंगे जैसे लोग गोखरू की झाड़ी को उखाड़ फेंकते हैं। किन्तु यहीं उनके लिए एक बड़ी भारी असुविधा हो जाती है। जौन फील्ड, तुम बिना गणित के जिन्दा रहते हो, और इसलिए इतने असफल होते हो।

मैंने पूछा, "तुम कभी मछली मारते हो?" "हाँ, हाँ जब कभी मेरे पास खाली वक्त होता है, मैं 'पर्च' का शिकार कर लेता हूँ।" "चारे के लिए तुम क्या लगाते हो?" "मैं कुछ 'शाइनर' और कीड़े पकड़ लेता हूँ और उनका चारा डालता हूँ।" तभी उसकी पत्नी का चेहरा आशा से चमक उठा और वह बोली

"जौन अगर अभी चले जाओ तो वड़ा अच्छा हो।" किन्तु जौन ने मना कर दिया।

तव तक मेह वन्द हो चुका था, वन के पूर्वी भाग के ऊपर इन्द्रधनुष देखकर प्रतीत होता था कि वड़ी मनोहर सन्ध्या होगी, इसलिए मैंने अव विदा ली। जव मैं वाहर निकला तो मैंने पीने को पानी माँगा, इस आशा से कि कुए की तली देख लूंगा और इस स्थान का मेरा सर्वेक्षण पूरा हो जायगा। लेकिन हाय! पानी उथला है, और रेत ऐसी है कि वरतन फँस जाय, ऊपर से रस्सी भी टूटी हुई है और वालटी ऐसी कि उसका उद्धार नहीं हो सकता। इसी वीच सही वरतन चुना गया, दिखाने को छाना भी गया और सलाह मशविरा करने के वाद वहुत देर में प्यासे को पानी दिया गया—सो भी न तो वह ठण्डाया गया था और न थिर ही हो पाया था। मैंने मन में सोचा, यहाँ जीवन इसी से चलता है इसलिए सावधानी से हिलाकर उसके कूड़े-कचरे को एक ओर किया और आँखें मूंदकर मैंने इस वास्तविक आतिथ्य का यथासम्भव हार्दिकता से पान किया। ऐसे मामलों में, जहाँ शिष्टता का सवाल आता है मैं कभी नाक-भौं नहीं चढ़ाता।

मेह रुकने के वाद जव मैं इस आयर्लैण्डवासी के घर से निकला और झील की ओर चला, तो यह मछली पकड़ने की उतावली, यह घास के मैदानों में, कीचड़ और दलदल में, इस परित्यक्त वन्य भूमि में चलना, क्षण-भर को मुझे वड़ा तुच्छ जान पड़ा; क्योंकि मैं स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पा चुका था। किन्तु जव मैं अपने कन्धे पर इन्द्रधनुप लिये, पहाड़ी से लालिमायुक्त पश्चिम दिशा की ओर उतरा, और पता नहीं कहाँ से, इस स्वच्छ वायु में होकर एक हल्की-सी झंकार मेरे कानों में आने लगी तो मुझे प्रतीत हुआ मानो मेरी प्रतिभा मुझ से कह रही है—जा दिन-प्रतिदिन, दूर-दूर तक, और आगे, मछली मारता जा, शिकार खेलता जा, और विना किसी भय के, निश्शंक होकर अनेक नदियों के तट पर अनेक चूल्हों के सहारे विश्राम करता जा। अपनी युवावस्था में अपने सर्जनहार को याद रख! उपा-काल से पूर्व चिन्ता-मुक्त जाग और नये-नये उपक्रमों को तलाश करता जा! दोपहर आये तो तू दूसरी ही झीलों पर मिले, और रात तुझे सभी जगह समान रूप से विश्राम करता हुआ पाय! इनसे अधिक विस्तृत क्षेत्र इस संसार में नहीं है; यहाँ जो खेल खेले जा सकते हैं उनसे अधिक श्रेष्ठ खेल और नहीं हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार वन्य हो जा, इन घास और झाड़ियों की भाँति जो कभी भी सूखकर अंग्रेजी घास नहीं वनेंगी।

बिजली कड़कने दे, यदि इससे किसान की फसल को कोई खतरा होता है तो क्या हुआ? उसका यह संदेश तेरे लिए नहीं है। जब और लोग गाड़ियों और छप्परों की ओर दौड़ें तो तू बादलों की छाँह में शरण ले! जीविकोपार्जन को अपना व्यापार नहीं, मनोरंजन बना! भूमि के आनन्द का उपभोग कर, किन्तु उसे अपनी सम्पत्ति मत बना! निष्ठा और साहस की कमी के कारण ही लोगों की आज यह दशा हो गई है कि वे खरीद फरोख्त में लगे भूमि-दासों का जीवन बिताते हैं।

हे बेंकर फार्म!

"भू दृश्य, जहाँ का सम्पन्नतम तत्त्व
थोड़ी-सी भोली धूप है………"
"तेरे मैदान में खेलने को
कोई दौड़ा नहीं आता………"
"वाद-विवाद न तू करता है,
प्रश्न न करते तुझे भ्रमित,
सादा, ताम्र-वर्ण वस्त्रों में,
तू पहले की भाँति नमित।"
"आओ तुम प्रेमी-जन!
तुम भी, ओ घृणा-वदन,
आओ शांति - दूत तुम,
आओ गाइ फॉक्स[1] तुम,
पेड़ों पर लटका दो
अपने षड्यन्त्रों को।"

लोग बड़े पालतूपन से रात को निकट के खेत या सड़क से लौट आते हैं जहाँ उनकी घर-गृहस्थी की प्रतिध्वनि मँडराया करती है, और उनका जीवन सूखता चला जाता है; क्योंकि वे बारम्बार अपनी छोड़ी हुई साँस में ही साँस लेते रहते हैं, वे नित्य-प्रति जितनी दूर जाते हैं उससे आगे तो उनकी छाया ही सुबह-शाम चली जाती है। प्रत्येक दिन हमें नया अनुभव, नया गुण लेकर, दूर से, साहस के कामों से, खतरों से, नई खोजों के बाद घर लौटना चाहिए।

इससे पहले कि मैं झील तक पहुँचूँ, जौनफील्ड को कोई नई प्रेरणा मिली,

१. गाइ फॉक्स—एक प्रसिद्ध षड्यन्त्रकारी।

और उनका दिमाग़ वदला और वह इस शाम को दलदल की सफाई छोड़कर वाहर आ गया। लेकिन जव तक वह केवल दो एक मछलियाँ ही मार पाया तव तक मैंने काफी 'शिकार' कर लिया था; उसका कहना था कि उसका भाग्य अच्छा है। किन्तु जव हमने नाव में अपनी जगहें बदलीं तो भाग्य ने भी अपना स्थान वदल लिया। वेचारा जौनफील्ड! (मैं चाहता हूँ कि यदि वह इससे कुछ शिक्षा ग्रहण न करे तो इसे न पढ़े) वह सोचता है कि पुराने देश के ही दकियानूसी तरीके से वह इस नये आदिम देश में रहेगा, शाइनर कीड़े का लासा लगाकर 'पर्च' मछली का शिकार करेगा। मैं यह मानता हूँ कि कभी-कभी यह चारा भी अच्छा काम कर जाता है। यहाँ का सारा क्षितिज उसका अपना है, फिर भी वह दरिद्र है। उत्तराधिकार में मिली आयरलैण्ड की दरिद्रता, या दरिद्र जीवन, उसके आदम की दादी और दलदली तरीकों के साथ उसका जन्म ही दरिद्र रहने के लिए हुआ है; वह और उसकी सन्तति इस दुनिया में ऊपर न उठकर पैरों से दलदल ही घँघोरते रहेंगे जव तक कि उनकी एड़ियों तक 'टैलेरिया'[1] न हो जाय।

---

१. टैलेरिया–रोम की कथाओं के पंख लगे हुए जूते।

११. उच्चतर नियम

जब मैं मछलियाँ मारकर अपनी बंसी पीछे लटकाए घर लौट रहा था तो अन्धेरा हो चुका था। चुपके से रास्ता काटते हुए एक 'वुडचक' की झलक मुझे दिखाई दी और मेरे मन में एक अजीब जंगली उल्लास की लहर दौड़ गई, इस वुडचक को पकड़कर कच्चा ही खा जाने को मैं लालायित हो उठा। बात यह नहीं थी कि मैं बहुत भूखा था, बल्कि यह कि उसमें बनैलापन था। जिन दिनों मैं सरोवर के तट पर रहता था उन दिनों भी एक-दो बार मैंने अपने-आपको अध-भूखे शिकारी कुत्ते की भाँति बड़ी स्वच्छन्दता से वन में चक्कर काटते हुए पाया, किसी हिरन की तलाश करते हुए जिसे मैं फाड़ खाऊँ। उस समय कोई भी चीज़ इतनी बनैली नहीं होती थी कि मैं न खा सकूँ। वन्यतम दृश्य मुझे आश्चर्यजनक रूप से परिचित लगते थे। मैं अपने अन्दर पाता था, और अब भी पाता हूँ, एक तो उच्चतर (या जिसे आध्यात्मिक कहते हैं) जीवन की प्रवृत्ति (जो कि अधिकतर लोग अपने अन्दर पाते हैं) और दूसरी आदिम या जंगलीपन की प्रवृति, और दोनों ही पर मेरी श्रद्धा है। मुझे बनैले जीवन से उतना ही प्रेम है जितना श्रेष्ठ से। मछली मारने में जो बनेलापन और आकस्मिकता है वही मुझे उस ओर लुभाती है। कभी-कभी अपने जीवन पर पूर्ण अधिकार करके जानवरों की तरह दिन बिताना मुझे अच्छा लगता है। शायद, बालपन में यह प्रवृत्ति होने और शिकार खेलने के कारण ही प्रकृति से मेरा निकटतम परिचय हुआ है। इन दोनों के कारण जल्दी ही हमारा परिचय प्राकृतिक दृश्यों से हो जाता है और हम उनके ही एक भाग बन जाते हैं, अन्यथा उस आयु में इनसे हमारा बहुत कम परिचय हो पाता। मछुए, शिकारी, लकड़हारे और दूसरे लोग जो अपना जीवन मैदानों में और वनों में बिताते हैं, जो विशेष अर्थों में स्वयं प्रकृति के ही अंश होते हैं, वे अपने धन्धों के अन्त-राल में बहुधा उन दार्शनिकों अथवा कवियों तक की अपेक्षा प्रकृति का निरी-क्षण करने की अधिक अनुकूल मनःस्थिति में होते हैं, जो उसके निकट कुछ उपलब्धि की आशा से जाते हैं। उनके आगे अपने-आपको प्रदर्शित करने में वह नहीं झिझकती। प्रेयरी (मैदान) में यात्री अपने-आप शिकारी हो जाता

है, मिसौरी और कोलम्विया के प्रदेश में 'ट्रैयर' (जानवर फँसाने वाला) हो जाता है और सेण्टमेरी के प्रपात पर आकर मछुआ हो जाता है। जो व्यक्ति केवल यात्रा करता है वह इन चीजों को केवल दूसरों के माध्यम से, अर्द्धांश में ही जान पाता है और अच्छा जानकर नहीं होता। जिन वातों को ये लोग प्रत्यक्ष अनुभव से या स्वभावतः जान लेते हैं उन वातों को जव विज्ञान हमारे सामने रखता है तो वे हमें वड़ी दिलचस्प लगती हैं, क्योंकि केवल यही वास्तविक 'मानवता' या मानवीय अनुभव का वितरण होता है।

जो लोग यह कहते हैं कि अमरीकावासियों के मनोरंजन के साधन सीमित हैं, क्योंकि उनके यहाँ उतनी छुट्टियाँ नहीं होतीं, और इंग्लैण्ड में आदमी और वच्चे खेलों में जितना भाग लेते हैं उतना यहाँ के लोग नहीं लेते, वे गलती करते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ शिकार, मछली मारने, तथा इसी प्रकार के आदिम किन्तु एकान्त मनोरंजनों का स्थान अभी तक खेल-कूद नहीं ले पाए है। मेरी पीढ़ी में, न्यू इंग्लैण्ड का लगभग प्रत्येक वालक दस और चौदह वर्ष की आयु के वीच अपने कन्धे पर वन्दूक रख चुका है, उसके शिकार का और मछली मारने का क्षेत्र अंग्रेज जागीरदारों की सुरक्षित भूमि की भाँति सीमित नहीं रहता था वल्कि वन-वासियों के क्षेत्रों से भी अधिक असीमित रहता था। इसलिए यदि साधारण खेलों में उसकी रुचि नहीं होती तो कोई आश्चर्य की वात नहीं। किन्तु परिवर्तन होने लगा है, और इसका कारण वढ़ती हुई मानवता नहीं, जानवरों की वढ़ती हुई कमी है, क्योंकि शिकार के जानवरों का सवसे वड़ा मित्र शायद शिकारी ही होता है, 'परोपकारी समाज' को मिलाकर भी।

इसके अतिरिक्त जव मैं सरोवर पर होता था तो कभी-कभी परिवर्तन के लिए भोजन की सामग्री में मछली भी शामिल करने की इच्छा हो उठती थी। जिस आवश्यकता के वशीभूत होकर प्रथम मछुओं ने मछली मारी होगी, ठीक उसी आवश्यकता को लेकर वास्तव में मैंने मछलियों का शिकार किया है। इसके विरोध में, मैं अपने मन में जितनी भी 'मानवता' का आह्वान करता, सव कृत्रिम होती थी और उसका सम्वन्ध मेरी भावनाओं की अपेक्षा मेरे दर्शन से अधिक होता था। अव मैं केवल मछली मारने की वात कर रहा हूँ, क्योंकि पक्षियों के शिकार के वारे में तो वहुत पहले ही से भिन्न प्रकार से सोचने लगा था और वन में जाने से पहले मैंने अपनी वन्दूक वेच डाली थी। वात यह

नहीं हैं कि मेरे मन में दूसरों की अपेक्षा कम दया-भाव है, किन्तु मैं नहीं देख पाता था कि मेरी भावना बहुत प्रभावित होती है। न तो मुझे मछलियों पर दया आती थी, न कीड़ों पर। यह तो मेरी आदत थी। और जहाँ तक पक्षियों के शिकार का प्रश्न है, बन्दूक धारण करने के अन्तिम वर्षों में मेरा बहाना था कि मैं पक्षी-विज्ञान का अध्ययन कर रहा हूँ और केवल नये और दुर्लभ पक्षियों की ही तलाश करता हूँ। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि अब मैं सोचने लगा हूँ कि पक्षी-विज्ञान के अध्ययन का इससे अधिक श्रेष्ठ ढंग भी है इसके अध्ययन के लिए पक्षियों के स्वभाव को इतना अधिक ध्यान से देखने की आवश्यकता होती है, कि केवल इसी एक कारण को लेकर, मैं बन्दूक का परित्याग करने को तत्पर रहा हूँ। तो भी, दया के नाम पर इससे विरोध होते हुए भी, मुझे इसमें सन्देह ही है कि कोई भी इसके समान मूल्यवान खेल कभी भी इसका स्थान ले सके हैं। और जब भी कभी मेरे मित्रों ने चिन्तित होकर मुझसे पूछा है कि वे अपने लड़कों को शिकार खेलने दें या नहीं, तो मैंने यह याद करते हुए कि यही मेरी अपनी शिक्षा का सर्वोत्तम अंश था, उत्तर दिया है, कि हाँ उन्हें शिकारी बनाइए, भले ही वे प्रारम्भ में केवल शिकार करें, और सम्भव हो तो अन्त में इतने जबरदस्त शिकारी बन जायँ कि इस या उस वानस्पतिक वन में उन्हें अपने योग्य कोई भी जानवर दिखाई न दे, और आगे चलकर वे आदमियों के शिकारी और मछुए बन जायँ। इस सीमा तक मैं कवि चौसर की 'कैंटरबरी टैल्स' की मठवासिनी का अनुमोदन करता हूँ—जो उन धर्म-ग्रन्थों पर ध्यान नहीं देती थी जिनके अनुसार शिकारी लोग धर्मात्मा नहीं होते। मानव जाति के समान ही व्यक्ति के इतिहास में भी एक काल आता है जब शिकारी ही 'सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति' होता है। जिस बालक ने कभी बन्दूक नहीं चलाई उसके ऊपर हमें दया ही आती है, वह अधिक सदय नहीं हो जाता और साथ ही उसकी शिक्षा भी बुरी तरह उपेक्षित रहती है। जिन किशोरों का इस ओर रुझान होता था उनके सम्बन्ध में मेरा यही उत्तर होता था, इस विश्वास से कि जल्दी ही वे इस खेल से आगे बढ़ जायँगे। लड़कपन की विचार-हीन आयु के बाद कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव को नहीं मारेगा जिसे स्वयं उसीकी भाँति जीवन मिला है। अंततोगत्वा खरगोश भी बच्चे की ही भाँति क्रंदन करता है। माताओं, मैं यहाँ आपको बता दूं कि मेरी संवेदना में सदा सामान्य 'मानव-प्रेम-सम्बन्धी' भेद-भाव नहीं होता।

इस प्रकार वहुधा नवयुवक का वन से परिचय होता है और यह उसका मूलतम अंश होता है। प्रारम्भ में वह वहाँ शिकारी और मछली मारने वाले के रूप में जाता है और अन्त में, यदि उसमें श्रेष्ठतर जीवन के वीज विद्यमान हैं, तो, कवि या प्रकृतिज्ञ होकर अपने सही लक्ष्य को पहचान लेता है, और वन्दूक तथा वंसी को पीछे छोड़ देता है। इस सम्वन्ध में अधिकतर लोग हमेशा वालक ही रहते हैं। कुछ देशों में शिकार खेलने वाले पादरी वहुत-से दिखाई देते हैं। ऐसा व्यक्ति 'गडरिये' का अच्छा कुत्ता हो सकता है, अच्छा गडरिया (इसा मसीह) नहीं हो सकता। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि लकड़ी काटने, वरफ काटने या इसी प्रकार के दूसरे कामों के अलावा केवल एक ही काम ऐसा था जिसके लिए आधे दिन तक इस नगर का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह पिता हो या पुत्र (एक अपवाद के सिवाय) वालडेन-सरोवर पर रुका रहता है—और वह काम है—मछली मारने का। साधारणतः जव तक ये लोग काफी मछली नहीं मार लेते थे तव तक अपने को भाग्यशाली नहीं समझते थे, या अपने समय की कीमत वसूली हुई नहीं मानते थे, हालाँकि उन्हें इतने काल तक सरोवर के दर्शन का अवसर मिलता था। वे हजार वार वहाँ जायँ तव कहीं शायद 'मछली मारने' की तलछट उनके प्रयोजन में से निकलकर तल में वैठैगी और उनका प्रयोजन विशुद्ध हो जायगा। किन्तु विशुद्धीकरण का यह क्रम इस वीच चलता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। गवर्नर साहव और उनकी समिति के सदस्यों को इस सरोवर की वड़ी धुंधली-सी याद है, क्योंकि वे लोग किशोरावस्था में यहाँ मछली मारने के लिए आया करते थे। किन्तु अव उनकी आयु इसकी नहीं रही, और यह उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल भी नहीं है। फिर भी अन्त में स्वर्ग पहुँचने की आशा उन्हें भी है। विधान-सभा यदि इस ओर कोई ध्यान देती है, तो वह केवल यह नियम वनाती है कि इसमें इतने काँटे एक वार में डाले जा सकते हैं। उन्हें काँटों के भी उस काँटे के वारे में कुछ मालूम नहीं जिसमें विधान-सभा को मारकर और उसका चारा लगाकर स्वयं सरोवर को फँसाया जा सकता है। इस प्रकार सभ्य जातियों में भी भ्रूण-मानव विकास की शिकारी अवस्था से गुजरता है।

पिछले वर्षों में मैंने वार-वार देखा है कि मैं जव भी मछली मारता हूँ, तो थोड़ा-वहुत आतम-सम्मान खो देता हूँ। मैं वार-वार यह प्रयोग कर चुका हूँ। मैं इस काम में निपुण हूँ, और अपने अनेक साथियों के समान मुझमें इसकी

प्रवृत्ति भी है जो समय-समय पर उभर आती है। किन्तु जब भी मैं मछली मारता हूँ, तो बाद में अनुभव करता हूँ कि यदि मैंने यह न किया होता तो अधिक अच्छा होता। मेरा खयाल है कि मैं गलती नहीं कर रहा हूँ। यह एक बहुत घुँधला-सा सन्देश है, किन्तु प्रातःकाल की प्रथम किरणें भी तो ऐसी ही होती हैं। निःसन्देह मुझमें यह प्रवृत्ति है जो सृष्टि के निम्नतर क्रम का गुण है। फिर भी वर्ष प्रति वर्ष मैं कम-से-कम मछुआ होता जाता हूँ, हालाँकि मेरी 'मानवता' या बुद्धिमत्ता में वृद्धि नहीं होती। वर्तमान में, मैं जरा भी मछुआ नहीं रह गया हूँ। किन्तु मैं देखता हूँ कि यदि मुझे वन में रहना पड़े तो फिर से मुझे मछुआ और शिकारी बन जाने का प्रलोभन होगा। इसके अतिरिक्त, इस भोजन में, और सभी मांसाहार में, कोई चीज मूलतः अस्वच्छ है, और मुझे दिखाई देने लगा था कि घर का काम धन्धा कहाँ आरम्भ हो जाता है और कहाँ से प्रत्येक दिन साफ और सम्मानजनक दिखाई देने के, (जिसमें इतना धन व्यय होता है) और घर को दुर्गन्ध और घिनौने दृश्यों से रहित रखने के प्रयास का क्रम आरम्भ होता है। मैं स्वयं अपना कसाई रहा हूँ, बावर्ची और बासन माँजने वाला भी रह चुका हूँ और साथ ही वह बाबू साहब भी रह चुका हूँ जिसके आगे मेज पर खाना लगाया जाता है, इसलिए मैं असाधारणतः पूर्ण अनुभव से बात कह सकता हूँ। मांसाहार के प्रति मेरा व्यावहारिक विरोध उसकी अस्वच्छता के कारण है। इसके अतिरिक्त, मैं मछली मारकर, साफ करके, पका कर खा लेता था, तब भी यह प्रतीत नहीं होता था कि मुझे मूल रूप से भोजन मिल गया है। यह भोजन महत्त्वहीन होता था, अनावश्यक होता था, और इससे उतना लाभ नहीं होता था जितनी कीमत लग जाती थी। थोड़ी सी रोटी और आलुओं से भी ठीक उतना ही काम चल सकता था, साथ ही कम मेहनत लगती और गन्दगी भी कम होती। अपने कितने ही समसामयिकों की भाँति वरसों तक मैंने गोश्त, या चाय, या कॉफी आदि का बहुत कम प्रयोग किया था। यह इतना इसलिए नहीं कि इनका कोई दुष्प्रभाव मुझे दिखाई दिया था जितना इसलिए कि ये वस्तुएँ मेरी कल्पना के लिए रुचिकर नहीं थीं। मांसाहार के प्रति अरुचि किसी अनुभव का फल नहीं होता है बल्कि यह अन्तर्जात प्रवृत्ति होती है। स्वल्प और सादे भोजन पर निर्वाह अनेक प्रकार से अधिक सुन्दर जँचता था। और यद्यपि मैं इस प्रकार कभी रहा नहीं, फिर भी अपनी कल्पना को सुख देने के लिए काफी हद तक मैंने यह प्रयास किया है। मेरा विश्वास है

कि जो भी अपनी श्रेष्ठतर या काव्यमयी प्रवृत्तियों को उनकी सर्वोत्तम दशा में सर्वसुरक्षित रखने को आतुर रहा है, वह विशेष रूप से मांसाहार से, अथवा किसी भी प्रकार के अधिक भोजन से, वचने को प्रवृत्त रहा है। कीट-शास्त्रियों ने एक वड़ी महत्त्वपूर्ण वात कही है (मैंने किर्वी और स्पेस के ग्रन्थों में पढ़ा है) कि "कुछ कीड़े पूर्णतया विकसित हो जाने के वाद अपने भोजन के अंगों का प्रयोग नहीं करते, हालाँकि ये अंग उनके शरीर पर अवस्थित रहते हैं।" उन लोगों ने इसे एक सामान्य नियम माना है, कि 'लगभग सभी कीड़े, इस अवस्था में लार्वावस्था से कहीं कम भोजन करते हैं। वहुत खाने वाला भिनगा (केटरपिलर) जव तितली वन जाता है···पेटू लार्वा जव मक्खी वन जाता है, तव एक-दो वूँद शहद या किसी अन्य मीठे तरल पदार्थ से तृप्त हो जाता है। तितली के पंखों के नीचे जो पेट होता है, वह लार्वावस्था का ही अवशेष होता है। यही उसके कीट-भक्षी भाग्य को नियत करता है।' स्थूल-भोजी व्यक्ति को लार्वावस्था में ही समझिए, और अनेक राष्ट्र अभी इसी अवस्था में हैं, ऐसे राष्ट्र जिनमें कल्पना-शक्ति का नितान्त अभाव है, उसका पता उनकी वड़ी-वड़ी तोंदों से लग जाता है।

जो कल्पना को अरुचिकर न हो, वैसा सादा और स्वच्छ भोजन प्राप्त करना और पकाना कठिन है। किन्तु मेरा खयाल है कि शरीर के साथ ही कल्पना को भोजन मिलना चाहिए, दोनों को साथ-साथ एक ही मेज़ पर वैठकर तृप्त होना चाहिए। फिर भी शायद यह सम्भव हो सकता है। फलों की हल्की खुराक से न हमें अपनी रुचि पर लज्जा आयगी और न इससे हमारी सर्वश्रेष्ठ वृत्तियों में विघ्न ही पड़ेगा। लेकिन कहीं यदि अपनी थाली में चटनी अचार रख लिया तो वह ज़हर हो जायगा। ऊँचे दर्जे के पकवानों पर निर्वाह करना समुचित नहीं है। जो भोजन दूसरे लोग हमारे लिए प्रतिदिन पकाते हैं, ठीक उसी भोजन को स्वयं पकाते हुए पकड़े जाने पर अधिकतर व्यक्ति शर्म से गड़ जायँगे, चाहे वह शाकाहार हो अथवा मांसाहार। फिर भी जव-तक हमारा भोजन इसके विपरीत नहीं हो जाता तव तक हम सभ्य नहीं वन सकते, हम 'जेंटिलमेन और लेडीज़' भले ही वने रहें, वास्तविक पुरुष और स्त्री कदापि नहीं हो सकते। इससे निश्चित रूप से इंगित होता है कि क्या परिवर्तन होना चाहिए। यह प्रश्न करना व्यर्थ है कि कल्पना का मांस और वसा से मेल क्यों नहीं हो सकता। मुझे इस वात से सन्तोष है कि यह मेल नहीं है। क्या यह वात निन्दनीय नहीं होगी कि मानव एक

मांसाहारी जीव है ? यह सच है कि वह बहुत अंशों में, दूसरे जीवों के आहार पर रहता है, और रह सकता है। किन्तु यह बड़ा तुच्छ ढंग है। जो लोग खरगोशों को फँसाने और मेमनों को मारने के लिए जाते हैं, वे इस बात को जान सकते हैं। इसलिए जो व्यक्ति मानव को अधिक सरल और स्वास्थ्यप्रद भोजन पर निर्वाह करना सिखा देगा, वह मानव जाति का बड़ा उपकार करेगा। मैं स्वयं व्यावहारिक रूप से चाहे जो करूँ, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि मानव-जाति अपने क्रमिक विकास में आगे जाकर जीव-भक्षण छोड़ देगी, ठीक जिस प्रकार कि जंगली जातियों ने सभ्य लोगों के सम्पर्क में आने पर एक-दूसरे के भक्षण का परित्याग कर दिया।

यदि कोई अपनी प्रतिभा की मन्दतम किन्तु अविराम ध्वनियों को ध्यान पूर्वक सुनता है, जो निश्चय ही सत्य होती है, तो उसे पता नहीं लगता कि वें उसे किस छोर तक, किस पागलपन तक ले जायँगी, फिर भी, ज्यों-ज्यों वह अधिक दृढ़, अधिक स्थिर होता जाता है, उसी ओर उसका मार्ग बनता जाता है। केवल एक स्वस्थ व्यक्ति के मन में जिस मन्दतम किन्तु निश्चित विरोध का अनुभव होता है, वह अन्ततोगत्वा समूची मानव जाति के सारे तर्कों और स्थापनाओं पर छा जायगा। कभी भी किसी भी व्यक्ति को उसकी प्रतिभा ने गुमराह नहीं किया। शारीरिक क्षीणता भले ही आ जाय, तो भी शायद कोई भी इसके परिणामों पर पश्चात्ताप नहीं करेगा, क्योंकि ये परिणाम ही वह जीवन है जो उच्चतर नियमों के अनुरूप होता है। यदि आपके दिन और रात ऐसे हैं कि आप उनका उल्लास से स्वागत करें और जीवन में से पुष्पों और मधुगन्ध पौधों की भाँति सुगन्ध आती रहती है, और जीवन अधिक लचीला, अधिक तारावन्, अधिक अमर हो जाता है—तो यह आपकी सफलता है! यह समूची प्रकृति ही आपका अभिनन्दन है, और क्षण भर को आप अपने को साधुवाद दे सकते हैं। सबसे बड़ी उपलब्धियों और सबसे बड़े मूल्यों को पहचानना सबसे कठिन भी होता है। आसानी से हमें उनके अस्तित्व में ही शंका होने लगती है। उन्हें हम जल्दी ही भूल भी जाते हैं। वे ही सर्वोच्च वास्तविक हैं। शायद सबसे अधिक चकित करने वाले, और सबसे यथार्थ तथ्य मानव द्वारा मानव पर कभी अभिव्यक्त नहीं हो पाते। मेरे 'दिन-प्रतिदिन' के जीवन की वास्तविक प्राप्ति उतनी ही अस्पृश्य और अवर्णनीय हैं जितनी कि उषा और सन्ध्या के रंगों की झलक। यह सितारों की थोड़ी-सी धूल होती है, इन्द्रधनुष

का थोड़ा-सा हिस्सा, जो मेरी मुट्ठी में रह जाता है।

फिर भी जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं कह सकता हूँ कि कभी भी वहुत नाक-भौं चढ़ाने का मेरा स्वभाव नहीं रहा; यदि आवश्यकता हो तो मैं वड़े स्वाद से भुना हुआ चूहा भी खा सकता हूँ। ठीक जिस कारण से मैं अफीमची के स्वर्ग की अपेक्षा प्राकृतिक आकाश को ही अधिक पसन्द करता हूँ, उसी कारण से मैंने इतने समय तक विशुद्ध जल का ही पान किया है (मदिरा-पान नहीं किया) इस वात की मुझे प्रसन्नता है। मैं नहीं चाहता कि कभी नशा मेरे ऊपर सवार हो जाय; और मदहोशी के अनन्त अंश होते हैं। मेरा विश्वास है कि वुद्धिमान व्यक्ति का केवल-मात्र पेय जल है, शराव उतना श्रेष्ठ पेय नहीं है। और प्रातःकाल की आशा को गरम कॉफी के प्याले से और सन्ध्या की आशाओं को चाय-पान से चकनाचूर करने की वात तो सोचिए! हाय, जब मैं इनके प्रलोभन में फँस जाता हूँ तो मेरा कैसा पतन होता है! संगीत भी मादक हो सकता है। इन तुच्छ लगने वाले कारणों ने ही ग्रीस और रोम को नष्ट कर दिया और वे इंग्लैण्ड और अमरीका को भी नष्ट कर देंगे। नशों में सवसे अच्छा नशा उस वायु का है जिसमें हम साँस लेते हैं, इसे कौन स्वीकार नहीं करेगा? दीर्घकाल तक स्थूल परिश्रम करने में मुझे सवसे वड़ी खरावी यह दिखाई दी कि इसके वाद मेरा खाना-पीना भी स्थूल हो जाता था। किन्तु सच वात तो यह है कि वर्तमान में, मैं इस ओर कम ध्यान देने लगा हूँ। अव मैं भोजन के सम्वन्ध में कम 'धार्मिक' हो गया हूँ और कोई वरदान नहीं माँगता। इसका कारण यह नहीं है कि मैं पहले की अपेक्षा अधिक वुद्धिमान हो गया हूँ, वल्कि मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि (वात चाहे जितने दुःख की हो) इसका कारण यह है आयु वढ़ने के साथ-साथ मैं भी अधिक स्थूल और उदासीन हो गया हूँ। अधिकतर लोगों का विश्वास है कि कविता युवावस्था में ही होती है; उसी भाँति शायद ये प्रश्न भी युवावस्था में ही उठते हैं। अव यह मेरा मत-मात्र रह गया है, उसका व्यावहारिक रूप समाप्त हो चुका है। फिर भी मैं अपनी गणना उन विशिष्ट व्यक्तियों में नहीं करता जिनके वारे में वेदों में कहा है, "जिस व्यक्ति की सर्वव्यापी परमात्मा में पूर्ण निष्ठा है, उसके लिए जो कुछ भी है, सभी भक्ष्य है।" अर्थात् उसके लिए इन वातों का वन्धन नहीं है कि उसके भोजन में क्या हो और उसे कौन पकावे। और उन लोगों के सम्वन्ध में भी, यह वात ध्यान देने योग्य है कि, जैसा एक हिन्दू भाष्यकार का

कथन है, वेदान्त ने इस सुविधा को केवल 'आपद्काल' के लिए ही सीमित रखा है ।

कौन ऐसा है जिसे कभी-कभी अपने भोजन से एक ऐसी अनिर्वचनीय तृप्ति का अनुभव न हुआ हो जिसमें स्वाद का कोई भाग न रहा हो ? इस विचार से मैं पुलकित हो उठा हूँ कि स्थूल स्वाद-वृत्ति से मुझे एक मानसिक उपलब्धि हुई है, और स्वादेन्द्रिय के द्वारा स्फूर्ति मिली है; पहाड़ी के पाल पर खाई हुई बेरों से मेरी प्रतिभा को भी भोजन मिला है । थ्सेंग त्स्यू ने कहा है, "जब आत्मा स्वयं अपनी स्वामिनी नहीं होती, तो व्यक्ति दृष्टिपात करता है है किन्तु देखता नहीं, उसके कानों में ध्वनि पहुँचती है किन्तु वह सुनता नहीं, वह भक्षण अपने भोजन का असली स्वाद करता है किन्तु भोजन के रस से परिचित नहीं होता ।" जो व्यक्ति पहचानता है वह कभी पेटू नहीं हो सकता, जो नहीं पहचानता वह अन्यथा नहीं हो सकता । एक प्यूरिटन अपनी ब्राउन ब्रेड उतने ही स्थूल स्वाद से खा सकता है जितने स्थूल स्वाद से एक जिले का हाकिम कछुए का भक्षण करता है । बात यह नहीं है कि हमारे मुख में जो खाद्य जाता है वह हमें भ्रष्ट करता है; हमें भ्रष्ट करता है वह स्वाद जिसमें रस लेकर उस खाद्य को ग्रहण किया जाता है । न तो भोजन का प्रकार हमें भ्रष्ट करता है और न उसका परिमाण, हमें भ्रष्ट करता है जिह्वा की लोलुपता के प्रति अनुराग, जब कि खाया जाने वाला पदार्थ हमारे जीव को पोषित करने अथवा हमारे आध्यात्मिक जीवन को स्फूर्ति प्रदान करने की अपेक्षा उन साँपों को पोषित करता है जो हमें घेरे हुए हैं । यदि शिकारी को कछुआ, मस्करैट आदि जंगली जीवों के स्वाद में आनन्द आता है तो ससभ्य महिला को बछड़े की टाँग के मुरब्बे और समुद्र से पकड़ी गई 'सार्डिन' मछली के स्वाद में आनन्द आता है, और वे दोनों समान हैं । एक को स्वाद की तृप्ति तालाब से मिलती है और दूसरे को मुरब्बे के पात्र से । आश्चर्य की बात यही है कि कैसे वे, आप और हम खाते-पीते यह गन्दी जानवरों की जिन्दगी जीते है ।

हमारा समूचा जीवन इतना नैतिक है कि चकित रह जाना पड़ता है । इसमें क्षण भर को भी कहीं अच्छाई और बुराई के बीच सन्धि नहीं होती । अच्छाई ही एक मात्र ऐसा व्यापार है जिसमें कभी घाटा नहीं होता । इस संसार के चारों ओर कम्पित होने वाले वीणा के संगीत में यही स्वर हमें झंकृत करता है । इस सृष्टि

की बीमा-कम्पनी का सफरी एजेण्ट यही वीणा है जो इस कम्पनी के नियमों का प्रचार करती रहती है, थोड़ी-सी अच्छाई ही हमें रकम के रूप में देनी पड़ती है। तरुण अन्ततोगत्वा उदासीन हो जाता है, सृष्टि के नियम कभी उदासीन नहीं होते। मन्द पवन के प्रत्येक झोंके में कुछ-न-कुछ भर्त्सना अवश्य ही होती है। उसे सुनिए। जो उसे नहीं सुन पाता वह भाग्यहीन है। इस वीणा का एक भी तार छुआ, कि यह मोहक उपदेश अन्तर में घुसा। बहुत-सी नीरस ध्वनियाँ दूर जाकर सुनने पर संगीतमयी लगती हैं, जो हमारे जीवन की क्षुद्रता के प्रति एक मधुर व्यंग्य है।

हमें इस बात का बोध है कि हमारे अन्दर एक पशु है। जिस अनुपात में हमारी उच्चतर प्रवृत्ति सुप्त रहती है उसी अनुपात में यह पशु जाग्रत रहता है। यह रेंगने वाला जीव होता है, यह केवल एन्द्रिक होता है। शायद इसको पूरी तौर पर निर्वासित नहीं किया जा सकता, ठीक उन कीड़ों की भांति जो हमारी जीवित और स्वस्थ अवस्था में भी हमारे शरीर में वास किये रहते हैं। हम सम्भवतः इस पशु से दूर हट सकते हैं, किन्तु इसका स्वभाव नहीं बदल सकते। मुझे भय है कि शायद यह अपने अलग स्वास्थ्य का भी उपभोग करता है, और हम स्वस्थ होते हुए भी पवित्र नहीं हो सकते। अभी उस दिन मुझे एक जंगली सुअर का नीचे का जबड़ा पड़ा मिला था। इसके सफेद स्वस्थ दाँत और कान ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। इससे पता चलता है कि आध्यात्मिक स्वास्थ और स्फूर्ति से भिन्न एक जैविक स्वास्थ और स्फूर्ति भी होती है। इस पशु का स्वस्थ रहने का साधन संयम और पवित्रता न होकर और कुछ रहा होगा। मोंसियस का कथन है, "जिस बात में आदमी जंगली जानवर से भिन्न है, वह बड़ी ही सूक्ष्म चीज है, सामान्य जन इस चीज को जल्दी ही खो देते हैं, श्रेष्ठतर व्यक्ति इसे सावधानी से सहेजकर रखते हैं।" कौन जानता है, कि यदि हम पवित्रता प्राप्त कर लें तो जीवन का क्या रूप हो? यदि मुझे पता चले कि कोई व्यक्ति ऐसा है जो मुझे पवित्रता का पाठ दे सकता है, तो मैं उसकी खोज में तुरन्त ही निकल पड़ूँगा। "मन को परमात्मा में लीन करने के लिए, वेदों ने मनोविकारों और शरीर की वाह्य इंद्रियो पर नियंत्रण तथा सत्कर्म को अपरिहार्य माना है।" तो भी, तब तक, आत्मा शरीर के प्रत्येक अवयव, प्रत्येक क्रिया में व्याप्त हो सकती है और उन्हें नियन्त्रित कर सकती है और इस प्रकार, जो स्थूल ऐंद्रिकता है उसी को परिवर्तित करके पवित्रता

तथा धर्मनिष्ठा का रूप दे सकती है। वह प्रजनन-शक्ति, जो हमारी असावधानी की अवस्था में हमारा क्षय करती है और हमें अस्वच्छ बना देती है, वही शक्ति जब हम संयम से रहते हैं, हमें स्फूर्ति प्रदान करती है, हममें प्राण भर देती है। पवित्रता मानव की पुष्पावस्था होती है, और जिन गुणों को हम प्रतिभा, वर्चस्व, धार्मिकता प्रभृति नाम देते हैं वे इसके बाद लगने वाले विभिन्न फल होते हैं। पवित्रता की यह धारा खुली होती है तो आदमी प्रवाहित होकर तुरन्त परमात्मा तक पहुँच जाता है। बारी-बारी से, हमारी पवित्रता हमें प्रेरित करती है और अपवित्रता हमें बाँधती है। जिस व्यक्ति को यह निश्चय हो जाता है कि उसके भीतर का पशु दिनोंदिन मरता जा रहा है और दिव्य जीवन स्थापित होता जा रहा है, वही सुखी है। शायद कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो इस बात से लज्जित न हो कि उसमें निम्नतर और पाशविक वृत्तियों का समावेश है। मुझे भय है कि हम केवल 'फौन' और 'सेटर' के प्रकार के देवता या उपदेवता हैं, दिव्य और पशु के योग हैं, वासनाओं के जीव हैं, और मुझे तो भय है कि एक सीमा तक हमारा जीवन ही एक कलंक है।

"कितना सुखी है वह व्यक्ति जो अपने भीतर के पशुओं से सही काम लेता है, जिसने अपनी बुद्धि को वन-रहित कर दिया है! जो अपने घोड़े, बकरी, भेड़िए और प्रत्येक पशु से काम ले सकता है और उनके शासन में चलने वाला गधा नहीं है।

अन्यथा आदमी न केवल शूकरों का झुंड होता है, बल्कि वह उन शैतानों का पुंज भी होता है, जो इन शूकरों को उत्पात के लिए प्रेरित करके और भी दुर्दम बना देते हैं।"

सारी ऐंद्रिकता एक ही होती है, उसके रूप तरह-तरह के हो सकते हैं, सारी पवित्रता एक ही होती है। आदमी ऐंद्रिकता से खाए, या पिए या संभोग करे, एक ही बात है। ये सब एक ही भूख के रूप हैं, और यदि हम किसी व्यक्ति के बारे में जानना चाहें कि वह कितना जबरदस्त इंद्रिय-भोगी है, तो उसकी इन चीजों में से केवल एक को देखने से ही पता चल जायगा। अपवित्र तत्त्व, पवित्र तत्त्व के साथ नहीं रह सकता। बिल के एक मुँह पर आघात करते ही यह सरीसृप दूसरे मुँह से निकल पड़ेगा। यदि आप पवित्र रहना चाहते हैं तो संयम से रहना होगा। और यह 'पवित्रता' है क्या बला? आदमी को कैसे पता चले कि वह 'पवित्र' है? उसे पता नहीं चलेगा। हमने इस गुण के बारे में बहुत सुना है,

किन्तु हम नहीं जानते कि यह है क्या ? हम तो बड़े आराम से उसी किंवदन्ती को दुहराते चले जाते हैं जो हमने सुन रखी है। कर्म से बुद्धिमानी और पवित्रता आती है, आलस्य से अज्ञान और ऐंद्रिकता। विद्यार्थी में ऐंद्रिकता उसके मस्तिष्क का आलस्य होती है। अस्वच्छ व्यक्ति सदा ही आलसी होता है, जो चूल्हे के सहारे बैठा रहता है, जो सूर्योदय के बाद भी पड़ा रहता है, जो बिना थके ही विश्राम करता है। यदि आप अस्वच्छता और सब पापकर्मों से बचे रहना चाहते हैं तो ईमानदारी से काम कीजिए, भले ही वह अस्तबल साफ करने का काम हो। प्रकृति पर विजय प्राप्त करना कठिन है, किन्तु उस पर विजय प्राप्त करनी ही होगी। यदि आप असभ्य विधर्मी जातियों से अधिक पवित्र नहीं हैं, यदि आप उनसे अधिक आत्म-निरोध का पालन नहीं करते और अपेक्षाकृत अधिक धार्मिक नहीं हैं, तो आपके ईसाई होने से लाभ ही क्या है ? मैं ऐसी अनेक धर्म-पद्धतियों को जानता हूँ जिन्हें 'अधार्मिक' कहा जाता है, जिनके नियमों को पढ़कर पाठक का मन अपने प्रति लज्जा से भर जाता है और उसे नई दिशा में प्रयास करने की प्रेरणा मिलती है, भले ही वह केवल कर्मकाण्ड ही क्यों न हो।

ये बातें कहने में मुझे संकोच होता है, किन्तु इसका कारण यह विषय नहीं है (क्योंकि मेरे शब्द कितने अश्लील हैं, इसकी मैं चिन्ता नहीं करता), बल्कि इस संकोच का कारण यह है कि मैं इन बातों को अपनी अपवित्रता का पर्दाफाश किये बिना नहीं कह सकता। हम बिना लज्जाभाव के ऐंद्रिकता के एक रूप के बारे में बात कर लेते हैं और उसी के दूसरे रूप के बारे में मौन रहते हैं। हम इतने पतित हो चुके हैं कि मानव-प्रकृति की आवश्यक क्रियाओं के बारे में सरलता से बात नहीं कर पाते। पूर्वकाल में कुछ देशों में, प्रत्येक क्रिया के बारे में आदर-पूर्वक चर्चा की जाती थी और उसे नियम-बद्ध किया जाता था। हिन्दू नियामक के लिए कोई भी बात तुच्छ और उपेक्षणीय नहीं थी, भले ही आज की रुचि के हिसाब से वह कितनी ही कुत्सित ठहरे। वह तो कैसे खायें, पियें, सम्भोग करें, मल-मूत्र त्याग करें, सभी की शिक्षा देता है, जो तुच्छ है उसे महत्त्व प्रदान करता है, और झूठे ही इन चीजों को महत्त्वहीन बताकर इनसे बचता नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने आराध्य देव का एक मन्दिर बनाता है और यह मंदिर उसका अपना शरीर होता है, इसका निर्माण वह अपने ही ढंग से करता है। इसके स्थान पर पत्थर पर हथौड़ा बजाकर मन्दिर बनाने से काम नहीं चलता हम सभी चित्रकार हैं, सभी शिल्पी हैं, हमारा रक्त, मांस और अस्थियाँ ही

हमारी सामग्री हैं। प्रत्येक श्रेष्ठता तुरन्त व्यक्ति की आकृति निखारने लगती है, प्रत्येक नीचता और ऐन्द्रिकता उसे विकृत कर देती है।

सितम्बर के महीने में एक दिन जोन फार्मर, अपने द्वार पर बैठा था, वह अपना दिन-भर का काम समाप्त कर चुका था, किन्तु अभी भी उसके दिमाग में वही श्रम घूम रहा था। स्नान कर लेने के बाद वह अपने मानसिक मानव का पुनः सर्जन करने के लिए बैठा था। ठण्ड हो गई थी और उसके पड़ोसियों को तुषार की आशंका थी। उसकी विचार-शृंखला अधिक देर न चल पाई थी कि किसी की बाँसुरी की धुन उसे सुनाई पड़ी। यह धुन उसकी मनोदशा से मेल खा रही थी। फिर भी वह अपने काम की ही बात सोचता रहा, लेकिन बार-बार उसके मन में यह विचार आ रहा था कि हालाँकि वह अपने श्रम की बात सोच रहा है, अपनी इच्छा के विरुद्ध योजना बना रहा है फिर भी उसका इससे बहुत कम सम्बन्ध है। यह उसकी त्वचा की रूसी के ही समान है, जो निरन्तर छूटती रहती है। किन्तु बाँसुरी के स्वर तो किसी दूसरे ही क्षेत्र से, दूसरे ही वायुमण्डल से उसके कानों में आ रहे थे और उसके मन में सोती हुई प्रवृत्तियों को जगाकर कर्मशील बना रहे थे। उन्होंने धीमे से उसे उस सड़क, उस गाँव, उस राज्य से मुक्त कर दिया जिसमें वह रहता था। एक आवाज में उससे कहा—तुम्हारे लिए ऐश्वर्यमय जीवन सम्भव है, तब फिर तुम यहाँ टिके हुए यह तुच्छ नीरस जीवन क्यों बिताते चले जा रहे हो? ये ही सितारे अन्य क्षेत्रों के ऊपर भी झिलमिलाते हैं। किन्तु इस दशा से निकलकर उन क्षेत्रों में कैसे पहुँचा जाय? इसके लिए वह जो सोच सका, वह थी किसी नए संयम का पालन करने की बात, अपने मन को शरीर में उतारकर उसका पुनरुद्धार करने की बात और अपने प्रति उत्तरोत्तर आदर-भाव प्रदर्शित करने की बात।

●

१२. मेरे वन्य पड़ोसी

कभी-कभी मछली मारते समय मुझे एक संगी मिल जाता था जो नगर के दूसरे छोर से, वस्ती पार करके मेरे पास आता था। तव भोजन के लिए मछली का शिकार भी उतना ही सामाजिक व्यापार हो जाता था जितना कि उसको खाना।

संन्यासी—पता नहीं इस समय संसार क्या कर रहा है। पिछले तीन घंटों में टिड्डी तक की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी है। कबूतरों ने वसेरा ले लिया है, उनकी भी फड़फड़ाहट सुनाई नहीं पड़ती। अभी-अभी वन के बाहर से जो आवाज आई है, वह क्या किसी किसान के यहाँ नरसिंगा वज रहा था? ये लोग अव उवले हुए गोमांस तथा सेव का शरवत और मक्का की रोटी खाने के लिए जा रहे हैं। लोग इतनी हैरानी क्यों उठाते हैं? जो भोजन नही करता उसके लिए काम करना आवश्यक नहीं। मैं जानना चाहता हूँ कि फसल में उन्हें कितना कुछ मिला है। जहाँ आदमी पालतू कुत्तों के भौंकने के कारण विचार-मग्न न हो सके वहाँ जाकर कौन रहना चाहेगा? और घर-गृहस्थी का काम-धन्धा! ऐसे सुहावने दिन भी शैतान के घर-द्वार की सफाई का काम किसने वताया। इससे तो अच्छा है कि घर ही न वसाया जाय। वस, कोई खोखला-सा पेड़ और फिर सुवह की घण्टी और दावतें। केवल एक खुटवढ़इया की खुट-खुट। अरे, वहाँ वड़ी भीड़ होती है। वड़ी गर्मी होती है, मेरे लिए तो वे जीवन में इतने डूवे हुए हैं कि मैं उनके साथ नहीं रह सकता। झरने से मुझे जल मिल जाता है, अलमारी में रोटी रखी है।—ओ! मुझे पत्तियों की सरसराहट सुनाई पड़ रही है। शायद गाँव का कोई भुखमरा कुत्ता अपनी मूल प्रवृत्ति के वशीभूत होकर शिकार पर निकल पड़ा है। या कोई इक्कड़ सुअर है जिसके वारे में कहा जाता है कि वह वन में भटक गया है, जिसके चिह्न मुझे वरसात के वाद दिखायी पड़े थे? कोई वड़ी तेजी से आ रहा है, मेरे 'सूमक' और 'स्वीट व्रायर' काँप रहे हैं—"अरे कवि महोदय, आप हैं? कहिए, क्या हाल-चाल हैं?"

कवि—उन वादलों को देखिए, कैसे झुके हुए हैं। यही महानतम वस्तु आज मैंने देखी है। इसके मुकावले की चीज आपको न प्राचीन चित्रों में

मिलेगी और न विदेशों में, जब तक कि हम स्पेन के सागर-तट से आगे न चले जायँ। यह असली भूमध्य सागरी आसमान है। मुझे भोजन जुटाना है और आज मैंने कुछ खाया भी नहीं है, इसलिए मैंने सोचा है कि चलो मछली मारी जाय। वास्तव में यही काम कवियों के योग्य है। केवल यही धन्धा मैंने सीखा भी है। चलिए, चलें।

संन्यासी—मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरी रोटी भी समाप्तप्राय है। मैं आपके साथ बड़ी खुशी से चलने को तैयार हूँ, लेकिन अभी तो मैं एक गम्भीर चिन्तन का निष्कर्ष निकालने वाला हूँ। बस वह समाप्त होने वाला ही है। थोड़ी देर के लिए मुझे एकान्त में छोड़ दीजिए। लेकिन देर न हो जाय इसलिए आप इसी बीच मछलियों के लिए चारा तलाश कर लीजिए। यहाँ मछली के शिकार में चुग्गा लगाने के काम आने वाले कीड़े बहुत कम मिलते हैं, क्योंकि यहाँ जमीन में कभी खाद नहीं डाली गई। कीड़ों की यह जाति तो यहाँ समाप्तप्राय है। भूख बहुत जोर की न लगी हो, तो चारे के लिए कीड़े खोज निकालने में भी उतना ही ही आनन्द आता है जितना मछली मारने में, और आज काम आप अकेले ही कर लीजिए। मैं आपको सलाह दूंगा कि वह जो 'जोन्सवोर्ट' दिखाई दे रहा है, वहीं आप मूँगफली के पौधों के बीच फावड़े चलाइए। मेरे विचार से, यह गारण्टी मैं ले सकता हूँ कि तीन बार फावड़े से ढेले निकालने में आपको एक कीड़ा तो मिल ही जायगा। हाँ, आपको ध्यान से देखना पड़ेगा, मानो आप निराई कर रहे हों। और अगर आप और भी आगे जाना चाहें, तो वह भी बुरा नहीं रहेगा। मैंने देखा है यहाँ से ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों ये कीड़े अधिक संख्या में मिलते जाते हैं।

संन्यासी—(स्वगत)—लाओ देखूँ, मैं कहाँ था ? अच्छा, लगता है मैं इस मनोदशा में था, यह दुनिया इस कोण पर थी। तो मैं स्वर्ग चलूँ या मछली मारने जाऊँ ? यदि मैं इस चिन्तन को जल्दी ही समाप्त कर देता हूँ, तो क्या इतना मधुर अवसर फिर आयगा ? मैं वस्तुओं के मूल तत्त्व में मिल जाने के इतना निकट पहुँच गया था, जितना जीवन में शायद ही कभी पहुँचा होऊँ। मुझे भय है कि मेरे विचार वापस नहीं लौटेंगे। हो सके तो मैं सीटी बजाकर बुलाऊँ। जब उनका आगमन हो तब यह कहना उचित है कि हम इस बारे में सोचेंगे ? मेरे विचारों ने कोई चिह्न नहीं छोड़ा है और अब मुझे वह रास्ता नहीं मिल सकता। मैं किस बारे में चिन्तन कर रहा था ? बड़ा धुँधला दिन था। अच्छा, मैं

'कन्फ्यूशियस' के इन तीन वाक्यों को फिर दुहराता हूँ, शायद इससे लगभग वही स्थिति फिर आजायगी। पता नहीं यह मन की उदासी थी, या कोई प्रस्फुटित होता हुआ दिवा-स्वप्न। हाँ, याद आ गया। इस तरह का मौका तो एक से दूसरा नहीं आता।

कवि—क्या बात है, संन्यासी जी ? क्या मैं बहुत जल्दी वापिस लौट आया हूँ ? मुझे तेरह तो बड़े-बड़े पूरे कीड़े मिल गए हैं। इसके अलावा कितने ही छोटे-छोटे भी हैं, जिनसे छोटी मछलियों का काम चल जायगा, उनसे काँटा पूरा नहीं ढकेगा। लेकिन ये गाँव वाले बड़े कीड़े तो आवश्यकता से अधिक बड़े हैं। मछली इन्हें पूरा चट कर जाय और फिर भी काँटे में न फँसे।

संन्यासी—तो अब चलें। कौंकर्ड चलें क्या ? अगर वहाँ जल बहुत ऊँचा न हुआ तो अच्छा शिकार हाथ लग सकता है।

जिन वस्तुओं को हम आँखों से देखते हैं, ठीक उन्हीं से यह संसार क्यों बनता है ? आदमी ठीक इन्हीं जातियों के जानवरों को अपना पड़ोसी क्यों मान बैठा है ? मानो इस दरार में चूहे के सिवा कोई रह ही नहीं सकता। मैं सोचता हूँ कि शायद पंचतंत्रकार आदि ने जानवरों का सर्वोत्तम उपयोग किया है, क्योंकि एक प्रकार से, ये लद्दू जानवर हमारे विचारों का कुछ अंश ढोते जाते हैं।

मेरे घर में जो चूहे आते थे वे साधारण किस्म के चूहे नहीं थे जिनके बारे में बताया जाता है कि वे विदेश से लाए गए थे। बल्कि वे जंगली देशी चूहे थे, जो गाँव में नहीं पाए जाते। इनमें से एक चूहे को पकड़कर मैंने एक वरिष्ठ प्रकृतिज्ञ के पास भेज दिया और उन्हें वह बड़ा दिलचस्प लगा। जिन दिनों मैं अपना घर बना रहा था उन दिनों, (अभी मैंने फर्श बनाकर सफाई नहीं की थी) एक चूहा रोज दोपहर को मेरे पैरों के पास आकर रोटी के टुकड़े खाया करता था। शायद इससे पूर्व कभी उसने आदमी का दर्शन नहीं किया था। जल्दी ही वह भली भाँति परिचित हो गया और मेरे जूतों और कपड़ों पर चढ़ने लगा। यह गिलहरी की तरह चलता था, गिलहरी की तरह थोड़ा रुक-रुककर दीवालों पर चढ़ जाता था। अन्त में एक दिन जब मैंने बेंच पर कोहनी टिकाई, तो वह मेरे कपड़ों पर चढ़ आया और मेरी आस्तीन पर दौड़ लगाने लगा और जिस कागज में मेरा खाना लिपटा रखा था, उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। खाने को ढककर मैं उसके साथ ताक-झाँक का खेल खेलने लगा। फिर जब मैंने

पनीर का टुकड़ा उठाकर दिखाया, तो वह मेरे हाथ पर बैठकर उसे कुतरने लगा। इसके बाद उसने मक्खी की भाँति अपने पंजे साफ किए, मुँह पोंछा, और चलता बना।

जल्दी ही एक, 'फीबी' ने मेरे छप्पर में घोंसला बना लिया, और एक 'लाल' 'रोबिन' ने सुरक्षा के खयाल से सामने के चीड़ पर अपना घर बनाया। जून के महीने में तीतरी (जो बड़ा लचीला पक्षी होता है) अपने बच्चों को झुंड के साथ मुर्गी की तरह उन्हें आवाज देती हुई मेरी खिड़की के नीचे से निकला करती थी। हर तरह से वह अपने को इस वन की मुर्गी साबित करती थी। ज्यों ही कोई उनके निकट जाता है माँ की संकेत ध्वनि पर बच्चे इधर-उधर भाग जाते हैं, मानो कोई चक्रवात उन्हें उड़ा ले गया हो। वे सूखी पत्तियों और टहनियों के इतने सदृश्य लगते हैं कि अनेक बार यात्री का पैर उनके झुंड के बीच पड़ चुका है, और वृद्धा माँ की फर्राहट सुनाई पड़ी है, उसकी चिन्तित पुकार सुनाई पड़ी है, या अपने पंखों को घसीटती हुई निकली है जिससे उसका ध्यान इस ओर जा सके। कभी-कभी वह मादा इस प्रकार नाचती और चक्कर काटती है कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि यह कौन-सा जीव है। बच्चे चुपचाप बहुधा पत्तियों में सिर छिपाए औंधे बैठे रहते हैं, वे केवल अपनी माँ के दूर से आने वाले निर्देशों का ही पालन करते हैं। कोई पास पहुँच जाय तब भी भागते नहीं हैं। इसलिए वे आसानी से दिखाई भी नहीं देते। उनके ऊपर पैर पड़ जाने पर अथवा क्षण भर को उनकी ओर देखते रहने पर भी आपको पता न लगेगा कि यहाँ तीतर के बच्चे हैं। उनकी इस अवस्था में उन्हें मैंने उठाकर हथेली पर बिठाया है और देखा है कि अपनी प्रवृत्ति और अपनी माँ के निर्देश का पालन करने वाले ये जीव, बिना किसी भय के, बिना काँपे, बैठे रहते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति इतनी पूर्ण होती है कि एक बार मैंने जब उनको पुनः पत्तियों पर रखा और उनमें एक अपने बाजू के बल गिर गया, तो दस मिनट बाद भी वे सब उसी स्थिति में मिले। अधिकतर पक्षियों के बच्चों की भाँति वे बच्चे नहीं होते, बल्कि मुर्गी के चूजों से भी अधिक पूर्ण रूप से विकसित और आयु के देखे अधिक समझदार होते हैं। उनके खुले शांत नेत्रों का वयस्क, किन्तु भोलेपन का, भाव बड़ा स्मरणीय होता है। लगता है मानो सारी-की-सारी चतुराई उनमें झलक रही हो। उन्हें देखकर न केवल शैशव-काल की निर्मलता का ही भान होता है, बल्कि अनुभव में छनी

हुई बुद्धिमत्ता का भी। ऐसे नेत्रों का जन्म इस पक्षी के जन्म के साथ ही नहीं हुआ था—वह तो उस आसमान का समवयस्क है जो उसमें प्रतिबिम्बित होता है। इन जंगलों में इस प्रकार का कोई दूसरा मोती पैदा नहीं होता। यात्रीगण बहुधा ऐसे निर्मल कुए में नहीं झाँकते। अज्ञानी या लापरवाह शिकारी ऐसे समय में मादा को गोली से मार देता है, और इन भोले-भाले प्राणियों को, किसी पशु-पक्षी का शिकार बनने को छोड़ देता है, या फिर धीरे-धीरे वे उन मरती हुई पत्तियों में घुल जाते हैं जिनसे वे इतना मिलते-जुलते हैं। कहा जाता है कि मुर्गी द्वारा सेये जाने पर वे जन्म लेते ही चौंककर तुरन्त तितर-बितर होकर खो जाते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी माँ की आवाज नहीं सुनाई पड़ती जो उन्हें इकट्ठा कर सके। ये ही मेरे मुर्गे, मुर्गियाँ और चूजे थे।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि कितने जीव वन में गुप्त रूप से स्वछन्द और वन्य जीवन व्यतीत करते हैं और नगर के आस-पास से प्राप्त होने वाले भोजन पर निर्भर रहते हैं। शिकारियों के अलावा और किसी को इनका शक भी नही होता। ऊदबिलाव कितना छिपा रहता है। चार फीट का, छोटे-पूरे लड़के बराबर हो जाता है और शायद ही किसी को उसकी झलक मिलती हो। जहाँ मेरा घर बना हुआ है उसके पीछे वन में पहले मुझे 'रैकून' दिखाई देते थे और शायद रात को भी उनकी आवाज मैं सुन पाता था। साधारणतः पौधे रोपने के बाद दोपहर को घण्टे-दो-घण्टे के विराम में, मैं भोजन करता था, और एक नाले के स्रोत पर जाकर कुछ पढ़ाई करता था, जो मेरे खेत से आध मील पर 'ब्रिस्टर हिल' के नीचे से फूटता है। वहाँ का रास्ता चीड़ के वृक्षों से, घास से ढँके अनेक खण्डों में होकर था। आगे जाकर दलदल के चारों ओर अपेक्षाकृत घना जंगल पड़ता था। वहाँ एक 'श्वेत चीड़' के वृक्षों की छाया में कड़ी भूमि का एक टुकड़ा था जहाँ आराम से बैठा जा सकता था। मैंने स्रोत को थोड़ा-सा खोदकर निर्मल जल का एक छोटा-सा कुआ बना लिया था, जिसमें से बिना घंघोरे एक बाल्टी पानी निकाला जा सकता था। गर्मी के दिनों में जब सरोवर बहुत गरम हो जाता था तब मैं इस काम के लिए लगभग रोजाना जाता था। वहाँ मादा अपने 'वुड कौक' बच्चों को लेकर मिट्टी में से कीड़े चुनने के लिए आती थी। वह जमीन से केवल एक फुट की ऊँचाई पर उड़ती रहती और बच्चों का झुंड नीचे दौड़ता चलता था। मुझे वहाँ देखकर वह

अपने बच्चों छोड़कर मेरे चारों ओर निकट आते-आते चार-पाँच फीट पर चक्कर काटने लगती थी मानो उसके पैर और पंख टूट गए हों। यह सब वह मेरा ध्यान बाँटने के लिए करती, ताकि उसके बच्चे निकल जायँ। इसी बीच ये बच्चे उसके निर्देश के अनुसार एक कतार बनाकर धीरे-धीरे चहकते हुए चलते जाते थे अथवा जब-जब मुझे यह नहीं दिखाई देती थीं, तो केवल बच्चों की आवाज सुनाई पड़ती थी। वहीं 'टरटिल डव' स्रोत के ऊपर बैठे रहते थे या मेरे ऊपर 'चीड़' की एक कोमल डाल से दूसरी पर फड़फड़ाते चले जाते थे, या लाल गिलहरी, जो बड़ी जिज्ञासु और सुपरिचित थी, निकटतम शाखा पर उतर आती थी। यदि आप वन के किसी मनोरम स्थल पर काफी देर तक चुपचाप बैठे रहें तो वहाँ के सारे निवासी एक-एक करके दर्शन दे देंगे।

अपेक्षाकृत कम शान्तिभाव की घटनाएँ भी देखने में आती थीं। एक दिन जब मैं अपनी लकड़ियों के चट्टे के (वल्कि ठूँठों के चट्टे के) निकट गया तो मैंने देखा कि दो बड़े चींटे परस्पर भयानक युद्ध कर रहे हैं। इसमें एक लाल था और दूसरा जो उससे कहीं बड़ा लगभग एक इंच लम्बा, काला था। एक बार गुँथ जाने पर उन्होंने एक-दूसरे को छोड़ा नहीं, वल्कि लड़ते रहे, संघर्ष करते रहे, और बराबर छिपुटियों पर लुढकते रहे। और देखने पर मुझे आश्चर्य हुआ कि सारी-की-सारी छिपुटियाँ इस प्रकार के 'युद्ध-रत-योद्धाओं' से भरी पड़ी हैं। यह द्वन्द युद्ध नहीं, सामूहिक युद्ध था, चींटों की दो जातियों का युद्ध था। लाल चींटे काले चींटों से भिड़े हुए थे और बहुधा दो लाल चींटे एक काले से गुँथे हुए थे। मेरे अहाते की घाटियाँ और पहाड़ियाँ इनकी सेनाओं से भरी पड़ी थीं और भूमि लाल और काली दोनों जातियों के मृत और मृत-प्रायः चींटों से पट गई थीं। मैंने केवल यही युद्ध देखा है; यदि मैंने कभी ऐसी युद्ध-भूमि पर पैर रखा है, जहाँ युद्ध चल रहा हो, तो वह यही युद्ध-भूमि है। यह परस्पर विनाशकारी युद्ध था, एक ओर लाल गणतन्त्रवादी थे तो दूसरी ओर काले साम्राज्यवादी। प्रत्येक दशा में भीषण संघर्ष हो रहा था, जीवन-मरण की बाजी लगी हुई थी, फिर भी वहाँ कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती थी। मानव सिपाही इतनी दृढ़ता से कभी न लड़े होंगे। मैंने दो चींटों को देखा जो इन छिपुटियों की छोटी-सी घाटी में एक-दूसरे से बुरी तरह गुँथे हुए थे. और लगता था मानो वे तब तक लड़ते रहेंगे जब तक सूरज न डूब जाय या प्राण न निकल जायँ। छोटे लाल योद्धा ने अपने शत्रु का अगला भाग

जकड़ रखा था, और चारों ओर लुढकते समय भी निरन्तर उसके 'फीलर' (स्पर्श-ज्ञान के अंग) को जड़ से काटने में लगा हुआ था। अधिक शक्तिशाली काला चींटा उसको इधर-उधर पटक रहा था। और पास से देखने पर पता चला कि उसने लाल चींटे के अनेक अंग काट डाले हैं। वे बुलडॉगो से भी अधिक जमकर लड़ रहे थे। दो में से एक का भी पीठ दिखाने का इरादा नहीं था। स्पष्ट ही, उनके युद्ध का नारा था, 'विजय प्राप्त करो या कट मरो।' इसी बीच एक अकेला लाल चींटा पहाड़ी से उतरता दिखाई दिया। वह बड़ा उत्तेजित प्रतीत होता था। वह या तो अपने शत्रु को परमधाम पहुँचा चुका था, या उसने अभी तक इस युद्ध में भाग नहीं लिया था। शायद अभी उसने युद्ध न किया होगा, क्योंकि उसका कोई अंग टूटा नहीं था। उसकी माँ ने आज्ञा दी होगी कि बेटा या तो जीतकर लौटना या मरकर। अथवा शायद वह कोई 'ऐकिलीज'[1] रहा होगा, जो कहीं अकेला बैठकर क्रोध से उबलता रहा होगा और अब अपने 'पैट्रोक्लस'[2] का उद्धार करने के लिए या उसके प्रतिशोध के लिए आ पहुँचा था। दूर से उसने यह विषम युद्ध देखा, (क्योंकि काले चींटे आकार में लाल चींटों से लगभग दुगुने थे) और तेजी से इधर बढ़ आया और दाव लगाकर इन योद्धाओं से आध इंच की दूरी पर रुक गया। फिर मौका पाकर वह काले योद्धा पर टूट पड़ा, ताकि शत्रु अपने दोनों अंगों में से किसी एक को चुन ले। इस प्रकार अब ये तनों जीवन-मरण के इस युद्ध में एक-दूसरे से इस प्रकार चिपटे हुए थे कि लगता था किसी नये प्रकार के आकर्षण का आविष्कार हो गया हो जो सभी प्रकार के चिपकने वाले पदार्थों (गोंद, सीमेंट) से बाजी मार ले गया हो। इस समय यदि मुझे दिखाई देता कि दोनों दलों के अपने-अपने युद्ध-वाद्य हैं और उनको बजाने वाले किसी छिपुटी के ऊपर जमकर अपनी राष्ट्रीय धुनें निकालकर शिथिल योद्धाओं में जोश भर रहे हैं और मरणासन्न योद्धाओं को उल्लसित कर रहे हैं, तो मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। मैं स्वयं उत्तेजित हो गया था, मानो वे सब मानव-जाति के हों। जितना ही मैं इस बारे में सोचता हूँ, उतना ही कम भेद दिखाई पड़ता है। अमरीका के इतिहास में हो तो हो, कौंकर्ड के इतिहास में तो निश्चय ही किसी ऐसे युद्ध का वर्णन नहीं है जो शौर्य और राष्ट्रीयता और योद्धाओं की संख्या के मामले में इस युद्ध की समता कर सके। संख्या और संहार

१-२. एकिलीज और पैट्रोक्लस—'ईलियड' के पात्र।

के लिहाज से तो यह भूमि 'आस्टरलिट्ज'[1] अथवा 'ड्रेस्डन'[2] का युद्ध-क्षेत्र हो गई थी। कन्कौर्ड का युद्ध। दो मरे और एक घायल। यहाँ तो प्रत्येक चींटा एक 'वट्रिक' था जो गरज रहा था, 'गोली चलाओ, गोली' और हजारों डेविड और होस्मर की गति प्राप्त कर रहे थे। यहाँ एक भी किराये का टट्टू नहीं था। मुझे इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि ये लोग हमारे पूर्वजों की भाँति सिद्धान्त के लिए लड़ रहे थे, कि न चाय पर से तीन पैनी का टैक्स हटाने के लिए। इस युद्ध से सम्बन्धित प्राणियों के लिए तो इसके परिणाम उतने ही महत्त्वपूर्ण और स्मरणीय रहेंगे जितने कि कम-से-कम बंकरहिल[3] के युद्ध के।

जिन तीन चींटों का मैंने यहाँ विशेष वर्णन किया है, वे जिस टुकड़े पर लड़ रहे थे उसे मैं अपने घर उठा लाया और मैंने उसे खिड़की पर एक गिलास के नीचे रख दिया ताकि परिणाम का पता चल सके। प्रथम वर्णित लाल चींटे को अनुवीक्षण यन्त्र से देखने पर ज्ञात हुआ कि यद्यपि वह अपने शत्रु के अगले पैर के निकट बड़े जोरों से काट रहा था, उसका अपना 'फीलर' टूट चुका था, और छाती फट चुकी थी और उसके अन्दर के अवयव दिखाई दे रहे थे, जिन्हें चबाने का अवसर काले योद्धा के जबड़ों को मिल गया था। इस काले योद्धा की छाती अपेक्षाकृत कड़ी होने के कारण लाल चींटा उसे काट नहीं पा रहा था। घायल की आँखों की काली पुतलियाँ इतनी क्रूरता से चमक रही थीं, जितनी केवल युद्ध में सम्भव हो सकती है। गिलास के नीचे वे तीनों लगभग आध घण्टे तक जूझते रहे होंगे। जब मैंने दुबारा देखा तो काले योद्धा ने अपने शत्रुओं के सिर धड़ से अलग कर दिये थे, और ये सिर अभी जीवित थे और उसके दोनों ओर लटके हुए थे मानो उसके दोनों बाजुओं पर भयावह विजय-चिह्न लगे हों। अब भी ये दोनों शत्रु बड़े जोर से चिपटे हुए थे, और बड़ी शिथिलता से अब भी काला चींटा उनसे मुक्त होने का प्रयास कर रहा था। उसके 'फीलर' (अभिमर्श) कट चुके थे, एक पैर का केवल कुछ अंश ही बाकी रह गया था और न जाने कितने घाव उसके शरीर पर थे। अपने शत्रुओं के सिरों से मुक्ति पाने में उसे और आध घण्टा लगा। मैंने उसके ऊपर से गिलास हटा लिया और वह लँगड़ाता हुआ खिड़की के पार चला गया। पता

---

१. आस्टरलिट्ज—यहाँ नेपोलियन ने १८०५ में आस्ट्रिया पर विजय प्राप्त की थी।

२. ड्रेस्डन—ऐल्ब नदी पर एक नगर, जहाँ सन् १८१३ ई० में नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध हुआ था।

३. बंकरहिल—बोस्टन का एक उपनगर, अमेरिका के स्वातंत्र्य-संग्राम का प्रथम युद्धक्षेत्र।

नहीं वह इस घटना के वाद जीवित रहा या नहीं और उसके अन्तिम दिन अपाहिजों के किसी आश्रम में व्यतीत हुए या नहीं। लेकिन मैंने सोचा कि इसके वाद वह अविक काम का नहीं रहा होगा। मैं यह नहीं जान सका कि किस दल को विजय-श्री प्राप्त हुई, न इस युद्ध का कारण ही मैं जान सका, किन्तु वाकी दिन-भर मैंने अनुभव किया मानो अपने द्वार पर मैंने मानव-जाति का युद्ध, उसकी विभीषिका और संहार देखा हो, उसके परिणाम-स्वरूप मेरी भावनाएँ उत्तेजित हो गई हों, घायल हो गई हों।

किर्वी और स्पैंस ने लिखा है कि चीटों के युद्ध वहुत पुराने जमाने से प्रसिद्ध रहे हैं, और उनके युद्धों की तिथियों का भी उल्लेख हुआ है, यद्यपि, उनका कहना है कि आधुनिक काल में केवल ह्यूवर ने ही इन युद्धों को अपनी आँखों से देखा है। वे लिखते हैं, "ऐनिअस सिल्वियस, वड़े और छोटे चींटों के वीच लड़े गए एक भीषण युद्ध का विशद वर्णन करने के वाद कहता है कि यह युद्ध पोप यूजीनियस चतुर्थ के काल में, एक वड़े वकील निकोलस विस्टोरिएन्सिस के सामने लड़ा गया था, जिसने इस युद्ध का पूरा इतिहास वड़ा ईमानदारी से लिखा है। वड़े और छोटे चींटों के वीच लड़े गए एक ऐसे ही युद्ध का वर्णन ओसेअस मैग्नस ने किया है जिसमें विजय प्राप्त करने के वाद छोटे चींटों ने अपने मृत सैनिकों की लाशों को तो दफना दिया और शत्रु पक्ष के दैत्याकार सैनिकों की लाशों को चिड़ियों का भोजन वनने को पड़ा रहने दिया। यह घटना जालिम क्रिस्टियर्न के स्वीडेन से निकाले जाने के पूर्व घटित हुई थी।" यह युद्ध, जो मैंने देखा था, पोल्क के राष्ट्रपति-काल में, वेव्स्टर का 'भगोड़ेदास-सम्वन्धी विल' पास होने के पाँच वर्ष पूर्व हुआ था।

कभी-कभी मोटे-ताजे पालतू कुत्ते (जो केवल भंडार-गृह में छोटे-मोटे कछुए का ही पीछा कर सकते हैं) मालिकों के विना जाने ही, वन में आकर अपने भारी-भरकम पुट्ठों का प्रदर्शन करने लगते थे, और निष्फल ही लोमड़ियों की पुरानी माँदों और वुडचकों के विलों को सूँघते फिरते थे। वे किसी लेडी कुत्ते के पीछे चले आते होंगे, जो वन में आकर वड़ी फुर्ती से दौड़ लगाने लगते थे और यहाँ के वासियों में आतंक पैदा कर देने को अव भी काफी होता था। अपने पथ-प्रदर्शक से वहुत पीछे रह जाने पर ये कुत्ते वृक्ष पर वैठ-कर देखती हुई गिलहरी पर जोर से भौंकते थे और फिर अपने भारी वोझ से

झाड़ियों को झुकाते हुए सिर पर दौड़ने लगते थे, यह कल्पना करते हुए कि वे अब भी 'जर्बिला' (jerbilla) परिवार के किसी जीव का पीछा कर रहे हैं। एक बार एक बिल्ली को सरोवर के पथरीले तट पर घूमते हुए देखकर मुझे आश्चर्य हुआ; क्योंकि वह जानवर घर से इतनी दूर बहुत कम जाता है। यह आश्चर्य पारस्परिक था। सबसे अधिक घरेलू बिल्ली, जो जिन्दगी-भर बिछौने पर लेटती रही है, वह भी वन में आने पर अजनबी प्रतीत नहीं होती और अपने दबे-चुपके व्यवहार से अपने-आपको वनवासियों से भी अधिक वन्य सिद्ध करती है। एक बार 'बेरी' तोड़ते समय मुझे बच्चों के साथ एक जंगली बिल्ली दिखाई दी। मुझे देखकर वे सब बच्चे अपनी माँ के समान ही पीठ उठाकर भयानक रूप से गुर्राने लगे। मेरे वनवास से कुछ वर्ष पहले, लिंकन में मि० गिलियन बेकर के फार्म पर एक बिल्ली रहती थी, जिसे 'पंखों वाली बिल्ली' कहा जाता था। जून १८४२ में, जिस समय मैं उसे देखने पहुँचा, उस समय वह स्वभावानुसार शिकार पर गई हुई थी (मुझे निश्चय नहीं है कि वह नर थी या मादा, इसलिए अधिक प्रचलित लिंग का प्रयोग कर रहा हूँ)। उसकी स्वामिनी ने मुझे बताया कि लगभग एक साल पहले, अप्रैल के महीने में वह पड़ोस में आई थी, और फिर इस घर में लाई गई। उसने बताया कि यह बिल्ली गहरे भूरे रंग की है, उसकी गर्दन पर एक सफेद धब्बा है, पैर भी सफेद हैं, और उसकी पूँछ लोमड़ी की तरह झबरीली है, और जाड़ों में उसके बाल घने होकर दोनों ओर लटकने लगते हैं और इससे करीब दस-बारह इंच लम्बी, ढाई इंच चौड़ी पट्टियाँ दोनों ओर बन जाती हैं, और उसकी ठुड्डी के नीचे एक गुलूबन्द-सा बन जाता है। वसन्त ऋतु आते ही ये बाल झड़ जाते थे। उन लोगों ने उसके 'पंखों' का एक जोड़ा भेंट किया जो अब तक मेरे पास सुरक्षित है। उसके ऊपर झिल्ली नहीं है। कुछ लोग सोचते थे कि वह बिल्ली अंशत: 'उड़ने वाली गिलहरी' या और कोई जानवर रही होगी। यह असम्भव भी नहीं है, क्योंकि प्रकृतिज्ञों का कथन है कि 'मार्टेन' (रोयेंदार जानवर) और बिल्ली के संयोग से वर्णसंकर पैदा किये गए हैं। यदि मैं कभी बिल्ली पालता तो यही मेरे लिए सही किस्म की बिल्ली होती। क़ारण कि कवि के घोड़े के साथ-साथ कवि की बिल्ली के भी पंख क्यों न हों?

पतझड़ के मौसम में सदा की भाँति 'लून' (निमज्जक) पक्षी रोआँ छोड़ने और सरोवर में स्नान करने के लिए आया। वह मेरे जागने से पूर्व ही सारे

वन को अपनी हँसी से गुँजा देता था। उसके आने की खबर सुनते ही पक्षियों का शिकार करने के शौकीन सतर्क हो जाते हैं और बन्दूक, गोली और दूरवीन लेकर दो-दो तीन-तीन की टोली में पैदल या गाड़ियों पर निकल पड़ते हैं। वे पतझड़ की पत्तियों की भाँति सरसराते हुए वन में चले जाते हैं, एक 'लून' के पीछे कम-से-कम दस आदमियों के हिसाब से। कुछ लोग इस तट पर अड्डा जमा लेते हैं और कुछ इस तट पर, क्योंकि यह बेचारा पक्षी सर्वव्यापी तो नहीं हो सकता, यदि वह यहाँ गोता लगाता है तो कहीं-न-कहीं उछरेगा जरूर। किन्तु तभी अक्तूवर की कृपावान वायु चलने लगती है, पत्ते सरसराने लगते हैं, पानी की सतह लहराने लगती है, और न कोई लून दिखाई देता है और न उसकी आवाज ही सुनाई पड़ती है, भले ही उसके शत्रु सरोवर को अपने दूरवीनों से छानते रहें, वन को अपनी गोलियों से गूँजाते रहें। सहृदयता से लहरें उठती हैं और क्रोध से टकराती हैं, वे सव जल-पक्षियों का पक्ष लेती हैं और हमारे शिकारी वापिस जाकर फिर अपने नगर, दूकान और धन्धे में व्यस्त हो जाते हैं। फिर भी वे वहुधा सफल हो ही जाते थे। जव मैं प्रातःकाल वाल्टी में जल लेने के लिए जाता था तो अक्सर यह भव्य पक्षी मेरी खाड़ी से थोड़ी दूर तैरता दिखाई देता था। यदि कभी मैं नाव द्वारा उसके पास पहुँचने का प्रयास करता तो वह गोता मारकर एकदम गायव हो जाता और फिर कभी-कभी तो शाम तक उसका पता न चलता था। लेकिन पानी की सतह पर वह मेरा मुकावला नहीं कर पाता था। साधारणतः मेह वरसने पर वह चल देता था।

एक दिन मैं, अक्तूवर के प्रशान्त अपराह्न में, उत्तरी किनारे के पास नाव खे रहा था। ऐसे ही समय यह पक्षी झीलों पर उतरता है। इधर-उधर देखता तो एक भी लून मुझे दिखाई न पड़ता था। अचानक, सरोवर के वीच सामने की ओर मुझसे कुछ ही दूर प्रकट होकर वह खूव खुलकर हँसा। मैंने उस ओर डाँड चलाए तो वह गोता लगा गया। लेकिन जव उसने सिर निकाला तो मैं अधिक समीप पहुँच गया था। उसने फिर गोता लगाया। इस वार उसकी दिशा का मेरा अनुमान गलत हो गया और जव वह ऊपर आया तो मुझसे दो-ढाई सौ गज दूर जा चुका था, क्योंकि विपरीत दिशा में जाकर मैंने यह अन्तराल वढ़ा दिया था। सतह पर आकर वह वड़ी देर तक जोर से हँसता रहा, यह हँसी पहले से अधिक सकारण थी। वह इतनी कुशलता से चकमा दे जाता था कि मैं उससे तीस-पैंतीस गज से अधिक निकट नहीं पहुँच पाता था। प्रत्येक

बार जब वह सतह पर आता तो इधर-उधर सिर घुमाकर शान्त भाव से जल-थल का 'निरीक्षण' करता और स्पष्ट ही ऐसा रास्ता पकड़ता जहाँ जल का सबसे अधिक विस्तार हो और नाव से अधिकतम दूरी हो। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि वह कितनी जल्दी निश्चय कर लेता है और कितनी फुर्ती से इस निश्चय को कार्य रूप में परिणत कर डालता है। उसके पीछे-पीछे मैं सरोवर के सबसे चौड़े भाग में पहुँच गया और फिर वहाँ से उसे हटाया नहीं जा सका। जब वह कोई तरकीब निकालता तो मैं उसका विचार पढ़ लेने की चेष्टा करता था। पानी की चिकनी सतह पर एक आदमी और एक लून के बीच चल रहा वह खेल बड़ा मजेदार था। यकायक ही विपक्षी की गोट बिसात के नीचे गायब हो जाती है और तब समस्या यह होती है कि अपनी गोट कहाँ रखें जिससे उसके ऊपर आने पर उसके निकटतम पहुँच सकें। कभी वह मेरी नाव के नीचे से निकलकर अप्रत्याशित रूप से मेरे पीछे जा निकलता था। वह इतना दीर्घगामी था, इतना अथक था, कि निकलने के बाद वह तुरन्त ही फिर गोता मार जाता था। और फिर किसी की भी बुद्धि यह अनुमान नहीं लगा सकती थी कि इस गहरे सरोवर में, सतह के नीचे, वह मछली की भाँति कहाँ चला जा रहा होगा, क्योंकि सरोवर के सबसे गहरे भागों में पहुँचने की क्षमता और समय, दोनों का ही उसके पास अभाव नहीं होता था। कहा जाता है कि न्यूयार्क की झीलों में 'ट्राउट' मछली के लिए फेंके गए काँटों में लून पक्षी अस्सी फीट की गहराई तक फँसे पाए गए हैं। और वालडेन सरोवर तो इससे भी गहरा है। दूसरे लोक से आने वाले इस विचित्र प्राणी को अपने बीच से गुजरता देखकर मछलियों को कितना आश्चर्य होता होगा। फिर भी प्रतीत होता था कि वह जल की सतह के नीचे के मार्ग से उतनी ही अच्छी तरह परिचित है जितनी अच्छी तरह सतह के ऊपर के मार्ग से; और वहाँ वह और भी अधिक तेजी से तैरता था। एक-दो बार जब वह ऊपर आने को हुआ तो मुझे सतह पर लहरें दिखाई पड़ीं, उसने देखने के लिए थोड़ा सा सिर निकाला और तुरन्त गोता लगा लिया। मैंने देखा यह कि चाहे मैं उसके उछरने के स्थान का अन्दाजा लगाऊँ, या डाँड रोककर उसके प्रकट होने की प्रतीक्षा करूँ, दोनों एक समान हैं, क्योंकि बार-बार यही होता था कि मैं एक ओर दृष्टि लगाए देखता और अचानक ही अपने पीछे उसका अपार्थिव हास्य सुनकर चौंक उठता। किन्तु इतनी चालाकी दिखाने के बाद

वह प्रत्येक वार ऊपर आने के साथ ही हँसकर अपना पता क्यों वता देता था? क्या उसकी सफेद छाती ही उसे प्रकट कर देने के लिए पर्याप्त नहीं थी? मैं सोचता था कि सचमुच ही यह लून पागल हो गया है। जब वह ऊपर आता था तो पानी की छलछलाहट सुनाई पड़ जाती थी और मैं जान लेता था कि वह कहाँ है। लेकिन एक घण्टे के वाद भी वह एकदम तरोताजा लगता था और वह प्रथम वार के समान मजे से, और उससे भी अधिक दूर तक तैर जाता था। विना छाती पर जोर दिए, नीचे अपने पंजे चलाकर, वह सतह पर इतनी आसानी से तैरता था कि देखकर आश्चर्य होता था। यह प्रेत की-सी हँसी ही उसकी साधारण आवाज थी, फिर भी यह कुछ-कुछ जल पक्षी से मिलती-जुलती थी। किन्तु कभी-कभी मुझे सफलतापूर्वक चकमा देने के वाद जव वह दूर जा निकलता था, तो वह एक लम्वी अपार्थिव आवाज करता था जो शायद पक्षी से अधिक भेड़िये की आवाज से मिलती-जुलती थी, ठीक वैसी ही आवाज जैसी कोई जानवर अपनी थूथन जमीन पर गड़ाकर करता है। यह थी उसकी आवाज; शायद यह यहाँ की सवसे जंगली आवाज है जिससे सारा-का-सारा वन-प्रान्त गूँज उठता है। मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि संभवत: वह अपनी शक्ति के विश्वास से मेरे निष्फल प्रयासों पर व्यंग्यपूर्वक हँसता है। यद्यपि अव आकाश आच्छादित हो गया था, फिर भी सरोवर इतना शान्त था कि जव वह ऊपर निकलता था तो मैं उसे विना आवाज के भी दूर तक देख लेता था। उसका 'श्वेत' वक्ष, वायुमण्डल की शान्ति, सतह का चिकनापन, सभी वातें उसके प्रतिकूल थीं। अन्त में लगभग ढाई सौ गज निकट आने के वाद उसने एक लम्वी-सी आवाज लगाई, मानो लूनो के देवता को सहायता के लिए पुकार रहा हो। तुरन्त ही पूर्ण वेग से आँधी उठी, जल की सतह पर उथल-पुथल होने लगी और सारा वायुमण्डल धुँधले मेह से भर गया, और मुझे प्रतीत हुआ कि इस लून की याचना स्वीकार हो गई है और उसका देवता मुझसे अप्रसन्न हो गया है। इसलिए उसे इस अशान्त जल पर दूर विलीन होते छोड़कर मैं चल दिया।

पतझड़ के दिनों में, घण्टों तक मैं उन वत्तखों को देखता रहता था, जो शिकारियों से दूर, वड़ी चतुराई से घूमकर, दिशा वदलकर सरोवर के मध्यभाग में अड्डा जमाए रहती थीं। जव वे ऊपर उड़ने को वाध्य हो जातीं तो कभी-कभी इस सरोवर के ऊपर इतनी ऊँचाई पर चक्कर काटती थीं कि वे आसानी

से दूसरे सरोवरों और नदियों को देख सकें। उस समय वे आकाश में धूलि-कण के समान प्रतीत होती थीं। जब मैं सोच लेता कि अब तो वे कहीं और चली गई होंगी, तभी वे लगभग चौथाई मील तिरछी उड़कर दूर के किसी सुरक्षित स्थान पर उतर पड़तीं। सुरक्षा के अलावा वालडेन के मध्य भाग में तैरने से उन्हें क्या उपलब्ध होता था, यह मुझे ज्ञात नहीं; शायद उन्हें भी इसके जल से उसी कारण से प्यार हो, जिस कारण से मुझे है।

१३. गृह-प्रवेश

अक्तूबर के महीने में मैं नदी के किनारे के मैदानों में अंगूर खाने के लिए निकल पड़ता था और उनके गुच्छों से अपने को लाद लेता था। सौन्दर्य और सुगन्ध के लिहाज़ से वे जितने मूल्यवान् होते थे उतने भोजन के लिहाज़ से नहीं। वहाँ घास में लाल-लाल मोतियों-जैसे 'क्रेनेबेरी' के फल लटकते दिखाई देते थे। इनकी सुन्दरता की मैं मन-ही-मन प्रशंसा करता था, लेकिन उन्हें इकट्ठा नहीं करता था। इन्हें किसान अपनी भौंड़ी हेंगी से समेटकर इन्हें केवल 'बुशल' और डालर में तोलता है और मैदानों की इस लूट के माल को बोस्टन और न्यूयार्क के नगरों में बेच आता है। वहाँ प्रकृति प्रेमियों की स्वाद-वृत्ति को तृप्त करने के लिए इनका 'मुरब्बा' बनाया जाता है। कसाई भी भैंसों की जीभ निकाल लेते हैं। इस प्रकार बारबेरी के फलों से भी केवल मेरे नेत्रों को तृप्ति मिलती थी। लेकिन मैंने कुछ जंगली सेब अपने भंडार में रख लिए थे जो मालिकों और यात्रियों की निगाह से बच गए थे। पकने पर मैंने आधा बुशल चेस्टनट जाड़ों में खाने के लिए रख लिए। उस जमाने में लिंकन के चेस्टनट के असीम वन में, इस मौसम में घूमने में बड़ा आनन्द आता था (अब ये वृक्ष रेल की पटरियों के नीचे चिर निद्रा में सोए हुए हैं, उनके 'स्लीपर' बन गए हैं) कंधे पर थैला लटकाए, छिलका फोड़ने के लिए हाथ में एक डण्डा लिये (इसके लिए तुषार की प्रतीक्षा नहीं करता था) और पत्तियों की सरसराहट तथा लाल गिलहरी एवं नीलकंठ की जोरदार झिड़कियों के बीच में घूमता था, उनके अधखाये चेस्टनटों को मैं कभी-कभी चुरा लेता था, क्योंकि उनके चुने हुए चेस्टनटों में बढ़िया गिरी अवश्य होती है। कभी-कभी मैं पेड़ों पर चढ़-कर उन्हें हिला देता था। कुछ पेड़ मेरे घर के पिछवाड़े थे और एक पेड़ जो मेरे घर पर छा गया था, फूलने पर एक ऐसा गुलदस्ता-सा बन जाता था जिससे सारा वन महक उठता था। किन्तु इसके अधिकतर फल गिलहरी और नीलकंठों के हिस्से में ही आते थे। नीलकंठों का झुंड तड़के ही आकर गिरने से पहले ही चेस्टनट खा लेता था। ये वृक्ष मैंने इन्हींको भेंट कर दिए थे और स्वयं अपेक्षाकृत दूर, चेस्टनट के समूचे जंगल में चला जाता था। ये चेस्टनट

रोटी का काम अच्छी तरह चला देते थे। इसके अतिरिक्त और भी चीजें थीं। एक दिन मैं केंचुए तलाश कर रहा था कि मुझे जड़ों में लगी हुई मूँगफली दिखाई दी। यह आदिवासियों का आलू है, जिसे बचपन में मैंने शायद कभी खोदकर नहीं खाया था, न इसकी कल्पना ही की थी। मैंने अनेक बार इसका लाल फूल तो देखा किन्तु यह नहीं जानता था कि यह मूँगफली ही है। खेती ने इसका लगभग अन्त ही कर दिया है। इसमें पाला मारे आलू-जैसा स्वाद होता है और मैंने देखा है कि भूनने की अपेक्षा यह उबालकर खाने में अधिक स्वादिष्ट लगती है। इस कंद को देखकर प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने यह योजना बनाई हो कि भविष्य के किसी युग में वह अपनी संतति का यहीं भरण-पोषण करेगी। हट्टे-कट्टे, तैयार पशुओं और लहलहाती फसलों के युग में यह बेचारा कंद, जो एक ज़माने में रेड-इंडियनों का मुख्य भोजन था, एकदम भुला दिया गया है। अब इसे केवल इसकी फूलती हुई बेलों से ही जाना जा सकता है। यदि यहाँ पुनः एक बार वन्य प्रकृति का राज्य स्थापित हो जाय तो कोमल और अभिजात अंग्रेज़ी अनाज, हज़ारों शत्रुओं का सामना होने पर शायद लुप्त हो जायँगे और आदमियों की देख-भाल के बिना मक्का के अन्तिम दाने तक को उठाकर कौए रेड-इंडियनों की दक्षिण-पश्चिम में स्थित देवभूमि को ले जायँगे, जहाँ से इसका आना बताया जाता है। किन्तु यह मूँगफली जो समाप्तप्राय है, तुषार और जंगलीपन के बीच भी, पुनः एक बार जीवित हो जायगी, अपने को इसी भूमि का प्रमाणित करेगी और पुनः शिकारी जातियों के भोजन के रूप में अपना प्राचीन गौरव तथा सम्मान प्राप्त कर लेगी। किसी 'सेरीज़'[1] या 'मिनर्वा'[2] ने आविष्कार करके इसे प्रदान किया होगा। और जब यहाँ काव्य का शासन स्थापित होगा तब इसकी पत्तियों और फलियों के गुच्छों को हमारी कला में स्थान मिलेगा।

पहली सितम्बर के आते-आते, सरोवर के पार, मुझे दो-तीन मेपिल वृक्ष लाल होते दिखाई दिए, जल के किनारे उस अन्तरीप पर जहाँ 'ऐस्प' (Asp) के तीन वृक्षों के तने इधर-उधर फैले हुए थे। वाह! उनके रंग अनेक कथाएँ कहते थे। और धीरे-धीरे, प्रति सप्ताह, प्रत्येक वृक्ष और भी निखरता गया और मानो सरोवर के दर्पण में अपना रूप देखकर स्वयं मुग्ध होने लगा।

---

१. सेरीज—अन्न की देवी (रोमन)

२. मिनर्वा—सदबुद्धि की देवी (रोमन)

इस चित्र-कला-प्रदर्शनी का संचालक रोज़ सुबह पुराने चित्र उतारकर, उनके स्थान पर और भी अधिक रंगीन या मनोहर चित्र टाँग देता था।

अक्तूबर में हज़ारों की संख्या में वर्रें (ततैया) जाड़े से बचने के लिए मेरे घर में आकर खिड़की और दीवारों पर बस गईं। कभी-कभी बाहर से आने वालों को वे रोक भी देती थीं। प्रत्येक दिन, प्रातःकाल, जब वे ठिठुरी होतीं तो कुछ को मैं बुहारकर बाहर कर देता था, किन्तु उनसे छुटकारा पाने का मैंने अधिक प्रयास नहीं किया। बल्कि मैं तो एक प्रकार से गौरव का अनुभव करता था कि उन्होंने मेरे घर में वांछित शरण पाई है। इस सहवास में वर्रों ने कभी मुझे अधिक तंग नहीं किया। जाड़े और अकथनीय ठंड से बचने के लिए धीरे-धीरे वे पता नहीं किन दरारों में गायब हो गईं।

नवम्बर में, शीतावास के पूर्व, इन वर्रों की ही भाँति मैं वालडेन के उत्तरी-पूर्वी तट पर जाकर धूप में बैठता था। धूप मिल सके, तो उससे गर्मी प्राप्त करना कृत्रिम अग्नि से कहीं अधिक सुखद और स्वास्थ्यप्रद होता है। इस प्रकार मैं उन अंगारों से तापता था जिन्हें ग्रीष्म गये हुए शिकारी की भाँति पीछे छोड़ गई थी।

चिमनी बनाते समय मैंने राजगीरी का अध्ययन किया। मेरी ईंटें पुरानी थीं, इसलिए उन्हें कन्नी (कर्णी) से साफ करना आवश्यक था। इस प्रकार कन्नियों और ईंटों के बारे में मेरा ज्ञान सामान्य से अधिक हो गया। उन पर लगा हुआ चूना पचास वर्ष से भी अधिक पुराना था और कहा जाता था कि वह और भी कड़ा होता जा रहा है। किन्तु यह भी उन कहावतों में से है जिन्हें लोग कहते जाना पसन्द करते हैं, भले ही उनमें सत्य का अंश हो या न हो। इस प्रकार की कहावतें स्वयं समय व्यतीत होने के साथ अधिक कड़ी होती चली जातीं हैं, अपनी ओर ज़ोर से चिपटती चली जातीं हैं। बार-बार कन्नी चलानी पड़ती है, तब कहीं पुराने पाखंडियों को उनसे मुक्ति मिलती है। मैसोपोटामिया के कितने ही ग्राम बहुत अच्छे प्रकार की पुरानी ईंटों से बने हैं, जिन्हें बेबीलोन के खंडहरों से लाया गया था, और उन पर लगा हुआ सीमेंट और भी पुराना, शायद और भी सख्त है। जो भी हो मैं तो उस लोहे की मज़बूती देखकर दंग रह गया जो इतने प्रहारों के बाद भी नहीं टूटता था। मेरी ईंटें पहले भी एक चिमनी में लगी रही थीं, यद्यपि उन पर मुझे कहीं भी

'नेबूशेदनेज़ार'[1] के नाम की छाप नहीं दिखाई दी। श्रम बचाने के लिए जितनी ईंटें मिल सकीं, मैं उठा लाया था। इन ईंटों के बीच की संधें मैंने सरोवर तट के पत्थरों से भर दीं और वहीं से सफेद रेत लाकर मैंने चूना तैयार कर लिया। घर का मर्म-स्थल होने के कारण मैं इस अंगीठी के निकट ही सबसे अधिक रहता था। सचमुच मैं इतना संलग्न होकर कमा रहा था कि प्रातः-काल मैं काम आरम्भ करता था और एक रद्दा चल जाने के बाद रात को मैं उसीका तकिया लगाकर सो जाता था फिर भी जहाँ तक मुझे याद है, इसके कारण मेरी गर्दन रही नहीं, मेरी गर्दन तो बहुत पहले से ही सख्त है। उन्हीं दिनों एक कवि महोदय पन्द्रह दिन तक मेरे साथ रहे थे और जगह की कमी के कारण भी मुझे उस पर सोना पड़ा था। वे अपना एक चाकू लाए थे, यद्यपि मेरे पास दो थे और उन्हें हम लोग जमीन में गाड़कर साफ किया करते थे। वे भोजन तैयार करने में मेरी सहायता करते थे। अपनी इस ठोस और चौकोर चिमनी को क्रम से ऊपर चलता देखकर मुझे बड़ा सुख होता था और मैं सोचता था कि जितने धीरे-धीरे यह चिमनी बनेगी उतने ही अधिक दिन यह अवस्थित रहेगी। एक हद तक चिमनी घर की इमारत से बिलकुल स्वतन्त्र होती है, और घर पार करके आकाश की ओर चली जाती है। घर जल जाने के बाद भी कभी-कभी यह खड़ी ही रहती है। इसी स्वतन्त्र सत्ता और महत्व स्पष्ट हैं। यह ग्रीष्म के अन्त की बात थी। अब नवम्बर का महीना आ गया था।

उत्तरी वायु के कारण सरोवर का जल ठण्डा होने लगा था। किन्तु वह इतना गहरा है कि उसे पूरी तरह ठण्डा होने में काफी समय लग गया। घर पर पलस्तर करने से पहले ही मैं शाम को चिमनी में आग जलाने लगा था, और तख़्तों के बीच अनेक संधें होने के कारण चिमनी में से धुआँ और भी अच्छी तरह बाहर निकल जाता था। तो भी इस ठण्डे हवादार घर में, बादामी रंग के गाँठ गँठीले तख्तों के घेरे में, छाल लगी हुई कड़ियों और शहतीरों के बीच मेरी कुछ बड़ी आनन्दमयी रातें गुजरीं थीं। पलस्तर हो जाने के बाद यह घर उतना मनोरम नहीं रहा था, यद्यपि मुझे कहना पड़ता है कि यह पहले से अधिक आरामदेह हो गया था। जिस घर में आदमी रहे वह काफी ऊँचा हो जिससे उसके सिर के ऊपर एक धुंधलापन पैदा हो जाय, जहाँ कड़ियों और

१. नेबूशेदनेजार—बेबीलोन का शासक (छठी शताब्दी ई० पू०), उसने बेबीलोन नगर की दीवारों का निर्माण कराया था।

शहतीरों पर लहराती हुई छाया शाम को खेलती रहे। इस छाया के रूपों से कल्पना को भीति-चित्रों या कीमती से कीमती फर्नीचर की अपेक्षा अधिक सुख मिलता है। मैं कहता हूँ कि अब, जब मैंने इस घर का प्रयोग ऊष्मा और बचाव के लिए किया, तभी मैंने इस घर में प्रथम वास करना प्रारम्भ किया। मेरे पास दो पुराने ठिकाने थे, जिन पर मैं अंगीठी की लकड़ी टिकाता था। इस स्वनिर्मित चिमनी पर कालौंच जमते देखने में मुझे अच्छा लगता था और मैं आग को साधारण से अधिक संतोष तथा अधिकार से कुरेदता था। मेरा घर छोटा-सा था और उसमें मुश्किल से ही प्रतिध्वनि समा पाती थी। किन्तु पड़ोसियों से दूर होने और एक ही व्यक्ति का वासस्थान होने के कारण वह अपेक्षाकृत बड़ा प्रतीत होता था। घर के सारे आकर्षण इस एक कोठरी में केन्द्रित थे, यह रसोईघर, कमरा, बैठक, भण्डार-गृह सभी कुछ था, साथ ही जो आनन्द किसी घर में रहने पर माता-पिता और बच्चों को, स्वामी और सेवकों को मिलता है, वह सभी मुझे इसमें प्राप्त हो जाता था। कैटो का कथन है—"परिवार के स्वामी को चाहिए कि अपने गाँव के घर के तहखाने में तेल और शराब के कई पीपे रक्खे जिससे कठिन समय का स्वागत करने में मजा आवे। इससे उसे लाभ होगा, और यश की भी वृद्धि होगी।" मेरे तहखाने में एक टोकरी आलू, लगभग आधा गैलन मटर जिसमें भींगुर हो गए थे, अलमारी में थोड़ा चावल, एक घड़ा राब और दो-दो गैलन राई और मक्का, यह सामग्री थी।

कभी-कभी मैं एक बहुत बड़े और अधिक जनसंख्या वाले घर की कल्पना करता हूँ, जो किसी स्वर्ण युग में खड़ा हो, बड़ी मजबूत सामग्री का बना हो, जिसमें कोई सजावट दिखावट न हो, जिसमें एक ही बहुत बड़ा कमरा हो, एक ठोस आदिम हॉल, जिसमें न सीलिंग हो न पलस्तर, केवल शहतीरों और कड़ियों पर टिका हुआ, एक निम्नतर आकाश के समान जो मेह और हिम से बचाव के लिए उपयोगी हो वहाँ जब आप किसी प्राचीन वंश के 'शनिदेव' का पूजन कर चुकें तो अपनी पीठिका पर राजा और रानी आपका प्रणाम स्वीकार करने के लिए खड़े मिलें। यह घर एक बड़ी भारी गुफा-जैसा हो जिसमें छत देखने के लिए मशाल जलाकर बाँस में बाँधकर ऊँची करनी पड़े। जहाँ कुछ लोग अंगीठी पर रह सकें, कुछ खिड़की की दरारों में, कुछ चौखट पर, कुछ हॉल के एक सिरे पर और कुछ दूसरे सिरे पर, और कुछ यदि चाहें तो मकड़ों

के साथ शहतीरों पर रह सकें। यह एक ऐसा घर हो जिसमें द्वार खोलते ही आप अन्दर आ जायँ और यहीं 'गृह-प्रवेश' की औपचारिकता समाप्त हो जाती हो, यहाँ थका हुआ यात्री बिना और अधिक चले स्नान कर सकेगा और भोजन कर सकेगा। यह एक ऐसा घर होगा जहाँ आप तूफ़ानी रात में शरण लेना पसन्द करें, जहाँ घर की सभी आवश्यक वस्तुएँ तो हों किन्तु 'गृहस्थी' न हो; जहाँ घर का सभी सामान एक निगाह में ही दीख जाय, और आदमी के काम की सभी वस्तुएँ खूँटियों पर टँगी दिखाई दें, जो एक साथ ही रसोई-घर, खाने का कमरा, भंडारगृह, बैठक़, तहखाना, अटारी सभी कुछ हो, जहाँ पीपा और धसैनी के समान जरूरत की सभी चीजें हों, और आलमारी के समान आरामदेह चीजें भी हों, जहाँ हंड़िया की खुदबुद सुनाई दे, और आप अग्निदेव को नमस्कार कर सकें जो आपका भोजन पकाते हैं और चूल्हे को, जो आपकी रोटी सेंकता है। आवश्यक बर्तन-भाँडे ही यहाँ का फर्नीचर हों, यहाँ आग न बुझाई जाय, धुलाई के लिए कपड़े न जायँ, न गृह-स्वामिनी भुँझलाय, जहाँ कभी-कभी आपसे प्रार्थना की जाय कि आप थोड़ा हटकर खड़े हो जायँ जिससे बावर्ची दरवाजा खोलकर तहखाने में घुस सके और जमीन पर बिना पैर मारे ही आपको पता चल जाय कि नीचे की जमीन पोली है या ठोस। इस घर का भीतरी भाग पक्षियों के घोंसले की तरह खुला और स्पष्ट होगा और आप इसके कुछ निवासियों का दर्शन किये बिना न आगे के दरवाजे में घुस सकेंगे और न पीछे के दरवाजे से निकल सकेंगे। यहाँ अतिथि को घर की-सी स्वतन्त्रता होगी, उसे सावधानी घर के $\frac{7}{8}$ भाग से वंचित करके, एक कमरे में बंद करके यह नहीं कहा जायगा कि वह आराम से रहे। यह एक प्रकार की 'काल कोठरी' हो जाती है। आजकल मेजवान आपको अपने चौके-चूल्हे के निकट नहीं आने देता, इसके लिए वह अपने मैमार से, बाहर एक कोठरी बनवा देता है। आतिथ्य सत्कार आज अतिथि को अधिकतम दूरी पर रखने की कला बन गया है। आपका भोजन पकाने का काम आपसे इतना छिपाकर किया जाता है मानो आपको ज़हर दे देने का इरादा हो। मुझे ज्ञात हैं कि मैं बहुत-से लोगों के बाड़े में तो गया हूँ जहाँ से मुझे कानूनन बाहर निकाला जा सकता था, किन्तु मुझे याद नहीं कि मैं बहुत-से लोगों के घर में गया होऊँ। जिस प्रकार के घर की मैंने कल्पना की है, उसमें सादा ढंग से रहने वाले राजा और रानी से रास्ते में पड़ने पर अपने पुराने कपड़ों में ही भेंट करने के लिए चला जाऊँगा, किन्तु किसी आधुनिक महल में फँस जाने पर मेरी

एक-मात्र आकांक्षा यह जानने की होगी कि मैं वाहर किस तरह निकलूँ।

हमारा जीवन "बैठक की भाषा" के प्रतीकों से इतनी दूर व्यतीत होता है और इस भाषा के रूपक आदि अलंकार आवश्यक रूप से इतने अस्पष्ट होते हैं कि प्रतीत होता है कि वह कृत्रिमता के कारण पूर्णतया निर्जीव होकर कोरी वकवास रह जायगी। दूसरे शब्दों में, हमारी "बैठक", हमारे रसोईघर और कार्यालय से वहुत दूर होती है। साधारणतः 'डिनर' भी 'डिनर' न होकर उसका दृष्टान्त मात्र होता है। लगता है मानो केवल वर्बर जातियाँ ही प्रकृति के और सत्य के इतनी निकट रहती हैं कि उनकी भाषा बोलें। तव फिर, वह विद्यार्थी जो सुदूर-वर्त्ती उत्तर-पश्चिम प्रदेश में अथवा 'मानव-दीप' में वास करता है, कैसे वता सकता है कि 'रसोईघर' की शिष्ट भाषा क्या है ?

मेरे अतिथियों में केवल दो-एक ही ऐसे निकले जिन्होंने मेरे पास रुककर मेरे साथ मेरी लपसी खाने का साहस दिखाया। किन्तु उन्होंने जव इस मुसीवत को आते देखा, तो वे भी पीछे हट गए, मानो इस वज्रपात के कारण घर की नींव तक हिल जायगी। फिर भी वहुत वार यह लपसी तैयार होने पर भी, यह घर ज्यों-का-त्यों खड़ा ही रहा।

मैंने घर पर तव तक पलस्तर नहीं किया जव तक कि वहुत ठंड न पड़ने लगी। इसके लिए मैं सरोवर के दूसरे तट से अपेक्षाकृत अधिक साफ और सफेद रेत नाव से उठा लाया। नाव यातायात का एक ऐसा साधन है जो मेरे लिए रुचिकर है, और यदि आवश्यक होता तो मुझे और भी वहुत आगे तक चले जाने का प्रलोभन होता। इसी वीच मेरा घर प्रत्येक दिशा में तख्तों से जड़ गया था। जड़ाई के काम में मुझे यह देखकर आनन्द का अनुभव होता था कि मैं प्रत्येक कील को हथौड़े की केवल एक चोट से ठोक देता था और मेरी अभिलाषा थी कि मैं पलस्तर का काम भी तेजी और सफाई से करूँ। मुझे एक दंभी व्यक्ति की कहानी याद थी जो ठाठदार कपड़े पहनकर, गाँव में ठलुआई करते हुए मजदूरों को सलाह दिया करता था। एक दिन उसने 'कहानी' की जगह 'करनी' का साहस करके, अपनी कमीज की वाहें चढ़ाईं, पलस्तर करने वाले का पटरा लिया, विना किसी दुर्घटना के 'कन्नी' को भरा, और वड़े संतोष के भाव से ऊपर की तख्तियों को देखते हुए, हाथ चलाया। फिर उसे यह देखकर वड़ी निराशा हुई कि सारा-का-सारा पलस्तर तुरन्त ही उसके कपड़ों पर आ गिरा है। पलस्तर की मितव्ययता और उपादेयता की मैंने फिर से सराहना की, जिससे

ठंड बचती है और सफाई आ जाती है। साथ ही पलस्तर करने वाले के साथ कितने प्रकार की दुर्घटनाएँ हो सकती हैं, इसका भी मैंने अध्ययन किया। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये ईंटें कितनी प्यासी हैं जो लौंदा लगाते ही, मेरे रद्दा फेरने के पहले ही, उसका सारा पानी सोख लेती हैं, एक नया चूल्हा तैयार करने में कितनी बाल्टी पानी लग जाता है। इससे पहले के जाड़ों में मैं नदी के शंखसीप जलाकर प्रयोग के लिए थोड़ा-सा चूना बना चुका था। इस प्रकार मुझे पता चल गया कि मेरी सामग्री कहाँ से आती है। यदि मैं चाहता तो मील-दो-मील से बढ़िया 'चूने का पत्थर' लाकर उसे बुझा सकता था।

इसी बीच, सारा सरोवर जमने के कुछ दिन, बल्कि कुछ हफ़्तों पहले ही सबसे उथले और छायादार भागों का जल जमने लगा था। यहाँ प्रथम बार जमने वाली बर्फ खास तौर पर आकर्षक और निर्दोष होती है क्योंकि यह कड़ी, गहरे रंग की, और पारदर्शी होती है और उथले भागों में तली का अध्ययन करने का सबसे अच्छा अवसर प्रदान करती है। जैसे स्केटर मछली जल की सतह पर उतराती है ठीक उसी तरह आप बर्फ की एक इंच मोटी पर्त पर लम्बे लेटकर, दो-तीन इंच की दूरी से ही बड़े आराम से तलभाग का अध्ययन कर सकते हैं, मानो काँच में जड़े हुए किसी चित्र को देख रहे हों। उसी समय जल भी एकदम शांत होता है। रेत में अनेक कूंड बने दिखाई देते हैं, यहाँ कोई कीड़ा रेंगकर आगे-पीछे गया होगा। पेड़ों की टूट-फूट के कारण, तलभाग में कैडिस नामक कीड़े के सफेद महीन रेत के बने खोल बिखरे दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं ये खोल इन कूंडों में भी दिखते हैं; यद्यपि इतने गहरे और चौड़े कूंड़ ये स्वयं नहीं बना सकते। किन्तु सबसे आकर्षक वस्तु होती है स्वयं यह बर्फ, जिसका अध्ययन जल्दी ही करना चाहिए। जमने के अगले सुबह ही इसे ध्यान से देखें तो आपको ज्ञात होगा कि जो बबूले बर्फ में दिखाई देते हैं वे वास्तव में उसकी नीचे की सतह पर होते हैं तथा और भी बबूलें बराबर उठते चले आ रहे हैं। इस समय बर्फ अपेक्षाकृत ठोस और पारदर्शी होती है, अर्थात् इसमें से जल दिखाई देता है। इन बबूलों का व्यास एक इंच के ८०वें से ८वें भाग तक होता है। ये बड़े साफ और सुन्दर होते हैं, और बर्फ में होकर आपको अपने चेहरे का प्रतिबिम्ब उसमें दीख पड़ेगा। एक वर्ग इंच में ये तीस-चालीस तक हो सकते हैं। बर्फ में भी कुछ सँकरे, चौखूँटे, लम्बवत्, कुछ ऊपर को नुकीले से आध इंच लम्बे बबूले होते हैं, अथवा, यदि बर्फ बिलकुल

ताजी होती है तो, छोटे-छोटे गोल बबूले एक के ऊपर एक स्थित दिखाई देते हैं, मानो किसी माला के मोती हों। किन्तु बर्फ के भीतर के ये बबूले न तो संख्या में उतने अधिक होते हैं जितने इसके नीचे के और न उतने स्पष्ट ही होते हैं। मैं कभी-कभी, बर्फ की मजबूती परखने के लिए उस पर पत्थर मारता था। जो पत्थर बर्फ को तोड़कर नीचे चला जाता था वह अपने साथ हवा भी ले जाता था, जिससे बहुत बड़े और स्पष्ट सफेद बबूले बन जाते थे। एक दिन जब मैं उसी स्थान पर अड़तालीस घंटे बाद फिर आया, तो मैंने देखा कि ये बड़े-बड़े बबूले अब भी बने हैं हालाँकि बर्फ की पर्त और एक इंच मोटी हो गई है। किन्तु पिछले दो दिन काफी गर्म होने के कारण बर्फ अब पारदर्शी नहीं रही थी जिसमें से जल का गहरा हरा रंग और तल भाग दिखाई देता। वह अब अपारदर्शी हो गई थी, सफेद हो गई थी, और पहले से दुगुनी मोटी हो जाने पर भी पहले से अधिक मजबूत नहीं हुई थी, क्योंकि गर्मी के कारण हवा के बबूले बहुत फैलकर एक-दूसरे से मिल गए थे। वे अब इतने सुडौल नहीं रहें थे। अब वे एक-दूसरे के ठीक ऊपर भी नहीं रहे थे, बल्कि थैली में से गिरते हुए चाँदी के सिक्कों की भाँति एक-दूसरे के किनारों को छू रहे थे, या छार-छार होकर दरारों में रहने लगे हों। बर्फ का सौन्दर्य समाप्त हो गया था और अब तलभाग का भी अध्ययन नहीं हो सकता था। मैं यह जानना चाहता था कि बड़े-बड़े बबूले इस नई बर्फ से किस प्रकार सम्बन्धित हैं। इसलिए मैंने बर्फ का एक टुकड़ा तोड़ा, जिसमें मध्यम आकार का बबूला था, और उसे उलट दिया। नई बर्फ इस बबूले के चारों ओर और नीचे जमी थी। इस प्रकार यह बर्फ की दो पर्तों के बीच में आ गया था। वास्तव में ऊपर की पर्त से लगा हुआ यह बबूला पूरी तौर पर नीचे की पर्त में था। यह चपटा-सा हो गया था, इसके किनारे गोलाई लिये हुए थे, यह चौथाई इंच गहरा था और इसका व्यास चार इंच था। और यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि इस बबूले के ठीक नीचे की बर्फ एक उलटी तश्तरी के आकार में $\frac{5}{8}$ इंच की ऊँचाई तक पिघल गई और इस प्रकार बबूले और पानी के बीच एक बहुत झीनी-सी दीवार रह गई थी, जो मुश्किल से $\frac{1}{8}$ इंच मोटी होगी। कई स्थलों पर तो छोटे-छोटे बबूले यह दीवार तोड़कर निकल गए थे, और सबसे बड़े, एक फुट व्यास वाले बबूलों के नीचे तो शायद बर्फ थी ही नहीं। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि जो छोटे-छोटे असंख्य बबूले मुझे पहले बर्फ के नीचे दिखाई दिए

थे, वे भी अव इसी प्रकार बर्फ के वीच में आ गए थे और इनमें से प्रत्येक ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार नीचे की वर्फ गला डाली थी। ये छोटी-छोटी हवाई वन्दूकें होती हैं जो बर्फ को चटखाने और कड़काने में योग देती हैं।

अन्त में, मैंने ज्यों ही पलस्तर का काम पूरा किया, त्यों ही कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी, और घर के चारों ओर वायु की गर्जना प्रारम्भ हो गई, मानो तब तक उसे इसकी अनुमति नहीं मिली हो। भूमि पर हिमपात होने पर भी प्रत्येक रात्रि को अंधकार में पंख फड़फड़ाते हुए कलहंस आते, इनमें से कुछ वालडेन पर उतर पड़ते और कुछ वृक्षों के ऊपर, काफी नीचाई पर उड़ते हुए, मैक्सिको जाते हुए "फेयर हैविन" की ओर उड़ जाते। अनेक वार जव मैं रात को दस-ग्यारह बजे गाँव से लौटता तो घर के पीछे इन कलहंसों के या वत्तखों के झुंड की सूखी पत्तियों पर चलने की आवाज़ सुनाई पड़ती, जहाँ वे भोजन की तलाश में आ जाते थे। उनके नेता की हाँक भी सुनाई देती थी। सन् १८४५ में २२ दिसम्बर की रात को वालडेन-सरोवर प्रथम वार समूचा जमा था। फ्लिण्ट तथा अन्य उथले सरोवर लगभग दस दिन या इससे भी पूर्व जम चुके थे, सन् १८४६ में दिसम्वर की १६ वीं तारीख को, १९४९ में ३१ वीं के आस-पास, १८५० में २७ वीं के लगभग, १८५२ में ५ वीं जनवरी को और १८५३ में ३१ दिसम्वर को। २५ वीं नवम्वर से ही भूमि हिमाच्छादित हो गई थी और अचानक ही मैं जाड़े की दृश्यावली से घिर गया था। मैं अपने खोल में और भी भीतर घुस गया और अपने घर तथा अपने वक्ष दोनों में ही अग्नि प्रज्वलित रखने का प्रयास करने लगा। अब मेरा वाहर का काम था केवल सूखी हुई लकड़ी इकट्ठी करना, उसे बाँहों या कंधों पर ढोना, या कभी-कभी दोनों वगलों में दवाकर चीड़ के मरे हुए पेड़ को अपने सहन तक घसीट लाना। वन की एक पुरानी बाड़, जिसके सर्वोत्तम दिन बीत चुके थे, मेरे लिए वड़ी लाभप्रद रही। मेंने इसे अग्नि-देवता को अर्पित कर दिया, क्योंकि यह अव सीमाओं के देवता 'टर्मिनस'[1] के काम नहीं आ सकती थी। जो व्यक्ति वर्फ में चलकर, तुरन्त ही पकाने के लिए ईंधन मारकर, वल्कि यों कहिए चुराकर, लाया है उसके शाम के भोजन की घटना कितनी अधिक मनोरंजक हो जाती

१. प्राचीन रोमन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की भूमि की सीमा पर एक देवता का वास होता था, जो उसकी रक्षा करता था।

है। उसकी रोटी और गोश्त में मिठास आ जाता है। हमारे अधिकतर नगरों के वनों में बहुत-सा तरह-तरह का ईंधन पाया जाता है जिनसे बहुत-से लोगों के घरों में चूल्हा जल सकता है, किन्तु अभी तो वह पड़ा ही रहता है। कुछ लोगों का विचार है कि इससे नये पेड़ों की बाढ़ मारी जाती है। इसके अतिरिक्त सरोवर में बहकर आने वाली लकड़ी भी होती थी। ग्रीष्म में, मैंने, परस्पर जुड़े हुए चीड़ के छालयुक्त लट्ठों का आविष्कार किया था जिन्हें रेल-लाइन बनने के ज़माने में आयरिश मज़दूरों ने यातायात के लिए जोड़ा था। इनमें से कुछ को मैं किनारे तक घसीट लाया था। दो साल तक पानी में और छै महीने तक पानी के ऊपर पड़े रहने के बाद भी इनकी लकड़ी बिलकुल ठीक थी, यद्यपि उसने इतना पानी सोख लिया था कि उसे सुखाया नहीं जा सकता था। जाड़ों में एक दिन इसके एक हिस्से को पन्द्रह फीट लम्बे एक लट्ठे का एक सिरा कंधे पर रखकर और दूसरा बर्फ पर टिकाकर, बर्फ पर ठेलते हुए उस पार तक ले जाने का मज़ेदार खेल मैंने खेला। कई लट्ठों को भूर्ज की टहनी से बाँधकर और उसमें एक लम्बी टहनी फँसाकर भी उस पार तक बर्फ पर घसीट ले गया। हालाँकि इन लट्ठों ने बहुत-सा पानी सोख लिया था, और लगभग शीशे-जैसे भारी हो गए थे, तो भी वे न केवल बहुत देर तक जलते थे बल्कि उनकी आग बहुत गर्म भी होती थी। यही नहीं, मैं सोचता था कि भीगने के कारण ही वे अधिक अच्छी तरह जलते थे जैसे चारों ओर जल से घिरे रहने पर लैम्प में राल जलती है।

इंग्लैण्ड के वनों की सीमा पर रहने वालों के विवरण में गिल्पिन ने लिखा है, "वन में अनाधिकार प्रवेश तथा वन की सीमा में घर बनाना तथा बाढ़ लगाना पुराने कानून में एक बड़ा उत्पात माना जाता था जिसके लिए 'जानवरों को भयभीत करने तथा वन को हानि पहुँचाने' के अन्तर्गत कठोर दंड नियत था।" "किन्तु मैं शिकारियों और लकड़हारों से कहीं अधिक हरिण और हरीतिमा की सुरक्षा के लिए आतुर था। इतना कि मानो मैं ही वन का मुख्य रक्षक होऊँ। उसका यदि कोई भाग जल जाता था, भले ही वह स्वयं मेरी असावधानी के कारण हो, तो मुझे इतना दुःख होता था जितना उसके मालिकों को न होता होगा। उन्हें सांत्वना भले ही मिल जाय, लेकिन मुझे नहीं होती थी। यही नहीं, जब उसके मालिक भी काट डालते थे तो भी मुझे संताप होता था। मैं चाहता हूँ कि जब हमारे किसान वन काटें तो उसी संताप का अनुभव करें जो

प्राचीन रोमवासियों को किसी पवित्र कुंज के काटने-छाँटने पर होता था, अर्थात् यह समझें कि प्रत्येक कुंज में किसी-न-किसी देवता का वास है। रोमन लोग प्रायश्चित्त के रूप में पूजा करते थे और प्रार्थना करते थे, "हे कुंज के देवी देवताओ, तुम चाहे जो हो, मुझे, मेरे परिवार को, मेरे बच्चों आदि को क्षमा कर दो!"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस युग में, इस नवीन देश में, अब भी वन का कितना महत्त्व है। यह महत्त्व सोने के महत्त्व से कहीं अधिक स्थायी और व्यापक है। तमाम आविष्कारों के होते हुए भी हम लकड़ी के ढेर की उपेक्षा नहीं करते। आज भी वह हमारे लिए उतना ही मूल्यवान् है जितना कि हमारे नौर्मन और सैक्सन पूर्वजों के लिए था। यदि वे इससे धनुष-बाण बनाते थे तो हम इससे बंदूकों के कुन्दे बनाते हैं। तीस वर्ष से भी अधिक काल हुआ जब 'मिचौक्स' ने लिखा था, "न्यूयार्क और फिलाडेल्फिया में ईंधन की लकड़ी का मूल्य, पेरिस में सर्वोत्तम लकड़ी के मूल्य के लगभग बराबर है, और कभी-कभी उससे भी अधिक हो जाता है, यद्यपि उस महानगरी (पेरिस) की वार्षिक आवश्यकता ३००,००० कौर्ड[1] से अधिक है और इसके चारों ओर तीन सौ मील की दूरी तक खेती-ही-खेती होती है।" इस नगर में लकड़ी का मूल्य बराबर बढ़ता जा रहा है। इस सम्बन्ध में केवल एक प्रश्न होता है, और वह यह कि इस वर्ष लकड़ी का मूल्य पिछले वर्ष से कितना अधिक होगा। पत्रकार और व्यापारी जो इसी ध्येय को लेकर स्वयं वन में आते हैं, जंगल के नीलाम के समय अवश्य ही उपस्थित रहते हैं चूकते नहीं; और लकड़ी काटने के बाद बची हुई छिपुटियों तक के लिए ऊँची कीमत दे देते हैं। बहुत वर्षों से लोग ईंधन और कला की सामग्री के लिए वन की शरण लेते रहे हैं, न्यू इंग्लैण्डवासी और न्यू हालैण्डवासी, पेरिसवासी और सेल्ट किसान और रोबिनहुड, गुडी ब्लेक और हेरीगिल, संसार के अधिकतम भागों में राजा और किसान, पंडित और बर्बर, सभी को अब तक समान रूप से, गर्मी पाने के लिए और रोटी पकाने के लिए वन की लकड़ी की आवश्यकता होती है। मेरा काम भी इसके बिना नहीं चलता था।

प्रत्येक व्यक्ति अपने लकड़ों के चट्टे को एक प्रकार से स्नेह-भाव से देखता है। मुझे अपने चट्टे को खिड़की के सामने लगा देखना प्रिय था, और जितनी

---

१. कौर्ड—लकड़ी का माप, १२८ घन फुट।

अधिक लकड़ियाँ होती थीं उतनी ही मुझे अपने मनोरंजक काम की याद आती थी। मेरे पास एक पुरानी कुल्हाड़ी थी जिस पर किसी ने अपना अधिकार जाहिर नहीं किया था। इस कुल्हाड़ी से मैं जाड़ों के दिनों में जिधर धूप आती थी उधर ही सेम के खेतों में निकाले गए ठूँठों पर खेला करता था। हल चलाते समय मेरे हैकैया ने जो भविष्यवाणी की थी उसके अनुसार इन ठूँठों ने मुझे दो बार उष्णता प्रदान की—एक तो उन्हें फाड़ने में, और दूसरे इन्हें जलाने में। इस प्रकार कोई भी ईंधन इससे अधिक गर्मी नहीं दे सकता था। जहाँ तक कुल्हाड़ी का प्रश्न है, मुझे लोगों ने यह सलाह दी थी कि मैं उसे गाँव के लुहार से पिटवा लूँ। किन्तु मैं उसके पास नहीं गया और उसमें 'हिकौरी' का बेंटा डालकर उससे काम लेने लगा। यह भोंथरी थी तो कम-से-कम इसमें बेंटा तो सच्चा था।

मोटी चीड़ के कुछ टुकड़े बड़ा भारी खजाना थे। यह विचार करना बड़ा मनोरंजक है कि अग्नि का यह भोजन कितनी मात्रा में पृथ्वी के उदर में अब भी दबा पड़ा है। इससे पूर्व के वर्षों में अनेक बार मैं कुछ नंगी पहाड़ियों पर खोज करने के लिए गया था जहाँ कभी चीड़ का वन खड़ा रहा था, और चीड़ की जड़ें निकाल लाया था। इन्हें तो अनष्ट्य समझिए। तीस चालीस वर्ष पुराने ठूँठ भी अच्छे निकलते हैं हालाँकि उनका बाहरी भाग सड़ जाता है, जैसा कि बीच से चार-पाँच इंच दूर पर भूमि के समतल घेरा बनाती हुई मोटी छाल से दिखाई देता है। कुल्हाड़ी या फावड़े से गहराई तक इस खदान को खोदने पर अंदर छिपा हुआ भंडार निकल आता है, गौ-वसा की भाँति पीला, या यों कहिए कि सोने की कोई खान हाथ लग जाती है। किन्तु साधारणतः मैं वन की सूखी पत्तियों से आग जलाता था जिन्हें मैंने बर्फ गिरने से पहले ही अपने सायबान में भर लिया था। लकड़हारा जब वन में रहता है तो 'हिकौरी' की पतली फटी हुई हरी लकड़ियों की आग जलाता है। कभी-कभी मैं यह भी ले आता था। अंतरिक्ष के पार ग्रामवासी जब आग जलाते तो मैं भी अपनी चिमनी की धूम्रपताका से वालडेन घाटी के वासियों को बता देता था कि मैं जाग गया हूँ।

"चपल पंखों वाला धुआँ, आइकेरियन पक्षी,
ऊपर उड़ते समय अपने पंखों को पिघलाता जाता,
मानो बिना गीत का लवा हो, भोर का दूत हो,
जो नगलों के घोंसलों के ऊपर मँडराता हो;

अथवा, विदा लेता स्वप्न, आधी रात के सपनों की
छायाकृति अपना घाघरा समेट रही हो;
रात में तारों के मुख पर घूँघट डालने वाला
दिन में ज्योति को अंधकारमय करने वाला, सूरज को ढकने वाला;
उड़ जा, अग्निकुण्ड से ऊपर, हे धूनी के धूम, देवग्रन्थों से जा विनती कर,
क्षमा करें इस अग्निशिखा को।"

ताजी काटी हुई लकड़ी से मेरा काम और भी अच्छा चलता था, यद्यपि मैं इसका प्रयोग बहुत कम करता था। कभी-कभी मैं जाड़ों में तीसरे पहर जब घूमने निकलता था तो आग जलती हुई छोड़ जाता था, और तीन-चार घंटे बाद जब मैं लौटता था तो आग जलती ही मिलती थी। मैं बाहर होता तब भी घर सूना नहीं रहता था, लगता था मानो मैं घर की प्रबन्ध-कर्त्री को घर पर छोड़ आया होऊँ। घर में दो व्यक्ति रहते थे, मैं और अग्नि, और साधारणतः मेरी प्रबन्ध-कर्त्री बड़ी विश्वसनीय सिद्ध होती थी। एक दिन जब मैं लकड़ी फाड़ रहा था, तो मैंने सोचा कि खिड़की में से देख लूँ कि कहीं घर में आग तो नहीं लग गई है। मैंने देखा कि एक चिंगारी मेरे बिस्तर में लग गई है, और भीतर जाकर उसे बुझा दिया। तब तक हथेली भर जगह जल चुकी थी। केवल इसी एक बार मुझे इस सम्बन्ध में चिन्ता हुई थी किन्तु मेरा घर इतने खुले और सुरक्षित स्थान पर था, और छत इतनी नीची थी कि जाड़े में दिनके मध्य भाग में आग बुझ जाने पर भी मुझे कोई कष्ट नहीं होता था।

मेरे तहखाने में छछूँदरें रहने लगी थीं और प्रत्येक तीन में से एक आलू को उन्होंने कुतर डाला था। पलस्तर के बाद बचे हुए कुछ बाल और बादामी कागज के टुकड़ों का गुदगुदा बिस्तर उन्होंने वहाँ भी बना लिया था; क्योंकि जंगली-से-जंगली जीव भी मनुष्यों की भाँति सुख और उष्णता पसन्द करते हैं। वे जाड़ों में जीवित रह पाते हैं केवल इस कारण कि इन चीजों को प्राप्त करने में सावधान होते हैं। मेरे कुछ मित्र इस ढंग से बात करते थे, मानो मैं अपने आपको ठंड में जकड़ मारने के लिए ही वन में आकर बसा होऊँ। जानवर तो सुरक्षित स्थान चुनकर केवल एक बिस्तर बनाता है, जिससे उसे गर्मी मिलती है। किन्तु मनुष्य ने अग्नि का आविष्कार किया है, वह बड़े से कमरे में हवा को कैद कर लेता है, और उसे गर्म कर लेता है, और अपने को हानि पहुँचाये बिना

उसका एक ऐसा उढौना वना लेता है जिसमें वह अपने अधिक बोझीले वस्त्र उतारकर मजे से घूमता-फिरता है, भरे जाड़ों में भी ग्रीष्म वना रखता है, प्रकाश के लिए खिड़कियाँ वना लेता है और अंधेरा होने पर लैम्प की सहायता से दिन को और लम्बा कर लेता है। इस प्रकार वह मूल प्रवृत्ति से एक-दो कदम आगे बढ़कर ललित कलाओं के लिए थोड़ा-सा समय निकाल लेता है। यद्यपि अधिक देर तक ठंडी तेज हवा में रहने के कारण मेरा शरीर सुन्न हो जाता था, तथापि घर के सुखद वातावरण में पहुँचने पर मैं पुनः तुरन्त ही शक्ति प्राप्त कर लेता था और अपने जीवन को दीर्घ वना लेता था। किन्तु सवसे आलीशान महलों में रहने वाले भी इस सम्बन्ध में डींग नहीं हाँक सकते, और न हमें इस विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता है कि किस प्रकार मानव-जाति का अन्त हो सकता है। उत्तर से आने वाली थोड़ी और पैनी हवा उनके जीवन का धागा वड़ी आसानी से काट सकती है। हम 'कोल्ड फ्राइडे' (ठंडा शुक्रवार) और 'ग्रेट-स्नोज़' (महा हिमपात) से समय का अनुपान लगाते चले जाते हैं, किन्तु थोड़ा और ठंडा शुक्रवार तथा थोड़ी और अधिक वर्फ पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व पर विराम-चिह्न लगा सकती है।

अगले जाड़ों में ईंधन की वचत के विचार से खाना पकाने के लिए मैंने एक छोटा-सा चूल्हा वना लिया, क्योंकि अव मैं वन का स्वामी नहीं रहा था। किन्तु इस चूल्हे में आग उतनी अच्छी नहीं रह पाती थी जितनी कि अलाव में। फिर खाना पकाने की क्रिया भी उतनी काव्यमय नहीं रही, वह केवल मात्र एक 'कीमियागरी' रह गई। अँगीठियों के इन दिनों में लोग जल्दी ही भूल जायँगे कि हम लोग भी एक युग में रेड-इण्डियनों के ढंग से गर्म राख में आलू भूनते थे। इस अँगीठी ने घर में स्थान घेरकर न केवल गंध ही फैलाई, वल्कि उसने अग्नि को अपने-आप में छिपा लिया और मैं अनुभव करने लगा कि मेरा कोई साथी विछुड़ गया है। अग्नि में आपको सदा एक चेहरा दिखता रहता है। श्रमिक के विचारों में दिन-भर में जो कूड़ा कचरा और पार्थिवता की मिलावट हो जाती है, उसे वह रात को अग्नि की ओर देखकर साफ कर देता है। किन्तु अव मैं वैठकर अग्नि की ओर नहीं देख पाता था, और एक कवि के समुचित शब्द एक नई शक्ति से मेरे दिमागमें आते थे :

'ओ ज्योतिर्मयी अग्निशिखा ! जीवन को रूप देने वाली,
तेरी प्रिय, घनिष्ठ सहानुभूति का मेरे लिए कभी अभाव न हो।
मेरी आशाएँ ही तो उठकर जगमगाती हैं।
रात के गर्त्त में मेरा भाग्य ही तो डूबता है।
देश-निकाला तुझे क्यों मिला घर-आँगन से,
स्वागत करते और चाहते सब जन-मन से ?
क्या तेरा अस्तित्व, हमारे धूमिल जीवन
के प्रति अति-अयथार्थ हो गया ?
या तेरी जगमग आभा ने, गुप-चुप कोई
आत्मा से सलाह है कर ली ?
क्या रहस्य यह कोई गोपन ?

हाँ हम सबल औ' सुरक्षित हैं, क्योंकि अब,
चूल्हे के सहारे बैठते हैं जहां,धूमिल छायाएँ
उड़ती नहीं फिरती हैं,
जहाँ न तो कुछ उल्लसित करता है
न कुछ मन में क्षोभ भरता है,
अग्नि हाथ-पैरों को सेक-भर देती है,
इससे आगे और कुछ आकांक्षा नहीं होती है;
जिसके उपयोगितावादी पुंज के सहारे
वर्तमान बैठ जाय, सो जाय, और उसे
धूमिल भूतकाल के प्रेतों का भय न हो
आकर जो हमारे, सूखे ईंधन की अग्नि के
विषम उजाले में बातचीत करते थे।"

१४. पहले के निवासी और जाड़े के अतिथि

मैंने वर्फ के कुछ तूफानों का आनन्द लिया और अपने चूल्हे के सहारे कुछ आनन्दप्रद रातें विताईं। बाहर भयंकर हिमपात होता रहता था और उल्लू तक चुप्पी साध जाते थे। कई हफ्तों तक टहलने के समय मेरी भेंट किसी से नहीं होती थी सिवाय उन लोगों के जो लकड़ी काटकर गाँव ले जाने के लिए यदा-कदा चले आते थे। गहरी-से-गहरी वर्फ में रास्ता वनाने में प्रकृति मेरी सहायता करती थी। एक वार मैं निकल जाता तो वायु मेरे पद-चिह्नों पर आक के पत्ते विखेर देती थी, जहाँ वे पड़े रहते और सूर्योत्ताप को आत्मसात करके वर्फ पिघला देते थे। इस प्रकार वे न केवल मेरे पैरों के लिए सूखा रास्ता तैयार कर देते थे, वल्कि रात में उनकी काली पंक्ति मेरा पथ-प्रदर्शन भी करती थी। मानवीय संग-साथ के लिए मुझे इस वन के पूर्ववासियों का आह्वान करना पड़ता था। जिस सड़क के किनारे मेरा घर खड़ा है वह मेरे नगर के अनेक लोगों के स्मृति-काल में ही पूर्ववासियों की खिलखिलाहट और वातचीत से गूँजा करती थी, और इसके आस-पास के वन में जगह-जगह छोटे-छोटे वगीचे और घर दिखाई देते थे, यद्यपि उन दिनों यह वन अव से कहीं अधिक घना था। मेरी याद में भी, इस सड़क के दोनों ओर खड़े चीड़ के वृक्ष गुजरने वाली गाड़ियों को छूते थे। जिन स्त्रियों और वच्चों को लिंकन तक पैदल जाना पड़ता था, उन्हें यहाँ से गुजरने में डर लगता था, और काफी रास्ता वे दौड़ते हुए पार करते थे। आस-पास के गाँवों को जाने वाली यह मुख्य सड़क वड़ी दीन-हीन थी, या विशेपकर लकड़हारों के दल इस पर जाया करते थे, तथापि वैचित्र्य के कारण यह यात्री को उन दिनों आज से कहीं अधिक मनोहर लगती थी और उसकी स्मृति में अपेक्षाकृत अधिक काल तक वसी रहती थी। आज जहाँ ग्राम से वन तक खुले खेत फैले हुए हैं वहाँ यह सड़क दलदल में होकर जाती थी। वहाँ मेपिल की लकड़ी के लट्ठे विछे हुए थे। उनके अवशेप निस्संदेह अव भी इस धूलभरी सड़क के नीचे दवे पड़े होंगे जो स्ट्रैटन से व्रिस्टर पहाड़ी तक जाती है।

मेरे सेम के खेत के पूर्व में सड़क के पार, कौंकर्ड ग्राम के जमींदार डंकन

इंग्रैहम का गुलाम कैटो इंग्रैहम रहता था। जमींदार ने उसके लिए एक घर बनाकर उसे वालडेन में रहने की अनुमति दे दी थी। वह कैटो यूटिसेंसिस नहीं, कौंकर्ड का कैटो था। कुछ लोगों का कहना है कि वह गायना का नीग्रो था। दो-चार ऐसे भी हैं जिन्हें अखरोट के वृक्षों के बीच उसके छोटे-से भू-भाग की याद है। इन वृक्षों को उसने बुढ़ापे के लिए लगाया था किन्तु अंत में ये अपेक्षाकृत कम आयु के, श्वेत चर्म वाले एक सटोरिये के हाथ पड़े। वह भी आजकल एक उतने ही छोटे-से घर में रहता है। कैटो के अर्ध-नष्ट तहखाने का मुँह आज भी वर्तमान है, यद्यपि आने-जाने वालों की दृष्टि से चीड़ की एक पंक्ति के पीछे छिपा होने के कारण बहुत कम लोग इसे जानते हैं। आज वह 'रसग्लैब्रा' (Rhus Glabra) से भरा हुआ है और 'सौलिडैगो स्ट्रिक्टा (Solidago Stricta) की एक आदिम जाति वहाँ प्रचुरता से उग रही है।

इस स्थान पर, नगर के और निकट, मेरे खेत के कोने के पास ही जिल्फा नाम की एक अश्वेत बुढ़िया की कुटिया थी जहाँ वह नगरवासियों के लिए सन काता करती थी, और सारे वालडेन वन को अपने गीतों से गुँजाया करती थी। उसकी आवाज तेज और पैनी थी। अन्त में सन् १८१२ के युद्ध में, अंग्रेज सिपाहियों ने, जो पैरौल पर छूटे हुए कैदी थे, उसकी कुटिया में आग लगा दी। उस समय वह कहीं गई थी। उसका कुत्ता, बिल्ली और मुर्गियाँ सब उसी में भस्म हो गए। वह बड़ी कठिनाई से जीवन-यापन करती थी। एक सज्जन ने जो इस वन में आया करते थे, उधर से गुजरने पर एक दिन दोपहर को उसे अपनी सनसनाती हुई पतीली से कहते सुना, "तुम तो हड्डी-ही-हड्डी हो!" यहाँ बलूत के वृक्षों के कुंज में मुझे ईंटें दिखाई दी हैं।

आगे चलकर दाहिने हाथ पर 'ब्रिस्टर हिल' पर ब्रिस्टर फ्रीमैन नामक एक नीग्रो रहता था। वह किसी समय कमिंग्स का दास था। वहाँ अब भी ब्रिस्टर के लगाए और पोषित किये हुए सेब के पेड़ खड़े हैं। वे पेड़ अब बड़े और बूढ़े हो गए हैं, लेकिन उनके फलों का स्वाद अब भी मुझे जंगली और सेब का-सा लगता है। थोड़े ही दिन पहले, लिंकन के कब्रस्तान में एक ओर कौंकर्ड के युद्ध में मारे गए अंग्रेज सिपाहियों की चिन्ह-रहित कब्रों के बीच, मैंने उसकी कब्र के पत्थर का लेख पढ़ा। उस पर उसका नाम है-'सीपिओ ब्रिस्टर', (उसे 'सीपिओ अफ्रिकन्स' कहलाने का अधिकार था) 'काला आदमी', मानो अब उसका रंग बदल गया हो। कब्र के इस लेख में बड़ा जोर देकर यह बताया

गया है कि वह कब मरा। यह तो केवल घुमा-फिराकर मुझे यह सूचना देना हुआ कि कभी वह जीवित था। उसके साथ उसकी पत्नी फैंडा रहती थी, जो बड़ा आदर-सत्कार करती थी, और लोगों को उनका भविष्य बताया करती थी—दीर्घाकार, गोल-मटोल, काली भुजंग, इतनी काली आँख कौंकर्ड पर न उसके पहले पड़ी थी, न उसके बाद।

पहाड़ी से उतरते समय और नीचे, बाएँ हाथ को, वन की पुरानी सड़क पर एक स्ट्रेटन परिवार के घर-द्वार के चिन्ह अवशेष हैं, जिनका फलों का बाग एक जमाने में ब्रिस्टर हिल के समूचे ढाल को ढके हुए था। बहुत दिन हुए, चीड़ के वृक्षों ने इसे मार डाला। केवल कुछ ठूंठ बच रहे हैं जिनकी बूढ़ी जड़ें अब भी गाँव के अनेक मितव्ययी वृक्षों को भोजन देती हैं।

नगर के और निकट जाने पर, सड़क के दूसरे छोर पर, वन से लगा हुआ, ब्रीड का स्थान मिलता है। यह स्थान एक प्रेत की क्रीड़ा के लिए प्रसिद्ध है, जिसका नाम हमारे पुराणों में स्पष्ट नहीं आया है। न्यू इंग्लैण्ड के जीवन में इस प्रेत का अच्छा खासा और चकित कर देने वाला भाग रहा है और किसी भी पौराणिक चरित्र के समान वह एक जीवन-चरित का अधिकारी है। यह परिवार के मित्र या मजदूर की हैसियत से आता है और फिर सारे परिवार को लूटकर मार डालता है। इस प्रेत का नाम है न्यू इंग्लैंड की रम (गन्ने के रस की शराब)। किन्तु यहाँ की दुर्घटनाओं की कथा अभी इतिहास में नहीं आनी चाहिए, काल का अन्तराल उन्हें कुछ हल्का कर दे, उनमें थोड़ा आसमानी रंग भर दे। एक अत्यन्त अस्पष्ट और सन्देहजनक जनश्रुति यह भी चली आ रही है कि यहाँ एक सराय थी और एक कुआँ था जो अपने जल से यात्रा की मदिरा को हल्का और उसके घोड़ों को तरोताजा करता था। इस स्थल पर लोग एक-दूसरे का अभिवादन करते थे, खबरें कहते-सुनते थे और फिर अपना-अपना रास्ता लेते थे।

केवल बारह साल पहले तक ब्रीड की झोंपड़ी खड़ी थी, यद्यपि यह बहुत काल से खाली पड़ी थी। यह मेरी कुटिया के आकार की रही होगी। मैं गलती नहीं करता हूँ, तो चुनाव की एक रात को कुछ शैतान लड़कों ने इसमें आग लगा दी। उन दिनों मैं गाँव के एक किनारे पर रहता था। मैंने 'डेवनेण्ट' के रूमानी महाकाव्य 'गौंडीबर्ट' का अध्ययन प्रारम्भ किया था। जाड़ों में, मैं बड़े आलसीपन से काम कर रहा था, जो पता नहीं मेरे परिवार का रोग था

(क्योंकि मेरे एक चाचा हैं, जिन्हें दाढ़ी बनाते-बनाते सो जाने की आदत है, और रविवार को जागते रहकर 'सैवाथ' मनाने के लिए जिन्हें तहखाने में आलुओं के कुल्ले तोड़ने पड़ते हैं) या चामर्स के अंग्रेजी काव्य-संकलन को आद्योपांत पढ़ने के प्रयास का दुष्परिणाम था। इसके कारण मेरे स्नायुओं पर वड़ा ज़ोर पड़ा था। मैंने इसमें दिमाग भिड़ाया ही था कि, आग लगने की घंटी वजने लगी और इंजन वड़ी तेजी से उधर जाने लगे। पुरुषों और लड़कों की टोलियाँ दौड़ पड़ीं। मैंने छलाँग मारकर नाला पार किया और सबसे आगे की टोली में पहुँच गया। हम लोग सोच रहे थे कि जंगल में दक्षिण दिशा में आग लगी है (इससे पहले भी अनेक वार हम लोग आग बुझाने के लिए दौड़ चुके थे) और यह शायद खलिहान होगा, या दूकान होगी, या घर होगा, या सभी कुछ होगा। एक ने कहा, "बेकर का खलिहान है" दूसरा वोला, "कौडमैन का घर है"। वन के ऊपर चिंगारियाँ उड़ीं, शायद छत जलकर गिरी होगी, और हम सब चिल्ला उठे, "कौकर्ड को बचाओ।" लदी हुई गाड़ियाँ तेजी से निकली चली जातीं। इनमें से एक में, और लोगों के साथ-साथ बीमा का एजेण्ट भी था, जिसे घटनास्थल पर पहुँचना ही था, भले ही वह कितनी ही दूर क्यों न हो। अपेक्षा-कृत धीमे किन्तु सुनिश्चित, इंजनों की घंटी पीछे से बराबर बजती चली आ रही थी, और सबसे पीछे (जैसी बाद में खबर थी) वे लोग आ रहे थे जिन्होंने आग लगाई थी और खतरे की घंटी बजाई थी। इस प्रकार हम लोग सच्चे आदर्शवादियों की भाँति अपनी ज्ञानेन्द्रियों की साक्षी की उपेक्षा करते हुए चलते चले जा रहे थे, जब सड़क के एक मोड़ पर हमें चटखने की आवाज़ सुनाई दी और दीवार के ऊपर से आग की झुलस लगी, और हमने अनुभव किया कि हम घटनास्थल पर पहुँच गए हैं। इस अग्नि के नैकट्य से ही हमारा सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। पहले तो हमने इस पर पानी डालने का विचार किया, किन्तु फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब यह इतना जल गया है, और बेकार है, तब इसे जलने ही दिया जाय। इस प्रकार हम लोग एक-दूसरे को धकियाते हुए दमकल के चारों ओर खड़े हो गए और अपने भौंपुओं से अपने भावों को अभिव्यक्त करने लगे, या धीमी आवाज़ में दुनिया के सब वड़े अग्निकाण्डों के बारे में बात करने लगे, जिनमें बास्कम की दूकान भी शामिल थी और विचार-विमर्श करते रहे कि यदि हम वहाँ ठीक मौके से पहुँच जाते तो उस भयंकर अग्निकाण्ड को बाढ़ में बदल देते। अंत में हम बिना कोई उत्पात किये लौट

पड़े, कोई सोने चला गया तो कोई 'गौडीवर्ट' में उलझ गया। किन्तु 'गौडीवर्ट' में एक स्थल अपवाद है, और वह है भूमिका का वह अंश जहाँ कि wit (प्रत्युत्पन्नमतित्व) को आत्मा की बारूद बताया गया है—'किन्तु अधिकतर लोग wit (प्रत्युत्पन्नमतित्व) से परिचित नहीं होते, ठीक जैसे रेड इंडियन बारूद से परिचित नहीं हैं।'

संयोग ऐसा हुआ कि अगली रात को ही, मैं लगभग उसी समय, खेतों को पार करके उस ओर जा निकला। वहाँ किसी की धीमी कराह सुनकर अँधेरे में और निकट गया। वहाँ मुझे इस परिवार का (जहाँ तक मैं जानता हूँ) केवल मात्र बचा हुआ व्यक्ति मिला, जो इस परिवार के गुण-दुर्गुण दोनों का ही उत्तराधिकारी है। केवल इसी व्यक्ति का इस अग्निकाण्ड से कुछ सम्बन्ध था। वह औंधा पड़ा हुआ था और तहखाने की दीवार के पीछे अब भी सुलगते हुए अंगारों की ओर देख रहा था और स्वभावानुसार भुनभुना रहा था। वह दिन-भर, दूर, नदी की दलदल में परिश्रम करता रहा था और फुरसत मिलते ही तुरन्त अपने पूर्वजों और अपनी युवावस्था के इस घर को देखने के लिए चल पड़ा था। बारी-बारी से उसने तहखाने को प्रत्येक दिशा से, प्रत्येक दृष्टिकोण से, लेटकर देखा, मानो उसमें गड़ा हुआ कोई खजाना उसे याद आ गया हो, जो इस ईंट-पत्थर के बीच छिपा पड़ा हो, जहाँ अब ईंटों और राख के ढेर के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा था। घर नष्ट हो गया था, अब वह, जो कुछ बचा था उसे देख रहा था। मेरी उपस्थिति-मात्र में संवेदना थी उससे उसे कुछ साँत्वना मिली, और उसने मुझे, अंधकार में यथा सम्भव वह स्थान दिखाया जहाँ एक कुआँ दबा हुआ था, जिसमें ईश्वर की कृपा से, कभी आग नहीं लगाई जा सकती। वह बहुत देर तक दीवार के सहारे टटोलता रहा उस ढेंकी को तलाश करने के लिए, जो उसके पिता ने लगाई थी, उस लोहे के आँकड़े और तार को ढूंढता रहा जिसमें वह भारी बोझ बँधा हुआ था, (अब उसके पास केवल यही बच रहा था) ताकि वह मुझे यह विश्वास दिला सके कि यह साधारण ढेंकी नहीं है। मैंने उसे हाथ से छुआ और अब भी लगभग प्रत्येक दिन टहलने के समय उसे देख लेता हूँ; क्योंकि इसमें एक परिवार का इतिहास लटका हुआ था।

उधर ही बाँए हाथ की ओर, जहाँ कुआँ और दीवार के सहारे बकाइन झाड़ियाँ दिखाई देती हैं (वहाँ अब खुला खेत है) नटिंग और लीग्रोस रहते थे।

लेकिन अव लिंकन की ओर लौटा जाय।

इन सब स्थानों से दूर, जंगल में, जहाँ सड़क सरोवर के निकटतम पहुँच जाती है, वाइमेंन नामक कुम्हार रहता था, और अपने नगरवासियों को मिट्टी के वर्तन-भांडे दिया करता था। उसने अपने पीछे उत्तराधिकारी भी छोड़े। वे सांसारिक वस्तुओं के सम्बन्ध में सम्पन्न नहीं थे, भूमि पर उनका अधिकार नहीं था, जब तक रहे माफी पर वने रहे। और बहुधा कर वसूल करने वाला अधिकारी व्यर्थ ही आता था, और एक लकड़ी का टुकड़ा ज़ब्त कर ले जाता था, क्योंकि यहाँ और कुछ था ही नहीं जिस पर वह हाथ डाल सके। यह बात मैंने उसके विवरण में पढ़ी है। एक दिन गर्मियों में, जब मैं गुड़ाई कर रहा था, तो एक आदमी आया जो मिट्टी के बरतन बाज़ार ले जा रहा था। उसने मेरे खेत के सामने अपना घोड़ा रोक दिया और वह मुझसे 'छोटे वाईमेंन' (पुत्र) के बारे में पूछने लगा। इस आदमी ने वहुत दिन पहले उससे एक चाक खरीदा था और अव जानना चाहता था कि उस पर क्या गुजरी। मैंने वाइविल में कुम्हार की मिट्टी और चाक के वारे में पढ़ा था, किन्तु यह वात मेरे दिमाग में कभी नहीं आई थी कि मिट्टी के जिन बरतनों को हम प्रयोग में लाते हैं, वे उस युग से अव तक विना फूटे नहीं चले आ रहे, अथवा वे लौकियों की भाँति कहीं पेड़ों पर नहीं लगते। मुझे यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ कि इतनी शिल्पपूर्ण कला का अनुकरण कभी मेरे पड़ोस में हुआ था।

मुझसे पूर्व जो व्यक्ति इस वन में रहा था, वह ह्यू कोइल नाम का एक आयर्लैण्ड वासी था, जो वाइमेंन वाले घर में रहता था। उसको लोग कर्नल कौइल कहकर पुकारते थे। किंवदंती थी कि वह वाटरलू के युद्ध में सैनिक रह चुका था। यदि वह जीवित होता तो मैं फिर से उसकी सारी लड़ाइयाँ उससे लड़वाता। यहाँ वह खुदाई का काम करने लगा था। नैपोलियन सैण्ट हैलेना चला गया और कौइल वालडेन वन में रहने लगा। उसके बारे में जो कुछ भी मुझे ज्ञात है, दुःखपूर्ण है। वह वड़ा शिष्ट व्यक्ति था, उसने दुनिया देखी थी, और उसमें इतने शिष्टाचारपूर्ण वार्तालाप की क्षमता थी कि आप पूरे तौर पर समझ भी न सकें। वह भरी गर्मियों में भी ग्रेट कोट पहनता था, क्योंकि उसे कम्पनवात का रोग था, और उसका चेहरा वीरवहूटी के रंग का था। मेरे वन में आने के थोड़े दिन बाद ही ब्रिस्टर हिल के नीचे, सड़क पर उसका देहान्त हो गया था, इस कारण पड़ौसी के रूप में उसके बारे में मेरे कोई संस्मरण नहीं है।

जिस समय उसका घर गिराया जा रहा था, (उसके साथी इस "अभागे किले" से दूर-दूर रहते थे) मैं वहाँ गया था। उसके ऊँचे तख्त पर उसके पहने हुए मुड़े-सिकुड़े कपड़े पड़े हुए थे मानो वह स्वयं पड़ा हो। उसका टूटा हुआ पाइप अंगीठी पर रखा था, बजाय इसके कि टूटा हुआ प्याला किसी निर्झर के किनारे पड़ा हो। यह टूटा हुआ प्याला कभी भी उसकी मृत्यु का समुचित चिह्न नहीं हो सकता था; क्योंकि उसने मेरे सामने स्वीकार किया था यद्यपि उसने 'ब्रिस्टर स्रोत' के बारे में सुन रखा था, फिर भी वह कभी वहाँ गया नहीं था। मैले ताश के पत्ते, ईंट के, हुकुम के और पान के बादशाह फर्श पर बिखरे पड़े थे। एक काली मुर्गी, रात के समान काली, और उतनी ही नीरव, जो कभी गुटरगूँ भी नहीं करती थी, जिसे अधिकारीगण नहीं पकड़ पाए थे, अब भी लोमड़ी की प्रतीक्षा करती हुई पास के कमरे में रहती थी। इस घर के पिछवाड़े, बगीचे की एक धुंधली-सी रूपरेखा थी, जिसमें पौधे तो रोपे गए थे लेकिन पहली गुड़ाई भी नहीं हुई थी (क्योंकि उसे कम्पनवात के आक्षेप हुआ करते थे) यद्यपि अब फसल काटने का समय आ गया था। यह 'वर्मवुड' और 'वैगर टिक' से भरा पड़ा था, जिनके फल मेरे कपड़ों में चिपक गए। उसके अंतिम 'वाटरलू' के विजय-चिह्न के रूप में एक 'वुडचक' की खाल घर की पीछे की दीवार पर फैली हुई थी जो हाल ही में लटकाई गई होगी, किन्तु अब उसे न गर्म टोपी की आवश्यकता थी, और न दस्तानों की।

अब केवल एक गड्ढा ही इन वासस्थानों की स्थिति की याद दिलाता है, जिसमें तहखाने के पत्थर हैं और स्ट्राबेरी, रैस्पबेरी, थिम्बल बैरी, हेज़ल बुश, सूमक आदि हैं, जो घास में उग रहे हैं। जहाँ चिमनी खड़ी थी वहाँ अब एक चीड़ या बलूत का वृक्ष खड़ा होगा, जहाँ द्वार था वहाँ शायद मधुर गंध वाला काला मर्ज खड़ा होगा। कहीं-कहीं कुए का मुँह भी दिखाई दे जाता है जिसमें स्रोत फूटा हुआ था किन्तु अब सूखी, अश्रुहीन घास उगती है। अथवा परिवार के अंतिम सदस्य के विदा लेने पर स्रोत पत्थर की पटिया से ढक दिया गया होगा और ऊपर से और मिट्टी डाल दी गई होगी जिस पर अब घास उगती है। इसका पता कभी आगे चलकर लगेगा। कितना दुःखमय काम होगा, यह कुओं का भरना! इसके साथ नेत्रों का स्रोत वह निकला होगा। लोमड़ी की परित्यक्त माँदों और पुराने बिलों के समान तहखानों के ये गड्ढे ही शेष रहते हैं, उन स्थानों के जहाँ कभी मानव-जीवन की चहल-पहल रही होगी, जहाँ किसी-

न किसी भाषा में, किसी-न-किसी रूप में "नियति, स्वतंत्र इच्छा और पूर्वज्ञान के बारे में वाद-विवाद चलता रहा होगा। किन्तु इनसे उनके निष्कर्षों के बारे में जो कुछ मैं जान पाता हूँ वह यह है कि "कैटो और ब्रिस्टर ऊन नोचा करते थे" जो लगभग उतना ही शिक्षाप्रद है जितना कि अपेक्षाकृत प्रसिद्ध दर्शन-धाराओं का इतिहास।

द्वार, देहरी और करगहना के नष्ट हो जाने के एक पीढ़ी बाद भी, बकाइन प्रत्येक वसन्त ऋतु में अपने मधु-गंध पुष्प खिलाते हुए, प्रफुल्लित होकर झूम रही है। चिंतन करता हुआ यात्री इन्हें तोड़ता है। किसी समय बालकों के नन्हें हाथों ने इसे अग्रभूमि में लगाया होगा, इसकी साज-सँवार की होगी और अब वह नए उगते हुए वन को स्थान देकर एक ओर खड़ी है। यही इस परिवार का एक-मात्र उत्तरजीवी है। इन अश्वेत बालकों ने नहीं सोचा होगा कि उन्होंने जो दो गाँठों वाली छोटी-सी कलम घर की छाया में भूमि में खोंस दी, और जिसमें प्रतिदिन पानी देते रहे, वह इस प्रकार जड़ पकड़ जायगी और उनके बाद, और परिवार के बड़े लोगों के बाग-बगीचों के बाद भी जीवित रहेगी और उनसे बड़े होकर इस संसार से चले जाने के पचास साल बाद किसी एकाकी को उनकी कथा मंद स्वर में सुनायगी। और तब उसके पुष्प उतने ही सुन्दर होंगे, उसकी गंध उतनी ही मधुर होगी जितनी कि प्रथम बसंत में रही थी। मैं इसके रंगों को देखता हूँ जो अब भी कोमल, हल्के और मनोहर हैं।

किन्तु यह छोटा-सा ग्राम, किसी और बड़ी चीज़ का यह बीज, यह क्यों अफलित रह गया, जबकि कौंकर्ड बढ़ता ही चला जाता है? क्या इसे प्राकृतिक साधन उपलब्ध नहीं थे? सचमुच क्या जल की निधि इसके पास नहीं थी? हाँ, उसके पास गहरा वालडेन सरोवर था, शीतल ब्रिस्टर स्रोत था, जिनके स्वास्थ्यप्रद जल का दीर्घकाल तक पान करने का विशेषाधिकार इसके निवासियों को प्राप्त था, किन्तु इन लोगों ने इसका कोई लाभ नहीं उठाया, सिवाय शराब में जल मिलाने के। ये सब लोग चिरतृषित जाति के थे। क्या यहाँ टोकरी, झाड़ू, चटाई बनाने, नाज भूँजने, सन कातने, और मिट्टी के बासन बनाने का काम भली-भाँति नहीं चल सकता था, जिससे यह वन्य प्रदेश गुलाब की तरह खिल उठता और अनेक संततियाँ अपने पूर्वजों की पैत्रिक भूमि को उत्तराधिकार में प्राप्त करती रहतीं। इस बंजर मिट्टी ने मैदानी पतन से कम-से-कम रक्षा तो की होती। हाय! इन मानव वासियों की स्मृति से इस

भूदृश्य के सौंदर्य में तनिक भी अभिवृद्धि नहीं हुई ! शायद, प्रकृति पुनः मुझसे, प्रथम वासी के रूप में प्रारम्भ करेगी, और पिछले वसंत में खड़ा किया हुआ मेरा यह घर इस भावी नगले का सबसे प्राचीन घर होगा।

जिस स्थल पर मैं रहता हूँ, वहाँ पहले कभी किसी ने घर बनाया हो, यह मुझे ज्ञात नहीं। ऐसे नगर से परमात्मा बचाये, जो किसी प्राचीनतर नगर के स्थान पर बसा हो। ऐसा नगर खंडहरों का बना होता है, वहाँ के बाग कब्रिस्तान होते हैं। वहाँ की मिट्टी निर्जीव और अभिशप्त होती है, वहाँ बसना आवश्यक होने के पूर्व स्वयं यह पृथ्वी ही नष्ट हो जायगी। इन स्मृतियों से मैं इस वन को फिर से बसा लेता था, और निद्रालीन हो जाता था।

इस ऋतु में मेरे यहाँ कोई अतिथि नहीं आता था। गहन हिमपात के दिनों में, पूरे एक सप्ताह या पखवारे-भर कोई भी मेरे घर के निकट आने का साहस नहीं करता था। किन्तु मैं उतना ही निरापद रहता था जितना कि चूहा बिल में, अथवा वे चौपाए और मुर्गे-मुर्गियाँ जिनके बारे में कहा जाता है कि वर्फ में दब जाने पर बिना भोजन के भी वे दीर्घकाल तक जीवित रहे हैं। इसी राज्य के 'सटन' नगर में, सन् १७१७ के महा हिम-पात में एक व्यक्ति का सारा परिवार दब गया था जब कि वह स्वयं घर पर नहीं था। चिमनी के धुएँ से एक छेद बन गया जिस पर एक रेड-इंडियन की नजर पड़ी, और इस प्रकार उस परिवार की रक्षा हुई। मैं भी उस परिवार की भाँति सुरक्षित रहता था, किन्तु मेरे बारे में किसी भी सौहार्दपूर्ण रेंड इंडियन ने चिन्ता नहीं की, न इसकी आवश्यकता ही थी; क्योंकि इस घर का स्वामी घर पर ही मौजूद था। महा हिम-पात ! सुनने में कितना आनन्दप्रद प्रतीत होता है। उन दिनों किसान अपना दल लेकर वन और दलदल की ओर नहीं जा सकते थे, और उन्हें अपने घर के सामने के ही वृक्ष काट लेने पड़े थे। वर्फ की पर्त्त कड़ी हो जाने पर जमीन से दस फीट की ऊँचाई पर खड़े होकर उन लोगों ने दलदल में वृक्ष काटे थे, जिसका पता उन्हें अगले वसंत में चला।

गहनतम हिम-पात में जिस आध मील लम्बी पगडंडी पर चलकर मैं बड़ी सड़क से अपने घर तक जाता था, उसे एक ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी, चमकदार चिह्नित रेखा से दिखाया जा सकता है जिसके चिह्नों के बीच काफी दूरी हो। एक सप्ताह तक एक-सा मौसम रहने पर मैं आने-जाने में अपने ही पदचिह्नों पर बड़ी सावधानी से समान लम्बाई के, समान संख्या में कदम रखता था, नापने

की परकार की तरह नपे-तुले कदम (शीत हमें इस नियमितता में बाँध देता है)—फिर भी बहुधा उसमें आसमान की नीलिमा भरी होती थी। किन्तु किसी भी मौसम ने मेरे घूमने, या यों कहिए बाहर जाने में, घातक रूप से बाधा नहीं डाली, क्योंकि अक्सर मैं किसी 'बीच' या पीतभूर्ज या चीड़ वृक्षों में से किसी पुराने परिचित से भेंट करने का वादा पूरा करने के लिए गहरी-से-गहरी बर्फ में भी आठ-दस मील तक चला जाता था। हिम-पात के कारण उनकी डालियाँ झुक जाती थीं, पतली-सी चोटियाँ दिखाई देती थीं और चीड़ के वृक्ष 'सरो'-जैसे दिखने लगते थे। जब दो फीट गहरी बर्फ होती तो प्रत्येक कदम पर बर्फ का एक नया तूफान सिर पर झेलते हुए मैं सबसे ऊँची पहाड़ियों की चोटी पर जा पहुँचता था, अथवा जिस समय शिकारी जाकर अपने शीतावास में बंद हो गए होते, उस समय मैं हाथों और घुटनों के बल रेंगता-सरकता उधर चला जाता था। एक दिन, तीसरे पहर, मैंने श्वेत चीड़ की एक भरी हुई नीची-सी डाल पर बैठे हुए एक उल्लू को, दिन में लगभग छः गज की दूरी से देखा। जब मैं चलता था तो बर्फ पर मेरे पैरों की आहट तो उसे सुनाई देती थी, किन्तु वह मुझे देख नहीं पा रहा था। जब बहुत आवाज़ होती तो वह गर्दन लम्बी करता, गर्दन के बाल खड़े कर लेता और आँखें फैला देता था, किन्तु उसकी पलकें जल्दी झपक जातीं और वह ऊँघने लगता था। आध घंटे तक बिल्ली के समान, अधखुली आँखों वाले, बिल्ली के इस सपक्ष बंधु को बैठा देखते रहने से मैं भी निद्रालस हो गया। इन आँखों की पलकों के बीच एक पतली-सी दरार रह जाती थी। इस प्रकार अधमुँदी आँखों से वह स्वप्नलोक से झाँककर, मुझे, स्वप्नों के बीच बाधा डालने वाली इस धुँधली-सी वस्तु को, इस धूलि-कण को देखता था। फिर या तो अपेक्षाकृत जोर की आवाज पर या मेरे पास पहुँचने पर, व्याकुल होकर वह अपने स्थान पर घूमा, मानो स्वप्ने में बाधा पड़ने के कारण अधीर हो उठा हो। इसके बाद चीड़ के वृक्षों के बीच अपने पंखों को अप्रत्याशित रूप से फैलाता हुआ जब वह उड़ा, तो मुझे तनिक भी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। इस प्रकार, दृष्टि की अपेक्षा, चीड़ की डालियों के नैकट्य के संस्पर्श की सहायता से, अपने सचेतन पंखों से, झुटपुटे पथ को मानो टटोलता हुआ, एक नये स्थान पर जा बैठा जहाँ वह शाँतिपूर्वक अपने दिन के उदय की प्रतीक्षा कर सके।

रेलवे लाइन के किनारे वाली पगडंडी पर चलते समय मुझे गरजती हुई पैनी हवा का सामना करना पड़ता था; क्योंकि और किसी स्थल पर इतना

खुलकर खेलने का अवसर इसे नहीं मिलता। और जब बर्फ का झोंका मेरे एक गाल पर आघात करना तो 'अधर्मी' होने के नाते मैं उसकी ओर दूसरा गाल भी कर देता था। ब्रिस्टर हिल की सड़क का रास्ता भी इससे अधिक अच्छा नहीं होता था। जिस समय, विस्तृत, खुले खेतों की सामग्री वालडेन रोड की दीवारों के बीच चिन जाती थी, और किसी भी यात्री के पदचिह्न मिटने में आध घंटे से अधिक काल नहीं लगता था, उस समय भी मैं एक सौहार्दपूर्ण रेड इंडियन की भाँति नगर को जाया करता था। और मेरे वापिस लौटने के समय तक, सड़क के मोड़ पर, जहाँ उत्तरी-पश्चिमी हवा बड़ी व्यस्तता से हिम-कण इकट्ठे करती रहती थी, मुझे नई जमी हुई बर्फ मिलती थी। इस पर न खरगोश के पदचिह्न मिलते थे, और न मैदानी चूहे के ही छोटे-छोटे चिह्न दिखाई देते थे। फिर भी, बीच जाड़ों में भी, मुझे कोई-न-कोई अपेक्षाकृत उष्ण, नम स्थल मिल ही जाता था जहाँ घास और 'स्कैक-कैबेज' अपनी चिर-हरीतिमा धारण किये दिखाई देते और कभी-कभी कोई अधिक साहसी चिड़िया वसंत की प्रतीक्षा करती हुई मिल जाती थी।

कभी-कभी जब मैं शाम को टहलकर लौटता तो इस हिम-पात में भी, मेरे द्वार से आते हुए किसी लकड़हारे के गहरे पदचिह्न मुझे मिलते, चूल्हे पर छीलन का एक गट्ठर रखा मिलता, और उसके पाइप की गंध मेरे घर में भरी होती थी। अथवा यदि किसी रविवार की संध्या को मैं घर पर ही होता तो मुझे एक चतुर किसान की बर्फ पर चलने की चरमराहट सुनाई पड़ती जो 'बातचीत' करने के लिए दूर से वन में होकर मेरे घर आता था। वह अपने पेशे के उन कुछ लोगों में से था, जो अपने 'खेत पर' काम करते हैं। वह प्रोफेसर की 'गाउन' की बजाय 'फ्रौक' (पादरी का चोगा) पहनता था और वह 'चर्च' या 'राज्य' से कोई उपदेश ग्रहण करने को उतना ही उत्सुक रहता है, जितना कि अपने अहाते से खाद ढोकर ले जाने को। हम उस असभ्य, सरल युग की बात किया करते थे, जब लोग अनाच्छादित बुद्धि लिये, अलाव के चारों ओर बैठकर इस ऋतु का सामना करते थे। जब भोजन के बाद और कोई फल न मिलता, तो हम लोग कितने ही ऐसे अखरोटों पर दाँत आजमाया करते थे जिन्हें चतुर गिलहरियाँ छोड़ जाती हैं, क्योंकि बहुत मोटे छिलके वाले अखरोट सामान्यतः खोखले होते हैं।

गहनतम हिम-पात और झंझावात में भी जो व्यक्ति सबसे दूर से मेरे घर

आता था, वह था एक कवि। किसान, शिकारी, संवाददाता, यहाँ तक कि दार्श-निक भी भयभीत होकर लक्ष्य-च्युत हो सकता है, किन्तु कवि किसी के रोके नहीं रुकता, क्योंकि वह विशुद्ध प्रेम से प्रेरित होता है। उसके आने और जाने की भविष्यवाणी कौन कर सकता है? उसका व्यापार उसे किसी भी समय घर से निकाल लेता है, उस समय भी जब डाक्टर लोग सो जाते हैं। यह छोटा-सा घर हम लोगों के उन्मुक्त आनन्द और गम्भीर वार्तालाप कीं ध्वनि से गूँज उठता था और वालडेन घाटी की दीर्घकालीन शांति की क्षति पूर्ति हो जाती थी। तब इस की तुलना में ब्रोडवे नीरव और वीरान प्रतीत होता था। समुचित अंतराल पर हास्याभिवादन चलता रहता जो किसी पिछले या आगे आने वाले मजाक से सम्बन्धित होता था। हम लोगों ने पतली लपसी का उपभोग करते हुए, जीवन के अनेक 'बिलकुल नये' सिद्धान्त बनाये, जिनमें उत्सव का आनन्द और दर्श-नोचित सूक्ष्म बुद्धि, दोनों का ही योग रहता था।

अपने सरोवर-वास के अंतिम शीतकाल के एक और अतिथि को मैं नहीं भूलूँगा, जो गाँव में होकर, बर्फ, मेह और अंधकार में होकर पेड़ों के बीच से मेरे दीपक के प्रकाश को देखता हुआ चला आता था, और मेरे साथ शीतकाल की लम्बी संध्या में भाग लेता था। वह दार्शनिकों की जाति के अन्तिम सदस्यों में से है। कनेक्टीकट ने यह दार्शनिक संसार को प्रदान किया है। पहले वह कनेक्टीकट के बर्तनों की फेरी लगाता था और बाद में, उसीके शब्दों में, अपने विचारों की फेरी लगाने लगा। ईश्वर को सहारा देते हुए, मानव की भर्त्सना करते हुए अब भी वह यही फेरी लगाता है; फल के नाम पर उसके पास मस्तिष्क ही है, जैसे नारियल या अखरोट के भीतर गिरी होती है। मेरा खयाल है कि जीवित व्यक्तियों में वह सबसे अधिक निष्ठावान है। उसके शब्दों और दृष्टिकोण में सदा अन्य व्यक्तियों की परिचित परिस्थिति की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ परिस्थिति की मान्यता होती है। कालांतर में उसीके निराश होने की सम्भावना सबसे कम है। उसका व्यापार अभी अच्छी तरह नहीं चलता है। वर्तमान में वह अपेक्षाकृत उपेक्षित है, किन्तु समय आने पर ऐसे नियम लागू होंगे जिनके बारे में अभी अधिकतर लोग सोच भी नहीं पाते, और तब परिवारों के स्वामी, तथा राजे-महाराजे उसके पास पथ-प्रदर्शन के लिए आया करेंगे।

"जो शांति का दर्शन नहीं कर पाते, वे कितने अंधे हैं।"

वह मानव जाति का सच्चा मित्र है, मानव-प्रगति का लगभग केवल-मात्र

बंधु है। वह 'ओल्ड मोर्टेलिटी'[1] (Old Mortality)—बल्कि यों कहिए 'इम्मोर्टेलिटी' (Immortality–अमरता) है—जो मानव-शरीरों पर अंकित मूर्त्ति को अथक धैर्य और निष्ठा से स्पष्ट करता जाता है, उस परमात्मा को जिसके विकृत स्मारक वे हैं। अपनी सत्कारपूर्ण बुद्धि के साथ बच्चों, भिक्षुकों, पागलों और पंडितों को वह आलिंगन में भर लेता है; सभी के विचार का आदर करता है, और उसमें साधारणतः कुछ विस्तार, कुछ सौंदर्य भर देता है। मैं सोचता हूँ कि उसे इस संसार के राजपथ पर एक धर्मशाला खोल देनी चाहिए जहाँ सभी राष्ट्रों के दार्शनिक ठहर सकें, और बाहर लिखा रहे "मानव का स्वागत है, उसके पशु का नहीं। जिनके पास अवकाश है, शांत मन है, जो सत्पथ के आकांक्षी हैं, पधारें।" वह कदाचित् सबसे सही मस्तिष्क वाला व्यक्ति है और जहाँ तक मैं जानता हूँ, उसमें सबसे कम सनक है। जैसा कल था वैसा ही कल (आगामी) होगा। पूर्वकाल में हम दोनों टहलने जाते थे, बातचीत करते जाते थे। हम संसार को सचमुच अपने पीछे छोड़ देते थे, क्योंकि वह इसकी किसी भी संस्था से बँधा नहीं है, स्वतंत्र नागरिक है। जिधर भी हम बढ़ते थे, लगता था मानो पृथ्वी और आकाश एक दूसरे से मिल गए हों, वह भूदृश्य में चार चाँद लगा देता था। नील वस्त्रधारी, जिसका समुचित वितान आसमान है, जो उसकी प्रशांति को प्रतिबिम्बित करता है। मैं नहीं देखता कि वह कभी भी कैसे काल कवलित हो सकता है; प्रकृति उसे नहीं छोड़ सकती।

हम दोनों विचारकर कुछ तख्तियाँ खूब सुखाकर उन्हें छीलने के लिए बैठ जाते थे, अपने-अपने चाकू उन पर आजमाया करते थे। चीड़ के पीतवर्ण दाने की मन-ही-मन प्रशंसा करते रहते थे। हम इतनी सावधानी से, धीमे से, आदर भाव से चिंतन-धारा में चलते थे कि इस धारा में से विचारों की मछलियाँ भयभीत होकर भाग नहीं जाती थीं, न तट के किसी मछली मारने वाले की बंसी से ही डरती थीं, बल्कि बड़ी शान से आती-जाती थीं, उन बादलों की भाँति जो पश्चिमी आकाश में तिरते रहते हैं, मोती की सीप की भीतरी तह के इंद्रधनुषी रंगों की भाँति जो बनते और मिटते रहते हैं। वहीं हम लोग कार्य-रत रहते थे,

---

१. ओल्ड मोर्टेलिटी-एवर्ट पेटर्सन (अठारहवीं सदी), कहा जाता है कि, कब्रिस्तानों में 'कवेनैण्टरों' के स्मारकों की सफाई और मरम्मत करता फिरता था ताकि वे सुरक्षित रह सकें।

पुराणों को दुहराते थे, कथाओं को सुधारते थे, और हवाई किले बनाया करते थे जिनके योग्य नींव पृथ्वी पर नहीं मिल सकती थी। महान् दृष्टा! महान् आशावान्! जिसके साथ वार्तालाप करना न्यू इंग्लैण्ड की रात्रि का महान् मनोरंजन होता था। क्या ही बातचीत जमती थी हम लोगों की, एक तपस्वी, दूसरा दार्शनिक और तीसरा वह वृद्ध जिसका मैं जिक्र कर चुका हूँ, हम तीन! इस वार्तालाप से मेरे छोटे-से घर का विस्तार बढ़ा जाता था और हम लोग उसका पूरा-पूरा लाभ उठाते थे। मैं यह बताने का साहस नहीं कर सकता कि प्रति वर्ग इंच के ऊपर वायुमंडल के दबाव का भार कितने पौंड बढ़ जाता था, इस वार्तालाप के कारण इस छोटे-से घर के जोड़ खुल जाते थे जिन्हें बाद में नीरसता के बंद लगाकर जोड़ना पड़ता था ताकि वह चुए नहीं—लेकिन मेरे पास तो यह बंद पहले से ही पर्याप्त मात्रा में जमा रहता था। एक व्यक्ति और था, जिसके घर पर गाँव में मैंने 'ठोस समय' बिताया था, जो बहुत काल तक याद रहेगा। वह भी समय-समय पर मेरे घर आता था। बस ये ही मेरे मिलने-जुलने वाले थे।

अन्य सभी स्थानों की भाँति वहाँ भी मैं कभी-कभी उस 'अतिथि की प्रतीक्षा किया करता था जो कभी नहीं आता। विष्णु पुराण में लिखा है, "गृहस्थ संध्या में अपने आँगन में बैठकर गौदोहन-काल-पर्यन्त, अथवा चाहे तो और देर तक अतिथि के आगमन की प्रतीक्षा करे।" मैं बहुधा इस आतिथ्य-कर्त्तव्य का पालन करता था, इतने काल तक प्रतीक्षा करता रहता था जितने में गायों का समूचा समूह दुह लिया जाय, किन्तु कहीं भी यह अतिथि नगर से आता दिखाई नहीं देता था।

१५. जाड़ों के जीव

शीतकाल में जब सरोवर खूब जम जाते तो अनेक स्थानों के लिए कम दूरी वाले रास्ते मिल जाते थे। साथ ही उनकी जमी हुई सतह पर खड़े होकर नज़र दौड़ाने पर चारों ओर के भूदृश्य में नवीनता दिखने लगती थी। वर्फ़ से ढके हुए 'पिलण्ट पाँड' को जब मैंने पार किया (हालाँकि मैं उसे अनेक बार पार कर चुका था) तो मुझे वह अप्रत्याशित रूप से इतना विस्तीर्ण, और इतना विचित्र लगा कि मुझे "वैफिन्स खाड़ी" की याद आ गई। मैं वर्फ के एक मैदान पर खड़ा हुआ था, चारों ओर लिकन की पहाड़ियाँ थीं, और मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैं यहाँ प्रथम बार आया हूँ। एक अनिश्चित दूरी से अपने भेड़ियों-जैसे कुत्तों के साथ धीरे-धीरे चलते हुए मछुओं को देखकर कोई यह समझता कि सील मछली के शिकारी या ऐस्किमों चले जा रहे हैं अथवा धुंध होने पर वे प्राचीन कथाओं के जीव प्रतीत होते थे, और मैं निश्चय नहीं कर पाता था कि वे दैत्याकार हैं या वौने। शाम को सड़क से न जाकर मैं इसी रास्ते से व्याख्यान देने के लिए लिकन जाता था। अपनी झोंपड़ी से इस व्याख्यान भवन तक एक भी घर मुझे नहीं मिलता था। रास्ते में 'गूज़ पौंड' पड़ा था। वहाँ हिममूपों (muskrats) की एक वस्ती थी। उनके घर वर्फ पर वने हुए थे, लेकिन इस सरोवर को पार करते समय एक भी दिखाई नहीं पड़ता था। अन्य सरोवरों की ही भाँति साधारणतः वालडेन पर वर्फ नहीं गिरती, यदा-कदा कोई झोंका आ जाता है। इसलिए जिन दिनों इसीके समान ऊँचाई वाले स्थानों पर दो फीट ऊँची वर्फ गिर जाती थी और ग्रामीण जन अपनी गलियों में वन्द हो जाते थे, उन दिनों यह सरोवर मेरा अहाता वन जाता था, जहाँ मैं स्वच्छन्दतापूर्वक टहलता था। इस अहाते में, गाँव की गलियों से दूर, वर्फ-गाड़ी की घंटियों से दूर (जो कभी-कभी सुनाई पड़ती थीं) मैं वर्फ पर सरका करता था, मानों कोई वड़ा विस्तीर्ण हरिण-क्षेत्र हो। तट पर खड़े ओक और चीड़ के वृक्ष वर्फ के वोझ से सरोवर पर झुके चमकते रहते थे।

शीतकाल की रातों में और वहुधा दिन में भी, अनिश्चित दूरी से आने वाला, उल्लू का एकाकी किन्तु सुरीला स्वर सुनाई पड़ता था। जमी हुई पृथ्वी

को यदि किसी अच्छे मिजराव से वजाने पर जैसी आवाज निकलेगी वैसी ही थी यह। यह ठेठ वालडेन वन की भाषा थी, जिससे मैं खूब परिचित हो गया था, यद्यपि इस पक्षी को यह आवाज करते समय कभी नहीं देखा। जाड़ों में शाम को जब भी मैं अपने द्वार खोलता तो यह आवाज सुनाई पड़ती, हू हू हू, हूरर हू की मधुर ध्वनि आती, पहले तीन, स्वर सुनकर प्रतीत होता मानो कोई कह रहा हो 'हाउ डू यू डू ?' (तुम कैसे हो ?) कभी-कभी केवल 'हू हू' ही सुनाई पड़ता था। जाड़ों के आरम्भ की बात है। सरोवर पूरी तरह से जमा नहीं था। एक रात लगभग नौ वजे मैं एक कलहंस की आवाज सुनकर चौंक पड़ा, और द्वार पर आकर घर के ऊपर से कलहंसों के पंखों की सरसराहट सुनी तो लगा मानो कोई तूफान वन के ऊपर से गुजर रहा हो। वे सरोवर के ऊपर उड़ते हुए 'फेयर हैविन' की ओर चले गए। शायद मेरे घर की रोशनी के कारण वे उतरे नहीं। उनका नायक नियमित रूप से हाँक लगाता चला जा रहा था। अचानक मेरे पास ही एक उल्लू-जैसी कर्कश और तेज आवाज में चिल्लाने लगा। वैसी मैंने इन वन के किसी वासी से नहीं सुनी है। वह नियमित गति से उसकी हाँक का उत्तर देने लगा मानो हडसन खाड़ी से आने वाली इस अनधिकार प्रवेशकर्त्ता का भंडाफोड़ करके और यह दिखाकर कि इस भूमि के वासी की आवाज उसकी हाँक से भी अधिक वुलन्द और तेज है, वह उसे अपमानित करने पर तुला हुआ हो, और इस प्रकार वह उसे हू हू करके कौंकर्ड के क्षितिज से वाहर कर देना चाहता हो। रात्रिकाल मेरा है, इस काल में मेरे गढ़ को चौंका देने में तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? क्या तुम यह सोचते हो कि इस काल के किसी भी क्षण में तुम मुझे ऊँघता हुआ पकड़ लोगे ? और क्या तुमने यह समझ रक्खा है कि तुम्हारे सामान फेफड़े और कंठ मेरे पास हैं ही नहीं ? वू हू, वू हू, वूहू। यह मेरी सुनी हुई बेसुरी आवाजों में सबसे उल्लासमय थी। फिर भी यदि किसी के कानों को पहचान होती तो पता लगाता कि इस वेसुरेपन में भी एक ऐसा सुरीलापन था जैसा इन मैदानों ने न क़भी देखा होगा, न सुना होगा।

कौंकर्ड के इस भाग में अपनी महान् पर्यंक-शायिनी वर्फ की गड़गड़ाहट भी मुझे सुनाई पड़ती थी, मानो वह उदर के वायु-विकार के कारण अथवा दुःस्वप्नों से पीड़ित होकर व्याकुल हो रही हो और करवट लेना चाहती हो। कभी-कभी तुषार के कारण जमीन चटखाने की आवाज आती थी, मानो किसी ने मेरे

द्वार पर पशुओं का कोई दल हाँक दिया हो। सुवह मुझे भूमि में चौथाई मील लम्बी तिहाई इंच चौड़ी दरार मिलती।

कभी-कभी चाँदनी रातों में मुझे वर्फ के ऊपर लोमड़ियों की आवाज सुनाई पड़ती थी जो तीतर या और किसी शिकार की तलाश में निकल पड़ी होतीं। वे जंगल के कुत्तों के समान प्रेतों की भाँति चिल्लाती थीं। मानो उन्हें कोई चिन्ता घेरे हुए हो, या अभिव्यक्ति की खोज कर रही हों, प्रकाश के लिए संघर्ष कर रही हों, तुरन्त कुत्ता वनकर सड़कों पर स्वच्छंदतापूर्वक दौड़ लगाने का प्रयास कर रही हों। क्योंकि यदि हम युगों पर दृष्टि डालें, तो क्या मानव की ही भाँति पशुओं में भी सभ्यता के विकास का क्रम नहीं चला होगा? ये लोमड़ियों मुझे माँदों में रहने वाले आदिम मनुष्य प्रतीत होती थीं जो अव तक आत्म-रक्षा करती चली जा रही हों और अपने रूप-परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रही हों। कभी-कभी कोई लोमड़ी मेरी रोशनी देखकर मेरी खिड़की के नीचे आ जाती थी और अपनी भाषा में मानो मुझे शाप देकर लौट जाती थी।

सामान्यतः लाल-गिलहरी (Scirus Hudsonius) उषाःकाल में मेरी छत पर इधर से उधर दौड़ लगाकर मुझे जगा देती थी मानो उसे इसी काम के लिए वन से भेजा जाता हो। जाड़ों में मैंने आधा वुशल मक्का के भुट्टे (जो पक नहीं पाए थे) दरवाजे के पास वर्फ के ऊपर फेंक दिये। इन भुट्टों के प्रलोभन से आने वाले नाना प्रकार के जानवरों की गतिविधि देखने में वड़ा आनन्द आता था। झुटपुटे में और रात में नियम से खरगोश आते थे और छककर भोजन करते थे। दिन-भर लाल गिलहरियाँ आती-जाती रहती थीं और अपनी हरकतों से मेरा खूब मनोरंजन करती रहती थीं। कोई वड़ी साव-धानी से झाड़ीदार वलूत के वृक्षों में होकर, रुक-रुककर, वर्फ के गोलों पर दौड़ती चली आती थी, मानो कोई पत्ती हवा में उड़कर आ गई हो। अभी वह आश्चर्यजनक तेजी से, सारी शक्ति लगाकर, अपने पैरों की कल्पनातीत फुर्ती दिखाती हुई इस ओर कुछ कदम आती है मानो कोई शर्त वद गई हो और वह उतने ही कदम दूसरी ओर चली जाती है। एक वार में वह कभी भी ढाई तीन गज से अधिक नहीं जाती। और फिर वड़े मजेदार ढंग से, निरर्थक ही कुलोट लगा जाती है, मानो सृष्टि-भर की सारी आँखें उसी की ओर टकटकी लगाये देख रहीं हों। जिस प्रकार किसी नर्त्तकी की भंगिमाओं में यह निहित होता है कि उसे दर्शकगण देख रहे हैं उसी प्रकार गिलहरी की

सारी हरकतों में भी भले ही वह वन के विराट् निर्जन भाग में हो, सारी दूरी चलने में जितना समय लगे उससे अधिक वह देर करने में और चारों ओर देखने में लगा देती है, और फिर, अचानक पलक मारते ही, वह, अपनी घड़ी में चाभी देती हुई, अपने काल्पनिक दर्शकों को खरी-खोटी सुनाती हुई, अपने-आपसे और साथ ही सारी सृष्टि से बातें करती हुई, किसी नये चीड़ की चोटी पर दिखाई देगी। इसकी इन गतियों का कोई कारण मैं नहीं जान सका और मेरा खयाल है कि वह स्वयं भी नहीं जानती। अन्त में वह मक्का के ढेर पर जा पहुँचती और कोई बढ़िया-सा भुट्टा छाँटकर नाचती हुई, अनिश्चित त्रिकोणमितिक रास्ते से मेरे चट्टे की सबसे ऊपर की लकड़ी पर खिड़की के सामने जा बैठती जहाँ से वह मुझे आमने-सामने देख सके। यहाँ वह घंटों बैठी रहती थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह नया भुट्टा उठा लाती थी। पहले तो वह बड़ी तेजी से कुतर-कुतर कर छूँछ फेंकती जाती थी और बाद में वह अधिक स्वाद लेने लगती थी। दानों का केवल भीतरी गूदा ही चखना आरम्भ कर देती और अपने भोजन से खिलवाड़ करने लगती थी। भुट्टा, जो उसके एक पंजे से लकड़ी पर संतुलित रहता, अब असावाधानी के कारण नीचे गिर जाता, और वह अनिश्चय के हास्यप्रद भाव से उसकी ओर देखने लगती कि कहीं यह कोई सजीव पदार्थ तो नहीं है। वह निश्चय नहीं कर पाती थी कि फिर से इसको उठा ले, या नया भुट्टा ले, या भाग जाय। कभी वह भुट्टे की ओर देखती, तो कभी वायु में जो कुछ है उसे सुनने का प्रयास करती। इस प्रकार वह धृष्ट जीव एक ही पूर्वाह्न में कई भुट्टों को खराब कर डालता था। और अन्त में वह अपने से कहीं बड़ा मोटा-सा भुट्टा उठाकर सावधानी से संतुलित करते हुए जंगल का रास्ता लेती, मनो कोई शेर भैंसे को लिये जा रहा हो। वह टेढ़े-मेढ़े रास्ते से रुक-रुककर, घसीटते हुए मानो वह उसके लिए बहुत भारी हो, उसका एक सिरा उठाए हुए, इस निश्चय के साथ कि चाहे जो हो वह ले ही जायगी, (यह भी अपनी तरह का एक ही चपल और सनकी जीव होता है) अपने वासस्थान तक ले जाती जो शायद दो-तीन सौ गज़ की दूरी पर किसी वृक्ष की चोटी पर होता। बाद में उसकी छूँछ मुझे वन में अनेक दिशाओं में बिखरी मिलती थी।

अन्त में नीलकंठ आते थे जिनकी बेसुरी आवाजें दो फर्लांग दूर से ही सुनाई पड़ जाती थी। वे बड़ी सावधानी से, चुपके-चुपके, चोरी-छिपे एक पेड़

से दूर पर फुदकते हुए निकटतर आते और गिलहरियों द्वारा गिराये गए दानों को चुगते थे। फिर चीड़ की किसी शाखा पर बैठकर वे किसी बड़े दाने को जल्दी से गटकने की कोशिश करते जो उनके गले में फँस जाता, और फिर बड़े प्रयास के बाद उगलकर एक घंटा वे अपनी चोंच से तोड़ने में लगा देते। स्पष्टतः यह उनकी चौर्यवृत्ति थी। उनके प्रति मेरे मन में अधिक सम्मान नहीं था। किन्तु गिलहरियाँ (जो प्रारम्भ में डरती थीं) अपना काम ऐसे करतीं थीं मानो वे अपनी ही चीज़ ले रही हों।

इस बीच चिकैडी नाम की चिड़ियों का झुंड भी आ जाता था। ये गिलहरियों की गिरी हुई जूठन के टुकड़ों को उठाकर निकटतम टहनी पर जा बैठती थी और उस टुकड़े को दोनों पंजों में दबाकर उस पर चोंच से प्रहार करती रहती थीं, मानो वह पेड़ की छाल में छिपा हुआ कोई कीड़ा हो, जब तक कि वह उनके पतले गले में उतरने योग्य न हो जाता। इन छोटी-छोटी फुदकती हुई चिड़ियों का एक छोटा-सा झुंड प्रत्येक दिन मेरे लकड़ी के चट्टे से या द्वार पर पड़े हुए टुकड़ों से भोजन प्राप्त करने के लिए आता था। ये चिड़ियाँ वन से धीरे-धीरे चहकती आतीं, जैसे घास पर तुहिन-कणों की मंद खनखनाहट होती है, या वे प्रमुदित होकर डे डे डे की आवाज करती आतीं या वसन्त-जैसे मौसम में पतली-सी आवाज में 'फी-बी' का घोष करती आती थीं। उनसे इतनी घनिष्टता हो गई थी कि एक दिन मैं बाहों में लकड़ियाँ लिये जा रहा था तो एक चिड़िया उन पर आ बैठी और बिना किसी भय के चोंच मारने लगी। एक दिन मैं गाँव के एक बागमें गुड़ाई कर रहा था तो एक गौरैया मेरे कंधे पर आ बैठी। उस समय मैंने अनुभव किया कि इस गौरैया के बैठने से मुझे जितना गौरव मिला है उतना किसी भी स्कन्धाभरण (कंधे पर वर्दी में लगा हुआ सैनिक-चिह्न) से नहीं मिल सकता। अन्त में गिलहरियों से भी काफी घनिष्ठता हो गई थी और निकट होने पर कभी-कभी वे मेरे जूते पर बैठ जाती थीं।

जिन दिनों पृथ्वी पूरी तरह बर्फ से ढक न पाई होती, और फिर जाड़ों के अन्तिम काल में भी, जब मेरे दक्षिणी ढाल की और लकड़ी के चट्टे की बर्फ पिघलने लगती, उन दिनों तीतर सुबह-शाम चुगने के लिए आते थे। वन में आप चाहे जिधर जायँ फर्र से उड़कर तीतर सूखी पत्तियों और टहनियों पर से बर्फ झाड़ देता हैं, जो सूर्यकिरणों में छनकर स्वर्णधूलि की भाँति भूमि पर गिर पड़ती है। यह बहादुर पक्षी जाड़े से डरकर भागता नहीं। बहुधा

यह वर्फ में ढँक जाता है, और कहा जाता है कि "कभी-कभी वह नर्म वर्फ में घुसकर एक-दो दिन तक उसमें छिपा रहता है।" खुले मैदान में भी वे मुझे देखकर चौंक पड़ते थे, जहाँ वे जंगली सेवों का बौर खाने के लिए दिन छिपे आ जाते थे। वे प्रत्येक शाम को नियम से विशेष पेड़ों पर आते हैं, जहाँ चालाक शिकारी प्रतीक्षा करते रहते हैं। मुझे प्रसन्नता इस वात की है कि कुछ भी हो तीतर अपना पेट भर ही लेता है। वह प्रकृति का अपना पक्षी है जो वौर खाता है और जलपान करता है।

जाड़ों के धुँधले प्रातःकाल में, या छोटी-सी संध्या में कभी-कभी मुझे शिकारी कुत्तों के भौंकने की और उनकी भाग दौड़ की आवाज़ सुनाई पड़ती थी। ये कुत्ते जानवरों का पीछा करने की अपनी मूलप्रवृत्ति का प्रतिरोध नहीं कर पाते थे। थोड़ी देर बाद शिकारी विगुल की आवाज़ भी सुनाई पड़ती थी जिससे पता चल जाता था कि कोई उनके पीछे-पीछे चला आ रहा है। सारा वन-प्रांत वार-वार गूँज उठता है, फिर भी न तो कोई लोमड़ी ही सरोवर के निकट के चौरस मैदान में भागती दिखाई देती है, और न शिकार का पीछा करता हुआ कुत्तों का झुंड ही। और सम्भवतः शाम को मुझे शिकारी लोग दिखाई देते हैं अपनी स्लेज (वर्फ पर सरकने वाली गाड़ी) के पीछे विजय-चिह्न के रूप में केवल एक लोमड़ी की पूँछ लटकाए हुए। वे लोग मुझे बताते हैं कि यदि लोमड़ी वर्फ में दुवक जाय तो वची रहेगी—अथवा यदि वह सीध में दौड़े तो कुत्तों की पकड़ में नहीं आ सकती। लेकिन जब वह पीछा करने वालों से काफी आगे निकल जाती है, तो वैठकर सुस्ताने लगती है, और जब वे पास पहुँच जाते हैं, तब फिर दौड़ना प्रारम्भ करती है, और अपनी पुरानी जगह के ही चक्कर काटती है, जहाँ शिकारी घात लगाए बैठे रहते हैं। कभी-कभी वह काफी दूर तक मेंड़ पर दौड़ जाती है और फिर एक ओर कूद जाती है। शायद उसे यह ज्ञान है कि पानी में उसकी गंध नहीं रहेगी। एक शिकारी ने मुझे वताया कि एक वार उसने एक लोमड़ी को कुत्तों द्वारा पीछा किये जाने पर वालडेन में कूदते देखा था। उस समय जमी हुई वर्फ की सतह पर थोड़ा-थोड़ा पानी आ गया था। थोड़ी दूर तक उस पार की ओर जाने के वाद वह फिर उसी किनारे लौट आई। जल्दी ही कुत्ते उधर पहुँचे लेकिन गंध नही पा सके। कभी-कभी अपने-आप शिकार करते हुए कुत्तों का दल मेरे द्वार से गुजरता था और विना मेरी ओर ध्यान दिये मेरे घर का चक्कर काटने लगता था। वे

भौंकते-चिल्लाते जाते थे। लगता था मानो एक विशेष प्रकार का पागलपन उन पर सवार हो गया हो, जिससे कोई भी चीज़ उन्हें विचलित नहीं कर सकती। वे इसी प्रकार चक्कर काटते रहते थे जब तक कि किसी लोमड़ी का पीछा न पकड़ लेते, क्योंकि कोई भी होशियार शिकारी कुत्ता इसके लिए सब-कुछ निछावर कर सकता है। एक दिन एक आदमी लैक्सिगटन से मेरे पास आया। वह अपने कुत्ते का पता लगाना चाहता था जो शिकार का पीछा करते हुए बड़ी दूर तक निकल गया था और एक सप्ताह से अपने-आप शिकार कर रहा था। मुझे भय है कि जो कुछ मैंने उसे बताया उससे उसको कोई पता नहीं चला, क्योंकि ज्यों ही मैं उसे उत्तर देने की कोशिश करता त्यों ही वह पूछ बैठता, "तुम यहाँ क्या करते हो?" उसने कुत्ता खो दिया था, किन्तु एक आदमी पा लिया था।

जिन दिनों पानी सबसे अधिक गर्म होता था उन दिनों एक बूढ़ा शिकारी साल में एक बार, वालडेन में स्नान करने के लिए आता था और मुझसे भेंट करता था। उसने मुझे बताया था कि बहुत दिन पहले एक बार तीसरे पहर वह अपनी बंदूक लेकर निकल पड़ा और वालडेन वन में घूमने लगा। जब वह वैलैंड सड़क पर जा रहा था तो उसे कुत्तों के भौंकने की आवाज़ पास आती सुनाई पड़ी। थोड़ी ही देर में एक लोमड़ी मेंड से सड़क पर कूदी और विचार की भाँति तेज़ी से दूसरी मेंड पर छलाँग लगाकर निकल गई। गोली उसे छू भी न सकी। उससे कुछ पीछे एक बूढ़ी कुतिया अपने तीन पिल्लों के साथ भौंकती हुई आई और गायब हो गई। तीसरे पहर जब वह वालडेन के दक्षिण में घने वन में विश्राम कर रहा था तो उसे 'फेयर हैविन' की ओर से आती हुई कुत्तों के भौंकने की आवाज़ फिर सुनाई पड़ी। कुत्ते अब भी उस लोमड़ी का पीछा कर रहे थे। यह आवाज वन को गुँजाती हुई निकटतम आने लगी, अब 'वैल मीडो' से, और अब 'बेकर फार्म' से। बहुत देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा और इस मधुर संगीत को सुनता रहा। यह संगीत शिकारी के कानों को बड़ा प्रिय होता है। तभी लोमड़ी दिखाई दी। उसके दौड़ने की आवाज़ पत्तियों की संवेदनशील सरसराहट में दब रही थी—वह तेज़ी से, अनुद्विग्न भाव से आगे बढ़ती गई और पीछा करने वालों को बहुत पीछे छोड़ गई। थोड़ी देर बाद वह उछलकर एक चट्टान पर चढ़ गई और सीधी बैठकर सुनने लगी। उसकी पीठ शिकारी की ओर थी। क्षण भर को शिकारी महोदय के मन में दया-

भाव आया और उसने उसके हथियार को रोक दिया। किन्तु यह तो क्षणिक मनोदशा थी, और जैसे एक विचार के बाद दूसरा तेज़ी से आता है, वैसे ही अगले क्षण आवाज़ आई, 'ठाँय,'—और लोमड़ी चट्टान पर लुढ़कती हुई मरकर नीचे गिर पड़ी। शिकारी अब भी अपने स्थान पर बैठा रहा और कुत्तों की आवाज़ सुनता रहा। अब भी वे बढ़े चले आ रहे थे और पीछे का सारा वन उनकी प्रेतों-जैसी चिल्लाहट से गूंज रहा था। अंत में बूढ़ी कुतिया जमीन सूँघती दिखाई दी, और फिर वह सीधी चट्टान की ओर दौड़ गई। किन्तु लोमड़ी को मृत देखकर उसने पीछा करने की अपनी क्रिया छोड़ दी, मानो आश्चर्य-चकित हो गई हो। अब वह चुपचाप उसके चारों ओर चक्कर काटने लगी। एक-एक करके उसके पिल्ले भी आ गए और वे भी अपनी माँ के समान ही इस रहस्यमय घटना से चुप हो रहे। तब शिकारी आगे आकर उनके बीच में खड़ा हो गया। अब रहस्योद्घाटन हो गया। फिर उसने लोमड़ी की खाल उतारी और वे चुपचाप प्रतीक्षा करते रहे। वे थोड़ी दूर तक उसकी पूँछ के पीछे-पीछे चले और बाद में वन में गायब हो गए। उसी शाम को वेस्टन का एक जमींदार कौंकर्ड के इस शिकारी की कुतिया तक अपने कुत्तों को तलाश करता हुआ आया। उसने बताया कि ये कुत्ते एक सप्ताह से अपने-आप शिकार करते फिर रहे थे। शिकारी को जो कुछ पता था, वह उसने बताया और खाल दे देने को उद्यत हुआ, लेकिन उसने ली नहीं और वहाँ से चला गया। उस रात को भी उसके शिकारी कुत्ते नहीं मिले, लेकिन अगले दिन उसे पता चला कि उन्होंने नदी पार करके 'फार्म हाउस' में रात बिताई और पेट-भर भोजन करने के बाद प्रातःकाल वहाँ से भी चल दिए।

जिस शिकारी ने मुझे यह किस्सा सुनाया था उसी ने मुझे बताया कि सेमनटिंग नाम का एक आदमी 'फेयर हैवेन लैजेज़' में भालुओं का शिकार किया करता था और उनकी खाल के बदले में कौंकर्ड ग्राम से 'रम' (एक प्रकार की शराब) ले लिया करता था। उसीने इस शिकारी को बताया था कि एक बार उसने वहाँ एक 'मूज़' (अमरीका में पाया जाने वाला हिरन) भी देखा था। नटिंग के पास एक प्रसिद्ध शिकारी कुत्ता था जिसका नाम था 'बर्गोईन'। इस कुत्ते को वह 'बूगिन' कहकर पुकारता था। इस कुत्ते को उक्त शिकारी कभी-कभी माँग ले जाता था। इस नगर में एक पुराना व्यापारी था जो कप्तान था, चुंगी का क्लर्क था और साथ ही प्रतिनिधि भी था। उसके खाते में मुझे यह

लेखा मिला है: १८ जनवरी, १७४२-३ जौन मैलवैन के नाम जमा, एक भूरी लोमड़ी—०-२-३। यह लोमड़ी अब यहाँ नहीं पाई जाती। ७ फरवरी, १७४३ के खाते में 'हैज़ेकिया स्ट्रेटन' के नाम से 'बिल्ली की आधी ख़ाल ०-१-३ जमा है। यह अवश्य ही जंगली बिल्ली रही होगी, क्योंकि स्ट्रेटन महोदय फ्रांसीसी युद्ध में सैनिक रह चुके थे, और उन्होंने इससे कम शिकार नहीं किया होगा। मृग-चर्म जमा दिखाये गए हैं, और उनकी खरीद-बिक्री रोज़ होती थी। इस इलाके का जो अन्तिम हिरन मारा गया था, उसके सींग अब भी एक व्यक्ति के पास सुरक्षित हैं। एक अन्य व्यक्ति ने भी मुझे इस हिरन के शिकार के बारे में बताया है, उसके चाचा इस शिकार में गये थे। यहाँ पूर्वकाल में मनमौजी शिकारियों का एक दल रहता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि यहाँ निमरोद नाम का एक सूखा-सा आदमी रहता था जो सड़क के किनारे से पत्ती उठाकर (जहाँ तक मुझे याद पड़ता है) शिकारी के नरसिंगा से भी अधिक सुरीली और वनैली तान छेड़ देता था।

कभी-कभी आधी रात को, जब आसमान में चाँद होता था, मुझे रास्ते में शिकार पर निकले हुए कुत्ते मिल जाते थे। वे, मानो भयभीत होकर, मेरा रास्ता छोड़ देते थे और जब तक मैं निकल न जाता, चुपचाप झाड़ियों में खड़े रहते थे।

मेरे चैस्टनट के भंडार के लिए जंगली चूहों और गिलहरियों के बीच झगड़ा होता था। मेरे घर के चारों ओर एक इंच से चार इंच तक मोटे बीसियों चीड़ के वृक्ष थे जिन्हें चूहों ने पिछले जाड़ों में कुतर डाला था। उनके लिए तो यह ऐसा जाड़ा था जिसमें खाने को कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए उन्हें काफी अंश में, इन वृक्षों की छाल को भी अपने भोजन में शामिल करना पड़ा। गर्मियों में ये पेड़ फिर से जिंदा हो गए और उनमें से कई तो एक फुट की ऊँचाई तक आ गए, हालाँकि वे चारों ओर से कटे हुए थे। अगले जाड़ों के बाद, ये सभी पेड़ मर गए, एक भी न बचा। यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रत्येक चूहे को भोजन के लिए एक पेड़ मिल जाता है जिसे वह नीचे-ऊपर खाने के बजाय गोलाई में खा डालता है, किन्तु शायद इन पेड़ों को छाँटते रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये बड़े घने उगते हैं।

खरहे (*Lepus Americanus*) भी खूब परिचित हो गए थे। एक मादा ने तो मेरे घर के नीचे ही माँद बना ली थी, जहाँ वह जाड़ों भर रही। और मेरे बीच केवल फ़र्श का ही व्यवधान था। प्रातःकाल जब मैं चलना-फिरना

आरम्भ करता था तो वह भी तेजी से भागती थी—ठक, ठक, ठक; जल्दी में सिर लकड़ी के फर्श से लगता था। ये खरहे दिन मुंदे मेरे आलुओं का छीलन खाने के लिए आते थे। उनका रंग जमीन के रंग से इतना मिलता-जुलता था कि वे चुपचाप बैठे होते तो पहचानना कठिन हो जाता था। झुटपुटे में कभी-कभी खिड़की के नीचे बैठा खरहा क्रम से दिखायी देता और गायब हो जाता। जब मैं शाम को द्वार खोलता तो वे एक चीख के साथ छलाँग लगाकर भाग आते थे। एक दिन शाम को एक खरहा मेरे द्वार के पास मुझसे केवल दो कदम की दूरी पर बैठा था—पहले तो वह भय से काँप गया, पर उसकी इच्छा जाने की नहीं हो रही थी। नन्हा-सा था वह, पतला-दुबला, हड्डियाँ निकली हुईं, लटकते कान, पैनी नाक, छोटी-सी दुम और पतले-पतले पंजे। प्रतीत होता था कि प्रकृति में इससे बढ़िया नस्ल अब नहीं रही है, मानो वह अब अपने अंतिम पंजों पर खड़ी हो। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें तरुण और अस्वस्थ लग रही थीं, मानो सूज गई हों। मैंने एक कदम आगे बढ़ाया और उसने छलाँग लगाई। अपने सारे अंग लम्बाई में सीधे करके वह भाग गया और जल्दी उसके और मेरे बीच पूरे वन का अंतर हो गया।

वह देश क्या जिसमें तीतर और खरहे न हों ? ये सबसे सरल और देशी जीवों में से होते हैं। ये परिवार प्राचीन और सुप्रतिष्ठित परिवार हैं जिनसे प्राचीन और अर्वाचीन दोनों युग समान रूप से परिचित हैं। इनमें प्रकृति ने स्वयं अपना रूप-रंग भरा है, जो पत्तियों और भूमि के निकटतम होता है और स्वयं एक-दूसरे के, इसके या तो पंख होते हैं, या पैर। जब कोई खरहा या तीतर सर्र से निकल जाता है तो यह प्रतीत नहीं होता कि कोई जंगली जानवर दिखाई दिया हो; लगता है जैसे कोई प्राकृतिक जीव देखा है, उतना ही प्राकृतिक जितनी कि सरसराती पत्तियाँ। चाहे जितनी क्रांतियाँ हो जायँ, तीतर और खरगोश, भूमि के ये वास्तविक निवासी, अवस्थित ही रहेंगे। यदि वन काट डाला जाता है तो जो झाड़ियाँ और कुल्ले फूट निकलते हैं, उनमें ये जा छिपते हैं और इनकी संख्या पहले से भी अधिक हो जाती है। जिस देश में खरगोश का भरण-पोषण नहीं होता वह निश्चय ही दरिद्र देश होगा। हमारे वनों में दोनों का ही बाहुल्य है और प्रत्येक दलदल के चारों ओर खरगोश और तीतर घूमते दिखाई देते हैं, जिनकी रखवाली कोई चरवाहा करता रहता है ; यद्यपि उन्हें फँसाने के लिए पिंजरे और जाल भी लगे रहते हैं।

१६. शीतकाल में सरोवर

जाड़े की प्रशांत रात्रि के पश्चात् जगते ही मुझे लगता था मानो मुझसे कोई प्रश्न पूछा गया हो, जिसका उत्तर देने का निष्फल प्रयास मैं निद्रावस्था में कर रहा था—क्या, कैसे, कब, कहाँ ? किन्तु यह स्वयं प्रकृति का (जिसमें सभी प्राणी वास करते हैं) उदय होता था, वह शाँत और तृप्त मुख से मेरी बड़ी खिड़कियों में झाँकती थी, 'उसके' अधरों पर कोई प्रश्न न होता था। मैं जागृत होता था एक उत्तरित प्रश्न में, प्रकृति में, दिवस के आलोक में। चीड़ के नये वृक्षों से जड़ी हुई पृथ्वी पर गहरी जमी बर्फ और पहाड़ी का स्वयं वह ढाल जिस पर मेरा घर स्थित है, मानो कह उठते थे—"आगे बढ़ो।" हम मर्त्यलोक के जीव जिन प्रश्नों में उलझे रहते हैं, प्रकृति न उन्हें पूछती है और न उनका उत्तर देती है। वह तो बहुत पहले ही संकल्प कर चुकी है: "हे राजन्, हमारे नेत्र इस सृष्टि के आश्चर्यजनक और वैचित्र्यमय रूप को अभिभूत होकर देखते हैं और उसे आत्मा तक पहुँचाते हैं। रात्रि, निस्संदेह, इस ज्योतिर्मय सृष्टि के अंश को आवृत कर देती है, किन्तु दिन आता है और इस महान् कृति का दर्शन हमें करा देता है, जो पृथ्वी से अंतरिक्ष तक विस्तारित हुई है।"

इसके बाद मैं प्रातःकाल के काम में जुट जाता हूँ। सबसे पहले मैं एक कुल्हाड़ी और बालटी लेकर जल की खोज में जाता हूँ, ठंडी बर्फीली रात के बाद जल की तलाश के लिए उस यंत्र की आवश्यकता होती है जिसकी सहायता से पृथ्वी के गर्भ में स्थित वस्तुओं का पता लगता है। सरोवर की वह तरल, चपल सतह जो वायु के प्रत्येक झोंके से प्रभावित हो जाती थी, जिसमें प्रत्येक आलोक और छाया का प्रतिबिम्ब झलक उठता था, अब जाड़ों में एक-डेढ़ फुट की गहराई तक जमकर ठोस हो जाती है और पशुओं के बड़े-से-बड़े झुंड का भार वहन कर सकती है। कभी-कभी हिम-पात के बाद यह सतह भूमि के समतल हो जाती है और खेतों और सरोवर का भेद नहीं जाना जा सकता। चारों ओर खड़ी पहाड़ियों पर बसने वाले "मारमोट" (हिममूप) की भाँति यह सरोवर अपने पलक मूंद लेता है और कम-से-कम तीन महीने के लिए अक्रिय

हो जाता है। इस हिमाच्छादित क्षेत्र में मानो पहाड़ियों के बीच किसी मैदान में, खड़े होकर मैं पहले एक फुट गिरी हुई वर्फ को काटता हूँ और फिर एक फुट जमी हुई वर्फ को काटता हूँ। इस प्रकार अपने पैरों के तले एक खिड़की-सी खोल लेता हूँ, जहाँ झुककर जलपान करते समय मैं मछलियों के नीरव बैठकखाने में झाँकता हूँ जिसमें प्रकाश की हल्की-सी किरणें पहुँचती हैं मानो खिड़कियों में अपारदर्शी काँच जड़ा हुआ हो, जहाँ वही गर्मियों वाला रेतीला फर्श होता है, वहाँ निश्चल नीरवता छाई रहती है जैसी कि दिवा-संधि के पीले आकाश में, यह वहाँ के निवासियों के उद्वेगरहित स्वभाव के सर्वथा संगत ही होती है। जिस प्रकार हमारे सिर के ऊपर आकाश है, उसी प्रकार हमारे पैरों के तले भी है।

प्रातःकाल में, जब तुषार के कारण सभी चीजों में भुरभुरापन और ताज़गी भरी होती है, लोग अपनी वंसी और हल्का-सा भोजन लेकर आते हैं और पर्च के शिकार के लिए अपनी महीन डोरियों को फैला देते हैं। ये वनवासी लोग प्रवृत्ति के अनुसार अपने नगरवासियों से भिन्न ढंग अपनाते हैं, किसी दूसरे ही शासन पर भरोसा करते हैं। अपने आवागमन से ये लोग नगरों के उन विभिन्न भागों को सींकर सम्बद्ध कर देते हैं, जो अन्यथा फटकर छिन्न-भिन्न हो जाते। मोटे, धग्गड़, ऊनी कपड़े पहने, ये लोग किनारे की सूखी पत्तियों पर बैठकर भोजन करते हैं, प्राकृतिक वाङ्मय में उनकी गति उतनी ही होती है जितनी नगरवासियों की कृत्रिम वाङ्मय में। उन्होंने ग्रंथ कभी नहीं पढ़े; जितना कुछ वे करते हैं उससे कहीं कम वे जानते और वता सकते हैं। कहा जाता है कि जो काम वे करते हैं, उन्हें अभी तक जाना नहीं जा सका है। यहाँ एक व्यक्ति एक बड़ी-सी 'पर्च' मछली का चारा काँटे में लगाकर 'पिकरेल' का शिकार कर रहा है। उसकी वालटी में झाँकने पर उतना ही आश्चर्य होता है जितना कि गर्मी के दिनों में सरोवर में झाँकने पर। मानो वह अपने घर पर ग्रीष्म ऋतु को ताले में वंद कर रखता है, अथवा यह जानता है कि ग्रीष्म ऋतु कहाँ चली जाती है। अच्छा यह तो बताइए इस भरे जाड़े में उसे ये 'पर्च' मछलियाँ मिलीं कहाँ से? अरे, जमीन जम जाने के कारण उसने लकड़ी के सड़े हुए लट्ठों में से कीड़े निकाले और उनसे मछली पकड़ी। प्रकृतिज्ञ का अध्ययन जिस गहराई तक जाता है, उससे कहीं अधिक गहराई में उसका सारा जीवन ही व्यतीत होता है। प्रकृतिज्ञ के लिए तो वह स्वयं अध्ययन का एक विषय

होता है। प्रकृतिज्ञ कीड़ों को तलाश करते समय धीरे से अपने चाकू से काई को या लकड़ी की छाल को छीलता है, लेकिन यह अपनी कुल्हाड़ी से लट्ठों को भीतर तक फाड़ डालता है, और छाल और काई उचटकर दूर जा गिरती है। वृक्षों की छाल उतारकर ही वह अपनी जीविका चलाता है। ऐसे व्यक्ति को मछली मारने का अधिकार है। उसमें प्रकृति की व्यवस्था को देखना मुझे प्रिय है। चारे के इस कीड़े को 'पर्च' निगलती है, 'पर्च' को 'पिकरेल' निगलती है और पिकरेल को मछुआ डकार जाता है। इस प्रकार इस क्रम की सारी कड़ियाँ जुड़ी रहती हैं।

धुँधले मौसम में सरोवर के चारों ओर टहलते समय किसी अपेक्षाकृत अधिक असभ्य मछुए को आदिम तरीके से मछली का शिकार करते देखने में बड़ा मजा आता था। जमी हुई बर्फ में सँकरे से छेदों पर 'एल्डर' (भूर्ज की एक जाति) वृक्ष की शाखाएँ एक-दूसरे से २०–२५ गज की दूरी पर (और तट से भी लगभग इतनी ही दूर) रखी होतीं। डोरी का एक सिरा लकड़ी में बँधा होता, जिससे वह सरक न जाय, और फिर 'ऐल्डर' की फुनगी के ऊपर से बर्फ से एक फुट की ऊँचाई पर वह डोरी निकली होती। उसमें बान की सूखी पत्ती बँधी होती थी, जिसके नीचे खिचते ही पता चल जाता था कि मछली लासा ले रही है। सरोवर की आधी परिक्रमा करने पर धुंध में ये भूर्ज नियमित अन्तर पर दिखाई देते हैं।

वाह, वालडेन सरोवर की पिकरेल मछली के क्या कहने हैं! जब मैं उन्हें बर्फ पर, या किसी मछुए द्वारा बर्फ में काटे हुए किसी गड्ढे में पड़ा देखता हूँ, तो उनके दुर्लभ सौंदर्य पर चकित रह जाता हूँ, मानो वे किसी दूसरे लोक की मछलियाँ हों। हमारे कंकौर्ड के जीवन के लिए अरब देश एक दूसरा ही लोक है, उसी भाँति ये मछलियाँ भी इन सड़कों, यहाँ तक कि इस वन के लिए विदेशी हैं। उनका चकाचौंध पैदा करने वाला दिव्य सौंदर्य ही उनके और मुर्दार कौड तथा हैडीक मछलियों के बीच बड़ा भारी अन्तर बताता है, हालाँकि हमारे नगर की सड़कों पर कौड और हैडीक का बड़ा यशोगान होता है। न वे चीड़ के वृक्षों के समान हरे रंग की होती हैं, न चट्टानों के समान् भूरे रंग की, और न आसमान के समान नीलवर्ण! किन्तु मेरे नेत्रों के निकट वे, यथा सम्भव, और भी दुर्लभ रंग की होती हैं, फूलों और रत्नों के रंग की होती हैं, मानो वे मोती हों, सजीव न्यष्टि हों, या वालडेन के जल में जमे हुए

कण हों। वे पूर्ण-रूप से, अंग-अंग से, वालडेन हैं, वे स्वयं जीव-लोक के छोटे-छोटे वालडेन-सरोवर हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि यह मछली यहाँ पाई जाती है, और इस गहरे विस्तृत सरोवर में, वालडेन रोड पर चलने वाली पशु-टोलियों, गाड़ियों, और झनझनाती स्लेजों से दूर गहराई में यह सोने और पन्ने की मछली तैरती है। इसके समान मछली मुझे किसी भी बाजार-हाट में नहीं दिखाई दी, वहाँ सबकी आँखें इसी पर लग जातीं। यह मछली बड़ी आसानी से, थोड़ा-सा छटपटाकर अपने तरल प्राणों को त्याग देती हैं, मानो इस मर्त्यलोक का कोई वासी अकाल ही शून्य में विलीन हो गया हो।

वालडेन-तल से बिछुड़े हुए बहुत दिन हो गए थे। उसे पुन: उपलब्ध करने की इच्छा से, बर्फ गलने के बहुत पहले ही, सन् १८४६ के प्रारम्भ में मैंने कुतुबनुमा, जरीब, डोरी आदि की सहायता से उसका सर्वेक्षण किया। इस तल (बल्कि अतल) के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित थीं, स्वयं जिनका निश्चय ही कोई आधार नहीं था। ध्यान देने योग्य बात है कि लोग कितने काल तक किसी सरोवर की अतलता में विश्वास किये चले जाते हैं, विना उसे नापने का कष्ट उठाये। इस इलाके के ऐसे ही दो अतल सरोवरों का दर्शन मैंने एक बार टहलते समय किया है। अनेक लोगों का विश्वास है कि वालडेन सरोवर पृथ्वी के गोले के दूसरी ओर तक जा फूटा है। जिन लोगों ने बर्फ पर साष्टांग लेटकर जल के मायावी माध्यम में से देखा है (शायद उनके नेत्र भी सजल हो उठे होंगे) और छाती में सर्दी लग जाने के भय से जल्दी में यह निष्कर्ष निकाल लिया है, उन्हें इसमें बड़े-बड़े छेद दिखाई दिए हैं, "जिनमें, यदि कोई हाँक सके तो घास से भरी गाड़ियाँ जा सकती हैं।" निस्संदेह उनके लिए यह वैतरणी का स्रोत है, नरक का रास्ता यहीं होकर गया है। दूसरे लोग पत्थर और गाड़ी-भर रस्सी लेकर गाँव से आए हैं, फिर भी तल का पता नहीं चला। तल भाग में पत्थर बैठ जाने पर भी वे रस्सी ढीलते चले जाते हैं। इस प्रकार वे आश्चर्य-चकित होने की अपनी अथाह क्षमता को ही नापने का निष्फल प्रयास करते हैं। किन्तु मैं अपने पाठकों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वाल्डेन का तल वास्तव में समुचित ठोस तल है, जो सामान्य से कुछ अधिक गहराई पर स्थित है, लेकिन असंगत नहीं है। मैं आसानी से कौड मछली मारने की डोरी और लगभग डेढ़ पौंड वजन के पत्थर की सहायता से यह गहराई नाप लेता था और बता सकता था कि कब पत्थर सरक गया,

क्योंकि मुझे अपेक्षाकृत थोड़ा अधिक ज़ोर से खींचना पड़ता था। सबसे अधिक गहराई थी १०२ फुट, तव से अब तक ५ फुट पानी और चढ़ गया है, तो १०७ फुट हुआ। इस छोटे-से जल-क्षेत्र के लिए इतनी गहराई असाधारण है, किन्तु कल्पना मानो इसमें से एक इंच भी नहीं घटाना चाहती। यदि सभी सरोवर उथले होते तो क्या होता? क्या इसकी प्रतिक्रिया मानव-मस्तिष्क पर नहीं होती? मैं कृतज्ञता का अनुभव करता हूँ कि प्रतीक-रूप में यह सरोवर इतना गहरा और निर्मल वना है। जब तक लोगों का 'असीम' में विश्वास है, तब तक कुछ सरोवरों को तो अतल ही समझा जायगा।

एक कारखानेदार ने इस गहराई की बात सुनकर सोचा कि यह सच नहीं हो सकता, क्योंकि अनेक बाँधों के ज्ञान से उन्होंने जान लिया था कि इतने ढाल पर रेत टिक नहीं सकती। किन्तु वास्तविकता यह है कि गहरी-से-गहरी झीलें भी अपने क्षेत्रफल के अनुपात में उतनी गहरी नहीं होतीं जितनी कि लोग समझते हैं, और यदि उनका पानी निकाल दिया जाय तो कोई वहुत गहरी घाटी नहीं निकलेगी। वे पहाड़ियों के बीच प्यालों के आकार की नहीं होतीं, यह सरोवर भी, जो क्षेत्रफल को देखते हुए असाधारण रूप से इतना गहरा है, मध्यबिंदु से लम्बवत् काटने पर उथली तश्तरी से अधिक गहरा नहीं निकलेगा। अधिकतर झीलों को सुखाने पर जो चरागाह निकलेगा, वह साधारण चरागाहों से बहुत अधिक गहरा नहीं होगा। विलियम गिल्पिन ने भूदृश्य-सम्बन्धी सभी चीज़ों का बड़ा प्रशंसनीय अध्ययन किया है और उनकी वातें साधारणतः सही ही हैं। स्काटलैण्ड की 'लोच फाइन' के बारे में उन्होंने लिखा है कि "यह खारी पानी की एक खाड़ी है ओ १२५-१५० गज़ गहरी है, और चार मील चौड़ी है और पचास मील लम्बी है और पहाड़ों से घिरी हुई है।" इस झील के सिरे पर खड़े होकर वह कहता है "यदि हमने इस झील को जल-प्लावन (अथवा प्रकृति के जिस भी उत्पात के कारण यह बनी है) के तुरन्त वाद पानी भरने से पूर्व देखा होता तो यहाँ कितना भयावह गड्ढा दिखाई दिया होता!"

"So high as heaved the tumid hills, so low
Down sunk a hollow bottom broad and deep,
Capacious bed of waters."

(जितनी ऊँचाई तक पहाड़ियाँ ऊपर को उठीं, उतनी ही नीचाई तक गहरी और चौड़ी तली धसक गई, और जल का लम्बा-चौड़ा क्षेत्र बन गया।)

किन्तु यदि 'लोच फाइन' का अबसे छोटा व्यास भी लें, और इस लम्बाई-चौड़ाई के अनुपात में वालडेन को देखें, तो वह इससे चार गुनी से भी अधिक उथली दिखाई देगी। खाली कर देने पर 'लोच फाइन' के गड्ढे की 'बढ़ी हुई' भयानकता के बारे में मैं केवल इतना ही कहूँगा। निस्संदेह, बहुत-सी मुस्कराती हुई घाटियाँ, जिनमें खेत लहलहाते हैं, इन्हीं 'भयानक गड्ढों' में अवस्थित हैं, जहाँ से पानी निकल चुका है। इन घाटियों में बसने वालों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए भूगर्भशास्त्रियों को अन्तर्दृष्टि और दूरदर्शिता की आवश्यकता पड़ेगी। जिज्ञासु नेत्रों को नीची क्षितिज वाली पहाड़ियों के बीच अक्सर आदिम काल की किसी बड़ी झील का किनारा दिखाई दे जाता है, और उनके इतिहास को छिपाने के लिए बाद में उस सतह को ऊपर उठाने की आवश्यकता नहीं हुई है। किन्तु जैसा कि सड़कों पर काम करने वाले जानते हैं, यह तो बड़ी साधारण-सी बात है कि मेह पड़ने के बाद गड्ढे हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि यदि छूट दे दी जाय तो कल्पना प्रकृति की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा गोता लगाती है, उससे कहीं अधिक ऊँची उड़ान भरती है। इस प्रकार सागर के विस्तार को देखते हुए उसकी गहराई एकदम नगण्य ठहरेगी।

चूँकि मैंने यह नपाई बर्फ के ऊपर से की थी इसलिए मैं इस तल भाग की रूपरेखा का सर्वेक्षण उन बंदरगाहों से अधिक सही तौर पर कर सका था जो कभी जमते नहीं हैं। साथ ही इसके तल भाग की इतनी समता देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। सबसे गहरे भाग में कितने ही एकड़ भूमि उन खेतों से कहीं अधिक चौरस है जो धूप, वायु और हल के लिए खुले पड़े हैं। उदाहरण के लिए एक जगह यों ही एक रेखा चुन लेने पर मैंने देखा कि डेढ़ सौ गज की दूरी तक कहीं भी गहराई में एक फुट से अधिक फर्क नहीं पड़ा। और मध्यभाग के निकट तो किसी भी दशा में सौ फुट तक की दूरी में, मैं पहले से ही हिसाब लगा लेता था, कि यह फर्क तीन-चार इंच से अधिक नहीं होगा। कुछ लोगों में इस प्रकार के रेतीले सरोवरों में गहरी और खतरनाक खोहों के होने के बारे में बातें बनाने की आदत होती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन परिस्थितियों में जल का प्रभाव सभी विषमताओं को दूर कर देता है। वालडेन के तल की चौरसता और तट तथा आस-पास की पहाड़ियों से उसकी संगति इतनी पूर्ण थी कि एक तट पर नापते समय दूसरे तट पर स्थित 'अन्तरीप' का पता लग जाता था। अन्तरीप मेंड़ बन जाती है, मैदान उथला स्थल हो जाता है, घाटियाँ और दर्रे गहरी खंदकों

और नहरों में परिणत हो जाते हैं।

पचास गज का पैमाना एक इंच मानकर जब मैंने सरोवर का मानचित्र बनाया और उसमें लगभग सौ जगहों की गहराई नापकर अंकित की तो एक बड़ी आश्चर्यजनक बात देखने को मिली। यह देखते हुए कि सबसे अधिक गहराई वाला स्थल स्पष्ट ही मानचित्र के मध्यभाग में है, मैंने रेखाएँ लम्बाई में खींचीं और फिर चौड़ाई में। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सबसे अधिक लम्बाई वाली रेखा सबसे अधिक चौड़ाई वाली रेखा को सबसे अधिक गहराई वाले बिंदु पर काटती है, हालाँकि मध्यभाग इतना चौरस है, और सरोवर की रूपरेखा इतनी विषम है और सबसे अधिक लम्बाई और चौड़ाई वाली रेखाएँ खाड़ियों में होकर गई हैं। तब मैंने सोचा कि कौन जानता है, यह बात सागर के सबसे गहरे भाग पर भी उतनी ही लागू होती होगी जितनी कि तालाब और पोखर पर। घाटियों को देखते हुए, क्या यही नियम पहाड़ियों पर भी लागू नहीं होता ? हम जानते हैं कि सबसे सँकरे भाग पर ही पहाड़ी की सबसे अधिक ऊँचाई नहीं होती।

मैंने पाँच खाड़ियों में से तीन को नापा था। इन तीनों में मैंने यह देखा कि इन तीनों के मुहाने पर एक-एक मेंड़ है और उसके भीतर गहरा जल है। इसका अर्थ यह हुआ कि भूभाग में जल का यह विस्तार केवल आड़ा ही नहीं लम्बवत् भी हुआ चाहता था, यह एक स्वतंत्र झील बनने का प्रयास था। सागर-तट पर भी प्रत्येक कटाव के मुहाने पर एक ऐसी ही मेंड़ होती है। यह मैंने भी देखा कि लम्बाई की अपेक्षा खाड़ी का मुहाना जितना अधिक चौड़ा होता है, इस मेंड़ पर जल की गहराई भी अपेक्षाकृत उतनी ही अधिक होती है। इस प्रकार खाड़ी की लम्बाई-चौड़ाई दे दी जाय और आस-पास के तट की रूपरेखा बता दी जाय तो इस सम्बन्ध में नियम बनाने के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो जाती है।

यह जांचने के लिए कि सबसे गहरे बिंदु का मेरा अनुमान कहाँ तक सही बैठता है, इस अनुभव के बाद मैंने 'व्हाइट पौंड' की केवल सतह और तट की रूपरेखा देखकर उसका भी मानचित्र बनाया। यह सरोवर ४१ एकड़ में फैला हुआ है और वालडेन की ही भाँति इसमें भी कोई द्वीप नहीं है और न कोई निकास या मुहाना है। और क्योंकि सबसे अधिक चौड़ाई वाली रेखा सबसे कम चौड़ाई वाली रेखा के अत्यंत निकट आई, जहाँ दो अंतरीप एक-दूसरे के

पास पहुँचते थे, और आमने-सामने दो खाड़ियाँ थीं, मैंने सबसे कम चौड़ाई वाली रेखा से थोड़ा हटकर सबसे अधिक लम्बाई वाली रेखा पर सबसे अधिक गहराई का चिह्न लगा दिया। नापने पर सबसे गहरा भाग उसी दिशा में सौ फुट की दूरी पर मिला– यह मेरे लगाये विंदु की गहराई से केवल एक फुट अधिक गहरा था, यानी साठ फुट। हाँ, यदि कोई धारा निकली हो या कोई द्वीप वन गया हो तो समस्या ज़रा उलझ जायगी और इतनी सरल नहीं रहेगी।

यदि हमें प्रकृति के सारे नियमों का ज्ञान हो तो किसी विशेष स्थल के वारे में सारे निष्कर्ष निकालने के लिए किसी एक तथ्य के वर्णन की आवश्यकता होगी। फिलहाल हमें केवल कुछ नियमों का ही ज्ञान है और हमारा निष्कर्ष जो दोषपूर्ण होता है, सो प्रकृति में किसी प्रकार की गड़वड़ी या उलझाव के कारण नहीं वल्कि इस हिसाब-किताव के मूल तत्त्वों के वारे में हमारे अपने अज्ञान के कारण होता है। नियम और संगति के वारे में हमारी समझ केवल उन्हीं उदाहरणों तक सीमित रहती है जिन्हें हम देख पाते हैं। किन्तु इनसे कहीं अधिक संख्या ऐसे नियमों की है जो ऊपर से देखने में तो परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं पर वास्तव में एक-दूसरे से मेल खाते हैं, जिन्हें हम देख नहीं पाए हैं। उनकी संगति और भी अधिक आश्चर्यजनक होती है। ये नियम हमारे लिए ठीक वैसे ही हैं, जैसे कि किसी यात्री को प्रत्येक पग पर पर्वत की भिन्न रूपरेखा दिखाई देती है, और उसके पार्श्व-चित्रों को ही देख पाता है यद्यपि सम्पूर्ण पर्वत की एक ही आकृति होती है। काटने पर, आर-पार फोड़ने पर भी पर्वत का रूप पूर्णतया समझ में नहीं आता।

जो वात मैंने सरोवर के वारे में देखी है वह नैतिकता के बारे में भी उतनी ही सही ठहरती है। यह तो औसत का नियम है। दो व्यासों का ऐसा नियम न केवल हमारे संस्थान में सूर्य की ओर और मानव में हृदय की ओर ही हमारा 'पथ-प्रदर्शन करता है, बल्कि यदि हम किसी व्यक्ति के प्रतिदिन के विशेष कामों और जीवन की लहरों के मुहानों और खाड़ियों के नक्शे पर रेखाएँ खींचें तो जहाँ पर रेखाएँ एक-दूसरे को काटेंगी वही उसके चरित्र की सवसे अधिक गहराई अथवा ऊँचाई मिलेगी। उसके छिपे हुए तल भाग और गहराई को जानने के लिए शायद केवल यही जानना जरूरी होगा कि उसका तट कैसा है और उसका परिवेश क्या है। यदि पर्वतीय परिस्थितियों से घिरा

हुआ है, और तट की चोटियाँ उसके हृदय में प्रतिबिम्बित होती हैं, तो पता चल जाता है कि उसमें कितनी गहराई है। किन्तु यदि किनारा चौरस और समतल है तो उसका उथलापन जाहिर हो जाता है। हमारे शरीर में भी उभरा हुआ ललाट उसी अनुपात में विचारों की गहराई का द्योतक होता है। हमारी प्रत्येक खाड़ी या रुझान के मुहाने पर भी एक मेंढ़ होती है, यह खाड़ी विशेष काल में हमारे बंदरगाह का काम देती है जिसमें हमें ठहरना पड़ता है और हम अंशतः भूमि में धँस जाते हैं। रूझान की ये खाड़ियाँ सनक पर आधारित नहीं होती हैं, उनका रूप, आकार और दिशा सब तट के अंतरीपों से निश्चित होते हैं, उभरा हुआ प्राचीन अंश ही ये अंतरीप होते हैं। जब तूफानों, धाराओं अथवा ज्वार के कारण यह भाग बढ़ जाता है और पानी जमा हो जाता है, तो उसका रूप परिवर्तित हो जाता है—वह स्थान जो पहले तट पर केवल एक ढाल था, जिसमें एक विचार घुस बैठा था, अब सागर से असम्बद्ध एक स्वतंत्र झील बन जाता है, जिसमें वह विचार अपनी ही परिस्थितियाँ पैदा कर लेता है। हो सकता है कि खारी पानी की जगह मीठे पानी की झील हो जाय, या मृत सागर हो जाय या दलदल ही बन जाय। जब भी कोई व्यक्ति इस जीवन में आता है तो हम क्यों न मान लें कि कहीं-न-कहीं सतह पर कोई मेंड़ उभर आई है? यह सच है कि हम लोग इतने अनाड़ी नाविक हैं कि अधिकांश में हमारे विचार बहुधा ऐसे तट पर जा लगते हैं जहाँ कोई बंदरगाह नहीं होता, हम केवल काव्य की खाड़ियों के घुमावों से ही परिचित होते हैं या फिर सार्वजनिक बंदरगाहों में घुसने की चेष्टा करते हैं और विज्ञान की शुष्क गोदियों में जा लगते हैं जहाँ इस संसार की यात्रा के लिए केवल मरम्मत हो जाती है, कोई प्राकृतिक धारा उनके व्यक्तिकरण के लिए नहीं आ पाती।

वालडेन सरोवर का कोई निकास या मुहाना मुझे अब तक नहीं मिला है, सिवाय मेह, हिमपात और वाष्पीकरण के। एक डोरी और थर्मामीटर की सहायता से शायद ऐसे स्थल भी मिल जायँ। जहाँ से सरोवर में पानी आता होगा वहाँ सम्भवतः गर्मियों में अपेक्षाकृत सबसे कम और जाड़ों में सबसे अधिक तापमान मिलेगा। सन् १८४६-४७ में जब यहाँ बर्फ वाले काम कर रहे थे तो एक दिन चट्टा लगाने वालों ने कुछ सिल्लियाँ किनारे पर से वापिस कर दीं, क्योंकि ये दूसरी सिल्लियों के बराबर मोटी नहीं थीं। इस प्रकार बर्फ

काटने वालों ने देखा कि एक छोटे-से भाग पर वर्फ अन्य भागों की अपेक्षा दो-तीन इंच कम मोटी थी। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यहीं कहीं वालडेन का स्रोत होगा। उन लोगों ने मुझे एक दूसरा स्थान भी दिखाया। उनका कहना था कि इस स्थान पर एक छेद है जहाँ से रिसकर पानी एक पहाड़ी के नीचे से पास के चरागाह में जाता है। यह दस फीट की गहराई पर एक छोटी-सी दरार थी, लेकिन मेरा खयाल है कि जब तक इससे बड़ी कोई दरार न मिले तब तक वालडेन में टाँका लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक व्यक्ति का सुझाव है कि यदि इस दरार से रिसकर पानी चरागाह तक जाता है तो इसके मुंह पर कोई रंगीन चूर्ण या बुरादा रखकर चरागाह की ओर छन्नी लगा देने से पता लग जायगा, यदि पानी की धार उधर जाती होगी तो ये कण उधर आ जायँगे।

जब मैं सर्वेक्षण कर रहा था तब सोलह इंच मोटी बर्फ मंद बयार में ही जल की भाँति लहरा रही थी। यह बात सब लोग जानते हैं कि 'लेवेल' (सतह की जाँच करने का यंत्र) का प्रयोग वर्फ के ऊपर नहीं किया जाता। तट से पाँच गज की दूरी पर, जहाँ सबसे अधिक तरंगें उठ रही थीं, जमीन पर इस यंत्र को बिठाकर और बर्फ पर पैमाने की लकड़ी लगाकर जाँच की तो पता चला कि इस खूब जमी हुई बर्फ में भी पौन इंच का उठाव-गिराव होता है। शायद मध्य भाग में यह और भी अधिक होता होगा। कौन जानता है, यदि हमारे यत्र पर्याप्त कोमल हों तो हमें पृथ्वी की पर्तो की भी तरंगों का पता लग जाय? मैंने अपने लेवेल के दो पैर भूमि पर जमाकर तीसरा वर्फ पर टिका दिया और यंत्र को तीसरे पैर की दिशा में घुमा दिया तो बर्फ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म उतार-चढ़ाव से उस पार के पेड़ में कई फुट का फर्क दिखाई दिया। गहराई नापने के लिए जब मैंने बर्फ काटने के लिए छेद किये तो देखा कि गिरी हुई वर्फ के नीचे जमी हुई वर्फ के ऊपर ३-४ इंच पानी है। इसका अर्थ यह हुआ कि गिरी हुई वर्फ ने जमी हुई वर्फ को ३-४ इंच धसका दिया था। किन्तु यह पानी तुरन्त इन छेदों में वहकर जाने लगा और लगातार दो दिन तक गहरी धारा बनाकर गिरता रहा, जिससे प्रत्येक दिशा में वर्फ कट गई। मुख्य नहीं तो, यह भी एक कारण था जिससे सरोवर की सतह सूखने लगी, क्योंकि जब पानी नीचे गया तो वर्फ और ऊपर उतराने लगी। यह कुछ-कुछ ऐसा ही था जैसे किसी जहाज की पैंदी में पानी निकालने के

लिए छेद कर दिया जाय। जव ये छेद जम जाते हैं और इसके बाद मेह आता है, और फिर अंत में नई चिकनी वर्फ ढक लेती है, तो उसके नीचे वड़ी सुन्दर काली-काली मकड़ी के जालों-जैसी आकृतियाँ वन जाती हैं, जिन्हें आप वर्फ के फीतों का वना हुआ कूल कह सकते हैं, क्योंकि चारों ओर से धाराएँ आकर इस केन्द्रीय छेद में गिरती हैं। कभी-कभी जव वर्फ में छोटे छोटे छेद वन जाते थे, तो मुझे अपनी दुहरी छाया दिखाई देती थी, एक के सिर पर दूसरी खड़ी हुई, एक वर्फ पर, तो दूसरी पेड़ों अथवा पहाड़ी के ढाल पर।

जनवरी की इस ठंड में ही, जवकि जमी हुई और गिरी हुई दोनों ही प्रकार की वर्फ खूव मोटी और ठोस होती है, गाँव का सयाना जमींदार आकर गर्मियों में पेय ठंडा करने के लिए वर्फ इकट्ठी करता है। क्या चतुराई है। (कितनी करुणाजनक!) कि मोटा कोट और दस्ताने पहने वह जनवरी में ही जुलाई की गर्मी और प्यास की चिंता करता है! सो भी तव जव कि सम्भवतः वह इस दुनिया में कोई ऐसी निधि इकट्ठी नहीं करता जिससे अगली दुनिया में उसकी प्यास वुझ सके। वह जमे हुए सरोवर को काट डालता है मछलियों के घरों को उघार देता है, और उनके जल और वायु को जंजीरों और लट्ठों से वाँधकर गाड़ी पर लाद ले जाता है मानो, वह लकड़ी हो, और ठंडे तहखानों में गर्मियों के लिए रख देता है। जव यह वर्फ दूर सड़कों पर ले जाई जाती है तो जमी हुई नीलिमा-सी प्रतीत होती है। ये वर्फ काटने वाले भी वड़े आनन्दी जीव होते हैं, खूव मौज और मस्ती से भरे, और जव मैं उनके वीच पहुँचता था तो वे लोग मुझे नीचे खड़ा रहकर आरा खींचने को आमंत्रित करते थे।

सन् १८४६-४७ के जाड़ों में एक दिन प्रातःकाल धुर उत्तर के सौ निवासी तरह-तरह के भौंड़े किसानू औजार लेकर हमारे सरोवर पर छा गए—गाड़ियाँ, हल, ठेले, दराँती, फावड़े, आरी, हेंगी और कितने ही ऐसे औजार जिनका वर्णन हमें 'न्यू इंग्लैंड फार्मर' या 'कल्टीवेटर' में नहीं मिलता। मेरी समझ में नहीं आया कि वे जाड़े की राई[1] वोने के लिए आए हैं या किसी ऐसे अनाज को वोने के लिए जिसे हाल ही में 'आइसलैण्ड' से लाया गया है। मुझे कहीं खाद नहीं दिखाई दी तो मैंने सोचा कि शायद ये लोग मेरी ही तरह भूमि का

१. राई—एक प्रकार का अनाज।

मंथन करेंगे, यह सोचकर कि मिट्टी गहरी है और काफी समय तक बिना जुती पड़ी रही है। उन लोगों ने बताया कि उनके पीछे एक बाबू साहबी किसान है जो अपने धन को दुगुना करना चाहता है। पहले से ही उसके पास पाँच लाख डालर हैं। अपने प्रत्येक डालर को एक-एक और डालर से ढक देने के लिए इस भरे जाड़े में वालडेन के एक-मात्र कोट को, बल्कि उसकी खाल को ही उसने उतार लिया। ये सब-के-सब तुरन्त काम में लग गए, बड़े व्यवस्थित ढंग से हल और फावड़ा चलाने लगे, कूँड बनाने लगे मानो वे इसे एक 'आदर्श फार्म' बनाने पर उतारू हों। और जिस समय मैं यह देखने को आतुर था कि वे कौन-सा बीज इन कूँडों में डालते हैं, उस समय मैंने देखा कि उनका एक दल, एक अजीब झटके से वहाँ की मिट्टी को रेत तक बल्कि जल के स्तर तक, या यों कहिए कि वहाँ की पृथ्वी को ही उठाकर स्लेजों पर लादकर जा रहा है। तब मैंने अनुमान किया कि शायद वे दलदल में से सड़ी हुई लकड़ी निकाल रहे होंगे। इस प्रकार वे इंजन की चीख के साथ ध्रुव-प्रदेश के किसी भाग से प्रत्येक दिन आते रहे, मानों ध्रुव-प्रदेश के पक्षियों का झुँड हो। लेकिन कभी-कभी श्रीमती वालडेन भी बदला ले लेती थीं—कभी दल के पीछे चलता हुआ कोई मज़दूर फिसलकर इस भूमि की दरार में से पाताल लोक की ओर चला जाता था और जो व्यक्ति अब तक बड़ा बहादुर बना फिरता था, अब उसके पौरुष का केवल नवम भाग ही बचता था। उसकी जैविक ऊष्मा समाप्तप्राय हो जाती थी। तब वह भागकर मेरे घर की शरण लेता था और अनुभव करता था कि चूल्हे में भी कुछ गुण हैं। अथवा कभी यह जमी हुई मिट्टी हल का लोहा निगल लेती थी, या कभी हल कूँड में अटक जाता था और उसे काटकर निकालना पड़ता था।

अर्थात् सौ आयर्लेण्डवासी, जिनके पीछे अमरीकन ओवरसियर होते थे, प्रत्येक दिन बर्फ काटने के लिए कैम्ब्रिज से आते थे। वे उन तरीकों से ही सिल्लियाँ काटते थे जिन्हें सब जानते हैं, जिनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। फिर इन सिल्लियों को स्लेज में घसीटकर किनारे पर ले जाया जाता था, और तुरन्त ही सावधानी से उन्हें जमाकर एक चबूतरा बना दिया जाता था मानो वे आटे के चिने हुए बोरे हों। इन सिल्लियों को एक के ऊपर एक जमाया जाता था मानो बादलों को भेजने के लिए किसी नुकीली मीनार का आधार बनाया जा रहा हो। उन्होंने मुझे बताया कि सब ठीक-ठाक हो तो वे एक दिन में एक हज़ार टन तक ले जा सकते हैं, जो लगभग एक एकड़ से प्राप्त

हो जाती है। जिस प्रकार जमीन पर गाड़ी चलने से चिह्न वन जाते हैं, उसी प्रकार एक ही रास्ते पर वार-वार स्लेज आने-जाने से उतने हिस्से में वर्फ कट जाती थी, गड्ढे हो जाते थे, और घोड़े वर्फ की वनी वालटियों में दाना खाते थे। इस प्रकार खुली हवा में पैंतीस फुट ऊँचा, पैंतीस-चालीस गज़ लम्वा और लगभग इतना ही चौड़ा एक चट्टा वना लिया गया। वाहरी पर्तों के वीच में सूखी घास जमा दी गई ताकि हवा न धँस सके, क्योंकि हवा चाहे जितनी ठंडी हो, यदि उसे घुसने का रास्ता मिल जाय तो वड़ी.वड़ी दरारें वना देगी और नीचे की वर्फ गलने से सव ढेर हो जायगा। पहले तो यह नीले रंग का वड़ा जवरदस्त किला या 'वल्हला' सा दिखता था, लेकिन जव वीच-वीच में सूखी घास भर दी गई और उस पर वर्फ की जमी हुई बूंदें दिखने लगीं, तो यह नीलम संगमरमर का वना कोई प्राचीन खंडहर प्रतीत होने लगा जिस पर काई उग आई हो। शीतकाल के आवास का खंडहर, उस वृद्ध पुरुष के आवास का, जिसे हम केवल कलैण्डर में देखा करते हैं। मानो यह उसकी कुटिया हो, मानो उसका इरादा हमारे साथ ही गर्मियाँ विताने का हो। उन्होंने हिसाव लगाया था कि इस वर्फ का चतुर्थांश भी अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच पायगा और २-३ फीसदी तो यह गाड़ी में ही नष्ट हो जायगी। जो भी हो, इस ढेर का इतने से भी कहीं वड़ा भाग भिन्न गंतव्य पर नहीं पहुँचा, क्योंकि या तो उसमें अधिक हवा होने के कारण वर्फ आशानुकूल अच्छी नहीं थी, या जो भी कारण हो, इसका अधिकांश वाजार तक नहीं पहुँचा। यह चट्टा सन् १८४६-४७ के जाड़ों में लगाया गया था। अनुमानतः इसमें १०,००० टन वर्फ रही होगी। इसे पहले घास-फूंस और तख्तों से ढक दिया गया था। अगली जुलाई में ये तख्ते हटा दिए गए और इसका कुछ अंश यहाँ से ले जाया गया, वाकी वर्फ खुली धूप में पड़ी रही, तो भी यह अगली गर्मी और जाड़े तक वनी रही और सन् १८४८ के सितम्वर मास तक पूरी तौर से नहीं गल पाई थी। इस प्रकार सरोवर ने इसके अधिकांश भाग को पुनः प्राप्त कर लिया।

जल की ही भाँति वालडेन की वर्फ भी निकट से देखने पर हरिताभ दिखाई देती है, किन्तु दूर से देखने पर वड़े सुन्दर नीले रंग की दिखती है। इस वर्फ में और नदी की सफेद वर्फ या दो फर्लांग दूर के ही किसी अन्य सरोवर की वर्फ में, वड़ी आसानी से आप भेद वता सकते हैं। कभी-कभी वर्फ वालों की स्लेज गाड़ी से कोई वड़ी सिल्ली सरककर गाँव की सड़क पर गिर पड़ती है। वहाँ

यह एक बहुत बड़े पन्ने के समान एक सप्ताह तक सब गुज़रने वालों की दृष्टि को मोहित करती रहती है। मैंने देखा है कि वालडेन का एक भाग जो जल की दशा में हरा दिखता है, जम जाने पर उसी स्थान से नीला दिखता है। इसी प्रकार कभी-कभी जाड़ों में इस सरोवर के आस-पास के गड्ढों में इसी के समान हरे रंग का जल भर जाने पर अगले दिन जमकर नीला-सा दिखने लगता है। शायद पानी और वर्फ का नीला रंग रोशनी और उनके भीतर की हवा के कारण होता है और सबसे अधिक पारदर्शी भाग सबसे अधिक नीले रंग का दिखता है। चिंतन के लिए वर्फ भी एक बड़ा मनोरंजक विषय है। कुछ लोगों ने मुझे बताया है कि 'फ्रेश पौण्ड्स' के वर्फखाने में पाँच वर्ष पुरानी वर्फ है जो अब तक ताज़ी बनी हुई है। क्या कारण है कि बाल्टी-भर पानी जल्दी ही सड़ जाता है और जमा हुआ पानी चिरकाल तक अच्छा रहता है? साधारणतः कहा जाता है कि यही भेद मनोविकार और बुद्धि में है।

इस प्रकार सोलह दिन तक मैं अपनी खिड़की से इन सौ, मजदूरों को किसानों की भाँति ध्वस्त, घोड़ों, गाड़ियों, और औजारों के साथ काम करते देखता रहा। इस प्रकार के चित्र हमें पंचांग के मुखपृष्ठ पर दिखाई देते हैं। जब भी मैं उधर देखता था तो मुझे लवा और कटैयों की, या बोने वालों की कथाएँ याद आ जाती थीं। अब वे लोग चले गए हैं तो सम्भवतः अगले तीस दिन तक मुझे इस खिड़की से वालडेन का विशुद्ध सागर-जैसा हरा जल दिखाई देगा, बादलों और वृक्षों को प्रतिबिम्बित करता हुआ और अपनी वाष्प को शून्य में भेजता हुआ। एक चिह्न भी बाकी न रह जायगा जिससे पता चले कि यहाँ कभी किसी के चरण पड़े थे। जिस स्थल पर अभी सौ मजदूर स्वच्छन्दता से काम करते थे उस स्थल पर मुझे शायद 'लून' पक्षी हँसता दिखाई देगा या कोई मछुआ तिरती हुई पत्ती-जैसी नाव में से लहरों में अपने रूप का प्रतिबिम्ब देखता दिखाई देगा।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि चार्ल्सटन और न्यू ओर्लिऐंस के, मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के गर्मी में उमसते हुए निवासी मेरे ही कुएँ का जल पीते हैं। प्रत्येक प्रातःकाल मैं भगवद्गीता के विराट् विश्वोत्पत्ति-सम्बन्धी दर्शन में अपनी बुद्धि का अवगाहन करता हूँ, जिसकी रचना हुए कितने ही देव-वर्ष बीत चुके हैं, और जिसकी तुलना में हमारा यह आधुनिक संसार और साहित्य बड़ा तुच्छ और महत्त्वहीन प्रतीत होता है। इसका विराटत्व हमारी धारणाओं से

इतनी दूर है कि मुझे संदेह होता है कि कहीं यह दर्शन अस्तित्व के किसी पूर्व-काल से सम्बन्धित तो नहीं है। इस ग्रंथ को रख देता हूँ, और फिर जल लेने के लिए अपने कुए पर जाता हूँ। यहाँ मेरी भेंट ब्राह्मण के सेवक से होती है, यह ब्राह्मण ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र का एक उपासक है, जो अब भी गंगा-तट पर अपने मंदिर में बैठकर वेदों का पाठ करता है अथवा किसी वृक्ष के कोटर में रोटी और जल-पात्र लेकर रहता है। उसका सेवक जब अपने स्वामी के लिए जल लेने को आता है तो उससे मेरी भेंट होती है, और मानो हम दोनों के पात्र उस कुए में टकराते हैं। वालडेन का विशुद्ध जल गंगा के पवित्र जल में मिल जाता है। वायु अनुकूल होने पर यह जल ऐटलांटिस और हेस्पेरिडीज के पौराणिक द्वीप-समूहों के भी पार जा पहुँचता है, हैनो की परिक्रमा[1] करता है, टर्नेट और टाइडोर द्वीप-समूहों और फारस की खाड़ी के मुहाने तक बहता चला जाता है, भारतीय सागरों की उष्ण वायु के झोंकों में मिल जाता है और उन बंदरगाहों तक जा पहुँचता है, सिकदर ने जिनके केवल नाम ही सुने थे।

---

१. हैनो की परिक्रमा—लगभग ४८० ई० पू० में कार्थेज के साहसी नाविक 'हैनो' ने जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य में होकर यात्रा की थी और लौटकर उसने 'Periplus' (परिक्रमा) नामक ग्रंथ में इस यात्रा का वृत्तांत लिखा था।

१७. बसंत ऋतु

बर्फ काटने वाले जब काफी बड़े हिस्से की बर्फ काट देते हैं, तो सरोवर साधारणतः जल्दी ही खुल जाता है। इसका कारण यह है कि वायु के कारण जल में उथल-पुथल होने से, शीतकाल में भी, आस-पास की बर्फ कटने लगती है। किन्तु उस वर्ष इस वालडेन-सरोवर में ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि इस पुराने आवरण के हटते ही उसने तुरन्त एक नया मोटा-सा आवरण धारण कर लिया। यह सरोवर पड़ोस के अन्य सरोवरों की भाँति जल्दी ही नहीं गलता, क्योंकि एक तो यह अधिक गहरा है, और दूसरे इसमें होकर कोई जल-धारा नहीं निकलती जो बर्फ को काट या गला दे। जाड़ों में तो मैंने कभी भी इसे खुलते नहीं देखा, सिवाय सन् १८५२-५३ के, जबकि इन सरोवरों की बड़ी कठिन परीक्षा हुई थी। वालडेन साधारणतः अप्रैल के करीब खुलता है, फ़्लिण्ट पौंड और फेयर हैवन से लगभग दस दिन बाद। इसके उत्तरी और उथले भागों में सबसे पहले बर्फ जमती है और वहीं से सबसे पहले गलना भी प्रारम्भ होता हैं। अन्य सरोवरों की अपेक्षा यह वालडेन ऋतु के क्रम को ज्यादा अच्छी तरह बनाता है, क्योंकि ताप-क्रम के अस्थायी परिवर्तनों का इसके ऊपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। मार्च के महीने में दो-चार दिन तेज़ ठंड पड़ जाय तो दूसरे सरोवरों के खुलने में बाधा पड़ जाती है, किन्तु वालडेन का ताप-क्रम अबाध गति से बढ़ता ही जाता है। ६ मार्च, १८४७ के दिन वालडेन के मध्य भाग के जल का ताप-क्रम ३२° था अर्थात् जमने वाले बिन्दु पर था, और तट के निकट ३३° था। उसी दिन फ्लिण्ट पौंड के मध्य भाग का ताप-क्रम ३२½° और तट से ५०-६० गज़ दूर एक फुट मोटी बर्फ के नीचे उथले जल में ३६° था। फ्लिण्ट पौंड में उथले और गहरे जल के ताप के इस ३½° के फर्क से और इस बात से कि अनुपाततः यह अपेक्षाकृत उथला है, यह पता लग जाता है कि यह वालडेन से पहले क्यों खुल जाता है। इस समय, मध्य भाग की अपेक्षा सबसे उथले भागों में बर्फ कई इंच कम मोटी थी। शीतकाल में यह मध्य भाग ही सबसे अधिक गर्म था और वहाँ बर्फ भी सबसे पतली थी। इसी प्रकार, जो गर्मियों में किसी सरोवर के उथले जल में चला है, उसने देखा होगा

कि तट के निकट का ३-४ इंच गहरा जल थोड़े आगे के जल की अपेक्षा अधिक गर्म होता है, और गहरे में भी सतह का जल तलभाग के जल की अपेक्षा अधिक गर्म होता है। वसंत ऋतु में सूर्य का प्रभाव न केवल वायु और पृथ्वी के बढ़े हुए तापक्रम के द्वारा ही दिखाई पड़ता है, वल्कि उसकी गर्मी एक फुट से अधिक मोटी वर्फ के पार भी चली जाती है और उथले जल में यह गर्मी तलभूमि से प्रतिविम्वित होकर जल को गर्म कर देती है; जिस समय सूर्य के सीधे उत्ताप के कारण वर्फ की ऊपरी सतह गलती है उसी समय वह नीचे से भी गलने लगती है। इस प्रकार वर्फ असम हो जाती है, उसमें हवा के ववूले ऊपर-नीचे फैलने लगते हैं और उसमें पूरी तरह मधु-मक्खी के छत्ते की-सी झिझरी वन जाती है। अंत में वह वंसत के एक ही मेह में एकदम गायव हो जाती है। लकड़ी की भाँति वर्फ में भी दाने होते हैं, और जव सिल्ली गलने लगती है, या छत्ते का आकार धारण करने लगती हैं, तो इसकी चाहे जो स्थिति हो, वायु के कोष हमेशा जल की सतह के समकोण ही होते हैं। जहाँ कोई चट्टान होती है, अथवा सतह तक उठा हुआ लकड़ी का कोई लट्ठा होता है, वहाँ वर्फ की पर्त वहुत पतली होती है जो वहुधा इस प्रतिविम्वित ताप से ही गल जाती है। मैंने सुना है कि कैम्ब्रिज में काठ के उथले हौज में वर्फ जमाने का एक प्रयोग किया गया था। इसमें नीचे ठंडी हवा इस प्रकार लग रही थी कि वह दोनों ओर पहुँच सके, फिर भी प्रतिविम्वित सूर्योत्ताप का प्रभाव ही अधिक दिखाई पड़ा। भरे जाड़ों में जव मेह की गर्मी वालडेन पर गिरी हुई जमी वर्फ को गला देती है और मध्य भाग में कड़ी, गहरी या पारदर्शक वर्फ की पर्त हो जाती है, तो इस प्रतिविम्वित ताप के कारण तट के निकट चार-पांच गज की पट्टी वन जाती है जहाँ वर्फ गलने लगती है। जैसा कि मैं पहले वता चुका हूँ, ववूले भी वर्फ के भीतर 'वर्निंग ग्लास' (दाहक कांच) की भाँति वर्फ गलाने लगते हैं।

वर्ष-भर की सारी घटनाएँ सरोवर में छोटे रूप में प्रत्येक दिन घटित होती रहती हैं। प्रत्येक प्रातःकाल उथला जल गहरे जल की अपेक्षा अधिक तेजी से गर्म होता है (यद्यपि यह वहुत गर्म नहीं हो पाता) और प्रत्येक रात्रि को यह अधिक तेजी से ठंडा होता है। दिवस वर्ष का ही एक छोटा रूप होता है। रात शीतकाल है, प्रातःकाल और संध्या वसंत; और दोपहर ग्रीष्म। वर्फ के कड़कने और चटखने की आवाज से ताप-क्रम में परिवर्तन का पता चलता है। २४

फरवरी, सन् १८५० के दिन, ठंडी रात के बाद सुहाने प्रातःकाल में मैं पूरा एक दिन विताने के लिए फ्लिण्ट पौंड गया था। वहाँ मैंने बड़े आश्चर्य से देखा कि जब भी मैं वर्फ पर अपनी कुल्हाड़ी का सिरा मारता हूँ तो कई गज़ उसकी आवाज़ गूँजती है मानो मैंने किसी कसे हुए ढोल पर चोट की हो। सूर्योदय के लगभग आध घंटे वाद जब इस पर तिरछी किरणें पड़ने लगीं तो इस सरोवर से धड़ाम-धड़ाम की आवाज़ आने लगी, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शोर के साथ मानो जागने वाले आदमी की तरह इसने अँगड़ाई और जमुहाई ली। यह तीन-चार घंटे तक चलता रहा। दोपहर को उसने फिर एक झपकी ली और रात आने पर जब सूर्य ने अपना प्रभाव समेटा तो फिर बार-बार आवाज आने लगी। ठीक मौसम होने पर सरोवर बड़े नियमित रूप से अपनी शाम की तोपें दागता है। किन्तु दोपहर को कितनी ही दरारें पड़ जाने के कारण, और वायु कम लचीली होने के कारण इसकी प्रतिस्वनता एकदम समाप्त हो गई और तब शायद इस पर चोट पड़ने से मछलियों और 'मस्क रैट' का चौंकना भी बन्द हो गया होगा। मछुओं का कहना है कि 'झील की गड़गड़ाहट' से मछलियाँ डर जातीं हैं और चारा नहीं लेतीं। यह सरोवर प्रत्येक संध्या में नहीं गड़-गड़ाता—और मैं निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता कि वह किस समय गड़गड़ायगा, फिर भी, मैं मौसम में कुछ परिवर्तन भले ही न देख पाऊँ, यह तो देख ही लेता है। किसी को यह संदेह भी न होगा कि इतनी बड़ी, इतनी ठंडी और इतनी मोटी त्वचा वाली वस्तु इतनी कोमल होगी। तो भी इसका एक नियम है जिसका पालन करते हुए यह ठीक समय पर ही गड़बड़ाता है, जैसे वसंत के आगमन पर कली खिल उठती है। यह सारी भूमि सजीव है और पिडिकाओं से ढकी हुई है। बड़े-से-बड़ा सरोवर भी वायु-मंडल के परिवर्तनों से उतना ही जल्दी प्रभावित होता है जितना कि काँच की नली में रखी हुई पारे की बूँद।

वन में आकर रहने का एक आकर्षण यह था कि मुझे वसंत का आगमन देखने का समय और अवसर मिल जायगा। अंत में वर्फ में छत्ते की तरह जाली पड़ने लगती है और मैं उस पर एड़ी जमा-जमाकर चल सकता हूँ। कुहरा और मेह और उष्णतर सूर्य गिरी हुई वर्फ़ को गलाने लगते हैं, दिन लम्बे होने का भान होने लगता है। ईंधन का चट्टा बढ़ाने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि अधिक अग्नि की आवश्यकता नहीं होती। मैं चौकन्ना होकर वसंत-

आगमन के प्रथम चिह्नों की प्रतीक्षा करता हूँ, आने वाले किसी पक्षी का रव सुनने की और धारीदार गिलहरी की आवाज की प्रतीक्षा करता हूँ; क्योंकि उसका भंडार भी अब समाप्तप्राय: होगा, अब 'वुडचक' भी अपने शीतावास से बाहर निकलेगा। १३ मार्च के दिन 'बलबर्ड', 'गौरैया' और 'रेडविंग' की आवाज़ सुनाई दी, तब भी एक फुट मोटी बर्फ जमी हुई थी। ज्यों-ज्यों मौसम गर्म होता गया, त्यों-त्यों जल के द्वारा बर्फ का गलना दिखाई देना बन्द होता गया। नदियों की बर्फ की भाँति टूट कर यह उतराती और बहती भी नहीं। यद्यपि तट के निकट यह पाँच-छ: गज तक गल चुकी थी, फिर भी मध्य भाग में केवल जाली ही बन पाई थी और उसमें पानी भर गया था, और कोई छ: इंच मोटी बर्फ पर भी पैर रखकर चल सकते थे। किन्तु शायद अगले दिन शाम तक यह भी गर्मी, मेह और कुहरे के बाद एकदम गायब हो जाय, कुहरे में उड़ जाय, काफूर हो जाय। एक वर्ष मैंने इस मध्य भाग को पूरी तरह बर्फ गलने के पाँच दिन पहले चलकर पार किया था। सन् १८४५ में वालडेन पहली अप्रैल को पहली बार पूरी तरह खुला, १८४६ में पच्चीसवीं मार्च को, १८४७ में आठवीं अप्रैल को, १८५१ में अट्ठाईसवीं मार्च को, १८५२ में अठारहवीं अप्रैल को, १८५३ में तेईसवीं मार्च को, १८५४ में सातवीं अप्रैल के लगभग।

हम लोगों के लिए, जो अतिशय ठंडी जलवायु में रहते हैं, नदियों और झीलों के खुलने और मौसम के स्थिर होने से सम्बन्धित प्रत्येक घटना विशेष रूप से मनोहर होती है। गर्म दिन आने लगते हैं तो नदी के निकट रहने वाले लोग रात को बर्फ के चटखने का धड़ाका सुनकर चौंक उठते हैं मानो तोप चल रही हो—एक छोर से दूसरे छोर तक बर्फीली बेड़ियाँ टूट रही हों। जल्दी-जल्दी बर्फ गायब होती जाती है। घड़ियाल रेती को कँपाकर निकल पड़ता है। एक वृद्ध सज्जन हैं जिन्होंने प्रकृति को अत्यन्त निकट से देखा है, और प्रकृति की सभी क्रियाओं के सम्बन्ध में उनका ज्ञान इतना अधिक है कि लगता है प्रकृति का सब-कुछ उन्हींके सामने बना हो। उनका पूरा विकास हो चुका है और यदि अब वे एक हजार साल की आयु तक भी जीवित रहें, तो भी उनके प्रकृति-ज्ञान में और वृद्धि नहीं होगी। उन्होंने मुझे एक दिन बताया (और मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि प्रकृति के किसी भी काम पर वे चकित होते हैं, क्योंकि मैं तो समझता था कि इन दिनों के बीच अब कोई रहस्य नहीं रहा

होगा) कि एक दिन वसंत में वे एक बंदूक और नाव लेकर वत्तख का शिकार खेलने के लिए निकल पड़े। मैदानों में बर्फ अब भी जमी हुई थी, लेकिन नदी खुल गई थी। वे बिना किसी बाधा के अपने वास-स्थान 'सडवरी' से 'फेयर हैवन' तक पहुँच गए, जो उन्हें, अप्रत्याशित रूप से, अधिकांश में बर्फ से ढका मिला। उस दिन गर्मी थी और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अब भी इतनी वर्फ जमी हुई है। वत्तखें दिखाई नहीं पड़ीं इसलिए इस झील के एक द्वीप के उत्तरी या पीछे के भाग में उन्होंने अपनी नाव छिपा दी और आगे के भाग में एक झाड़ी में छिपकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। तट से १५-२० गज तक वर्फ गल चुकी थी और गर्म जल की एक चिकनी पट्टी-सी बन गई थी, मटैली तली थी, जो वत्तखों को अत्यन्त प्रिय होती है। उन्होंने सोचा कि कुछ बत्तखें आती ही होंगी। एक घंटे तक चुपचाप पड़े रहने के बाद उन्हें दूर से आती हुई आवाज सुनाई पड़ी, जो धीमी किन्तु बड़ी ही गम्भीर और प्रभावपूर्ण थी, जैसी उन्होंने कभी नहीं सुनी थी। यह आवाज क्रम से बढ़ती ही जा रही थी मानो यह सृष्टि-भर में फैल जायगी, और इसका वड़ा स्मरणीय अंत हो गया, एक जबरदस्त, झपटकर आती हुई गरज में। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि पक्षियों का कोई विशाल समूह आ रहा है। उन्होंने फुर्ती से बंदूक सम्हाली, किन्तु यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि इसी बीच वर्फ खिसककर तट से जा लगी और जो उन्हें सुनाई पड़ी थी वह वर्फ की तट से टकराने की आवाज थी। यह वर्फ पहले धीरे-धीरे किनारा काट रही थी और फिर जोर से टकराने लगी। शांत होने से पहले इसने द्वीप के किनारों पर काफी ऊँचाई तक अपने विध्वंस-चिह्न बिखेर दिए।

अन्त में सूर्य की किरणे समकोण पर पहुँच जाती हैं, गर्म हवाएँ कुहरा और मेह लाती हैं और वर्फ गलाने लगती हैं। कुहरे को काटकर लाल और सफेद, रंग-बिरंगे, धूनी देते हुए भूदृश्य पर सूर्य मुस्कराने लगता है, जिसमें होकर यात्री छोटे-छोटे द्वीपों को सहस्रों नदी नालों के कल-कल के संगीत से उल्लसित होता हुआ पार करता है। उनकी शिराओं में शीतकाल का रक्त भर जाता है, जिसे वे प्रवाहित करने लगते हैं।

रेलवे-लाइन, जिस पर होकर मैं गाँव जाया करता था, उसके कगार के गहरे कटाव की सरकती हुई रेत और मिट्टी से बनी अनेक आकृतियों को देखने में मुझे जितना आनन्द आता था, उतना और किसी घटना में नहीं आता।

इतने बड़े पैमाने पर यह घटना बहुत कम देखने में आती है। अब तो, जब से रेल का आविष्कार हुआ है, इसकी सामग्री से भरे नये खुले किनारों की संख्या बहुत बढ़ गई होगी। यह सामग्री थी, अनेक रंगों की महीन-से-महीन रेत; जिसमें सामान्यत: मिट्टी मिली रहती थी। वसंत ऋतु में जब कुहरा होता है, और जाड़ों में भी जब बर्फ गलने लगती है, तब ढालों पर से लावे की भाँति रेत बहने लगती है। कहीं-कहीं तो यह बर्फ को भी फोड़कर निकल आती है और जिस स्थल पर रेत का कण भी दिखाई नहीं देता था, वह रेत से ढक जाता है। छोटी-छोटी असंख्य धाराएँ एक दूसरे को काटने लगती हैं और इस प्रकार एक 'वर्ण-संकर' धारा की सृष्टि होती है जो धारा और वनस्पति दोनों के ही नियमों का आधा-आधा पालन करती है। जब यह धारा बहती है तो एक फुट या अधिक ऊँचे गुदगुदे ढेर बनाती हुई, हरी पत्तियों या लताओं का आकार ग्रहण करती है, देखने में लगता है जैसे 'लाइकेन' की शाखाएँ फैली हुई हों। या कभी इसे देखकर मूँग की, तेंदुए के पंजों की, पक्षियों के पंजों की, मस्तिष्कों, फेफड़ों या आँतों की, या सभी प्रकार के निस्सरण की याद आती है। यह वास्तव में विचित्र प्रकार की वनस्पति है जिसके रूप-रंग की नकल हमें ताँबे में मिलती है, एक प्रकार की वनस्पति जो एकेन्थस, चिकोरी, आइवी आदि वानस्पतिक लता-पत्रादि से कहीं अधिक प्राचीन है। शायद, कुछ परिस्थितियों में, यह भविष्य के भूगर्भशास्त्रियों के लिए एक पहेली बन जायगी। यह कटाव देखकर मुझे लगता है कि मानो कोई गुफा हो जिसके लटकने वाले पत्थर खुल गए हों और प्रकाश जाने लगा हो। इस रेत के भाँति-भाँति के रंग बड़े मनोहर होते हैं—लोहे के विभिन्न रंगों जैसे, भूरे, पीताभ, और रक्ताभ। जब यह प्रवाहित सामग्री किनारे के नीचे पहुँचती है तो पट्टियाँ बन जाती हैं और इन धाराओं का अर्द्ध-बेलनाकार रूप समाप्त हो जाता है। धीरे-धीरे वे चपटी और चौड़ी होती चली जाती हैं। नमी के कारण वे एक-दूसरे में मिल जाती हैं और रेत की एक पट्टी बन जाती है। तब भी उनके रंग बड़े सुन्दर लगते हैं, और मूल वनस्पति के चिह्न आपको दिखाई देते हैं। अन्त में जल में पहुँचकर वह 'तट' बन जाती है, और ऐसा आकार धारण कर लेती है जैसा कि नदियों के मुहाने पर मिलता है। अब तल भाग में वनस्पति, लता-पत्रादि के आकार तरंगों के चिह्नों में खो जाते हैं।

सारा तट जो बीस से चालीस फुट तक ऊँचा है, कभी-कभी इस प्रकार

की पत्तियाँ, या रेतीले प्रस्फुटन से दो फर्लांग तक एक या दोनों ओर ढक जाता है। इतना काम वसंत ऋतु के दिन में ही हो जाता है। जो बात इन रेतीली पत्तियों में देखने योग्य है, वह है अचानक ही इनका प्रकट हो जाना। जब मैं एक ओर तो सुप्त तट को देखता हूँ (क्योंकि सूर्य पहले एक ओर ही काम करता है) ओर दूसरी ओर इस मधुर वनस्पति को देखता हूँ, जो केवल एक घंटे की रचना होती है, तो मुझे प्रतीत होता है कि मैं किसी कलाकार की प्रयोगशाला में आ खड़ा हुआ हूँ जिसने इस सारे विश्व की, और मेरी रचना की है, मानो मैं उस स्थान पर आ गया हूँ जहाँ वह कलाकार इस तट पर अब भी अपने सृजन-कर्म में लगा हुआ है और अपनी अतिरिक्त शक्ति से चारों ओर नये-नये डिज़ाइन बिखरा रहा है। मैं अनुभव करने लगता हूँ कि इस सृष्टि के मर्मस्थल पर पहुँच गया हूँ, यह रेतीला प्रवाह एक ऐसा पर्ण-सदृश पुंज है जो किसी प्राणी का मर्मस्थल प्रतीत होता है। इस प्रकार आपको इस रेत में ही वानस्पत्य छिपा दिखाई देता है। पृथ्वी के अंतस् में मंथन चलता रहता है और कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह अपने-आपको पत्तियों के रूप में अभिव्यक्त करती है। परमाणुओं ने इस नियम को सीख लिया है, और उनमें वह परिव्याप्त है। ऊपर लटकती हुई पत्ती को यहाँ अपनी मूल आकृति दिखाई देती है। आंतिरिक रूप से, चाहे पृथ्वी में हो या प्राणी में, एक गीला मोटा 'लोथड़ा' होता है, यह शब्द खास तौर पर यकृत, और फेफड़ों के लिए और 'वसा की पत्तियों' के लिए प्रयुक्त हो सकता है (Labor, Lapus, नीचे खिसकना, बहना; Globus, lobe, globe, लोथड़ा, गोला; Lap गोदी आदि शब्द)। बाह्य रूप में यह पतला-सा पत्ता (Leaf) हो जाता है जैसे कि वर्ण f और y सूखे हुए b होते हैं। Lobe (लोथड़ा) का मूल है lb, अर्थात् b के गुदगुदेपन को पीछे से तरल l ठेलता है तब lb बनता है। Globe (गोला, पृथ्वी) में मूल है Glb जिसमें कण्ठस्थ g (ग) अर्थ में कण्ठ की क्षमता का भी योग दे देता है। पक्षियों के पंख और भी सूखी पत्ती होते हैं। इसी प्रकार हमें भूमि में रहने वाले भिनगे से हवा में उड़ती तितली तक यही बात दिखाई देती है। स्वयं यह गोला ही अपने-आपको निरंतर बदला करता है, परिक्रमा-पथ में इसके भी पंख लग जाते हैं। बर्फ भी पतले-पतले पत्तों के रूप में जमना प्रारम्भ करती है, मानो जल के दर्पण में जल के पौधों की पत्तियों ने जो सांचे बना दिए हैं उन्हीं में यह ढलती है। समूचा वृक्ष ही एक पत्ती होता

है, नदियाँ और भी बड़ी पत्तियाँ होती हैं जिनका गूदा बीच की मिट्टी होती है। और शहरों और कस्बों को कक्ष में स्थित कीड़ों के अंडे समझिए।

सूर्य छिप जाता है तो रेत का यह प्रवाह बंद हो जाता है; किन्तु सुबह होते ही ये धाराएँ फिर से प्रवाहित हो जायँगी और असंख्य उपधाराओं में बँटती चली जायँगी। रक्त-वाहिनी धमनियों का भी यही रूप होता है। ध्यान से देखें तो पता चलता है कि कटाव में से नरम रेत की एक धारा बूंद के अग्र विन्दु के समान या उँगली के अग्र-भाग के समान आगे आती है और धीरे-धीरे अपना पथ टटोलती हुई आगे बढ़ती है, फिर ज्यों-ज्यों सूर्य ऊपर उठता जाता है त्यों-त्यों अधिक उष्णता और नमी होने के कारण सबसे तरल भाग, (एक ऐसे नियम का पालन उसका जड़तम भाग तक करता है) अलग होकर उसी में एक टेढ़ा-मेढ़ा पथ या धमनी बना लेता है जिसमें एक नन्हीं-सी रूपहली धारा दिखाई देती है जो पत्तियों या शाखाओं की एक दशा में परि-वर्तन की बिजली की तरह चमक जाती है और फिर रेत में ही विलीन हो जाती है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्रवाहित होते समय रेत कितनी फुर्ती से और कितनी भली प्रकार अपने को व्यवस्थित कर लेती है, वह अपने पुंज की सर्वोत्तम सामग्री का प्रयोग इस पथ-निर्माण में करती है। नदियों के स्रोत भी इसी प्रकार के होते हैं। पानी जो सफेद पथरीला पदार्थ जमा करता है, वह शायद हड्डियों का ढाँचा होगा तथा महीन मिट्टी मांस के रेशे और जीवाणु-समूह यानी उसका सजीव अश होगी। मानव भी इस 'गलती' हुई मिट्टी के सिवा और क्या है? मानव की उँगली का अग्रभाग केवल एक जमी हुई बूंद है। यह गलता हुआ पदार्थ बहता है और सिरे पर आकर हाथों और पैरों की उंगलियों का रूप धारण कर लेता है। कौन जानता है कि और भी अधिक रम्य आकाश के नीचे मानव का शरीर कहाँ तक फैलता है, कहाँ तक प्रवाहित होता है? हाथ क्या, ताड़ (Palm—ताड़, हथेली) का एक पत्ता नहीं है; जिसमें नस-नाड़ियाँ सभी कुछ हैं? काल्पनिक रूप से कान सिर के दोनों ओर फैली हुई 'लाइकेन' वनस्पति है, जिसका अंतिम बिंदु या 'लोथड़ा' कान की लौ है। ओठ भी मुँह की गुफा पर लटका हुआ रहता है। नाक साक्षात् एक जमी हुई बूंद है। ठोड़ी और भी बड़ी बूंद है, मुखमण्डल से प्रवाहित होकर चूने वाली बूंद। भ्रूभाग से धसककर यह सामग्री मुखमण्डल की घाटी में कपोलास्थि पर आकर रुकी और इधर-उधर बिखर गई तो कपोल बने। पत्ती का प्रत्येक

घुमाव भी एक सरकती हुई बूँद है, वह छोटी हो या बड़ी, उसमें जितने घुमाव हैं उतनी ही दिशाओं में वह प्रवाहित होने का प्रयास करती है, और अधिक ऊष्मा या अधिक अनुकूल स्थिति होने पर यह प्रवाह और भी आगे तक चला जा जाता है।

इस प्रकार प्रतीत होता था कि पहाड़ी के इस ढाल पर प्रकृति की सभी क्रियाओं का सिद्धांत चरितार्थ होता है। इस पृथ्वी की सृष्टा ने केवल एक पत्ती ही बनाई। कौन-सा शैम्पोलियो[1] चित्रलिपि के इस लेख को पढ़कर हमें समझा सकेगा जिससे हममें नये पत्ते फूट निकलें? यह चीज मेरे निकट अंगूर के उद्यानों की बहुलता और उर्वरता से भी अधिक उल्लासमयी है। यह सच है कि स्वभाव में यह कुछ निस्सरणशील है तथा यकृत, आँतों आदि के ढेरों का कोई अन्त नहीं है, मानो पृथ्वी का आंतरिक भाग बाहर निकाल दिया गया हो। किन्तु इससे कम-से-कम यह तो पता चल जाता है कि प्रकृति में भी 'आंत' है (कुछ उदारता है) और यह कि वह मानवता की माता है। यह तुषार पृथ्वी में से उठ रहा है, यह भी वसंत है। यह फूलों और लता-पत्रादि वाले वसंत का पूर्वगामी है जैसे पुराण व्यवस्थित काव्य के पूर्वगामी हैं। शीतकाल के 'वात' रोग और अपच का इससे अच्छा इलाज मैं नहीं जानता। इससे मुझे निश्चय हो जाता है कि पृथ्वी अब भी अपने शैशव के वस्त्रों में ही लिपटी है और अपनी नन्हीं उँगलियाँ प्रत्येक दिशा में फैला रही है। खल्वाट-से-खल्वाट खोपड़ी पर भी नई केशराशि आ जाती है। यहाँ कुछ भी निर्जीव नहीं है। ये पत्तियों के आकार के ढेर किनारे पर धातु के मैल की तरह पड़े रहते हैं; ये बताते हैं कि भीतर प्रकृति पूरी तरह 'धधक' रही है। पृथ्वी केवल मृत इतिहास का अंश नहीं है, जिसमें पुस्तक के पृष्ठों की भाँति एक के ऊपर एक पर्त चढ़ा हुआ हो, जिसका अध्ययन मुख्यतया भूगर्भशास्त्री या पुरातत्त्व के पंडित ही करें, यह तो सजीव कविता है, वृक्ष के पत्तों की भाँति, जो फूलों और फलों से पहले आते हैं—यह पृथ्वी 'भूत सामग्री' (जीवाश्म) नहीं है यह सजीव है। इसके केन्द्रीय जीवन की तुलना में सारा पशु और वानस्पतिक जीवन परोप-जीवी मात्र है। इसकी प्रसव-पीड़ा हमारी केंचुलियों को उनकी कब्र से निकाल फेंकेगी। आप अपनी धातुओं को गलाकर चाहे जितने सुन्दर साँचों में ढालें, कभी भी वे मुझे उतना उत्तेजित नहीं कर सकेंगी जितना कि इस गली हुई मिट्टी

१. शैम्पोलियो—फ्रांसीसी पुरातत्त्वेत्ता (१७७८-१८६१)

के प्रवाह से बनने वाले आकार। और केवल यही नहीं, बल्कि इसके ऊपर बने हुए संस्थान भी कुम्हार के हाथों बने मिट्टी के आकारों के समान हैं।

थोड़े समय में भूमि में से तुषार निकलकर न केवल इन किनारों पर ही, बल्कि प्रत्येक पहाड़ी, मैदान और खड्ड पर छा जाता है, मानो कोई सुप्त चतुष्पद् प्राणी अपनी माँ में से निकल पड़ा हो, और संगीतमय होकर सागर की ओर जाता है या बादलों के प्रदेश में चला जाता है। विनम्र अनुरोध करने वाला यह विगलन, हथौड़ाधारी युद्ध के देवता 'थोर' से कहीं अधिक शक्तिशाली है। एक द्रवित करता है, दूसरा चकनाचूर कर डालता है।

जब भूमि अंशतः अनावृत हो जाती थी और कुछ गर्म दिन आकर इसकी सतह को सुखा देते थे, तो नव-वर्ष के, झाँकते हुए सुकोमल प्रथम चिह्नों की, मुरझाई हुई वनस्पति (जिसने शीतकाल का सामना किया है) के विराट सौंदर्य से तुलना करने में बड़ा आनन्द आता था। सदाबहार, गोल्डन रोड, पिनवीड और भाँति-भाँति की बनैली घास, ये अब ग्रीष्म काल से भी अधिक स्पष्ट और मनोहर लगते हैं, मानो केवल इसी समय इनका सौंदर्य परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है। 'कौटन ग्रास', 'कैट-टेल्स', म्युलीन जोन्सवर्ट, हार्ड हैक, मीडो स्वीट और कड़े तने वाले अन्य पौधे भी हैं। ये वे अक्षय भण्डार हैं जो सबसे पहले आने वाले पक्षियों का स्वागत-सत्कार करते हैं। विधवा प्रकृति के ये परिधान! 'वूल-ग्रास' की, पुलिंद-जैसी, वृत्त-खंड बनाती हुई चोटी मुझे विशेष रूप से आकर्षित करती है, जाड़ों में भी यह ग्रीष्म की याद दिलाता है। यह उन आकारों में से है जिनकी अनुकृति कला को भी प्रिय है। और उनका वानस्पतिक क्षेत्र में, मानव के मस्तिष्क में बसे हुए आकारों से ठीक वही सम्बन्ध है जो खगोल विद्या का है। यह बड़ी प्राचीन शैली है, यूनानी और मिस्री शैली से भी प्राचीन। शीतकाल की अनेक चीजों से एक अनिर्वचनीय कोमलता और लालित्य का आभास मिलता है। इस राजा के सम्बन्ध में हम यही सुनने को आदी हो गए हैं कि वह निर्भय है, प्रचंड और अत्याचारी शासक है, किन्तु वह एक प्रेम के कोमल भाव से ग्रीष्म की अलकों को भी सजाता है।

वसंत के आगमन पर लाल गिलहरियाँ, दो-दो करके मेरे घर के नीचे पहुँचने लगीं, मैं पढ़ता-लिखता तो वे ठीक मेरे पैरों के नीचे पहुंचकर अजीब ढंग से चूँ-चूँ, चर-चर करती रहतीं और ऐसा वाचिक नृत्य करतीं, ऐसी घर-

घराती आवाज़ें निकालतीं जैसी मैंने कभी नहीं सुनीं। जब मैं पैर पटकता तो वे और भी ज़ोरों से चहकने लगतीं मानों उनकी उन्माद लीला में भय, आदर-भाव का लेश-मात्र भी बाकी न रहा हो, और वे मानवता को चुनौती दे रही हों कि हो सके तो रोक लो। नहीं, ऐसा मत करो—चिक-चिक। वे मेरे तर्कों पर थोड़ा भी ध्यान नहीं देतीं, (या वे इन तर्कों की शक्ति नहीं देख पाती) और ऐसे आक्षेप के स्वर में डूब जातीं जिसका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता।

बसंत ऋतु की पहली गौरैया! सदा से भी अधिक यौवनपूर्ण आशा के साथ वर्षारम्भ! ब्लूबर्ड, रेविंग, सौंग स्पैरों की मृदु रूपहली कूकें अंशतः अनावृत और नम खेतों पर सुनाई पड़ती हैं, मानो शीत के अंतिम गोले गिरते हुए झनझना रहे हों। ऐसे समय में सारा इतिहास, काल-क्रम लेख, वार्त्ताएँ और सारा लिखित बोध क्या है? नदी-नाले बसंत के गीत गाने लगते हैं। दलदली बाज़ मैदान में नीचे मँडराने लगते हैं और जागकर उठने वाले प्रथम गीले प्राणी को खोजने लगते हैं। प्रत्येक घाटी और खड्ड में से पिघलती हुई बर्फ के धसकने की आवाज़ आती है। सरोवरों में भी बर्फ तेजी से पिघलने लगती है। पहाड़ियों के ढाल पर घास की लौ-सी जल उठती है मानो बसंत के आते ही पृथ्वी अपनी आंतरिक उष्मा को वापिस लौटाते हुए सूर्य के स्वागत के लिए बाहर निकाल डालती है। इसकी लौ का रंग पीला नहीं, हरा होता है। चिर तरुणाई का प्रतीक यह तृण हरे फीते की भाँति मिट्टी से निकलकर ग्रीष्म में लहराने लगता है, तुषार इसे रोकता है, किन्तु वह बार-बार तुरन्त ही नीचे से नवजीवन लिये वर्ष की सूखी घास का भाला उठाकर निकल पड़ता है। जिस अविचलता से नदी भूमि से प्रस्रवित होती है, उसी अविचलता से यह भी उगता है। इस सम्बन्ध में यह उसके समान ही होता है; क्योंकि जून के दीर्घगामी दिनों में जब नदी-नाले सूख जाते हैं तो घास ही उनकी धाराओं का काम करती है, और वर्ष-प्रति-वर्ष पशुओं के समूह इस अजस्र हरित धाराओं का पान करते रहते हैं, और इसी में घसियारे उनके लिए जाड़ों का भंडार भी जुटा लेते हैं। इसी प्रकार हमारा मानव जीवन भी मूल के ऊपर तक ही मरता है, और चिर काल तक हरे तिनके उगाता रहता है।

वालडेन बड़ी तेज़ी से पिघल रहा है। उत्तरी और पश्चिमी किनारों पर दस-दस गज़ चौड़ी नहरें बन गई हैं। उत्तरी और पश्चिमी ओर तो नहर इससे भी अधिक चौड़ी है। केन्द्रीय भाग से काफी बड़े क्षेत्र में बर्फ चटख चुकी है।

तटवर्ती झाड़ियों में गाती हुई गौरैया का गीत मुझे सुनाई पड़ता है—ओलित, ओलित, ओलित, चिप, चिप, चिप, चे-चर-चे, विस-विस-विस। यह संगीत भी वर्फ को चटखा रहा है। वर्फ के किनारों के वड़े-वड़े घुमाव कितने सुन्दर हैं। ठीक जैसे तट के घुमाव, किंतु उनसे अधिक सम। हाल की ही अस्थायी ठंड के कारण यह (वर्फ) असाधारण रूप से कड़ी हो गई है, और इसके ऊपर पानी आ गया है मानो किसी राजमहल का फर्श धुल रहा हो। किन्तु वायु इसकी अपारदर्शी सतह पर व्यर्थ ही फिसलती हुई पूर्व की ओर चली जाती है, जब तक कि वह उस पार की सजीव सतह तक नहीं जा पहुँचती। पानी के इस फीते को धूप में जगमगाता देखने में वड़ा अच्छा लगता है। आनन्द और तरुणाई से चमकता हुआ सरोवर का यह अनावृत मुख! मानो यह उन मछलियों के आनन्द की अभिव्यक्ति कर रहा हो जो इसमें वास करती हैं; अपने तट के रेत के आनन्द की अभिव्यक्ति कर रहा हो, और यह रेत ऐसे चमकती है मानो स्वयं एक वहुत वड़ी सजीव मछली हो। यह है शीतकाल और वसंत ऋतु का परस्पर-विरोधी भाव। सरोवर मृत था, अव वह फिर जी उठा है। किंतु जैसा कि मैं वता चुका हूँ, इस वार इसकी वर्फ वहुत धीरे धीरे पिघलती है।

तूफान और ठंड का शांत और सुहाने मौसम में, धीमे वीतने वाले दिनों का जगमगाते लचीले दिनों में यह परिवर्तन एक स्मरणीय मोड़ होता है जिसकी घोषणा सभी वस्तुएँ करती हैं। अंततोगत्वा यह एक अनायास परिवर्तन प्रतीत होता है। अचानक ही ज्योति का प्रभाव मेरी कुटिया में भर गया, यद्यपि शाम होने वाली थी और शीतकाल के वादल अव भी धुमड़ रहे थे और ओरियाँ अव भी टपक रहीं थीं। मैंने खिड़की के वाहर देखा और लो! कल तक जहाँ शीतल वर्फ जमी हुई थी, आज वहाँ शांति और आशा से परिपूर्ण एक पारदर्शक सरोवर अवस्थित है मानो ग्रीष्म की संध्या आ गई हो और यह उस संध्या के आकाश को अपने हृदय में प्रतिविम्वित कर रहा हो, यद्यपि ऊपर ऐसा आकाश दिखाई नहीं दे रहा था। शायद किसी सुदूरवर्ती क्षितिज से सम्वन्ध जोड़ लिया हो। कुछ दूर पर मुझे 'रोविन' (कुमारी) की आवाज सुनाई पड़ी, मुझे ऐसा लगा मानो मैंने यह स्वर कई हजार वर्ष वाद सुना है जिसे मैं अगले कई हजार वर्ष तक नहीं भूल सकूँगा वही पुराना, मधुर, ओजपूर्ण गीत। ओह, न्यू इंग्लैण्ड के ग्रीष्म के दिनान्त में संध्याकालीन

रोबिन ! मुझे वह फुनगी मिल पाती जिस पर वह बैठती है—मेरा मतलब उस रोबिन, उस फुनगी से है। कम-से-कम यह तो Turdus Migratorius नहीं है। मेरे घर के चारों ओर खड़े चीड़ और झाड़ीदार बलूत के वृक्ष, जो इतने काल तक झुके खड़े थे, अचानक ही उन्होंने फिर अपने स्वभाविक गुण धारण कर लिए, वे अधिक चमकीले, अधिक हरे, अधिक सीदे और सजीव दिखाई देने लगे, मानो, मेह ने उन्हें धो-पोंछकर पुनर्जीवित कर दिया हो। मैं जानता था कि अब और मेह नहीं बरसेगा। वन की किसी भी फुनगी को, बल्कि आपके ईंधन के चट्टे को भी देखकर बताया जा सकता था कि शीतकाल चला गया या नहीं। अंधेरा हुआ तो मैं कलहंसों की हाँक सुनकर चौंक पड़ा जो वन के ऊपर बहुत नीचाई पर उड़ रहे थे, हारे-थके यात्रियों की भाँति, जिन्हें दक्षिणी झीलों से लौटने में देर हो गई हो और वे एक-दूसरे से शिकायत कर रहे हों, साथ ही परस्पर सांत्वना भी देते जाते हों। द्वार में खड़े होने पर उनके पंखों की सरसाहट सुनाई पड़ती थी। मेरे घर की ओर आते ही अचानक उन्हें रोशनी दिखाई दी और चुपचाप उन्होंने अपना रथ सरोवर में उतार दिया और वहीं बसेरा ले लिया। तब मैंने भी अपने घर का द्वार बंद कर लिया और इस प्रकार बसंत की यह प्रथम रात्रि वन में गुजारी।

प्रातःकाल मैंने अपने द्वार के धुंध में से इन कलहंसों को देखा। ये सरोवर के मध्य में लगभग २२५ गज़ की दूरी पर तैर रहे थे। उनका कोलाहल देखकर लग रहा था कि वालडेन कोई कृत्रिम झील है जिसे उनकी क्रीड़ा के लिए ही बनाया गया है। किंतु जब मैं तट पर जा खड़ा हुआ तो अपने नायक के एक इशारे पर वे पंख फड़फड़ाकर ऊपर उठे और जब वे उन्तीसों एक कतार में हो गए तो मेरे सिर के ऊपर चक्कर काटने लगे। फिर वे सीधे कैनाडा की ओर चल दिए। उनका नायक बराबर हाँक लगाता जा रहा था, उन्हें भरोसा था कि किसी मटैले तालाब पर वे व्रत तोड़ेंगे (नाश्ता करेंगे)। तभी बत्तखों का भी एक झुंड ऊपर उठा और उसने भी अपने इन अधिक ऊधमी बांधवों के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए उत्तर दिशा का रास्ता लिया।

एक सप्ताह तक, कुहरे से भरे प्रातःकालों में, मुझे किसी-न-किसी बिछुड़े हुए कलहंस की चक्कर काटती हुई ढूंढती हुई आवाज वन में सुनाई पड़ती रही; जितने बड़े जीवन को यह पोषित न कर सके उतने बड़े जीवन के स्वर से वह इस वन को गुँजाता रहा। अप्रैल में फिर कबूतरों के झुंड तेज़ी से उड़ते

हुए दिखाई देने लगे और यथा समय मेरे स्थान पर 'मार्टिन' की चहचहाहट भी सुनाई पड़ी, यद्यपि मैंने नहीं सोचा था कि वस्ती में ये इतने अधिक और अतिरिक्त होंगे कि मेरे हिस्से में भी कोई आ सकेगा। मैं सोचता था कि यह पक्षी स्वाभविक रूप से प्राचीन जाति का है जो श्वेत जन के पदार्पण से पूर्व खोखले वृक्षों में वास करता होगा। लगभग सभी प्रदेशों में कछुए और मेढ़क इस ऋतु के आगमन की घोषणा करते हैं, और रंग विरंगे पक्षीगण गाना गाते हुए उड़ने लगते हैं, पौधे लहलहाकर फूलने लगते हैं, और ध्रुवों के इस किंचित् हटाव को ठीक करके प्रकृति का संतुलन बनाये रखने के लिए हवाएँ चलने लगती हैं।

प्रत्येक ऋतु वारी-वारी से हमें सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होती है। वसंत का आगमन मानो 'विप्लव' में से सृष्टि-क्रम और स्वर्णयुग की प्राप्ति-सा प्रतीत होता है—

> "पूर्वी हवा आरोरा और नेवाथियन राज्य की ओर चली गई, और फारस की ओर, और चोटियाँ प्रातःकाल की किरणों के नीचे रख दी गईं। मानव का जन्म हुआ। सृष्टि कर्त्ता ने—श्रेष्ठतर संसार के स्रोत ने, उसे दिव्य वीज से उत्पन्न किया, अथवा पृथ्वी ने, जो हाल ही में शून्य से उदित हुई थी, अपने सगोत्री के कुछ वीज धारण कर लिए थे।"

हल्के मेह की फुहार घास को कई गुना अधिक हरा कर देती है। इसी भाँति श्रेष्ठतर विचारों का प्रवाह आने से हमारा भविष्य भी उज्ज्वलतर हो जाता है। यदि हम सदा ही वर्तमान में रहें प्रत्येक घटना का लाभ उठाते चलें जैसे कि घास अपने ऊपर गिरने वाली हल्की-से-हल्की ओस का प्रभाव अंगीकार कर लेती है, और यदि पिछले अवसरों का लाभ उठाने पर प्रायाश्चित करने में समय नष्ट न करें, जिसे हम अपना कर्त्तव्य-पालन कहते हैं, तो हमारा जीवन सुखमय हो जाय। मधु ऋतु आ जाने पर भी हम शीतलकाल में ही विचरण करते रहते हैं। मधु ऋतु के सुहाने प्रातःकाल में लोगों के पाप क्षमा हो जाते हैं। ऐसा दिन दुराचार के विराम की माँग करता है। ऐसा सूर्य आलोक दे रहा हो तो वड़े-से-वड़ा पापिष्ठ भी वापिस लौट सकता है। अपनी पुनः प्राप्त निर्दोपिता में से हम अपने पड़ोसियों की निर्दोपिता पहचान पाते हैं। कल तक भले ही आप अपने पड़ोसी को चोर, शरावी, व्यभिचारी के

ही रूप में जानते हों, और उसके प्रति आपके मन में केवल करुणा अथवा घृणा का ही भाव आता रहा हो, और संसार से निराश हो गए हों, किन्तु वसंत के इस प्रथम दिन प्रातःकाल में, संसार की फिर से रचना करते हुए सूर्य जगमगा उठता है और आप उसी पड़ोसी को शाँत भाव से कार्य में रत देखते हैं, आप देखते हैं कि उसकी थकित और विकृत धमनियाँ प्रशाँत आनन्द से फैलने लगी हैं और इस नये दिन को आलोकित कर रही हैं, देखते हैं कि वह बाल-सुलभ भोलेपन के साथ वसंत के प्रभाव का अनुभव करता है, और उसके सारे दोष भुला दिए जाते हैं। अब उसके चारों ओर न केवल सद्भावना का ही वातावरण होता है, बल्कि उसमें पवित्रता की गंध भी आने लगती है जो किसी नवजात प्रवृत्ति के समान, बिना देखे और कदाचित् प्रभावहीन ढंग से अभिव्यक्त होने के लिए टटोलने लगती है। और थोड़े समय के लिए दक्षिणी पहाड़ी पर अशिष्ट हास्य की प्रतिध्वनि रुक जाती है। आप देखते हैं कि उसकी कड़ी और खुरदरी छाल में से कुछ नये निर्दोष अंकुर निकल आते हैं जो एक ओर वर्ष के जीवन की तैयारी करते हैं, नन्हें से बिरवे में समान कोमल और ताज़ा। वह भी अपने स्वामी के इस आनन्द का उपभोग करने लगता है। तब फिर ऐसे समय में जेलर अपनी जेल के फाटक क्यों नहीं खोल देता, जज मुकद्दमा बर्खास्त क्यों नहीं कर देता, पादरी अपनी सभा भंग क्यों नहीं कर देता। इसका कारण यह है कि वे परमात्मा के इस संकेत का अनुसरण नहीं करते और नहीं चलते, न वे उस 'क्षमा' को ही स्वीकार करते हैं; जो वह सबको प्रदान करता है।

"प्रतिदिन प्रातःकाल की शांत और सुखद वायु में अच्छाई की ओर लौटने का जो आमंत्रण होता है, वह अच्छाई के प्रति प्रेम और बुराई के प्रति घृणा से सम्बन्धित होता है, व्यक्ति इसके द्वारा कुछ-कुछ मानव की आदिम प्रकृति की ओर जाता है, जैसे काटे हुए वन में नये कल्ले फूटते हैं उसी भाँति दिन के अंतराल में व्यक्ति जो भी बुराई करता है, वह सद्गुणों के फिर से उगते हुए कल्लों को विकसित होने से रोकती है और उन्हें नष्ट कर देती है।

"इस प्रकार सद्गुणों के कल्लों का विकास जब बार-बार रोका जा चुकता है, तब फिर उन्हें सुरक्षित रखने के लिए संध्या की गुणकारी वायु ही पर्याप्त नहीं होती। जब स्थिति यह हो जाती है कि संध्या की वायु उन्हें सुरक्षित रखने को पर्याप्त नहीं होती, तो आदमी और जानवर की प्रकृति में बहुत अंतर

नहीं रह जाता। लोग ऐसे व्यक्ति की पाशविक प्रकृति को देखकर यह सोच लेते हैं कि उसमें तर्क की क्षमता कभी रही ही नहीं। क्या ये ही मानव के वास्तविक और प्रकृत भाव हैं ?"

"स्वर्ण-युग का निर्माण हुआ था जो विना प्रतिशोधक के,
नैसर्गिक रूप में, विना नियम-बंधन के, सत्य और सन्मार्ग पर चलता था।
दण्ड और भय का अस्तित्व नहीं था,
न भयकारी शब्द ताम्र-पत्र पर लिखे गए थे, न प्रार्थीजन का समूह न्यायाधीश के शब्दों से भयभीत होता था, वे विना प्रतिशोध के भी सुरक्षित थे।
अभी न चीड़ वृक्ष को उसके पर्वत से काटकर लुढ़काया गया था,
तरल तरंगों में नया लोक देखने को,
और मानव ने कोई अन्य तट नहीं जाना था······
चिर वसंत था और मंद वयार
विना वीज के उगे पुष्पों को खिलाती थी।"

२६ वीं अप्रैल को जव मैं 'नाइन एकड़ कोर्नरब्रिज' के निकट, काँपती हुई घास और वेद वृक्ष की जड़ पर (जहाँ मस्करेट छिपे रहते हैं) खड़ा हुआ मछली मार रहा था तो मुझे एक अजीव-सी खड़खड़ाहट सुनाई दी। वैसी आवाज तव आती है जव लड़के उंगलियों से डंडों का खेल खेलते हैं। देखा तो ऊपर एक छोटा-सा सुन्दर वाज तरंग की भाँति उठ रहा है। वह पाँच-छै गज तक लुढ़कता और अपने पंखों के नीचे के भाग का प्रदर्शन करता, जो ऐसे चमक रहे थे जैसे धूप में साटन, या सीप का मोतियों-जैसा भीतरी भाग। इस दृश्य ने मुझे वाज के शिकार और उस शिकार से सम्वन्धित श्रेष्ठता और कविता की याद दिला दी। मुझे लगा जैसे इसे वाज की संज्ञा दी जा सकती है। लेकिन मैं नाम की परवाह नहीं करता। इससे अधिक 'आकाशीय' उड़ान मैंने कभी नहीं देखी। वह तितली की भाँति केवल फड़फड़ा नहीं रहा था, न वड़े वाजों की भाँति ऊपर उठ रहा था, वल्कि वड़े गौरवमय विश्वास के साथ वायुक्षेत्र में विचरण कर रहा था। चहचहाकर वार-वार ऊपर उठता और पतंग की भाँति लुढ़ककर वड़े सुन्दर ढंग से वार-वार नीचे आ जाता, और फिर लुढ़कना वन्द करके सहज हो जाता, मानो उसने कभी पृथ्वी का स्पर्श ही न किया हो। प्रतीत होता था कि सृष्टि-भर में उसका कोई साथी नहीं है—सृष्टि में अकेला

ही खेलता फिरता है और जिस प्रातःकाल और शून्य के साथ यह खेलता है उनके सिवा इसे और किसी की आवश्यकता भी नहीं है। यह एकाकी नहीं था वल्कि नीचे की सारी पृथ्वी को इसने एकाकी कर दिया था। जिस माता ने इसको, इसके बंधुओं को, इसके पिता को आकाश में जन्म दिया था वह कहाँ है ? यह वायु का वासी था और पृथ्वी से केवल उस अंडे के द्वारा ही सम्बन्धित था जो कभी किसी चट्टान की दरार में सेया गया होगा अथवा क्या इसका घोंसला किसी वादल के कोने में था जिसमें इन्द्रधनुष और सांध्य आकाश की कतरन और तिनके लगे थे, जिसे मध्यग्रीष्म की कोमल धुंध वटोरकर गुदगुदा कर दिया गया था ? अब इसका नीड़ चट्टानी वादल में होगा।

इसके अरिरिक्त मुझे अनेक रुपहली, सुनहली और चमकीले ताम्रवर्ण की अलम मछलियों का दल मिला जो रत्नों की माला-सी प्रतीत होती थीं। अहा ! अनेक वार वसंत के प्रथम दिवस मैं उन मैदानों में गया हूँ, टीले-टीले, कूदता, लाँघता, वेद के एक वृक्ष की जड़ से दूसरे वृक्ष की जड़ तक छलाँग भरता, जब नदी की हरी-भरी घाटी और तपोवन ऐसे आलोक में नहाए रहते, जो कब्र में सोए हुए मुर्दों को भी जगा दे ! अमरता का इससे वड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है ? ऐसे आलोक में सभी वस्तुएँ अनिवार्यतः सजीव हो उठती हैं। हे मृत्यु, तब तेरा दंशन कहाँ था ? हे कब्र तब तेरी विजय कहाँ थी ?

यदि हमारा ग्राम्य जीवन चारों ओर अगम वन और मैदानों से घिरा न होता तो वह अवरुद्ध हो जाता। हमें वनैलेपन की शक्तिवर्धक औषधि की आवश्यकता है—कभी-कभी दलदल में चलना जहाँ तितलोया और 'मीडोहैन' छिपी रहती हैं, चहा की आवाज सुनना, फुसफुसाती हुई दलदली घास की गंध लेना जहाँ केवल अधिक बनैले और एकाकी पक्षी ही नीड़ बनाते हैं और 'मिंक' भूमि से पेट सटाकर रेंगता है। जहाँ हम सब चीजों की खोज करने और उनका अध्ययन करने को आतुर हों वहाँ साथ ही यह भी आवश्यक है कि ये सब चीज़ें रहस्यमय हों, दुर्गम हों, भूमि और सागर अनंत रूप से उद्दाम हों, अछूते हों और नये हों; क्योंकि वे दुर्गम हैं। कभी भी हम प्रकृति को इतना प्राप्त नहीं कर सकते कि परितृप्त हो जायँ। अक्षय शक्ति के दर्शन से, विराट् और विस्तृत आकारों से, विध्वंस के अवशेष धारण किये हुए समुद्र-तट से, हरे-भरे और सूखे वृक्षों से भरे वन से, वादलों के गर्जन-तर्जन से, और मेह से, जो तीन सप्ताह तक झड़ी लगाये रहता है और नदी-नालों को आप्लावित

कर देता है, हमें नवस्फूर्ति ग्रहण करनी चाहिए। हमें अपनी ही सीमाओं को उल्लंघित होते देखने की आवश्यकता है, और जीवन को उस भूमि में विचरण करते देखने की जहाँ हम कभी पैर नहीं रखते। जब हम देखते हैं कि जिस सड़े माँस को देखकर हमें घृणा और निराशा होती है, उसीका भक्षण गिद्ध करता है और इस भोजन से स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त करता है, तो हमारे मन में उल्लास की लहर दौड़ जाती है। मेरे घर के रास्ते के पास खड्ड में एक घोड़ा मरा पड़ा था, जिसके कारण कभी-कभी मुझे चक्कर लगाकर जाना पड़ता था, खास तौर पर रात में, जब हवा भारी हो जाती थी। किन्तु इससे प्रकृति की ज़बरदस्त पाचन-शक्ति और अभेद्य स्वास्थ्य का जो निश्चय मुझे मिला, वह इस असुविधा की पर्याप्त क्षतिपूर्ति था। मुझे यह देखने से बड़ा आनन्द आता है कि प्रकृति जीवन से इतनी ओत-प्रोत है कि असंख्य जीवों का बलिदान चलता रहता है, और ये जीव एक-दूसरे का शिकार करते रहते हैं, कोमल संस्थान लुगदी की तरह मिटा दिए जाते हैं, मेंढकों के बच्चों को सारस चट कर जाते हैं, कछुए और मेंढ़क सड़क पर पिस जाते हैं और कभी-कभी रक्त-माँस की वर्षा-सी हो जाती है। दुर्घटनाओं की इतनी सम्भावना होने से यह सब कितनी महत्त्वहीन होती हैं, यह हमें समझना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति पर तो यही प्रभाव पड़ता है कि सृष्टि-भर में निर्दोषिता है। अंततोगत्वा विष विषैला नहीं होता, न कोई घाव मारक होता है। दया की जमीन बड़ी नाजुक होती है। इसको शीघ्रता चाहिए। इसकी प्रकार को एक ही ढाँचे में ढलना सहन नहीं होता।

मई के प्रारम्भ में सरोवर के चारों ओर चीड़ के वन में बलूत हिकौरी, मेपिल आदि वृक्ष इस भू-दृश्य को सूर्य की भाँति आलोकित करते थे, विशेषकर जब आसमान में बादल छाए रहते, मानो सूर्य कुहरा पार करके पहाड़ी के ढालों पर जहाँ-तहाँ मंद-मंद जगमगा रहा हो। तीसरी या चौथी मई को सरोवर में मुझे एक 'लून' दिखाई पड़ा और प्रथम सप्ताह में मुझे 'व्हिप पूअर विल', ब्रैशर, वियरी, जंगली फी बी, चेविंक और दूसरे पक्षियों की आवाज़ सुनाई पड़ी। सारिका की आवाज बहुत पहले ही सुन चुका था। फीबी एक बार और आकर मेरे द्वार और खिड़की में झाँक चुकी थी, यह देखने के लिए कि यह घर उसके लिए यथेष्ट कंदरावत् है या नहीं। जिस समय कह सर्वेक्षण कर रही थी उस समय वह पंजे सिकोड़े, पंखों पर संतुलित थी, मानो वायु पर टिकी हुई हो।

चीड़ की गंध की पराग जल्दी ही तट के पास सरोवर, चट्टानों और सड़ी-गली लकड़ी पर बिखर गया, इतना कि आप पीपे के पीपे भर लें। जिस गंधक की बौछार के बारे में हम सुनते हैं, वह यही है। कालिदास नाटक 'शकुन्तला' में भी 'कमल की स्वर्ण-धूलि से पीली रंगी हुई नदियों' के बारे में हम पढ़ते हैं। इस प्रकार यह ऋतु लुढ़कती हुई ग्रीष्म में प्रवेश कर गई, जैसे कोई ऊँची, और ऊँची घास में चलता चला जाय।

इस प्रकार मेरे वनवास का प्रथम वर्ष समाप्त हुआ, द्वितीय वर्ष बिलकुल इसीके अनुरूप था। ६ सितम्बर १८४७ के दिन मैंने अंतिम रूप से वालडेन से प्रस्थान किया।

●

१८. उपसंहार

रोगग्रस्त लोगों के लिए चिकित्सक बुद्धिमानी से जलवायु और स्थान परिवर्तन की सलाह देते हैं। खुदा का शुक्र हैं कि सारा संसार इसी स्थान पर नहीं है। यहाँ न्यू इंग्लैंड में 'वक आई' पैदा नहीं होती, और 'मौकिंग वर्ड' की आवाज भी बहुत कम सुनाई पड़ती है। कलहंस हमसे कहीं अधिक सार्वभौमिक होता है, वह कैनाडा में नाश्ता करता है, दोपहर का भोजन ओहियो में करता है और रात को दक्षिण के किसी नाले में विश्राम करता है। जंगली भैंसा भी एक हद तक ऋतुचारी होता है, वह कोलोरेडो के मैदानों में केवल तब तक चरता है जब तक कि 'यैलो स्टोन' की अधिक हरी और मीठी घास तैयार नहीं हो जाती। फिर भी हम सोचते हैं कि यदि पटरियाँ गाड़ दी जायँ और खेतों के चारों ओर पत्थर चिन दिए जायँ तो हमारे जीवन की सीमा निर्धारित हो जाती है और हमारा भाग्य नियत हो जाता है। सचमुच यदि आप चुंगी के मुंशी बन जाते हैं तो इन गर्मियों में तो 'टेरा डेल फ्यूगो' जा नहीं सकते, हाँ नरकाग्नि के प्रदेश में अलबत्ता चले जा सकते हैं। सृष्टि के बारे में हमारे जो दृष्टिकोण हैं, उनसे वह कहीं अधिक विस्तृत है।

फिर भी हमें जिज्ञासु यात्रियों की भाँति केवल जहाज़ के रेलिंग पर से देखते हुए यात्रा करनी चाहिए, न कि मूर्ख मल्लाहों की भाँति जहाज़ के जोड़ों को भरते रहें। इस गोले की दूसरी ओर हमारे संवाददाता का ही घर है। हमारी जल-यात्रा केवल पृथ्वी की परिक्रमा होती है, और डाक्टर लोगों की व्यवस्था केवल त्वचा के रोगों के लिए होती है। लोग जिराफ के शिकार के लिए दक्षिण अफ्रीका तक दौड़े चले जाते हैं, किन्तु निश्चय ही वे इसी शिकार के पीछे नहीं लगे रहेंगे। मैं पूछता हूँ आदमी कितने दिन तक जिराफों का शिकार कर सकता है? 'स्नाइप' और 'वुडकौक' भी दुर्लभ जानवर हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि आदमी स्वयं अपना ही शिकार करे—

> अंतर्मुख होकर देखो तो पता चलेगा,
> कि तुम्हारे मस्तिष्क के सहस्रों प्रदेश

अब तक अनाविष्कृत हैं। उनकी यात्रा करो
और घर के सृष्टि-शास्त्र में दक्षता प्राप्त करो।'

अफ्रीका या पश्चिम किस बात के प्रतीक हैं? क्या हमारे अपने अंतर का नक्शा अभी तक एकदम कोरा नहीं रखा है, जो खोजने पर कदाचित सागर-तट की भाँति काला निकले? क्या हम नील या नाइजर या मिसीसिपी नदियों के स्रोतों को, अथवा महाद्वीप के उत्तरी-पश्चिमी दर्रे को ही खोजते फिरें? क्या ये ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्याएँ हैं? क्या फ्रैंकलिन ही एक ऐसा व्यक्ति है जो खो गया है कि उसकी पत्नी इतनी आतुरता से उसे तलाश करती फिरे? क्या मि० ग्रिनैल को पता है कि वे स्वयं कहाँ हैं? बल्कि आप अपनी ही सरिताओं, अपने ही सागरों के मंगो पार्क, और लीविस और क्लार्क और फ्रोविशर बनिए, अपने ही उच्चतर अक्षांशों की खोजबीन करिए, आवश्यकता हो तो खाने के लिए जहाज-भर मांस के डिब्बे ले जाइए, और चिह्न के रूप में एक के ऊपर एक खाली डिब्बे चिनकर आसमान तक पहुँचा दीजिए। क्या मांस को 'प्रीजर्व' (रक्षित) करने का आविष्कार केवल मांस को सुरक्षित रखने के लिए ही हुआ था? यही नहीं, कोलम्बस बनकर अपने अन्तर के नए महाद्वीपों और नए संसारों का पता लगाइए, नए-नए मार्ग खोलिए, व्यापार के नहीं, विचारों के। प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसे राज्य का स्वामी है कि जिसके सामने ज़ार का पार्थिव साम्राज्य भी अत्यंत तुच्छ, बर्फ का एक छोटा-सा टीला है। फिर भी कुछ लोग, जिनमें आत्म-सम्मान नहीं होता, देश भक्त होते हैं, और छोटी-सी चीज के लिए कहीं अधिक बड़ी चीज का बलिदान कर डालते हैं। उन्हें उस मिट्टी से प्यार होता है जिसमें उनकी कब्र बनती है, उन्हें उस आत्मा से प्रेम नहीं होता जो अब भी उनकी मिट्टी में जान डाल सकती है। स्वदेश-प्रेम उनके दिमाग का एक कीड़ा होता है। जिस 'दक्षिण-सागर खोज अभियान' पर इतना धन व्यय हुआ, इतना प्रदर्शन हुआ, उसका अर्थ अप्रत्यक्ष रूप से केवल यही है कि हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि नैतिक संसार में भी महाद्वीप और सागर हैं और प्रत्येक व्यक्ति इन सागरों और महाद्वीपों का भूडमरूमध्य या मुहाना है, अभी तक उसने इनका अन्वेषण नहीं किया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि एक सरकारी जहाज में अपनी सहायता के लिए पाँच सौ आदमी और लड़के लेकर, शीत, और तूफान और मानवभक्षियों के बीच हजारों मील की यात्रा कर लेना सहज है, और स्वयं अपने अंतस् के अटलांटिक और

प्रशांत महासागरों का अन्वेषण कठिन—

वे घूम-घूम कर विदेशी आस्ट्रेलियनों की पहचान करते रहें ।
मेरे सम्मुख अधिक परमात्मा है, उनके सम्मुख अधिक पथ है ।

जंजीवार की विल्लियों की गिनती करने के लिए सारी दुनिया का चक्कर लगाना समुचित नहीं है तो भी अब तक इससे ज्यादा अच्छा कोई काम नहीं है तो यही करिए, शायद कभी आपको कोई 'साइम्स होल' मिल जाय, जिसमें होकर आप अंत में अन्दर तक पहुँच सकें। इंग्लैंड और फ्रांस, स्पेन और पुर्तगाल, स्वर्णतट और गुलाम तट, सभी प्रदेश इस व्यक्तिगत सागर पर स्थित हैं। किन्तु अभी तक कोई भी नाव इन देशों से चलकर भूमि से ओझल नहीं हुई है यद्यपि, निस्संदेह, यही भारत का सीधा रास्ता है। यदि आप सभी देशों की भाषाएँ सीखना चाहते हैं, सभी देशों के रीति रिवाजों पर चलना चाहते हैं, यदि आप अन्य सब यात्रियों से आगे तक जाना चाहते हैं तो सभी प्रदेशों के वासी बन जाइए, और 'स्फिक्स' को पत्थर पर सिर मार-मार कर आत्मघात करने को मजबूर कर दीजिए, प्राचीन दार्शनिक के उपदेश का अनुसरण करिए और 'अपना अनुसंधान करिए। यहीं प्रखर दृष्टि और साहस की आवश्यकता होती है। केवल हारे हुए और भगोड़े लोग ही युद्ध-रत होते हैं, कायर ही युद्ध-भूमि से भागकर सेना में भर्ती होने हैं। उसी दूरतम पश्चिमी पथ पर चल पड़िए, जो न किसी मिसीसिपी पर रुकता है, न प्रशांत महासागर पर, न घिसे पिटे चीन जापान की ओर ले जाता है, वल्कि इस ग्रह को छूता हुआ, सीधा लिए चला जाता है, चलते चले जाइए दिन-भर और रात-भर, सूर्यास्त तक, चन्द्रास्त तक, अन्त में पृथ्वी के भी अस्त होने तक।

---

१. स्फिक्स—यूनान की प्राचीन कथाओं के अनुसार स्फिक्स नाम की एक राक्षसी थी, जिसका आधा शरीर नारी का और आधा सिंह का था। वह थीविस के निवासियों से पहेलियाँ पूछा करती थी और उत्तर न मिलने पर उन्हें खा जाती थी। थीविस निवासियों को आकाश वाणी से यह ज्ञात हुआ था कि जिस दिन उसकी किसी पहेली का सही उत्तर दे दिया जायगा उसी दिन वह आत्मघात कर लेगी। एक वार उसने प्रश्न किया कि वह कौन-सा जानवर है जो प्रातःकाल चार पैरों से, मध्याह्न में दो पैरों से और संध्याकाल में तीन पैरों से चलता है। इसका उत्तर 'ईडियस' ने दिया था कि मनुष्य शैशव में चार पैरों से, जीवन के मध्याह्न में दो पैरों से और जीवन की संध्या में तीन पैरों से (लाठी के सहारे) चलता है। पहेली का उत्तर सुनते ही स्फिक्स ने आत्मघात कर लिया।

कहा जाता है कि मिराबो[1] ने यह ज्ञात करने के लिए कि समाज के पवित्रतम नियमों का उल्लंघन करने के लिए कितनी दृढ़ता की आवश्यकता होती है', लूट-पाट करना शुरू कर दिया। अन्त में उसने घोषित किया कि 'युद्ध में जाने वाले सिपाही को लुटेरे से आधे साहस की भी आवश्यकता नहीं होती।' और यह कि, 'समाज और धर्म आज तक कभी भी सुनिश्चित दृढ़ संकल्प के मार्ग में बाधक नहीं हुए।' सांसारिक दृष्टि से यह साहस का काम था फिर भी यह कदम निराशा का नहीं तो, बेकार तो अवश्य ही था। किन्तु, जिन्हें 'समाज के पवित्रतम नियम' कहा जाता है, उनको विरोध की स्थिति में कोई अधिक बुद्धिमान व्यक्ति, और भी अधिक पवित्र नियमों का पालन करते समय अपने-आपको अनेक बार पाता और इस प्रकार बिना पथभ्रष्ट हुए ही अपनी दृढ़ता और साहस को कसौटी पर कस सकता था। आदमी के लिए समाज के प्रति इस प्रकार की स्थिति को अपनाना आवश्यक नहीं है, बल्कि उसे तो अपने अस्तित्व के नियमों का पालन करने में जो स्थिति हो उसी पर कायम रहना चाहिए, यह स्थिति कभी भी न्यायपूर्ण शासन के विरुद्ध नहीं पड़ेगी, यदि यह (न्यायपूर्ण शासन) कहीं संयोगवश उसे मिल जाय।

जिस कारण से मैं वन में रहने लगा था, ठीक वैसे ही कारण से मैंने उसे छोड़ा भी। कदाचित् मुझे यह प्रतीत हुआ कि मुझे और भी बहुत सी जिन्दगियाँ जीनी हैं और इस एक जिन्दगी के लिए अब और अधिक समय नहीं दे सकूंगा। यह एक उल्लेखनीय बात है कि हम कितनी आसानी से अनजाने ही एक विशेष पथ में पड़ जाते हैं और अपने लिए एक लीक बना लेते हैं। वन में मैं एक सप्ताह ही रहा होऊँगा, कि घर के द्वार से सरोवर तक एक पगडंडी मेरे पैरों ने बना डाली, और यद्यपि उस पगडंडी पर मैं पिछले पाँच-छः साल नहीं चला हूँ, तो भी अभी तक वह काफी स्पष्ट है। मुझे भय है, शायद वह बात यही है कि दूसरे लोग भी इसपर चले होंगे और इस प्रकार यह चालू रही है। यह पृथ्वीतल अत्यंत कोमल है, इस पर मानव के पद-चिह्न अंकित हो जाते हैं। ठीक यही बात उन पथों के बारे में भी है जिन पर मानव-मस्तिष्क विचरण करता है। तब फिर ये सांसारिक पथ कितने घिसे-पिटे, कितने धूलिमय हो गए होंगे। रीति और अनुसरण के कितने गहरे चिह्न उन पर बन गए होंगे। मैं आराम से 'केबिन' में बैठकर यात्रा नहीं करना चाहता था, बल्कि

१. मिराबो—फ्रांसीसी क्रांति का एक नेता (१७४९-१७९१)।

उसके मस्तूल से भी आगे, दुनिया के डैक पर जाना चाहता था; क्योंकि वहीं से मुझे पर्वतों के बीच चांदनी का दृश्य सबसे अच्छी तरह दिखाई पड़ता था। अब मैं नीचे नहीं उतरना चाहता था।

अपने प्रयोग से मैंने कम-से-कम इतना तो सीख ही लिया कि यदि कोई विश्वास के साथ अपने स्वप्नों की दिशा में बढ़ता चला जाय, और जिस जीवन की उसने कल्पना की है उसीके अनुसार रहने का प्रयास करता रहे, तो उसे वह सफलता प्राप्त हो जायगी; वह एक अदृष्ट सीमा को पार कर जाएगा, नये, सार्वभौमिक और अधिक उदार नियम उसके चारों ओर और उसके भीतर स्वयं व्यवस्थित हो जायँगे, अथवा पुराने नियम ही विस्तारित हो जायँगे जो अधिक उदार और अनुकूल सिद्ध होने लगेंगे, और वह श्रेष्ठतर प्रणायों के समान रहने लगेगा। जिस अनुपात में वह अपना जीवन सरल बनाता जायगा, उसी अनुपात में सृष्टि के नियम कम उलझे हुए प्रतीत होंगे और तब एकांत नहीं रहेगा। दरिद्रता दरिद्रता नहीं रहेगी, कमजोरी कमजोरी नहीं रहेगी। यदि आपने हवा में किले बनाए हैं, तो यह आवश्यक नहीं कि आपका श्रम निष्फल हो जाय, किले बनाने का समुचित स्थान वही है। बस केवल, उनके नीचे नींव रख दीजिए।

इंगलैंड और अमरीका एक बड़ी हास्यास्पद माँग करते हैं कि आप इस ढंग से बोलिए कि वे आपकी बात समझ सकें। न आदमी इस प्रकार उगता है, और न कुकुरमुत्ता। मानों उनका समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है, और उनके सिवाय आपकी बात समझने वाले पर्याप्त न होंगे। मानो प्रकृति में समझ का केवल एक ही स्तर हो, और वह पशुओं और पक्षियों को, उड़ने वालों और रेंगने वाले जीवों को समान रूप से पोषित करने में असमर्थ हो, और गिटपिट ब्राइट की समझ में आ जाय वही सर्वोत्तम प्रकार की अंग्रेज़ी हो। मानो केवल मूढ़ता में ही निस्तार हो। मुझे मुख्यतया इस बात का भय है कि कहीं मेरी अभिव्यक्ति में अतिक्रम की कमी न रह जाय, कहीं वह मेरे दैनिक अनुभव की संकुचित सीमा का पर्याप्त उल्लंघन करने में असमर्थ न हो, ताकि वह उस सत्य के लिए समुचित हो सके जिसकी मुझे प्रतीति हो चुकी है। अति-क्रम? यह इस पर आधारित है कि आपकी सीमाएँ कहाँ हैं। नये चरागाहों की तलाश में दूसरे अक्षांशों तक विचरण करने वाले जंगली भैंसों का 'अतिक्रम' उस गाय के अतिक्रम से सर्वथा भिन्न है जो दूध की बाल्टी में लात मार देती

है, वाड़े को लाँघ जाती है और दुहने के समय अपने बछड़े की ओर भागती है। मैं कहीं विना सीमा के बोलना चाहता हूँ, अपने जागृत क्षणों में व्यक्तियों से, उनके जागृत क्षणों में बात करना चाहता हूँ; कारण कि मैं समझ गया हूँ कि मैं उतना भी अतिरंजन नहीं कर पाता जितने से कि सही अभिव्यक्ति की नींव भी पड़ सके। ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे संगीत की एक तान सुनने के बाद इस बात का भय हुआ हो कि अब वह बोलने में सदा अति-रंजन करता रहेगा? भावी अथवा संभाव्य की दिशा में तो हमें बिना किसी तनाव के रहना चाहिए, हमारे आगे कोई परिसीमा न हो, उस ओर हमारी रूप-रेखा धुँधली और अस्पष्ट हो, जैसे कि सूर्य की दिशा में हमारी परछाईं पर पसीना अदृष्ट रहता। हमारे शब्दों का वाष्पगुणी सत्य निरन्तर अवशिष्ट वक्तव्य की असमर्थता प्रकट करता रहे। उनका सत्य तो तुरन्त ही अनूदित हो जाता है, केवल उसका वाचिक स्मरण रह जाता है। जो शब्द हमारी निष्ठा और पवित्रता को अभिव्यक्त करते हैं वे सुनिश्चित नहीं हैं, फिर भी, देवताओं को समर्पित धूप-चंदन की भाँति, वे सार्थक और सुगन्धित होते हैं।

हम सदा अपने बोध के निम्नतम स्तर की ओर ही क्यों झुकते रहें, और उसकी सहज बुद्धि के रूप में प्रशंसा क्यों करते रहें? सबसे अधिक सहज बुद्धि तो सोते हुए लोगों की होती है जिसे वे खुर्राटों में अभिव्यक्त करते हैं। कभी-कभी हम डेढ़ ($१\frac{1}{2}$) बुद्धि वाले लोगों को अर्द्ध-बुद्धि (मूर्खों) की श्रेणी में रख देते हैं; क्योंकि हम उनकी बुद्धि के एक तिहाई भाग को ही समझ पाते हैं। कुछ लोगों का यह स्वभाव ही होता है कि अगर कभी जल्दी उठ बैठें तो प्रातःकालीन लालिमा में भी दोष निकाल दें। मैंने सुना है कि "कबीर के पदों में चार अर्थ होते हैं—माया, आत्मा, बुद्धि और वैदिक सिद्धान्त।" लेकिन दुनिया के इस हिस्से में यदि किसी के लेखों के एक से अधिक भाष्य हो सकते हैं, तो लोग शिकायत करने लगते हैं। इंग्लैंड जब आलू सड़ने की बीमारी का इलाज ढूँढने में लगा हुआ है, तब क्या कोई दिमाग सड़ने की बीमारी का इलाज नहीं ढूँढ़ेगा, जो कहीं अधिक ज़ोरों से, कहीं अधिक घातक रूप से फैली हुई है?

मैं नहीं समझता कि मैं दुर्बोधता की हद तक जा पहुँचा हूँ, किन्तु यदि इस सम्बन्ध में, वालडेन-सरोवर की बर्फ में पाए जाने वाले दोषों से अधिक घातक दोष मेरे इन पृष्ठों में नहीं मिलते, तो मुझे गौरव का अनुभव होगा।

दक्षिणी ग्राहकों को इस वर्फ के नीले रंग पर ऐतराज होता था मानो वह मटमैली हो। वे लोग कैम्ब्रिज की वर्फ को पसन्द करते थे जो सफेद रंग की होती है और जिसमें घास-पात की गंध आती है। लोगों को वह पवित्रता प्रिय है जो पृथ्वी पर कुहरे की तरह छाई रहती है, अंतरिक्ष की नीलिमा की तरह की पवित्रता उन्हें प्रिय नहीं।

कुछ लोग हमारे कानों में भनभनाते रहते हैं कि हम अमरीकन लोग, और सामान्यतः आधुनिक युग के लोग, प्राचीन प्रतिभाओं, या एलिजावेथ के युग के लोगों की भी, तुलना में मानसिक बौने हैं। किन्तु इससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? मुर्दा शेर से तो जिंदा कुत्ता ही अच्छा होता है। क्या आदमी सिर्फ इसलिए गले में फाँसी लगाकर मर जाय कि वह बौनों की जाति का है? और यथाशक्ति बड़ा बौना बनने की चेष्टा न करे? प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना काम करे और जो उसे बनाया गया है वही रहने का प्रयास करे।

हम सफल होने के लिए इतनी उतावली क्यों करते हैं, और सो भी इन निराशापूर्ण कामों में? यदि कोई व्यक्ति अपने साथियों के साथ कदम मिलाकर नहीं चलता तो हो सकता है कि वह किसी दूसरे ही ढोल की आवाज सुन रहा हो। जो संगीत वह सुनता है, उसी के ताल-स्वर के अनुसार वह कदम रखे, भले ही वह कितनी ही दूर से आ रहा हो। यह आवश्यक नहीं है कि जितनी जल्दी सेव का या बलूत का पेड़ परिपक्व हो जाता है उतनी जल्दी वह भी परिपक्व हो जाय। क्या वह अपनी मधु-ऋतु को ग्रीष्म में वदल ले? जिन चीजों के लिए हमारा निर्माण हुआ, यदि उनकी परिस्थितियाँ अभी तक पैदा नहीं हुई हैं तो ऐसी कौन-सी वास्तविकता है जिसे हम उनके स्थान पर रख सकते हैं? हम मिथ्या वास्तविकता से जहाज टकराकर अपना सर्वनाश नहीं करेंगे। क्या हम चोटी से एड़ी तक का पसीना वहाकर अपने ऊपर नीले काँच का एक आसमान खड़ा कर लें, हालाँकि यह वात निश्चित है कि ऐसा आसमान वना लेने के वाद भी हम इससे वहुत ऊपर के अंतरिक्ष में स्थित असली आसमान की ओर ताकेंगे ही, मानो वीच में इसका अस्तित्व ही न हो?

कुरु नगर में एक कलाकार रहता था जो पूर्णत्व-प्राप्ति के प्रयास में संलग्न था। एक दिन उसके दिमाग में आया कि लाओ एक छड़ी वनाऊँ। अपूर्ण कृति में तो 'काल' की सामग्री लगती है किन्तु पूर्ण कृति में 'काल' का वंधन नहीं है। इसलिए उसने मन में कहा, 'यह छड़ी सव भाँति पूर्ण होगी,

भले ही जीवन-भर और कुछ न करूँ।' उसने निश्चय किया कि यह छड़ी वह सर्वोत्तम सामग्री से ही बनायगा और तुरन्त ही वन में लकड़ी तलाश करने के लिए चल दिया। इस तलाश में वह एक के बाद एक लकड़ी को छोड़ता गया, और इसी बीच उसके मित्रगण बिछुड़ते गए; क्योंकि अपने कामों में व्यस्त, वे सभी वृद्ध होकर काल-कवलित होते गए। किन्तु उसकी आयु एक क्षण भी नहीं बढ़ी। बिना उसके जाने ही, प्रयोजन की एकाग्रता, दृढ़ता और उच्चतर पवित्रता ने उसको चिर-यौवन प्रदान कर दिया। काल के साथ उसने कोई समझौता नहीं किया, इसलिए वह उसके मार्ग में विघ्न न डाल सका और दूर खड़ा रहकर केवल निश्वास भरता रहा; क्योंकि वह उस पर विजय न पा सका। जब तक वह सब भाँति श्रेष्ठ लकड़ी ढूँढ पाया, तब तक कुरू नगर एक खंडहर हो चुका था, और इस खंडहर के एक ढेर पर बैठकर उसने उस लकड़ी को छीला। जब तक उसने इसे समुचित रूप दिया तब तक संपूर्ण गांधार वंश का अंत हो गया। कलाकार ने इस छड़ी के एक सिरे से इस वंश के अंतिम व्यक्ति का नाम रेत में लिख दिया और पुन: अपने कार्य में संलग्न हो गया। जब तक उसने इस छड़ी को चिकनाकर उस पर रंग किया, तब तक कल्प व्यतीत हो चुका था। जब तक उसने इस छड़ी में मूंठ लगाई और उसमें रत्न जड़े तब तक ब्रह्मा अनेक बार सो और जाग चुके थे। किन्तु मैं इन चीजों के वर्णन में क्यों लगा हूँ? जब कलाकार उसे सम्पूर्णतया सँवार चुका तो यह छड़ी ब्रह्मा की सुन्दरतम कृति बनकर उसके चकित नेत्रों पर छा गई। उसने छड़ी बनाने की एक नई प्रणाली का प्रतिपादन कर दिया था, पूर्ण और समुचित अनुपातों से बने एक नये संसार का; जिसमें यद्यपि प्राचीन नगरों और वंशों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया था। और अब उसने अपने पास गिरे हुए छीलन से, जो अब भी ताजा था, देखा कि जहाँ तक उसका और उसके काम का सम्बन्ध है काल का बीतना केवल एक भ्रम था और यह देखा कि ब्रह्मा के मस्तिष्क से एक स्फुलिंग गिरकर जीव के मस्तिष्क को प्रज्वलित होने में जितना समय लगता है उससे अधिक समय इस क्रिया में नहीं लगा था। सामग्री विशुद्ध थी, उसकी कला विशुद्ध थी। तब फिर उसका फल आश्चर्यजनक न होकर अन्यथा कैसे होता?

किसी पदार्थ को हम चाहे जो रूप प्रदान करें, अंततोगत्वा वह हमारे लिए इतना उपयोगी नहीं होगा जितना कि सत्य। केवल यही स्थायी रहता है।

अधिकांश में, वास्तव में जहाँ हम होते हैं, वहाँ न होकर एक अवास्तविक स्थिति में आ जाते हैं। अपने स्वभाव की चंचलता के कारण हम एक स्थिति की कल्पना कर लेते हैं और अपने-आपको उसमें स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार एक ही समय में हम दो स्थितियों में हो जाते हैं और इनके चक्कर से निकलना दुगना कठिन हो जाता है। अपने स्वस्थ क्षणों में हम केवल तथ्यों अर्थात् वस्तु स्थिति पर ही विचार करते हैं। जो आपको कहना है वही कहिए, वह नहीं जो कहना चाहिए। बनावट की अपेक्षा तो कोई भी सत्य अधिक श्रेष्ठ होता है। टौम हाइड नाम के ठठेरे से फाँसी के तख्ते पर जब पूछा गया कि वह क्या कहना चाहता है, तो उसने कहा, 'दर्जियों से कह दो कि पहला टाँका लगाने से पहले धागे के छोर में गाँठ लगाना न भूलें'। उसके साथी की प्रार्थना कभी की भुलाई जा चुकी है।

आपका जीवन चाहे जितना दीन-हीन हो, उसका सामना करिए, उसे जिए जाइए, उससे भागिए मत, उसे गालियां मत दीजिए। वह उतना बुरा नहीं है जितने बुरे कि आप हैं। जब आप सबसे अधिक सम्पन्न दिखते हैं तभी आपका जीवन दरिद्रतम दिखाई देता है। छिद्रान्वेषी तो बैकुंठ में भी दोष निकाल लेगा। जीवन से प्रेम करिए, भले ही वह कितना ही दरिद्र हो। दरिद्रालय में भी कदाचित् आपको कुछ सुखमय, उल्लासमय, दीप्तिमय क्षण मिल जायँगे। दरिद्रालय की खिड़कियों से भी अस्ताचलगामी सूर्य उतना ही प्रतिबिम्बित होता है जितना कि किसी धनिक की हवेली से। दोनों के द्वारों की बर्फ वसंत ऋतु में एक ही समय पिघलती है। मैं तो यही देखता हूँ कि शांत मन वाला व्यक्ति वहाँ भी उतने ही संतोष के साथ रह सकता है, जितने संतोष से किसी राज-महल में, इस नगर के दरिद्र बहुधा मुझे सबसे अधिक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते दिखाई देते हैं। सम्भवतः वे इतने महान् हैं कि बिना किसी आशंका के ग्रहण करते हैं। अधिकतर लोग अपने बारे में सोचते हैं कि वे नगर द्वारा पोषित होने से ऊपर हैं, किन्तु बहुधा होता यह है कि वे बेईमानी के साधनों से अपने-आपको पोषित करने से ऊपर नहीं होते, और यह बात उससे कहीं अधिक लज्जाजनक है। संतों की भाँति निर्धनता को बाग की दूब की तरह उगाइए। नई वस्तुएँ, चाहे वे नये मित्र हों या नये वस्त्र, प्राप्त करने के लिए कष्ट मत उठाइए। पुरानी चीजों को ही पलटिए—बार-बार उसी पर लौट आइए। वस्तुएँ नहीं बदलतीं, हम बदल जाते हैं। अपने वस्त्रों को बेच डालिए, लेकिन

अपने विचारों को अपने पास रखिए। ईश्वर कभी आपको संग-साथ की कमी नहीं रहने देगा। यदि मुझे जीवन-भर के लिए, मकड़े की भाँति, किसी अटारा में कैद कर दिया जाय, तो भी जब तक मेरे पास मेरे विचार हैं, तब तक संसार मेरे लिए उतना ही बड़ा रहेगा, जितना कि अब है। दार्शनिक ने कहा है, 'तीन डिवीज़नों की सेना के जनरल को हटाकर उसे अव्यवस्थित किया जा सकता है, किन्तु आदमी से, सबसे दीन-हीन आदमी से भी उसका विचार नहीं छीना जा सकता।' इतनी आतुरता से चमक उठने का प्रयास मत करिए, अनेक प्रभावों का शिकार मत होइए, यह शक्तिक्षय है। दीनता अंधकार के समान दिव्य ज्योति हमारे सामने लगती है। दरिद्रता और हीनावस्था की छाया घिरते ही, हमें 'सृष्टि का विस्तार दिखाई देने लगता है।' यह बात हमें अक्सर याद आती है कि कुबेर का धन प्राप्त कर लेने पर भी हमारा लक्ष्य वही रहेगा, हमारे साधन वही रहेंगे, बदल नहीं जायँगे। इसके अतिरिक्त, यदि निर्धनता के कारण आपके साधन सीमित रहते हैं, उदाहरण के लिए यदि आप पुस्तकें और अखबार नहीं खरीद पाते, तो आप केवल सबसे महत्त्वपूर्ण और सजीव अनुभवों तक ही सीमित रहते हैं। आपको बलात् वह सामग्री प्रयोग में लानी पड़ती है जो सबसे अधिक 'शर्करा' और 'स्टार्च' प्रदान करती है। हड्डी के पास का यह जीवन ही सबसे मधुर होता है। आप खिलवाड़ से बच जाते हैं। उच्चतर स्तर पर उदार होने से निम्नतर स्तर पर कभी किसी की हानि नहीं होती। फालतू धन से केवल फालतू चीजें ही खरीदी जा सकती हैं। आत्मा की कोई भी आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती।

मैं शीशे की दीवार के एक कोण में रहता हूँ, जिसे बनाते समय 'काँसा' मिला दिया गया था। अक्सर दोपहर को विश्राम करते समय मेरे कानों में एक अस्पष्ट टनटनाहट आया करती है यह मेरे समसामायिकों का शोर-गुल है। मेरे पड़ोसी प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के विषय में अपने अनुभव मुझे सुनाते हैं, कि किन-किन विभूतियों से दावत में उनकी भेंट हुई। किन्तु इन बातों में मेरी रुचि केवल उतनी ही है जितनी कि 'डेली टाइम्स' की सामग्री में। उनकी रुचि और बातचीत केवल पहनावे और तौर तरीकों के बारे में ही होती है, लेकिन कहावत है कि कलहंस (मूर्ख) को चाहे जो कपड़े पहनाओ कलहंस ही रहेगा। वे लोग कैलिफोर्निया और टैक्साज़, इंग्लैण्ड और इंडीज़ के बारे में औनरेबुल मि०.........के बारे में, जौर्जिया और मैसाचुसेट्स के बारे में महत्त्वहीन और

अस्थायी वस्तुओं के बारे में तब तक बात करते चले जाते हैं जब तक कि मैं 'ममलुक बे' की भाँति उनके दायरे को लाँघ जाने को तैयार नहीं हो जाता। मुझे तो अपनी ही स्थिति में आनन्द आता है, तड़क-भड़क और शान-शौकत से जलूस में आगे-आगे चलने में नहीं, बल्कि सम्भव हो तो स्वयं सृष्टिकर्त्ता के साथ चलने में आनन्द आता है—व्याकुल, स्नायविक, शोर-गुल से भारी इस तुच्छ उन्नीसवीं सदी में रहने में नहीं, बल्कि एक स्थान पर चिन्तामग्न खड़े होकर या बैठकर इसको गुजरते हुए देखने में मुझे आनन्द आता है। आखिर लोग किस बात का उत्सव मना रहे हैं? वे सब एक प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य हैं और हरेक क्षण वे किसी-न-किसी से एक व्याख्यान की अपेक्षा करते हैं। ईश्वर अध्यक्ष-मात्र होता है और वेबस्टर[1] उसका वक्ता; मुझे उस वस्तु को तौलना, उसकी ओर स्थित होना, उसकी ओर खिंचाव प्रिय है जो ज़बर-दस्त शक्ति से, पूर्ण अधिकार से मुझे अपनी ओर खींचता है। डंडी मारना मुझे पसंद नहीं; किसी स्थिति की कल्पना करना नहीं, बल्कि वस्तु स्थिति से ही साक्षात् करना मुझे प्रिय है केवल उस मार्ग पर चलना जिस पर मैं चल सकता हूँ, उस पर चलने से मुझे कोई बाधा नहीं रोक सकती। ठोस नींव डालने से पहले ही महराब बनाना प्रारम्भ करने से मुझे संतोष नहीं होता। हम किटली बेंडर्ज़[2] का खेल न खेलें। सभी जगह ठोस तल होता ही है। हमने एक किस्सा पढ़ा है कि एक यात्री ने एक लड़के से पूछा कि सामने वाली दलदल में ठोस भूमि है या नहीं। लड़के ने उत्तर दिया, "हाँ, है।" लेकिन यात्री का घोड़ा जब उस दलदल में आधा धँस गया तो उसने लड़के से कहा, "तुमने तो कहा था कि इस दलदल में कड़ी जमीन है।" उसने उत्तर दिया, "सो तो है ही, लेकिन अभी तुम उसकी आधी दूर भी नहीं पहुँचे हो।" यही बात समाज की दलदलों के बारे में भी है लेकिन इसका पता उस लड़के को होगा। जो किसी विशेष अवसर पर सोचा, कहा या किया जाता है वही ठीक होता है। मैं उन लोगों में नाम लिखाना पसन्द नहीं करूँगा जो मूर्खतावश केवल ऊपर की पट्टी या पलस्तर पर ही कील ठोंकते हैं, ऐसे कामों से मेरी रातों की नींद उड़ जायगी। मुझे तो एक हथौड़ा दे दीजिए और जोड़ टटोलने दीजिए। केवल ऊपर के पलस्तर पर ही निर्भर मत रहिए। कील को पूरा घुसाकर उसे खूब

१. वेबस्टर—अमरीका का एक कूटनीतिज्ञ और वक्ता (१७८२-१८५२)।

२. किट्ली बेंडर्ज—बर्फ की पतली-सी तह पर भाग-दौड़ का एक खेल।

ठोक दीजिए—इतना कि रात को जागकर आप अपने काम के बारे में संतोष से सोच सकें—ऐसा काम जिसके प्रति सरस्वती का आह्वान करने में आप लज्जा का अनुभव न करें। इसी प्रकार और केवल इसी प्रकार ईश्वर आपकी सहायता करेगा। प्रत्येक कील जो ठोकी जाय, वह इस सृष्टि की मशीन को और भी मजबूत बनाने का काम करे।

प्रेम की, धन की, यश की अपेक्षा तो सत्य ही चाहिए। मैं एक दावत में गया था, वहाँ पकवान और शराब की भरमार थी, परसाव भी खूब खातिर से हो रहा था, किन्तु वहाँ सच्चाई और ईमानदारी का नाम निशान भी न था। इस अतिथि-सत्कारहीन मेज से मैं भूखा ही उठ आया। अतिथ्य में भावना की गर्मी नहीं थी, वह बर्फ के समान ठंडा था। मेरे विचार से उन लोगों को जमा देने के लिए बर्फ की ज़रूरत नहीं पड़ती, इतना ठंडा था उनका व्यहार। वे लोग मुझे शराब की आयु और अंगूरी सुरा की प्रसिद्धि के बारे में बता रहे थे, किन्तु मैं सोच रहा था एक और भी पुरानी, और भी नई, और भी बढ़िया शराब की बात जो उनके यहाँ नहीं थी, जिसे वे खरीद भी नहीं सकते थे। ठाट-बाट, घर, जमीन और 'मनोरंजन' का मेरे निकट कोई मूल्य नहीं है। मैं राजा के घर गया, उसने मुझसे हाल में प्रतीक्षा करवाई और ऐसा व्यवहार किया जैसे उसमें अतिथि-सत्कार की क्षमता ही नहीं रह गई हो। मेरे पड़ोस में ही एक आदमी एक वृक्ष के कोटर में रहता था। उसका ढंग वास्तव में राजसी था। यदि मैं उसके यहाँ जाता तो अधिक अच्छा होता।

हम कब तक पोर्टिको में बैठकर सड़े-गले फालूत शिष्टाचार का पालन करते रहेंगे—कोई सुबह से ही उपद्रवों को धैर्यपूर्वक पीता रहे और अपने आलुओं की गोड़ाई के लिए किसी और को भेज दे, और फिर तीसरे पहर यह सोचकर निकल पड़े कि लाओ विनम्रता और उदारता का कोई अच्छा काम कर लिया जाय। मानव जाति का दंभ और अवरुद्ध आत्म-संतोष तो देखिए। इस पीढ़ी में अपने-आपको एक विख्यात वंश की अंतिम पीढ़ी के रूप में साधुवाद देने की भी थोड़ी-सी प्रवृत्ति है और लंदन और बोस्टन, और पैरिस और रोम में, अपनी प्राचीन वंशावली की बात सोचकर यह पीढ़ी प्रगति की बात करती। है वहाँ 'फिलौसौफिक्ल' सोसाइटियों का उल्लेख होता है और 'महान् विभूतियों' का सार्वजनिक गुणगान किया जाता है। लगता है जैसे बाबा आदम मानो स्वयं अपने गुणों का चिंतन कर रहे हैं। 'हाँ हमने महान् कार्य किये हैं

वड़े दिव्य गीत गाए हैं, जो सदा अमर रहेंगे' अर्थात् किस काल तक हम स्वयं उन्हें याद रख सकते हैं। कहाँ हैं असीरिया का पंडित-समाज, कहाँ है उनकी महान् विभूतियाँ ? हम कितने यौवनपूर्ण दार्शनिक हैं, कितने प्रयोगशील हैं ! मेरे पाठक गणों में एक भी तो ऐसा नहीं है जो समूचा मानव-जीवन जी चुका हो। यह युग मानव जाति के जीवन का केवल वसंत हो सकता है। अगर हम सत-साला खुजली का अनुभव कर चुके हैं, तो सत्रह-साला टिड्डी तो अभी हमने कौंकर्ड में देखी ही नहीं। हम इस विश्व की केवल पतली-सी झिल्ली से (जिस पर हम रहते हैं) परिचित हैं। अधिकतर लोग इस पृथ्वी-तल के नीचे छः फुट तक भी नहीं गए हैं, और ऊपर भी छः फुट तक नहीं उछल सके हैं। हमें अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं है। इसके अतिरिक्त लगभग आधे समय तो हम गहरी नींद सोते रहते हैं। फिर हम वड़े बुद्धिमान वनते हैं और सतह पर ही एक व्यवस्था हमने वना रखी है। सचमुच हम वड़ी दूर की कौड़ी लाते हैं, ज़वरदस्त आकांक्षा वाले लोग हैं। चीड़ के पेड़ की नीची डालियों पर रेंगते हुए कीड़े के पास जाकर जव मैं खड़ा होता हूँ और यह देखता हूँ कि वह अपने को मुझ से छिपाने का प्रयास कर रहा है तो मैं अपने-आपसे प्रश्न करत हूँ कि इस कीड़े के मन में ऐसा हीन विचार क्यों आता है और क्यों वह मुझे देखकर भागता है, जवकि हो सकता है कि मैं उसका कुछ हित कर सकूँ या उनकी जाति को कोई सुसंवाद दे सकूँ ? उस समय मुझे याद आता है वह महानतर हितैषी, जो मुझ मानव-कीट को ऊपर से देख रहा है, और याद आता है उसका महानतर संदेश।

इस संसार में नवीनता का अवाध प्रवाह चला आ रहा है फिर भी हम हैं कि इतनी नीरसता को सहन करते चले जाते हैं कि विश्वास नहीं होता। प्रभाव के लिए यही देखना काफी होगा कि कैसे-कैसे उपदेश आज भी वड़े ध्यानपूर्वक सवसे व्युत्पन्न देशों तक में सुने जाते हैं। 'आनन्द' 'दुख' प्रभृति शब्द हैं, किन्तु वे केवल भजनों की टेक होकर रह गए हैं, जिन्हें हम नाक के सुर में गाते रहते हैं जवकि हमारा विश्वास होता है 'साधारण' और 'तुच्छ' में। हमारा खयाल है कि हम केवल अपने कपड़े ही वदल सकते हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजी साम्राज्य वड़ा वम्वा-चौड़ा है, वड़ा सम्मानित है, और संयुक्त राज्य अमरीका एक प्रथम श्रेणी की शक्ति हैं। हम विश्वास नहीं करते कि प्रत्येक व्यक्ति की पृष्ठभूमि में एक ज्वार-भाटा आया करता है, जिसे यदि वह मन में धारण

कर ले तो, अंग्रेजी राज्य को तिनके के समान बहा सकता है। कौन जानता है कि अगली बार इस पृथ्वी के गर्भ से किस प्रकार की सहत्र साला टिड्डी निकल पड़ेगी ? मैं जिस संसार में रहता हूँ उसके शासन-तंत्र का निर्माण ब्रिटेन की सरकार की तरह खाने के बाद शराब पीते वक्त बातचीत के दौरान नहीं हुआ था।

हमारे भीतर का जीवन नदी में जल की भाँति होता है। हो सकता है कि इस वर्ष इतना ऊपर चढ़ जाय जितना कभी नहीं चढ़ा, और आस-पास की ऊँची शुष्क भूमि को भी आप्लावित कर दे, यदि हमारी सभी मस्करेंट डूब जाय तो यह भी बड़ा महत्त्वपूर्ण वर्ष गिना जायगा। जहाँ हम आज रहते हैं वहाँ हमेशा ही सूखी ज़मीन नहीं रही। इस भूमि पर बहुत दूर तक मुझे वे किनारे दिखाई देते हैं जिन्हें यह धारा प्राचीन काल में सींचती थी, इसके प्रवाह की नाप-जोख विज्ञान ने की, उससे भी पहले। न्यू इंग्लैण्ड में एक किस्सा प्रचलित है जिसे सभी ने सुना होगा। सेब की सूखी लकड़ी की एक मेज थी जो एक किसान के घर में साठ साल तक, पहले कनेक्टीकट में और फिर मैसाचुसेट्स में रखी रहती थी। इस मेज में से एक कीड़ा निकला—कई दिन तक उसे लकड़ी काटते सुना गया था। लकड़ी की सालाना पर्त्तें गिनने से पता चला कि उसका अण्डा मेज बनाने से भी कितने ही वर्ष पूर्व हरे पेड़ में रखा गया था, और अब वह किसी बर्तन की गर्मी पाकर फूटा था। इस किस्से को सुनकर किसके मन में अमरत्व और पुनरुत्थान के प्रति विश्वास का भाव पुष्ट नहीं होगा ? कौन जानता है कि इस समाज के शुष्क जीवन की एक के ऊपर एक जमती हुई नीरसता की पर्त्तों के नीचे दबे किसी अण्डे से, जो किसी समय वृक्ष की हरी लकड़ी में रखा गया होगा (जो धीरे-धीरे इसकी कब्र बन गई), कौन-सा सुन्दर और पंखों वाला जीव अपने जीवन के पूर्ण आनन्द का उपभोग करने के लिए किसी मामूली-सी मेज़ से अचानक ही निकल पड़ेगा, जिसके काटने की आवाज़ चारों ओर बैठकर भोजन करता हुआ मानव-समाज वर्षों तक सुनता रहा था ?

मैं यह नहीं कहता कि यह सारी बात इंग्लैंड या अमरीका के लोगों की समझ में आ जायगी, किन्तु उस प्रभात का यही स्वभाव है, उसका उदय केवल कालगति से ही नहीं हो जाता। जिस ज्योति से हमारी आँख झपक जायँ, वह हमारे लिए अंधकार है। दिन का उदय केवल तभी होता है जब हम जाग्रत हों। दिन का उदय अभी और बाकी है। सूर्य केवल भोर का एक तारा है।